

गरुडपुराणम्

भाषाटीका सहित

शिवराज आचार्यः कौण्डिन्न्यायनः

|| श्रीः ||

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन-प्राच्यविद्या-ग्रन्थमाला

१४५

वेदव्यास-कृष्णद्वैपायनमुनिकृतं सूतप्रोक्तम्

गरुडपुराणम्

उत्तरखण्डस्थ-द्वितीयांशरूप-धर्मकाण्डनामक-प्रेतकल्पात्मकम्

विवेचनात्मकहिन्दीभूमिका-हिन्द्यनुवादादियुतम्

सम्पादकोऽनुवादकश्च

शिवराज आचार्यः कौण्डिन्न्यायनः

ब्रह्ममीमांसाचार्यः, साहित्याचार्यः, एम्.ए. (संस्कृते), एम्.ए. (फिलोसफिविषये), विद्यावारिधिः (पीएच्.डी.), वाचस्पतिः (डी.लिट्., वाराणसीस्थ-स.सं.वि.वि.),
भारतवर्षान्तर्गतहिमवत्खण्डस्थगण्डकीप्रदेशाभिजनः, स्वाद्ध्यायशालाकुटुम्बगृहपतिः।

सम्पादनसहायकाः

आमोदवर्धनः कौण्डिन्न्यायनः, शुक्लयजुर्वेदाचार्यः; **प्रमोदवर्धनः कौण्डिन्न्यायनः**, धर्ममीमांसाचार्यः; **सुमोदवर्धनः कौण्डिन्न्यायनः**, ब्रह्ममीमांसाचार्यः
स्वाद्ध्यायशालाकुटुम्बगृहपतिगृह्याः।

चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी

प्रकाशक

चौखम्बा विद्याभवन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)

पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001

दूरभाष : 2420404

संस्करण सन् 2004 ई.

मूल्य : 150.00

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन	**चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान**
के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन	38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर
पो. बा. नं. 1129	पो. बा. नं. 2113
वाराणसी 221001	दिल्ली 110007
दूरभाष : 2335263, 2333431	दूरभाष : 23856391

विषयानुक्रमणिका

अध्याय–१ (पृ. ६७-७७)

नारायणादि को नमस्कार करके जयपदवाच्य ग्रन्थों के वाचन का विधान, मधुसूदनस्तुतिरूप मङ्गलपाठ, नैमिषारण्य में शौनकादि का यज्ञकृत्यों से अवकाश के समय में सूत प्रति देही के दूसरे देह की प्राप्ति के विषय में प्रश्न, शौनकादिकृत प्रश्न का उत्तर कृष्ण-गरुड-संवादद्वारा देने की सूत की प्रतिज्ञा, सूत का कृष्णमुनि (व्यास) को नमस्कार, गरुड का विभिन्न लोकों को देखने की इच्छा और सब लोकों को देखकर लोक-दुःख से दुःखी होकर पुनः वैकुण्ठ में आगमन, वैकुण्ठ का वर्णन, विष्णु भगवान् के रूप का वर्णन, गरुड का विष्णु को प्रणाम, विष्णु भगवान् का लोकों को देखने के विषय में गरुड प्रति प्रश्न, गरुड का यमलोक छोड कर अन्य सब लोकों को देखने की बात बताना और भूर्लोक के भारतवर्ष की महिमा बताना तथा उस में किए जाने वाले कृत्यों के रहस्यों को उद्घाटित करने के लिए गरुड का मुमूर्षुकृत्यों के और प्रेतकृत्यों के विषय में अनेक प्रश्न करना।

अध्याय-२ (पृ. ७७-९०)

श्रीकृष्ण भगवान् की सम्पूर्ण और्ध्वदेहिक कृत्य बताने की प्रतिज्ञा, पुत्रोत्पादन की आवश्यकता , मरणकाल में किए जाने वाले भूमि में तिल-विकरण दर्भाच्छादम इत्यादि कृत्यों के प्रयोजनों का प्रतिपादन, भूमि का गोमयोपलेपन की, मण्डलकरण की प्रायश्चित्त करने की, तिल-दर्भप्रयोग की और लवणदान की आवश्यकता का प्रतिपादन, मृत्यु के स्वरूप का और काल की बलिष्ठता का प्रतिपादन, सुखमृत्यु का कारण, मोहमृत्यु के कारण, लोक में जीवों के भोगों के वैचित्र्य के कारण उन के कर्मों का तारतम्य, कर्मविपाक (महापातकादि विभिन्न कर्मों के फल)।

अध्याय-३ (पृ. ९०-१०४)

गरुड का नरक के स्वरूप के विषय में प्रश्न, नरकों की सङ्ख्या हजारों में होनेपर भी रौरव महारौरव इत्यादि सात अतिप्रमुख नरकों का विशेष प्रतिपादन, अन्य नरक और उन में पडने वाले पातकियों का वर्णन, नरक में एक दिन की ही वर्षशततुल्यता, सभी नरकों के भोग के वाद पातकियों का तिर्यग्योन्यादि में जन्म, चण्डालादि योनि में जन्म, पुण्यवान् जनों की दिव्यगति और राजाओं के और महात्माओं के घर में जन्म इत्यादि विषयों का वर्णन, प्राणियों का मरण का नियतत्व, पापियों के मरण में जीव का अधोमार्ग से निष्क्रमण, मृत्यु में शरीर के पृथिव्यादि तत्त्वों की गति, शरीररूप पिण्ड का वर्णन, ८४ लाख योनियों का उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज इन ४ भेदों का प्रतिपादन।

अध्याय-४ (पृ. १०५-१३०)

सद्गति के लिए प्रायश्चित्तों की कर्तव्यता, प्रायश्चित्त के लिए भस्मस्नानादि दशविध स्नान, षडब्दकृच्छ्र, त्र्यब्दकृच्छ्र, सार्धैकाब्दकृच्छ्र, नवमासकृच्छ्र वा सार्धचतुर्मासकृच्छ्र यथाशक्ति करने का विधान, प्रायश्चित्तोत्तराङ्गरूप में दशदान का विधान, वैतरणीदान, अष्टमहादान, तिलपात्र-घृतपात्र-सोपस्करशय्यादान, स्वेष्टवस्तुदान, यथाशक्ति अश्व, रथ, महिषी, व्यजन, वस्त्र इत्यादि अन्य वस्तुओं का मन्त्रपूर्वक दान, प्रायश्चित्तादि से नरकप्राप्ति का परिहार, स्वतन्त्र लवणदान का विधान, स्वयंदत्त दान का फल, प्रायश्चित्त का फल; गाय, छत्र, जूता, कमण्डलु, वस्त्र, अँगूठी, तिलपात्र, घृतपात्र, सोपस्करशय्या, अश्व, रथ, महिषी, तालवृन्त (पङ्खा), गृह इन वस्तुओं के दान के फल, दान में श्रद्धा-अश्रद्धा के विशेष से फल में तारतम्य; जलदान-रसदान-अन्नदान के फल, मरण आसन्न होनेपर सन्न्यासग्रहण का फल, मरण आसन्न होनेपर तीर्थपर लेजाने का फल, तीर्थ में जाते हुए मार्ग में मरण होनेपर

फल, मृत्यु आसन्न होनेपर अनशनव्रत लेने का फल; दाह और मृत्यु के बीच में किए जाने वाले कृत्यों का विवरण, पुत्रादि का स्नान, शव का शुद्धजल से प्रक्षालन, वस्त्रपरिधापन, चन्दनादि से शव का प्रोक्षण, मृतस्थान में एकोद्दिष्टश्राद्ध, इस एकोद्दिष्टश्राद्ध में होने वाले और न होने वाले श्राद्धकृत्यविशेष, माषान्नसहित घट का दान, लोहदक्षिणा का दान, मरणस्थानादि में होने वाले छः श्राद्धों की गणना, उन के फल, शवनिर्हरण की रीति, यमगाथागान वा यमसूक्तपाठ, दक्षिण दिशा की ओर अरण्य में शव को लेजाना, शूद्राऽऽनीत तृणकाष्ठादि का निषेध, चिताभूमि में प्राचीनावीती और दक्षिणाभिमुख होकर वेदीनिर्माणादि करना, प्रेतवस्त्र का अर्धभाग श्मशानवासी को देना, प्रेतके हाथ में पिण्ड देना, शव को घी से लेपना, वेदीसंस्कार, अग्निस्थापनं, क्रव्यादाग्नि-पूजन, आहिताग्नि का श्रौतविधान से दाह करना, चण्डालादि के अग्नि की त्याज्यता, क्रव्यादाग्निप्रार्थना, शरीर की आहुति, शरीर अर्धदग्ध होनेपर मन्त्रपूर्वक तिलाज्याहुति, गाढ रोदन, सञ्चयनक्रिया, प्रेतपिण्ड-दान, चिताप्रदक्षिणा और कनिष्ठ-कनिष्ठ को आगे करते हुए सूक्तजप-युक्त शवनिर्हारकों का स्नान के लिए जाना, अपने वस्त्रों का प्रक्षालन करना, प्रक्षालितवस्त्र पहन के स्नान करके यथाविधि तिलजलाञ्जलि देना, अञ्जलिसङ्ख्या की व्यवस्था, शुष्कवस्त्रपरिधानविधान, अश्रुपात-निषेध, शोकापनोदनविधि, बालपुरस्सरों का गृहगमन, गृहप्रवेशविधि, आहिताग्नि का श्रौतविधि से दाह, दो वर्ष से कम के बालबालिकाओं का दाह क. अभाव और निखनन, उस के लिए उदकदान का भी अभाव; पतिव्रता स्त्री के सहगमन का विधान और फल, पतिव्रता की परिभाषा, अगर्भिणी और बालापत्यरहित ब्राह्मणी से लेकर चाण्डाली तक सभी स्त्रियों का पति के मरणपर सहगमन का अधिकार; प्रवासकाल में मरने वालों के अस्थि अप्राप्त होनेपर उन के लिए और दुर्मरण से मरने वालों के लिए नारायणबलि और पुत्तलकदाह इत्यादि का विधान, नागदंश से मरने वालों के लिए विशेष विधान, दुर्मरण से मरने वालों के और्ध्वदेहिक कर्म करनेपर क्रियासमाप्ति में कर्ता की शुद्धि के लिए कृच्छ्ररूप प्रायश्चित्त का और उस के अनुकल्प का विधान; कृच्छ्र-तप्तकृच्छ्र-सान्तपनकृच्छ्र के लक्षण, मृतभ्रान्ति से प्रतिकृतिदाह होनेपर यदि व्यक्ति जीवित मिले तो उस के संस्कार का विधान, प्रवास में जानेपर चिरकाल तक अज्ञात रहनेपर प्रतिकृति-दाहादि कर्म करने के लिए अवधि, रजस्वला के और सूतिका के मरनेपर विधान, धनिष्ठादि नक्षत्र पञ्चक में मरनेपर विधान।

अध्याय –५ (पृ. १३१-१५२)

दाह-स्नान-तिलोदकदानादि के बाद स्त्रीजन को आगे करके यथाविधि गृहप्रवेश करके दश अहोरात्र तक सपिण्डों का आशौच-

पालन, आशौचकाल में खरीदे हुए और दिये हुए अन्न का भोजन, पृथक्पृथक् सोना, क्षार-लवणरहित भोजन, तीन दिन तक अपस्नान करना, मांसभोजन-त्याग, भूमिशयन; स्त्रीभोगवर्जन, परस्परस्पर्शवर्जन, दान और अध्ययन का वर्जन; मलिन अधोमुख दीन और भोगरहित रहना, अङ्गों के मर्दन से और केश के सँवारने से भी रहित होकर मिट्टी के वर्तन में अथवा पत्तलों में भोजन करना इत्यादि नियम का विधान, एक अहोरात्र अथवा तीन अहोरात्र उपवास का विधान, आशौच का लक्षण और अवधि, प्रेत के लिए तीन दिन तक आकाश में मिट्टी के वर्तन में जल और क्षीर रखना, अस्थिसञ्चयन-काल के विकल्प, अस्थिसञ्चयन के वाद के नियम, प्रेतपिण्डदान के स्थान, द्रव्य और पद्धति, नौ दिनों में नौ पिण्ड देना, दशम दिन में दशम पिण्ड दिए जाने पर दिन बीत जाने पर रात में (एकादशाहश्राद्ध के लिए ब्राह्मण-निमन्त्रणार्थ) शुद्धि; प्रथम दिन के कर्ता से ही दशाह कृत्य सम्पन्न करने का नियम, प्रथम दिन के पिण्डद्रव्य से ही दश दिन तक पिण्ड देने का नियम; आशौच में प्रेत को दिए जाने वाले अञ्जलियों की सङ्ख्या की व्यवस्था, पितृकृत्यों में पुत्र का मुख्य अधिकार, पिण्ड का प्रसेक, धूप और दीप, दशम दिन में गाँव से बाहर स्नान, वस्त्रत्याग, केश-श्मश्रु-नख-त्याग, ब्राह्मणादि का जलस्पर्शादि से शुद्धि, मृत व्यक्ति से अल्पवयस्क सपिण्डों का दशम दिन में वपन, मलिन-षोडशीविवरण, दश दिन के दश पिण्डों के त्रिविध उपयोग, नौ पिण्डों से प्रेतशरीर के विविध अङ्गों की निष्पत्ति, दशम पिण्ड का कार्य, मध्यम-षोडशी का विवरण, दुर्मरण में नारायणबलि करने पर एकादशाह में वृषोत्सर्ग की आवश्यकता, पुत्रादि से वृषोत्सर्ग की अवश्यकर्तव्यता, चतुर्वत्सतरीयुक्त वृष के उत्सर्ग से प्रेतत्व का परिहार, वृष के अलाभ में उस का अनुकल्प, एकादशाह में प्रेत के इष्ट वस्तुओं का दान, शय्या धेनु इत्यादि का दान और बहुब्राह्मणभोजन, तृतीय (उत्तम) षोडशी का विवरण, तृतीय षोडशी की आवश्यकता, एकादश अथवा द्वादश दिन में आद्यश्राद्ध, मास के आदि में मृततिथि में प्रतिमास मासिक श्राद्ध, एक वा तीन दिन कम मास में, त्रिपक्ष में और एक वा तीन दिन से कम षण्मास और वर्ष में श्राद्ध, और वर्ष वा अर्धवर्ष पूर्ण होने पर अथवा त्रिपक्ष में अथवा द्वादशाह में सपिण्डीकरण, द्वादशाह में सपिण्डीकरण की प्रशंसा, सपिण्डीकरणपद्धति, सहगमन में स्त्री के सपिण्डीकरण की व्यवस्था, अन्वारोहण में स्त्री के श्राद्धादि की और नवश्राद्ध की व्यवस्था, सपिण्डीकरण होने पर भी वर्षपर्यन्त मासिक उदकुम्भ देने की व्यवस्था, भाइयों में धन विभक्त होने पर भी नवश्राद्धादि सपिण्डीकरणान्त कर्म एक भाइ से ही सम्पन्न करने की व्यवस्था, स्त्रीसपिण्डीकरणव्यवस्था, नवश्राद्धकालादिव्यवस्था; सपिण्डनोत्तर श्राद्ध में पार्वणविधि और एकोद्दिष्टविधि का विकल्प,

एकादश और द्वादश दिन में प्रेत का श्राद्धभोग, प्रेतशब्दप्रयोग की व्यवस्था, पापात्मा प्रेत के यमगृहयान का वर्णन, यममार्ग के १६ पुरों का और उन में प्रेत की प्राप्ति का वर्णन, विचित्रनगर के वाद वैतरणी नदी की स्थिति, याम्य नगर का परिमाण, याम्य पुर के श्रवणनामक १३ प्रतीहार (द्वारपाल), यमदर्शन, पापात्माओं के लिए यम का स्वरूप, यमनिर्दिष्ट शुभ अथवा अशुभ फल की प्राप्ति, छत्रदानादि करने वाले पुण्यात्माओं के लिए दृश्य यम का सौम्य रूप, एकादशाहादि में बहुब्राह्मणभोजन की आवश्यकता। –

अध्याय –६ (पृ. १५३-१७३)

वृषोत्सर्ग के अभाव में परलोक में सुगति का अभाव होने से वृषोत्सर्ग की आवश्यकता, वृषोत्सर्ग के फलादि के प्रतिपादन में विराधनगर के वीरवाहन राजा का उपाख्यान, वीरवाहन-वसिष्ठ-संवाद, त्रेतायुग के विदेहनगर के धर्मवत्सनामक ब्राह्मण का उपाख्यान, पराशर मुनि से ज्ञात और विपश्चिद्द्वारा वर्णित विराधनगर के विश्वम्भरनामक वैश्य का वृत्तान्त, तीर्थयात्रा से लौटते हुए विश्वम्भर का लोमश ऋषि का दर्शन और लोमशजी की आज्ञा से विश्वम्भर का भारतवर्ष के स्वदृष्ट अनेक तीर्थों का वर्णन, साधुमाहात्म्य, चित्तशुद्धि के उपाय का विश्वम्भरकृत प्रश्न और लोमशकृत नारदोपाख्यान-वर्णनपूर्वक उत्तर तथा वृषोत्सर्ग करने का उपदेश, वृषोत्सर्गमाहात्म्य, तीर्थाटनपुण्य से लोमशदर्शन, लोमशोपदेश से वृषोत्सर्ग, वृषोत्सर्गपुण्य से दिव्य भोग और राजकुल में जन्म, वृषपुच्छोदकस्पर्श से सुखप्राप्ति, वृषयज्ञ को श्रद्धापूर्वक देखने का सुफल, वृषयज्ञपर असूया करने वालों का कष्ट इत्यादि का वर्णन, पति-पुत्रवती नारी के मरण में वृषोत्सर्ग के जगह में दूध देने वाली गाय का दान; वसिष्ठोपदेश से वीरवाहन का वृषोत्सर्ग करना, वीरवाहन के मरनेपर यमानुचरों का वीरवाहन को सुखपूर्वक धर्मराज के पुर में ले जाना, धर्मराज का वीरवाहन को देवलोक में ले जाने का निर्देश, ठीक प्रकार से धर्म करनेपर स्वल्प धर्म भी अधिकफलप्रद होने का धर्मराज से प्रतिपादन, वीरवाहन का स्वर्ग में जाकर देवों के साथ में सुखपूर्वक रहना।

अध्याय –७ (पृ. १७४-१८८)

विष्णुस्मरण के महिमा को दिखाने वाला सन्तप्तकविप्रप्रेतपञ्चकोपाख्यान, उस में सन्तप्तक विप्र का तीर्थयात्राप्रसङ्ग में नाना वृक्ष-गुल्मयुक्त घने वन में पहुँचना, वहां उस का शवमांस खाने वाले पाँच प्रेतों को देखना, प्रेतों का सन्तप्तक विप्र को पकड कर आकाश में जाना, विप्र का डरकर भगवान् के शरण में जाकर स्तुति करना, भगवान् का विप्र का अनुगमन करना, भगवत्सन्निधि से विप्र को

सुखानुभव होना, भगवान् का मेरु को जाते हुए मणिभद्र यक्ष को प्रेतों से लडकर उन के शव को हरण करने के लिए आज्ञा देना, मणिभद्र का महाघोर प्रेतरूप लेकर प्रेतों से लडकर प्रेतों से शव का हरंण करना, शव के हरण होनेपर प्रेतों का उस विप्र को पारियात्र पर्वत में छोडकर शवहरण करने वाले प्रेत (मणिभद्र) के पीछे दौडना, उस प्रेत (मणिभद्र) के अदृश्य हो जानेपर प्रेतों का उस विप्र के समीप में आना और उस विप्र को फाडने में लगना, भगवान् को हृदय में रखने वाले विप्र के महिमा से तत्काल प्रेतों को पूर्वजन्म का स्मरण होना और उन का उस विप्र से क्षमा मांगना, विप्र का उन पांच प्रेतों से उन के नाम आचार और उस दशा की प्राप्ति का कारण पूछना, प्रेतों के पर्युषित, सूचीमुख, शीघ्रग, रोधक, लेखक इन पाँच नामों को सुनकर विप्र का उन नामों की निरुक्तियों का पूछना और सूचीमुखादि का अपने-अपने नाम की निरुक्ति बताना, विप्र का प्रेतों के आचार और आहार के विषय में प्रश्न और प्रेतों का उत्तर, इतने में भगवान् का विप्र और प्रेतों के आगे प्रकट होना और विप्र की भगवत्स्तुति, पाँच प्रेतों के साथ उस विप्र का भगवल्लोकप्राप्ति, विप्र का विष्वक्सेनत्व।

अध्याय -८ (पृ. १८९-१९४)

और्ध्वदेहिक कर्मों के अनेक अधिकारियों का कथन, श्राद्ध-माहात्म्य, किसी भी अधिकारी के अभाव में आत्मश्राद्ध (जीवच्छ्राद्ध) करने की व्यवस्था, जीवच्छ्राद्ध की पद्धति।

अध्याय -९ (पृ. १९४-२०५)

कृतयुग में वङ्गदेश के राजा बभ्रुवाहन का मृगया के प्रसङ्ग में घोर वन में प्रेत से सङ्गम, प्रेत का प्रेतभाव के कारण के रूप में अग्नि-संस्काराभाव इत्यादि कारणों का वर्णन, और्ध्वदेहिक कर्मों की अवश्यकर्तव्यता का प्रतिपादन, प्रेत रूप में प्राप्त विदिशा के धनवान् वैश्य सुदेव का अपने प्रेतभाव के कारण का वर्णन और राजा को मणि देकर अपने और्ध्वदेहिक कर्म और वृषोत्सर्ग करने के लिए प्रार्थना, राजा का अपने कुल में प्रेत रहने के लक्षण के विषय में प्रश्न और प्रेत का उत्तर, प्रेतोद्धार के लिए वृषोत्सर्ग का विधान, वृषोत्सर्ग के काल और पद्धति, बभ्रुवाहन का प्रेत से मणि लेना, प्रेतधनग्राहक का प्रेत-क्रिया में अधिकार, बभ्रुवाहन का प्रेतोद्धार के लिए वृषोत्सर्ग करना, प्रेत का प्रेतभाव से उद्धार और स्वर्गप्राप्ति।

अध्याय -१० (पृ. २०६-२१९)

सपिण्डीकरण के वाद देवत्वादि में प्राप्त और विभिन्न आहार वाले जीवों को श्राद्धान्न की अमृतादि रूप में प्राप्ति, श्राद्ध में दत्त अन्न-पानादि का पितरों को प्राप्त होने की प्रक्रिया, नाम-गोत्र और मन्त्रों का

श्राद्धान्नप्रापकत्व, अग्निष्वात्तादि का श्राद्धान्नप्रापकत्व, श्राद्ध में तर्पित विश्वेदेव तथा वसु रुद्र और अदितिसुतोंद्वारा मनुष्य पितरों का प्रीणन, निमन्त्रित विप्रों में प्रवेश करके पितरों का श्राद्धदत्त अन्नपान का उपभोग, सीता का श्राद्ध में निमन्त्रित ऋषियों के देह में पितरों को देखना, अमावास्या के श्राद्ध का माहात्म्य, श्राद्ध करने का फल, सम्यक् श्राद्ध की अन्नप्रकरण इत्यादि विभिन्न क्रियाओं का पिशाचत्वादि विभिन्न अवस्था में प्राप्त पितरों का तृप्तिकरत्व; मरण होनेपर तत्काल अथवा विलम्ब से अन्य देह की प्राप्ति की प्रक्रिया, आतिवाहिक (वायवीय) देह और पिण्डज देह पशुपक्ष्यादिदेहप्राप्ति, संसारसागर से पार होने का उपाय।

अध्याय –११ (पृ. २२०-२२२)

ऊर्ध्वगति और अधोगति के सूचक के रूप में जीव का मृत्यु के समय में शरीर के ऊर्ध्वच्छिद्र से अथवा अधश्छिद्र से निकलना, निर्धन का भी वार्षिक श्राद्ध तक के सभी कर्मों का यथाविधि करणीयत्व, शुभाऽशुभ कर्मों के फलों का तत्तद्देह से भोग्यत्व।

अध्याय –१२ (पृ. २२२-२२७)

चौरासी लाख योनियों का विवरण, उन में महापुण्य से मनुष्ययोनि में जन्म का लाभ, सहस्रशः जातिभेद, आहारादि में प्रवृत्ति की सभी जन्तुओं में समानता, विवेक की दुर्लभता, कृष्णसारमृगयुक्त देश का धर्मदेशत्व, मनुष्य होकर स्वर्ग की अथवा मोक्ष की साधना न करना आत्मवञ्चन, तृष्णा की दुरन्तता और उस से नरकप्राप्ति, तृष्णामुक्त की स्वर्गप्राप्ति, आत्माधीन का सुखित्व और शब्द-स्पर्शादि विषयाधीन का दुःखित्व, स्त्री-पुत्रादि बन्धन से मुक्ति कठिन, कर्ता को ही पाप के और पुण्य के फल की प्राप्ति, मृत्यु का अजेयत्व, धन को धर्म में लगाने की आवश्यकता, धर्म का माहात्म्य, श्रद्धा का माहात्म्य, अश्रद्धा से किए गए कर्म की निष्फलता।

अध्याय –१३ (पृ. २२७-२३२)

प्रेतत्वनिवारक कर्म के विषय में गरुड का प्रश्न; मोक्ष चाहने वालों के लिए स्वहस्त से ही और्ध्वदेहिक कर्म करने का विधान, स्त्री और पाँच वर्ष से अधिक वय वाले बालकों के लिए भी वृषोत्सर्ग का ही प्रेतयोनिनिवारकता, दुर्मरण से मरने वालों की शुद्धि की व्यवस्था, वृषोत्सर्ग का माहात्म्य, वृषोत्सर्ग-कर्म के अधिकारी, उन में पुत्र की प्रधानता, अपुत्र की गति का अभाव, स्वयंकृत दान के फल, और्ध्वदेहिक कर्म के अभाव में वायुभावादि कष्ट की प्राप्ति, स्वस्थावस्था में ही आत्मकल्याण के लिए काम करने की आवश्यकता।

अध्याय–१४ (पृ. २३२-२४०)

मरणोन्मुख आतुर के और स्वस्थ के दानों के फल में तारतम्य, सत्पात्र को दान देने का विधान, अपात्र को गाय देनेपर दाता और ग्रहीता दोनों की नरकप्राप्ति; अपुत्र, मोक्षार्थी और निर्धन व्यक्ति के लिए अपना और्ध्वदेहिक कर्म स्वयं ही करने की आवश्यकता; एक शय्या, एक कन्या और एक गौ एक को ही देने का विधान, वृषोत्सर्ग का माहात्म्य, काल, फल और पद्धति; एकादशाहकृत्य, द्वादशाहकृत्य, श्राद्धषोडशक, बहुब्राह्मणभोजन, पददान, वैतरणीदान, अष्टमहादान, तिलपात्रदान, शय्यादान, दीन अनाथ और विशिष्टों को दक्षिणादान देने का विधान, उक्त प्रकार से अपने और्ध्वदेहिक कर्म करनेपर सिद्धि-प्राप्ति, अपने और्ध्वदेहिक कर्म करने के वाद भी नित्य-नैमित्तिकादि कृत्यों की कर्तव्यता; देवता, गुरु, माता और पिता को पुण्य देने से पुण्य की वृद्धि, और्ध्वदेहिक कर्म में भूरिदान करने से अक्षय फल की तथा ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर से वर की प्राप्ति, तथा परमलोकप्राप्ति, वृषोत्सर्ग में उत्सृष्ट वृष की विविध चेष्टाओं से पितरों का उपकारातिशय, वृषोत्सर्ग का माहात्म्य, वत्सतरियों का और पददानद्रव्य का ब्राह्मणों को और तिलपात्रों का शिवभक्तों को दान करने का विधान, अच्युतनमस्कार का फल, प्रेतत्व से मोक्ष की कामना से और्ध्वदेहिक सत्क्रिया करने वालों की परमलोक की प्राप्ति, और्ध्वदेहिक कर्म के प्रतिपादन को सुनने से सभी पापों से मुक्ति।

अध्याय–१५ (पृ. २४१-२५५)

मानुषलोक से यमलोक की दूरी, मृत्यु का नियतत्व, मृत्युकाल के भूम्युपलेपनादि कृत्य, शवनिर्हरण की रीति, चिताभूमि में श्री-खण्डादि से चिता बनाना, मृत्युसमय की अवस्था, पुण्यात्माओं का सुखपूर्वक और पापात्माओं का दुःखपूर्वक यमलोक जाना, पुण्यात्माओं के प्रति यम का सौम्य रूप और व्यवहार, पापात्माओं के प्रति यम का भयङ्कर रूप और व्यवहार, अङ्गुष्ठमात्र पुरुष का यमदूतों से ले जाना, प्राणमुक्त शरीर की अवस्थाएं, धन, आयु और शरीर से सार लेना, यमदूतों से पापियों को यमराज के समीप में ले जाने की रीति, मृत्युस्थानश्राद्धादि छः श्राद्ध, इन छः श्राद्धों का प्रयोजन, उत्क्रमण-स्थानपिण्डादि तीन पिण्डों का विधान, दाहस्थल में वेदीकरणादि, अग्निस्थापन, क्रव्यादाग्निपूजन, क्रव्यादाग्निप्रार्थना, शरीराहुति, शरीर अर्धदग्ध होनेपर तिलाज्याहुति, रोदन, सञ्चयनक्रिया, प्रेतपिण्डदान, सचैलस्नान, तिलोदकाञ्जलिदान, करतालिकादान, विष्णुशब्दोच्चारण, प्रेतगुणकीर्तन, गृहप्रवेशविधि, चिता का दूध से सेचन, अश्रुपात का निषेध, यथाशक्ति क्रिया करने का विधान, तीन दिन तक मिट्टी के

पात्र में दूध और पानी देने का विधान, दश दिन तक प्रतिदिन गर्त में पिण्ड देना, जलाञ्जलि देना, जलाञ्जलि की सङ्ख्या में वृद्धि की व्यवस्था, क्रिया करने के अधिकारी, प्रेतपिण्ड देने का स्थान, प्रेतपिण्डार्थ चावल इत्यादि द्रव्य का विधान, दश दिन के पिण्डों का त्रिविध कार्य, नौ अहोरात्रों में प्रेतदेह की निष्पत्ति, दशम दिन में प्रेत की कडी भूख, दशाह-पिण्डदान में मन्त्रादि का अभाव, प्रथम पिण्डादि से प्रेत के शिर आदि की निष्पत्ति, दशम पिण्ड मांस से देने का विधान, एकादश और द्वादश दिन में प्रेत का दत्तान्नपानादि का भोग, प्रेतशब्द के प्रयोग का विधान, त्रयोदश दिन में पिण्डज देह से यममार्ग में गमन, पापियों के लिए ठण्डक, गर्मी, कांटें, सिंह व्याघ्र चीता सियार कुत्ता इत्यादि मांसभक्षी दुष्ट प्राणी और अग्नि से व्याप्त यममार्ग और धर्मात्माओं के लिए सुखमय यममार्ग, प्रेत का प्रतिदिन २४७ योजन चलना, यममार्ग के याम्यादि सोलह पुर, यम मार्ग में चलते हुए प्रेत का मनुष्यजीवन का अपने से धर्मकृत्यों में सदुपयोग न होनेपर पश्चात्ताप और परिदेवन।

अध्याय–१६ (पृ. २५५-२६३)

सत्रह दिन तक चलकर अट्ठारहवें अहोरात्र में प्रेत का याम्यपुर में पहुँचना, वहां प्रेत का विलाप और यमदूतों का कथन और ताडन, वहां मासिक पिण्ड खाना और सौरिपुर के लिए चलना, सौरिपुर में त्रैपक्षिक श्राद्ध में दिए गए पिण्ड को खाना, नगेन्द्रनगरनामक पुर में बान्धवों से दत्त अन्नपान का उपभोग कर के दो मासों के अन्त में प्रेत का नगेन्द्रनगर छोडना, तृतीय मास प्राप्त होनेपर प्रेत का गन्धर्वनगर में पहुँचना और तृतीय मासिक पिण्ड खाना, चतुर्थ मास में पत्थल वरसने वाले शैलागम पुर में पहुँचना और चतुर्थ मासिक पिण्ड खाना, पञ्चम मास में क्रौञ्चपुर में पहुँचना और पुत्रों से दत्त अन्नपान का भोग करना, छठे मास में प्रेत का क्रूरपुर में पहुँचना और दत्त श्राद्ध पिण्ड से पुष्ट होकर चलना, चित्रनगर को जाना, साढे पाँच महीनों में ऊन-षाण्मासिक श्राद्ध का होना और विचित्रनगर में ऊनषाण्मासिक श्राद्ध के पिण्ड को खाना, वैतरणी नदी के कैवर्तों से सङ्गम और उन का कथन, वैतरणी नदी के पर तट में घटादि का भोग, षाण्मासिक श्राद्ध का भोग और आगे चलना, अतः षाण्मासिक में उत्तम ब्राह्मणों को भोजन कराने की आवश्यकता, प्रेत का प्रतिदिन दो सौ सैंतालिस योजन चलना, सप्तम मास में बह्वापदपुर में पहुँचना और सप्तम मासिक पिण्ड खाना, अष्टम मास में नानाक्रन्दपुर में पहुँचना और अष्टममासिक पिण्ड खाना, नवम मास में सुतप्तनगर में पहुँच कर नवममासिक पिण्डादिका भोग, दशम मास में रौद्रपुर में पहुँचना और

दशममासिक पिण्ड का भोग, एकादश मास में पयोवर्षणनगर में एकादशमासिक पिण्ड का भोग और द्वादश मास के प्रारम्भ में घर्माढ्यनामक पुर में पहुँचना और वहां द्वादशमासिक पिण्ड खाना, ग्यारह मास पन्द्रह दिन बीत जानेपर प्रेत का बहुशीतभीतिपुर को पहुँचना (और वहां ऊनाब्दिक श्राद्ध में दत्त अन्न पान का भोग करना), वहां प्रेत का विलाप करना और धैर्य लेना, धर्मराजपुर की स्थिति, धर्मराजपुर के द्वारपाल तेरह श्रवण, उन की पत्नियां, श्रवणपूजा और उस का फल।

अध्याय –१७ (पृ. २६३-२६७)

श्रवणों की उत्पत्ति, चेष्टा और कार्य; यमपुरी में जाने के धर्ममार्गादि पाँच मार्ग, श्रवणपूजा की पद्धति और फल, श्रवणोतपत्यादि सुनने से पापनाश और सुख-स्वर्गप्राप्ति।

अध्याय –१८ (पृ. २६७-२७३)

श्रवणों से सुनकर चित्रगुप्त का धर्मराज को मनुष्य के पाप-पुण्यों का विवरण सुनाना, वाचिक-कायिक-मानसकर्मों का फलभोग, प्रेत के लिए अन्नदान और दीपदान करने का फल, कार्तिक-चतुर्दशी में दीपदान से सुखप्राप्ति; वृषोत्सर्ग-एकादशाहपिण्ड-उदकुम्भदान-शय्यादानों का फल, मृततिथि में अथवा द्वादशाह में दान देने का फल, पददान का फल, पददान के वस्तुओं का,उन के दान के फलों का विवरण; मृतक के लिए दिए गए दानों का मृतक को प्राप्त होने की प्रणाली; विकर्म से मनुष्यलोक में वंशच्छेद, वंशच्छेद से स्वकृत पाप-क्षय न होने तक नरक में वास, ८४ लाख नरकों में २१ घोर नरक, वंशच्छेद होनेपर चिरकाल तक घोर नरक में बैठने वालों की यमदूतत्वप्राप्ति, यमप्रेषित भूखे यमदूतों का प्रतिदिन प्रेतान्नग्रहण, मासान्तों में दिए गए पिण्डों से वर्षपर्यन्त प्रतिदिन सब की तृप्ति; इस प्रकार के पुण्यों से क्रमशः प्रेत की यमपुरप्राप्ति, संवत्सरान्त में यमपुर सन्निहित होनेपर बहुभीतिपुर में पिण्डज हस्तमात्र देह का त्याग और कर्मज वायवीय देह से शमीपत्र में आश्रयण, पुराने देह का त्याग और नवीनदेह के ग्रहण की व्यवस्था।

अध्याय –१९ (पृ. २७४-२७७)

कर्मज देह में आश्रित वायुभूत प्रेत का यमराज के प्रति जाना, चित्रगुप्तपुर का वर्णन, चित्रगुप्त के करणिक कायस्थों का काम, महादानों का फल, वैवस्वतपुर का परिमाण, लोहदानादि से यमपुर-चारियों की तृप्ति, यमपुरचारियों का यमप्रतीहार धर्मध्वज को निवेदन करना, वहां प्रतीहार की नित्यस्थिति, सप्तधान्यों के दान से धर्मध्वज

की प्रसन्नता, प्रतीहार का यम को प्रेत के शुभाशुभ कर्मों का निवेदन, पुण्यात्माओं का धर्मराज के सौम्यरूप का देखना, पापियों का यमराज के भयङ्कररूप का देखना,पुण्यात्मा को देख कर धर्मराज का स्वस्थान से उठना, दान से धर्मप्राप्ति और यममार्ग का सुखकरत्व, यममार्ग में अनुगामी सहायक का अभाव, दान-पुण्य-विना यममन्दिर जाना अनुचित, यममार्ग में एकएक पुर में हजार-हजार यमदूतों का रहना, उन का पापियों को यातना देना, और्ध्वदेहिक दान नदेने से यममार्ग में कष्ट, यथाशक्ति दान देने का विधान, धर्मराज की आज्ञा से दैवादि योनि की प्राप्ति अथवा मुक्ति, कर्मानुसार योनि की प्राप्ति, मनुष्य जन्म होनेपर धर्म करना समुचित, द्विजत्व प्राप्त होनेपर व्रतों का पालन करके अमृत को हस्तगत करना समुचित।

अध्याय–२० (पृ. २७७-२८४)

प्रेतों के वास और विचरण के विषय में गरुड के प्रश्न और श्रीकृष्ण के उत्तर, प्रेतों के चेष्टाओं को जानने का उपाय, धर्मपरायणों की प्रेतों से अपीडनीयता, सर्वक्रियापरिभ्रष्ट नास्तिकों की प्रेतों से पीडनीयता, प्रेतपीडा के चिह्न, अविधिक्रियादि से प्रेतत्वप्राप्ति, प्रेतमुक्ति-विधान की आवश्यकता, प्रेतों का अस्तित्व नमानने से प्रेतत्व की प्राप्ति, कुल में प्रेतदोष होनेपर सुख का अभाव और विचार-बुद्धि-प्रीति-रति-लक्ष्मीविनाश तथा तृतीय अथवा पञ्चम पुरुष में वंशोच्छेद और जन्मजन्मों में दरिद्रता तथा पापाचार की प्राप्ति।

अध्याय–२१ (पृ. २८५-२९०)

प्रेतत्व के ज्ञान के उपाय, प्रेतपीडा से मुक्ति के उपाय, प्रेत के सुगति के लिए काम न करने वालों का प्रेतों से शाप, और उस से जन्मजन्मों में अपुत्रता, अपशुता, दरिद्रता, रोग तथा वृत्तिहीनता की प्राप्ति, नरक में रहते कर्मक्षय होनेपर प्रेतत्वनिवृत्ति; दैवज्ञों के कथन से प्रेतभाव ज्ञात होनेपर पितृभक्तिपूर्वक कृष्णबलि (नारायणबलि) इत्यादि कृत्यों से पितरों के प्रेतभाव से मुक्त करने का विधान, पितृ-मातृ-माहात्म्य, पुत्रशब्द की निरुक्ति, माता-पिता के दुर्मरण होनेपर नियम, प्रेतचिह्नप्रतिपादक इस स्वप्नाध्याय को सुनने का फल।

अध्याय–२२ (पृ. २९०-३०२)

प्रेत होने का कारण, प्रेत के सुगतिप्राप्ति के कारण, प्रेतों के रूप, प्रेतों के भोज्य पदार्थ, प्रेतों की प्रीति के कारण, प्रेतों के वास-स्थान इन विषयों में गरुड के प्रश्न औ भगवान् के उत्तर, उस में पुरातन भीष्मयुधिष्ठिरसंवाद और सन्तप्तकब्राह्मण-प्रेतपञ्चक-कथा।

अध्याय–२३ (पृ. ३०३-३०५)

पिशाचत्व में प्राप्त प्रेतों के स्वरूप, चिह्न, स्वप्नप्रदर्शन और चेष्टाओं का वर्णन तथा प्रेतचिह्न के नाश के लिए कर्तव्य प्रायश्चित्तरूप श्रीवृक्ष(बिल्ववृक्ष)तर्पणादि कृत्य।

अध्याय–२४ (पृ. ३०६-३१३)

राजाओं और वेद पढने वाले ब्राह्मणों के मृत्यु के कारण, स्व-स्व वर्णधर्म के त्याग से यमलोक यातना की प्राप्ति, देह की अनित्यता, पापनाशन में यत्न करने की आवश्यकता, अनेक जन्म में हुए वाचिक कायिक मानसिक पापों के विनाशन में मनुष्यजन्म की समर्थता, सभी प्राणियों की दुःखप्राप्ति और मृत्यु की अवश्यम्भाविता, विवेकदृष्टि से मुक्तिलाभ, गर्भाधान से पाँचवर्षतक मनुष्य को स्वल्प पापों की प्राप्ति, पाँच वर्ष से ऊपर महापाप की प्राप्ति; बालमरण में आशौच और कृत्य, दानमाहात्म्य, दान-तीर्थ-सेवन और सुभाषण के फल, दानाभाव का दुष्परिणाम।

अध्याय–२५ (पृ. ३१३-३२०)

गर्भ-शिशु-बाल-कुमारों के मरण में कृत्य, शिशु-बाल-कुमार-पोगण्ड-किशोर-युवकलक्षण, कुमारमरण में क्रिया की आवश्यकता, दशविध पुत्र, दशविधपुत्रों के कर्माधिकार में विशेष, सङ्गृहीतासुत का आमश्राद्ध में ही अधिकार, सङ्गृहीतासुतनिन्दा, चाण्डालोत्पत्ति, सुवृत्त-दुर्वृत्तसुतोत्पादन के फल, सुवृत्त एक पुत्र का ही नरक से कुल के उद्धार में सामर्थ्य।

अध्याय–२६ (पृ. ३२१-३३०)

सपिण्डीकरण के काल, फल और विधि; सपुत्र का सपिण्ड-नोत्तर एकोद्दिष्ट का अभाव, षोडशश्राद्धों का फल, अपुत्र के सपिण्डी-करण का अभाव, सधवा स्त्री के सपिण्डीकरण का अभाव, ब्राह्म-विवाहादि से विवाहित स्त्री की पतिगोत्र से पिण्डोदकक्रिया, आसुर-विवाहादि से विवाहित स्त्री की पितृगोत्र से क्रिया, सपिण्डीकरण के अधिकारी, एक के पुत्र से ही सभी भाइयों का पुत्रवत्त्व, चूडाकर्म होनेपर पितृश्राद्ध में अधिकार, स्त्री का भर्त्रादि से सपिण्डीकरण, सपिण्डीकरण होनेपर पृथक्क्रिया का अभाव, सपिण्डीकरण होनेपर भी अन्न और उदकुम्भ का तो वर्षपर्यन्त प्रेत के लिए पृथक् दान, वर्ष-क्रिया का फल, पिता जीवित रहनेपर पुत्र के और पति जीवित रहनेपर स्त्री के सपिण्डीकरण का अभाव, चतुर्थ दिन में अन्वारोहण करनेपर स्त्री की क्रिया, पुत्रिका के गोत्र की व्यवस्था, एक चिता में

समारूढ दम्पति की क्रिया की व्यवस्था, अन्य सगोत्रों के सहमरण होनेपर क्रिया की व्यवस्था, सहगमन का और पतिव्रतात्वादि का माहात्म्य, द्वादशाह में कृत प्रेतक्रियाओं का द्वादशाह में सपिण्डीकरण होनेपर भी वर्षपर्यन्त पुनःकरण की व्यवस्था।

अध्याय –२७ (पृ. ३३१-३४०)

प्रेतों के वास, प्रेतों के रूप, महाप्रेतत्व और पिशाचत्व के कारण, प्रेतत्व से मुक्ति के उपाय इत्यादि विषयों के निरूपण के लिए त्रेतायुग के महोदयपुर के राजा बभ्रुवाहन की कथा, अपने और्ध्व-देहिककृत्य का विधान, नारायणबलिविधि, सत्-शास्त्र का सुनना, विष्णु की पूजा और सज्जन की सङ्गति से प्रेतभाव का विनाश, विष्णुपूजा की पद्धति, घृतादिहोम, स्नानपूर्वक अपनी और्ध्वदेहिक क्रिया करने का विधान; सभी श्राद्ध, वृषोत्सर्ग, तेरह ब्राह्मणों को वस्त्रादि का दान, सात्र सोदक घटों का दान, शय्यादान, प्रेतघटदान इन कृत्यों का सम्पादन; प्रेतघटदान की पद्धति; राजा का प्रेत की मुक्ति के लिए और्ध्वदेहिककृत्य का सम्पादन, प्रेत की स्वर्गप्राप्ति, पुत्रदत्त श्राद्ध का माहात्म्य, इस इतिहास के सुनने और सुनाने वालों के प्रेतत्व का परिहार।

अध्याय –२८ (पृ. ३४१-३४६)

प्रेतघटदान का माहात्म्य, मरणकाल से लेकर किए जाने वाले और्ध्वदेहिक कृत्य और उन के फल के विषयों में और पतित, पिशाच, आत्मघाती, ब्रह्मघाती इत्यादि की गतियों के विषय में प्रश्न।

अध्याय –२९ (पृ. ३४६-३५१)

पुत्रोत्पादन की आवश्यकता, मरणकाल से लेकर किए जाने वाले और्ध्वदेहिक कृत्यों का और उन के प्रयोजनों का प्रतिपादन।

अध्याय –३० (पृ. ३५१-३५९)

कार्पास (रुई), गौ, तिल, भूमि, स्वर्ण इन वस्तुओं के दान का माहात्म्य, तिलदान और गोदान का महादानत्व, सङ्कल्पित दान और असङ्कल्पित दान के नियम, आतुरावस्था के और सूर्य-चन्द्र-ग्रहण के समय के दानों का माहात्म्य, पुत्र से अनुमोदित दान का माहात्म्य, आतुर की अर्धोन्मीलितावस्था में किए गए दानों का माहात्म्य; तिल, लोहा, स्वर्ण इत्यादि एकएक के दान का पावनत्व, लोहदानादि का फल, विष्णुस्मरण का माहात्म्य, पिता की आज्ञा से दान देने वाले पुत्र का माहात्म्य, उक्त दान की गयाश्राद्ध से भी विशिष्टता, अन्त्येष्टि का अश्वमेध यज्ञ से सोलह गुने से भी अधिक महत्त्व, आतुर पिता से दान

कराने का महत्त्व, लोहदान का माहात्म्य, आतुर अवस्था में दान न कराने वाले पुत्रादि की निन्दा, अतिवाह प्रेत का सुकृतलाभ का समय, परमेश्वर का प्राणी को पूर्वकर्मानुसार बुद्धि देना, श्राद्ध का माहात्म्य, मत्स्य-कूर्मादि दश विष्णु के अवतारों के कीर्तन का विधान और फल, विष्णुपूजा का विधान, अष्टाक्षर मन्त्र के अथवा द्वादशाक्षर मन्त्र के जप का विधान, विष्णुपूजा की सामग्री, विष्णु की सर्वव्यापकता, विष्णु का बुद्धिदातृत्व और मुक्तिदातृत्व, अन्त्यकाल में वैतरणीदान (कपिलादान) का माहात्म्य।

अध्याय–३१ (पृ. ३५९-३६५)

पापियों का यमालय को जाना, विष्णुसाक्षिक दान का आनन्त्य; भूमि, जूता, छत्र, अन्न और दीप के दानों के माहात्म्य, दीपदान के काल, दीपदान का विशेष माहात्म्य, दीपदानपद्धति, तेरह पदों के दान का माहात्म्य, एकादशाह में पददान का विधान; भोज्य पदार्थ, तिल और तेरह जलकुम्भ, अँगूठी, वस्त्रयुग्म इन पदार्थों के दान से परमगतिप्राप्ति; अश्व, नौका अथवा हाथी के दान से महिमानुसार सुख की प्राप्ति, महिषी (भैंस) के दान का फल, यथाशक्ति गौ, भूमि, तिल और स्वर्ण के दान का विधान, मृत व्यक्ति के लिए मिट्टी के जलपात्र के दान का माहात्म्य, वस्त्रदान से यमदूतों से भय का परिहार, घट और अन्न के दान का फल, दक्षिणादि से युक्त शय्या के दान से प्रेतभाव से मुक्ति और स्वर्गसुखलाभ, अन्य देह में प्रवेश की प्रक्रिया, शरीर के षाट्कौशिकत्वादि का प्रतिपादन, आत्मज्ञानरहित जनों का पशुत्व, चतुर्विध शरीर, चौरासी लाख योनियां और उन का उद्भिज्ज इत्यादि चार भेद।

अध्याय–३२ (पृ. ३६६-३८३)

विचित्र शरीर वाले प्राणी की जन्मप्रक्रिया का वर्णन, ऋतुकाल, प्रथम तीन दिन तक विशेष अशुद्धि, सप्ताह तक भी गर्भ-धारण के लिए अशुभ, निषेक के समय की चित्तवृत्ति का गर्भ में प्रभाव, युग्म रात्रि में गर्भाधान से पुत्र का और अयुग्म रात्रि में गर्भाधान से पुत्री का जन्म, ऋतुमती नारी के भोजन में मधुर रस की उपादेयता, कटु क्षार तीक्ष्ण और उष्ण पदार्थ की त्याज्यता, सम्भोग से पहले ताम्बूलादि के प्रयोग का विधान, शुक्र-शोणितसंयोग से पिण्ड की उत्पत्ति, पिण्ड की वृद्धि, बीजरूप चैतन्य की शुक्र में उपस्थिति, रक्ताधिक्य से नारी की और शुक्राधिक्य से पुरुष की उत्पत्ति, रक्त-शुक्रसाम्य से नपुंसक की उत्पत्ति, गर्भ के विकास का क्रम, निष्पन्न शरीर का वर्णन, शरीर में पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश के गुणों का योग, पाँच बुद्धीन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, दश प्रधान नाडियाँ,

दश वायु और प्राणादि के कार्य, मल और मल के आश्रय कर्णादि, शरीर में रोम, दन्त, केश इत्यादि के परिमाण, गर्भ में मनुष्य की स्थिति, गर्भस्थ प्राणी की स्मृति, जन्म होनेपर वैष्णवमाया से विस्मृति और मोह, बालभाव, यौवनभाव, वृद्धभाव, मरण, संसारचक्र में भ्रमण; मनुष्यलोक, यमलोक और स्वर्गलोक में दुःख का अनुभव, मोक्ष के लिए यत्न की आवश्यकता; अन्त्यकालकृत्यों में द्वादशाक्षरमन्त्र का जप, हृषीकेशपूजा, दान, ममत्वत्याग, पुत्रादिद्वारा पुरुषसूक्तपाठ, अन्त्यकाल के स्नानादि कृत्यों के फल, ममत्व के अभाव में पुरुषसूक्त से ज्ञान, ब्रह्माण्डगुणों की शरीर में स्थिति, जन्मे हुए प्राणी के मरण का नियतत्व, पापियों का यमलोकगमन, आयु कर्म धन विद्या और मरण इन पाँचों का गर्भावस्था में ही निर्णय, पुण्य और पाप के अनुसार ही शुभाऽशुभ जन्म।

अध्याय–३३ (पृ. ३८४-३८९)

यमलोकमार्ग के और यमलोकगमन के कारणों के विषय में विस्तृतरूप में प्रतिपादन के लिए गरुड की प्रार्थना, यमलोकमार्ग का परिमाण और स्वरूप, उस में पापियों का कष्ट से चलना और तृष्णा-रहित जनों का सुख से चलना, दिए गए दानों की वहां उपस्थिति, पापियों को दाहफल की, श्राद्ध और जलाञ्जलियों की भी अप्राप्ति, क्षुद्र पापियों का वायुरूप में भ्रमण, यमपुर की स्थिति, यमगृह का वर्णन, धर्मराज का आसन, यम का स्वरूप और पापियों के लिए भयदत्व तथा धार्मिकों के लिए सुखदत्व, चित्रगुप्तगृह का वर्णन, चित्रगुप्त का कर्म, चित्रगुप्त के गृह की चारों ओर ज्वरादि के गृहों की स्थिति, धर्मराजगृह के द्वार में यमदूतों का रहना और उन से पापियों को विविध दण्ड मिलना।

अध्याय–३४ (पृ. ३९०-४१०)

धर्म का और अधर्म का अनुगमन, सत्ययुग में तपस्या का, त्रेता में ज्ञान का, द्वापर में यज्ञ का और कलि में दान का माहात्म्य, अपनी शक्ति के अनुरूप यज्ञकर्म और पूर्तकर्म करने वाले गृहस्थों की पाप से मुक्ति, वृक्षरोपणादि का माहात्म्य; अग्नितापदान, भूमिदान और अन्य दान के फल, पुत्र का माहात्म्य, पुत्रद्वारा आजीवन श्राद्ध करने का विधान, जलाञ्जलिदान के फल, प्रेत को अपक्व मृन्मय पात्र में तीन दिनतक दूध देने का विधान, अस्थिसञ्चयन का काल, जलाञ्जलि-दान की वेला, अञ्जलि देने वालों का क्रम, शूद्र के शव के अनुगमन में आशौच, ब्राह्मणादि वर्णों का अन्य वर्ण के शव के अनुगमन की व्यवस्था, शवनिर्हारकों के गृहप्रवेश की व्यवस्था, गृहान्नभोजन का निषेध, दाहकर्म का फल, श्राद्धनवक और श्राद्धषोडशक का फल,

अन्त्यावस्था के कर्मों का फल, श्राद्धफल की उपस्थिति, श्राद्ध के अभाव में कुटी की अनिष्पत्ति, नवश्राद्ध के काल, प्रेतपिण्डदान के वैकल्पिक स्थान, एकादशाहश्राद्ध, शय्यादान, क्रिया के अधिकारियों की व्यवस्था, श्राद्ध के अमन्त्रकत्वादि की व्यवस्था, दश पिण्डों से जीव के देह का निष्पादन, आशौचावधितक पिण्ड और उदक देने की व्यवस्था, त्रिरात्राशौचादि में पिण्डदान की व्यवस्था और चतुर्थ दिन में एकोद्दिष्टश्राद्ध का विधान, प्रथमपिण्डादि से मूर्धादि अवयवों की निष्पत्ति, एकादशाह में आमिष (मांस) के पिण्ड का विधान, प्रतिमास श्राद्ध, मासिकपिण्ड की तिथि की व्यवस्था, एकादशाहश्राद्ध के अन्न का चतुष्पथ में त्याग, एकादशाह से प्रतिदिन वर्षपर्यन्त अन्न और सजल घट के दान का विधान, उदकुम्भदान का फल, मृत्यु के दिन से आशौच की प्रवृत्ति, द्विज-क्षत्रियादि का एकादशाह-द्वादशाहादि में शुद्धि, अतिक्रान्त आशौच की व्यवस्था, शय्यादान के काल, शय्या के उपकरण, धेनुदानसहित गृहदान, एकादशाह में देय शय्या की विशेषता, एकादशाह में शय्यादान का विशेष माहात्म्य, सपिण्डीकरण की आवश्यकता, सपिण्डीकरण का काल, अब्दमध्य में अकार्य कृत्य, एक पुत्र से ही सभी सपत्नियों का पुत्रवतीत्व, सपिण्डीकरण के विना अग्निमान् का पिण्डपितृयज्ञ में अनधिकार, सहगमनादि में सपिण्डीकरण की व्यवस्था, सपिण्डीकरण के अधिकारी, दाह के अभाव में और्ध्वदेहिक क्रिया का अभाव, अनेक पुत्र होनेपर भी एक ही पुत्र का और्ध्वदेहिक कृत्य में अधिकार, सोलह प्रेतश्राद्धों की आवश्यकता, अब्दमध्य में अकार्य, पिण्डोदकक्रिया का लोप होने से प्रेतत्वप्राप्ति, सपिण्डीकरण की आवश्यकता।

अध्याय–३५ (पृ. ४११-४१७)

अक्रम से मृत स्त्रियों का उमा-लक्ष्मी-सावित्री से सपिण्डीकरण की व्यवस्था; पिण्डभुक्, त्याजक, पिण्डानुलेपक और पङ्क्ति-सन्निध नाम के पितरों का परिचय, श्राद्धफल, सन्तति के विच्छेद में आचार्यादि से नारायणबलि का सम्पादन, धनिष्ठादि पाँच नक्षत्रों में मृत्यु होनेपर विधान, प्रेतश्राद्ध में वर्जनीय अठारह पदार्थ, मलिनश्राद्ध-षोडशक, मध्यमषोडशक, उत्तमषोडशक और उन की आवश्यकता, शिविका में शव के कर-चरणों के बन्धन की व्यवस्था, रात में शव-निर्हरण करने में विचार, ग्राममध्य में शव रहनेपर भोजनादि का अकार्यत्व, प्रेत के लिए कर्तव्य व्यवहार न करनेपर प्रेत के पाप का अपने में सङ्क्रमण।

अध्याय–३६ (पृ. ४१८-४२३)

अनशनव्रत से मरण का फल, तीर्थ में मरण का फल, तीर्थ जाते हुए मार्ग में मरण का फल, आतुरसन्न्यास लेकर मरण का फल,

नित्यब्राह्मणभोजन-तिलपात्रदान-दीपदान-देवतार्चन से नियमभङ्ग से होने वाले पापों का नाश, मरणार्थक अनशनव्रत के त्याग का और मरण के लिए तीर्थ में जा कर लौटने का प्रायश्चित्त, घर में किए गए पापों का तीर्थस्नान से शुद्धि, तीर्थ में किए गए पापों की वज्रलेपतुल्यता, मरणोन्मुख होनेपर निर्धनों के लिए भी दान का विधान, पिताप्रभृति के लिए दिए गए दानों में तारतम्य, धन की गति और विपत्ति, शरीररक्षकादि का मृत्युप्रभृति से उपहास, उदार का लक्षण और माहात्म्य, जलादि में देहत्याग का फल।

अध्याय –३७ (पृ. ४२३-४२६)

उदकुम्भप्रदान की व्यवस्था और फल इत्यादि, माषान्नसहित जलपूर्ण सोलह घटों का दान, पक्वान्न और फलों से पूर्ण वर्धनी (तस्तरी) का दान, कुलीन और वेदाध्ययन और सद्वृत्त से युक्त ब्राह्मण को दान देने का विधान।

अध्याय –३८ (पृ. ४२६-४३२)

मोक्षप्राप्ति, स्वर्गप्राप्ति, सत्यलोकप्राप्ति, मनुष्यलोकप्राप्ति और नरकप्राप्ति के कारणों के विषय में गरुड का प्रश्न, श्रीविष्णु का उत्तर, उस में अयोध्या-मथुरा इत्यादि सात मोक्षदायिका पुरियां, आतुरसन्न्यास का माहात्म्य, हरिनाममहिमा, कृष्णकृष्ण बोलकर कृष्ण का नित्य स्मरण करने का फल, शालग्रामशिला का और द्वारवतीशिला का माहात्म्य, तुलसीमाहात्म्य, मानसतीर्थमाहात्म्य, भावमहिमा, चित्तवृत्ति का अनुरूप कर्मफल, ब्राह्मणादि की रक्षा के लिए देहत्याग करने से मोक्ष की प्राप्ति, अनशनव्रत लेकर मरने से मोक्षप्राप्ति, चिरकाल तक स्वर्गवास देने वाले कार्य, अच्छी तरह जीने की और मरने की शिक्षा, हरिक्षेत्रादि में मरने का फल, वर्षवृत्ति देना, ब्राह्मण का विवाह कराना, महादान देना, वापी-कूपादि का जीर्णोद्धार करना, कुटीदान करना, सह-गमन करना, नित्य दान देना, वर्षवृत्ति देना, ब्राह्मणकन्या का विवाह कराना, निर्जन दुर्गम मार्ग में प्रपा (पौआ) रखना, दान, दया इत्यादि धर्मों से पापनाश और स्वर्ग की प्राप्ति, दान-दम-दयामाहात्म्य, दान का शून्यलिङ्गपूजन का और अनाथप्रेतसंस्कार का माहात्म्य।

अध्याय –३९ (पृ. ४३३-४३६)

आशौचव्यवस्था।

अध्याय –४० (पृ. ४३७-४४६)

दुर्मरण से मरने वालों की गति, दुर्मरण से मरने वालों के और्ध्वदेहिक कर्मों का निषेध, दुर्मरण से मरने वालों के लिए नारायण-

बलि का विधान, दुर्मरण होनेपर ब्राह्मणादि के दाहादि कर्म के काल, नारायणबलि के लिए योग्य देश, नारायणबलिकर्म में प्रेततर्पण, एकादश श्राद्ध, तोयादि का दान, पददान, तर्पण, अर्घ्यदान, एकादश-देवत्य श्राद्ध, विष्णु-रुद्र-ब्रह्मा-यम-प्रेतों की प्रतिमाओं का स्थापन, जप, पाँच श्राद्ध, जलधारादान, पददान, तिलपात्रदान, भूमिदान, गोदान, सुवर्णदान, तिल-लोहदान, दक्षिणादान, पुत्तलकसम्पादन, शालग्राम-शिलोदक से प्रेत का पावन, विष्णु के उद्देश से गोदान, अष्टमहादान, तिलपात्रदान, पददान और वैतरणीदान, वैष्णवश्राद्ध इत्यादि करके पुत्तलकरूप प्रेत का अग्नि से दहन, त्रिरात्र आशौच, दशाह-पिण्डदान और सम्पूर्ण वर्षविधि का करना; ऐसा करने से दुर्मरण से मरे हुए प्रेत का मुक्तिभागी होना।

अध्याय–४१ (पृ. ४४६-४४८)

दुर्मरणादि में वृषोत्सर्ग का काल, वृषोत्सर्ग का देश, वृषोत्सर्ग की पद्धति, एकोद्दिष्टश्राद्ध का विधान, जल का और अन्न का दान, द्वादशाह में और मास-मास में पृथक्-पृथक् श्राद्ध का विधान, ऐसे विधि से प्रेत का मोक्ष।

अध्याय–४२ (पृ. ४४९-४५२)

धर्म वा अधर्म का सहगामित्व, भूमिदानमाहात्म्य, स्वर्ण-गो-भूमि-दानमाहात्म्य, गो-भूमि-सरस्वती-दानमाहात्म्य, भूमिदानपुण्य, भूमिहरणपाप, अवृत्तिकर्षित-दीनब्राह्मण के उद्धार का पुण्य, ब्रह्मस्व-पुष्ट वाहनादि का विशरण, ब्रह्मस्व का दुर्जरत्वादि, कुल के विनाश में हेतु, ब्राह्मणातिक्रमण की परिभाषा, सङ्क्रान्ति में किए गए दान और हव्य-कव्यकर्म का माहात्म्य, ब्राह्मणवृत्तियों में प्रतिग्रह का इष्टतमत्व; सदाजपादियुक्त ब्राह्मण को प्रतिग्रह से पाप की अप्राप्ति।

अध्याय–४३ (पृ. ४५३-४५४)

मरने के लिए जल में कूंदनेपर, अग्नि में कूंदने पर और उद्-बन्धन करनेपर (फाँसी लगाने पर) कथञ्चित् बचे हुए व्यक्ति, सन्न्यास लेकर पुनः पूर्वाश्रम में आने वाले व्यक्ति और मरने के हेतु लिए हुए अनशनव्रत को छोडने वाले व्यक्ति का दो चान्द्रायणों से और धेनुदान तथा वृषभदान से शुद्धि, बारह वर्षों से कम और चार वर्षों से अधिक आयु के बालक के प्रायश्चित्त की व्यवस्था, चार वर्षों से न्यून आयु वाले बालक के पातकादि का अभाव, रजस्वला होने से रक्तदर्शन होनेपर आतुर स्त्री की चतुर्थ दिन में घृतस्पर्श और वस्त्रत्याग से शुद्धि,

स्नान में अशक्त आतुर के लिए स्नान आवश्यक होनेपर दूसरे समर्थ व्यक्ति द्वारा प्रत्येक स्नान से पहले आतुर को छू-छूकर दश वार स्नान करने से आतुर की शुद्धि की व्यवस्था।

अध्याय–४४ (पृ. ४५४-४५८)

दुर्मरण से मृत लोगों का और पाषण्डी अनाश्रमी महापातकी लोगों का, व्यभिचारिणी स्त्री का तथा उत्तर आश्रम में जाकर फिर पूर्व आश्रम में लौटने वालों का भी नवश्राद्ध, अग्निसंस्कार, सपिण्डन और षोडश श्राद्धों का भी अभाव, आहिताग्नि का दुर्मरण होनेपर वैतानाग्नि (श्रौताग्नि) का जल में गृह्याग्नि का चतुष्पथ में फेंकने का और यज्ञ-पात्रों का दहन का विधान, दुर्मरण से मृत लोगों क़ा वर्ष पूर्ण होनेपर विष्णुपूजा-यमपूजादि पूर्वक विशेष प्रकार से श्राद्ध करने का विधान; प्रमाद से दुर्मरण होनेपर क्रिया की व्यवस्था, सर्पदंश से मृत्यु होनेपर विशेष व्यवस्था, उक्त विशेष क्रिया को छोड कर अन्य क्रिया अपने विभव और अपनी वेदशाखा के अनुसार करने की व्यवस्था।

अध्याय–४५ (पृ. ४५९-४६३)

प्रत्यब्दश्राद्ध में पार्वण की और एकोद्दिष्ट की व्यवस्था, श्राद्ध में कुश की व्यवस्था, श्राद्ध में आशौच प्राप्त होनेपर व्यवस्था, शूद्रादि के तूष्णींश्राद्ध (विना मन्त्र श्राद्ध) की व्यवस्था, एक ही काल में मृत सम्बन्धियों के श्राद्ध में व्यवस्था, मृताह अज्ञात होनेपर व्यवस्था, आशौच बीतनेपर घर में पुत्रादि से कर्तव्य श्राद्धकर्म आरब्ध होनेपर अश्रुताशौच प्रवासी गृहमुख्य व्यक्ति घर में पहुँचनेपर व्यवस्था, दाता भोक्ता दोनों को अज्ञात आशौच में कर्म करने में दोषाभाव, नित्यश्राद्ध-व्यवस्था, देवश्राद्धव्यवस्था, मातृगण-पितृगण-मातामहगण-श्राद्ध की व्यवस्था, इष्टापूर्तादि में आभ्युदयिकश्राद्ध की व्यवस्था।

अध्याय–४६ (पृ. ४६४-४६९)

सुकृत (धर्म) का फल, धर्म-सत्य-क्षमा-विष्णुओं का जय, विभिन्न पापकर्मों के फल भोग कर जन्मने वालों के लक्षण, पापपुण्य तुल्य होनेपर मनुष्यजन्म की प्राप्ति, जन्मप्रक्रिया, स्वधर्मसेवन से स्वर्ग की प्राप्ति और अधर्म से अधोगति, दान-भोगादि का स्वकर्मफलत्व, घोर दुष्कर्म करनेपर नरक में पतन और (कल्पपर्यन्त) नरक से उत्तरण का अभाव।

अध्याय–४७ (पृ. ४६९-४७७)

वैतरणी नदी का वर्णन, वैतरणीगाय के दान का विधान, वैतरणी नदी में पतन में कारण, अयन-विषुव-व्यतीपात-चन्द्रसूर्यग्रहण-

अमावास्या इत्यादि पुण्यकाल में दान करने का माहात्म्य, दान में श्रद्धा होने का समय ही दान का समय, धर्मसङ्ग्रह की आवश्यकता, वैतरणी-दान की विस्तृत पद्धति, स्वस्थावस्थादि के दान के फलों की विशेषता, स्वयंदान की आवश्यकता, और्ध्वदेहिक कृत्य की आवश्यकता, प्रेत-कृत्यों को सुन कर गरुड की प्रसन्नता, गरुड का व्रततीर्थादिविषयक पुनः प्रश्न, लोकहितनिदान-जनार्दनस्मृत्यादि से लाभ और जय की प्राप्ति, धर्मादि का जय, विष्णु का सर्वगतत्व के ज्ञान से दुर्गति का परि-हार, विष्णु का मङ्गलमयत्व, हरि-भागीरथी-विप्रों का त्रिलोकसारत्व, सूतवचन से ऋषियों की तुष्टि, ऋषियों से सूत की प्रशंसा, पुण्डरीकाक्ष कास्मरण करने वाले का बाहर भीतर दोनो तरफ शुचित्व।

अध्याय–४८ (पृ. ४७८-४८९)

सभी मानवों का अपने काल में अपने कर्मानुसार मृत्यु और सुदुस्तर यममार्ग से गमन होनेपर भी पुण्य से सुख, कुल, बल और दीर्घायु प्राप्त होने की व्यवस्था के विषय में गरुड का प्रश्न और यम को पाप-पुण्यफलव्यवस्थापन में नियुक्त करने वाले जगत्कारण भगवान् का उत्तर, दुःखपूर्ण यममार्ग में चलते हुए पापी जीव के पश्चात्ताप और विलाप का विवरण, विलाप करते हुए पापी के प्रति यमदूतों के ताडनसहित कथन, पापी का विषाद और धैर्यधारण, यम-दूतों के वचनों को सुनकर पुनः मनुष्ययोनि में प्राप्त जीव की धर्म, दया, मधुरवाणी, तीर्थस्नान, स्वर्ग, धार्मिक, पापी, धर्मशील पुरुष, मिष्टान्नदाताप्रभृति वन्दनीय पुरुष इत्यादि प्रति उदित भावना का वर्णन, वेदविद् ब्राह्मण को वर्षाशनदान इत्यादि उत्तम सुकृत, धर्मसाररूप इस अध्याय को भावशुद्धिपूर्वक पढने का और सुनने का फल।

अध्याय–४९ (पृ. ४८९-५०८)

मोक्ष के उपाय का वर्णन, गरुडपुराण की गुरुपरम्परा, गरुड-पुराण सुनने का फल और ऋषिकृत सूतप्रशंसा, गरुडपुराण का सदा श्रवणीयत्व, गरुडपुराण सुन कर दान देने का और पुराण को और वाचक को पूजने का विधान, गरुडपुराण सुनने वाले और पढने वाले लोगों की स्वर्गप्राप्ति।

ग्रन्थपरिचय

प्रस्तुत ग्रन्थ आचारकाण्ड, प्रेतकल्पनाम से प्रसिद्ध धर्मकाण्ड और ब्रह्मकाण्ड इन तीन काण्डों से युक्त गरुडपुराण का धर्मकाण्ड-नामक प्रेतकल्प मात्र है।

मुख्यरूप में श्राद्ध के समय में और अन्त्येष्टि के समय में पाठ के लिए अथवा श्रवण के लिए गरुडपुराण-उत्तरखण्ड-द्वितीयांश के धर्मकाण्डरूप प्रेतकल्प के शुद्ध और पृथक् पुस्तक के अभाव के निराकरण के लिए यह ग्रन्थ प्रस्तुत किया जा रहा है। उपलभ्यमान १६ अध्यायों का और ३४ अध्यायों का सटीक गरुडपुराणग्रन्थ अथवा भाषाटीकासहित गरुडपुराणग्रन्थ मौलिक और मुनिकृत नहीं हैं। इस स्थिति से और मूल गरुडपुराण के अन्य पुस्तक की दुर्लभता से उन अमुनिकृतग्रन्थ के प्रयोग की बाध्यता से असमञ्जस में पडे हुए आर्ष वाङ्मय में श्रद्धा रखने वाले आस्तिक सज्जन गुरु-पुरोहित-पण्डितों को राहत देने की दृष्टि से ही मुख्यतया यह गरुडपुराण का हिन्दी अनुवाद से युक्त धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प का संस्करण प्रस्तुत किया जा रहा है।

भूमिका में सामान्यतया पुराणों के विषय में और विशेषतया गरुडपुराण के विषय में आवश्यक जानकारी दी गई है। गरुडपुराण के आचारकाण्ड के और ब्रह्मकाण्ड के विषयों का सङ्क्षिप्त विवरण भी भूमिका में दिया गया है। इस से गरुडपुराण के सम्पूर्ण कलेवर का अच्छा परिचय प्राप्त हो सकेगा।

धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प के विभिन्न संस्करणों का तुलनात्मक विवरण भी भूमिका में समाविष्ट है।

इस धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प की विस्तृत विषयानुक्रमणिका हिन्दी में पृथग्रूप में इस संस्करण में समाविष्ट है। इस से विषयानुक्रमणिका से ही इस काण्ड के सारांश को जानने में सहयोग मिलेगा।

गरुडपुराण के धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में प्रतिपादित और्ध्वदेहिक कृत्य के विभिन्न कर्मों का प्रयोगक्रम की दृष्टि से विस्तृत विवरण भी भूमिका में समाविष्ट है। इस से मूल वैदिक और्ध्वदेहिक कृत्य के और पौराण वैष्णवसम्प्रदायसम्मत और्ध्वदेहिक कृत्य के तुलनात्मक अध्ययन में विशेष सहायता मिल सकेगी।

इस संस्करण में गरुडपुराण के १९४७ संवत् के जीवानन्दसंस्करण का और १९४७ संवत् के ही बङ्गवासीसंस्करण का तथा १९६३ संवत् के वेङ्कटेश्वरसंस्करण का मुख्य आधार के रूप में उपयोग किया गया है। इन तीनों संस्करणों को और अन्य ग्रन्थों को भी देखकर पाठनिर्धारण किया गया है। इस कार्य में नेपाल के राष्ट्रिय अभिलेखालय में प्राप्त हस्तलेख का भी कुछ उपयोग किया गया है।

वेद भारतवर्ष के महान् निधि हैं। वैदिक जीवनयात्रापद्धति भारतवर्षवासियों के ऐहलौकिक सुख शान्ति के साथ ही स्वर्ग की और मोक्ष की भी साधना की पद्धति है। इस पद्धति में कर्मकाण्ड का असाधारण स्थान है। प्रमुख वैदिक कर्मकाण्ड के सम्पादन में गुरु-पुरोहित-पण्डित-ब्राह्मणों का विशिष्ट स्थान है। इस लिए उन को श्रुति-स्मृति-पुराणों का अच्छा परिचय प्राप्त करना चाहिए, और धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूप चारों पुरुषार्थों के विषय में आवश्यक ज्ञान भी प्राप्त करना चाहिए। किन्तु आजकल उक्त विषय में गुरु-पुरोहित-पण्डित-ब्राह्मणों में दिनप्रतिदिन दुर्बलता बढती ही जा रही मालूम होती है। इस से वैदिक धर्म की परम्परा में बडी क्षति हो रही है। यद्यपि लोक में सन्न्यासियों, मठाधीशों और अन्य वेषधारियों को धर्माचार्य अथवा गुरु मानने का भ्रम भी व्यापक है, तथापि गृहस्थ पण्डित ब्राह्मण ही वर्णाश्रमियों के संस्कारादि कृत्यों में गुरु अथवा आचार्य होते हैं, सन्न्यासी प्रभृति नहीं। इस लिए गुरु-पुरोहित-पण्डित-ब्राह्मणों को वैदिक समाज में अपने विशिष्ट स्थान को समझना चाहिए और आवश्यक योग्यता प्राप्त करनी चाहिए। उन को श्रुति-स्मृति-पुराणों के मर्यादाक्रम को और व्यवस्था को समझकर तदनुसार ही धर्मकृत्य करना और कराना चाहिए। इसी दृष्टि से समुचित भूमिका के साथ में गरुडपुराण के उत्तरखण्ड का हिन्दी अनुवाद से युक्त धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प इस संस्करण में प्रस्तुत किया गया है।

इस संस्करण से गुरु, पुरोहित, पण्डित, ब्राह्मण तथा यजमानों के साथ ही सामान्य जिज्ञासु आस्तिक पाठक भी लाभान्वित हो सकेंगे, ऐसी सम्पादक-अनुवादक की आशा है।

—सम्पादक-अनुवादक

भूमिका

गरुडपुराण के और उस के उत्तरखण्ड-द्वितीयांशरूप धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प के विषय में और वेदशाखाविशेष के अध्येता ब्राह्मणादि वर्णों के और्ध्वदेहिक कृत्य में किए जाने वाले विधानों के विषय में भी लोक में प्रचलित भ्रम के निराकरण के लिए यहां सामान्यतया पुराणवाङ्मय के और विशेषतया गरुडपुराण के तथा प्रेतकल्प के विषय में कुछ स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

पुराण का परिचय

मुख्य रूप में सृष्टि, प्रलय, ऋषिवंश-राजवंशादि वंश, मन्वन्तर, उक्त ऋषिवंशादि वंशो में प्रादुर्भूत विशिष्ट व्यक्तियों का चरित्र इन पाँच विषयों के वर्णन से लोगों के हृदय में वैराग्य उत्पन्न कराकर उन को आत्मचिन्तन में अभिमुख बनाने में प्रवृत्त ग्रन्थविशेष को वैदिक परम्परा में पुराण कहते हैं। कहा ही गया है–

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंश्यानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

–कूर्मपुराण १।१।१२, अग्नि.१।१४, गरुड.१।१२५।४, देवीभागवत १।२।१८, ब्रह्माण्ड.१।१।३७-३८, ब्रह्मवैवर्त.४।१३३।६,
भविष्य.१।२।४-५, भागवत २।१०।१, १२।७।७-१०, मत्स्य.५३।६४, मार्कण्डेय.१३४।१३, वराह.२।४, वायु.१।४।१०,
विष्णु.३।६।२४, शिव.७।१।१।४१, सूतसंहिता.१।१।३३, सौरपुराण ९।४, स्कन्द.५।३।१।३०

पुराणों में वर्णित कथाएं विज्ञान और वैराग्य के प्रतिपादन में प्रवृत्त हैं, यह बात भागवत में स्पष्ट रूप में कही गई है–

कथा इमास् ते कथिता महीयसां विताय लोकेषु यशः परेयुषाम्।
विज्ञानवैराग्यविवक्षया विभो वचोविभूतीर् न तु पारमार्थ्यम्॥–भागवत १२।३।१४।

पुराणों के प्रयोजन

वेद में और वेद की अनुगामिनी स्मृतियों में प्रतिपादित धर्म-मोक्षादि-विचार की व्याख्याद्वारा वेदाधिकारहीन द्विजातिसङ्गृहीत स्त्री, शूद्र, द्विजबन्धु अनुलोमज-प्रतिलोमज वर्णसङ्कर, व्रात्य, पतित इत्यादि लोगों को भी वैदिक धर्म-मोक्ष-विचार की महत्ता को समझाकर उन को वैदिक धर्म-मोक्ष-विचार के प्रति अनुकूल तथा सहिष्णु बनाकर और उन के लिए शिष्टानुमत वेदानुकूल धर्म-मोक्ष-मार्ग दिखाकर वेद के प्रति सभी लोगों के सद्भाव की वृद्धि करके वेद को समृद्ध, पुष्ट और समाज में प्रभावशाली बनाना ही इतिहासों की तरह पुराणों का भी मुख्य काम है। कहा ही गया है—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्। बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं *प्रतरिष्यति।*

—पद्मपुराण सृष्टिखण्ड २।५१, ब्रह्माण्ड.१।१।१७१, वायु.१।१।१८१, शिव.७।१।१।४०, स्कन्द.प्रभास.१।२।९१, महाभारत, आदिपर्व १।२६७-२६८, सायणकृत ऋग्वेदभाष्यभूमिका।

पुराणपूर्णचन्द्रेण श्रुतिज्योत्स्नाः प्रकाशिताः। नृबुद्धिकैरवाणां च कृतमेतत् प्रकाशनम्॥—महाभारत, आदिपर्व १।८६।

वेदार्थादधिकं मन्ये पुराणार्थं वरानने। वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणेष्वेव सर्वदा॥—नारदीयपुराण २।२४।१७-१८।

अल्पायुषोऽल्पबुद्धींश् च विप्रान् ज्ञात्वा कलावथ। पुराणसंहितां पुण्यां कुरुतेऽसौ युगेयुगे॥
स्त्री-शूद्र-द्विजबन्धूनां न वेदश्रवणं स्मृतम्। तेषामेव हितार्थाय पुराणानि कृतानि हि॥—देवीभागवत १।३।२०,२१।

उपर्युक्त वस्तुस्थिति में केवल धर्म-मोक्ष-विचार में ही नहीं भारतवर्षीय समाज में सामाजिक समन्वय के स्थापन में भी पुराणों का महत्त्व बहुत ही अधिक है।

पुराणों का प्रामाण्य

श्रुति का (वेद का) धर्म-मोक्ष में स्वतःप्रामाण्य माना जाता है। स्मृतियों का श्रुति की अनुगामिनी होने पर ही धर्म-मोक्ष में प्रामाण्य माना जाता है। अर्थात् स्मृति श्रुतिमूलक होने पर ही धर्म-मोक्ष में प्रमाण मानी जाती है। इस बात को महाकवि कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य में भी **"श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्"** (२।२) कहकर सूचित किया है। श्रुति-स्मृतियों में विहित, उक्त, सूचित, आकाङ्क्षित और श्रुतिस्मृतियों का अनुकूल और अविरोधी अर्थ को प्रतिपादित करने पर ही पुराण धर्म-मोक्ष में प्रमाण माने जाते हैं। इसी लिए कहा गया है–

श्रुति-स्मृति-पुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते। तत्र श्रौतं प्रमाणं स्यात् तयोर् द्वैधे स्मृतिर् वरा॥–वेदव्यासस्मृति १।४।

श्रुतिस्मृती उभे नेत्रे पुराणं हृदयं स्मृतम्। एतत्त्रयोक्त एव स्याद् धर्मो नाऽन्यत्र कुत्र चित्॥

विरोधो यत्र तु भवेत् त्रयाणां तु परस्परम्। तत्र श्रौतं प्रमाणं स्याद् द्वयोर् द्वैधे स्मृतिर् वरा॥–देवीभागवत ११।१।२१,२२।

अष्टादश पुराण और उपपुराण

मुख्य पुराण १८ माने गए हैं। इन को सामान्यतया कृष्णद्वैपायन-व्यासरचित माना जाता है। इन को महापुराण भी कहा जाता है। सामान्यतया इन का रचनाकाल गत द्वापर युगका अन्त्यकाल माना जाता है। अतः इन की रचना आज से लगभग ५००० वर्ष पहले हुई मानी जाती है। इन के अकारादिवर्णानुक्रम से नाम ये हैं– १.अग्निपुराण, २.कूर्मपुराण, ३.गरुडपुराण, ४.नारदीयपुराण, ५.पद्मपुराण, ६.ब्रह्मपुराण, ७.ब्रह्मवैवर्तपुराण, ८.ब्रह्माण्डपुराण, ९.भविष्यपुराण, १०.भागवतपुराण, ११.मत्स्यपुराण, १२.मार्कण्डेयपुराण, १३.लिङ्गपुराण, १४.वराहपुराण, १५.वामनपुराण, १६.वायुपुराण, १७.विष्णुपुराण, १८.स्कन्दपुराण। इन में भागवत के विषय में और वायुपुराण के विषय में मतभेद है। कोई विद्वान् भागवत में देवीभागवत को लेते हैं तो कोई विष्णुभागवत को (श्रीमद्भागवत को)। किसी पुराण ने वायुपुराण को १८ पुराणों में गिना है तो किसी पुराण ने शिवपुराण को। इन पुराणों के नामों का सङ्ग्रह देवीभागवत में सङ्क्षेप में इस प्रकार किया गया है–

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्। अ-ना-प-कू-स्क-लिङ्-गानि पुराणानि पृथक्पृथक्॥–१।३।२।

मद्वय– मत्स्य., मार्कण्डेय.; **भद्वय–** भविष्य., भागवत.; **ब्रत्रय–** ब्रह्म., ब्रह्मवैवर्त., ब्रह्माण्ड.; **वचतुष्टय–** वराह., वामन., वायु., विष्णु.; **अ–** अग्नि., **ना–** नारदीय., **प–** पद्म., **कू–** कूर्म., **स्क–** स्कन्द., **लिङ्–** लिङ्ग., **ग–** गरुड।

अग्निपुराणादि अधिकतर पुराणों में पुराणों का क्रम १.ब्रह्म., २.पद्म., ३.विष्णु., ४.वायु. अथवा शिव., ५.भागवत., ६.नारदीय., ७.मार्कण्डेय., ८.अग्नि., ९.भविष्य., १०.ब्रह्मवैवर्त., ११.लिङ्ग., १२.वराह., १३.स्कन्द., १४.वामन., १५.कूर्म., १६.मत्स्य., १७.गरुड., १८.ब्रह्माण्ड ऐसा है। देवीभागवत-भागवतादि कुछ पुराणों में पुराणों के क्रम में कुछ भेद भी दिखाई देता है। इन पुराणों के नाम अग्निपुराण में (२१२।१-२३), कूर्मपुराण में (१।१।१३-१६), गरुडपुराण में (१।२२३।१५,१६), नारदीयपुराण में (१।९२।२६-२८), पद्मपुराण में (पाताल.१०४।५१-५४; ११५।६६,६७; ११५।८९-९३; उत्तर.१९८।७४,७५,९३-९४,१०८-१०९, २३६।१४-१७), ब्रह्मवैवर्तपुराण में (कृष्णजन्म.१३३।११-२१), भविष्यपुराण में (१।१।६१-६४), भागवत में (१२।७।२३,२४; १२।१३।३-९), मत्स्यपुराण में (५३।१३-५६), मार्कण्डेयपुराण में (१३४।८-११), लिङ्गपुराण में (१।३९।६१-६३), वराहपुराण में (११२।७४-७७), वामनपुराण में (१२।४८), वायुपुराण में (२।४२।३-१०), विष्णुपुराण में (३।६।२०-२३), शिवपुराण में (५।४४।११९-१३७; ७।१।१।४३-४५), स्कन्दपुराण में (माहेश्वर.२।४०।१९९-२०२; आवन्त्य.३।१।३१-४५; प्रभास.१।२।५-७, २८-७७), सौरपुराण में (९।६-१२, ९।१७-३८), और सूतसंहिता में (१।१।७-१०) भी पाए जाते हैं। पुराणों की ग्रन्थसङ्ख्या और क्रम के विषय में मुरादावादनिवासी पण्डित ज्वाला-प्रसादमिश्रजी ने १९०५ इ. (१९६२ संवत्) में प्रकाशित अष्टादश-पुराणदर्पण में (पृ.५१) एक अच्छी सारणी दी है। अष्टादश पुराणों के वर्ण्य मुख्य-मुख्य विषय मत्स्यपुराण में (५३।१-६८), नारदीयपुराण में (१।९२।३०-१।१०९।२९) और शिवपुराण में (५।४४।११९।१३७) भी वर्णित हैं।

उपपुराण भी १८ ही माने जाते हैं। उन के नाम अकारादिवर्णानुक्रम से ये हैं– आश्चर्यपुराण, औशनसपुराण, कपिलपुराण, कालिकापुराण, नरसिंहपुराण, नारदपुराण, पराशरपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, बृहन्नारदीयपुराण, भास्करपुराण महेश्वरपुराण, मारीचपुराण, वरुणपुराण, शिवधर्मपुराण, सनत्कुमारपुराण, साम्बपुराण, सौरपुराण, स्कन्दपुराण। इन उपपुराणों के नाम कूर्मपुराण में (१।१।१७-२०),

गरुडपुराण में (१।२२३।१७-१९), पद्मपुराण में (पाताल.११५।९४-९७), देवीभागवत में (१।३।१३-१६), पराशरपुराण में (१।२८।३१), मत्स्यपुराण में (५३।५९-६१), सूतसंहिता में (१।१।१३-१८), सौरपुराण में (९।१२-१५) और स्कन्दपुराण में (आवन्त्य.३।१।४६-५२, प्रभास.१।२।१२-१५) पाए जाते हैं। इन उपपुराणों का उल्लेख हेमाद्रि ने चतुर्वर्गचिन्तामणि के दानखण्ड के सप्तम अध्याय में (पृ.५३२) और व्रतखण्ड के प्रथम अध्याय में (पृ.२१) भी किया है।

पुराणों का वर्गीकरण

उपर्युक्त महापुराणों में कूर्म., ब्रह्माण्ड., भविष्य., मत्स्य., मार्कण्डेय., लिङ्ग., वराह., वामन., शिव. और स्कन्द. इन १० पुराणों को शिवमाहात्म्यपरक; गरुड., नारदीय., भागवत., विष्णु. इन ४ पुराणों को विष्णुमाहात्म्यपरक; ब्रह्म तथा पद्म इन २ पुराणों को ब्रह्ममाहात्म्यपरक; अग्निपुराण को अग्निमाहात्म्यपरक, ब्रह्मवैवर्तपुराण को सूर्यमाहात्म्यपरक मानने की बात स्कन्दपुराण के एक खण्ड के रूप में व्यवहृत शिवरहस्य ग्रन्थ में (सम्भवकाण्ड २।३०।३८) पाई जाने की बात बताई जाती है। किन्तु वैष्णवप्रिय पद्मपुराण में मत्स्य., कूर्म., लिङ्ग., शिव., स्कन्द., और अग्नि इन पुराणों को तामस; विष्णु., नारदीय., भागवत., गरुड., पद्म., वराह. इन पुराणों को सात्त्विक और ब्रह्माण्ड., ब्रह्मवैवर्त., मार्कण्डेय., भविष्य., वामन. और ब्रह्म. इन पुराणों को राजस माना गया है (उत्तर.१६३।८१-८४; २३६।१८-२१)। सात्त्विक पुराणों में हरि के माहात्म्य का आधिक्य, राजस पुराणों में ब्रह्मा के और अग्नि के माहात्म्य का आधिक्य, तामस पुराणों में शिव के माहात्म्य का आधिक्य तथा सङ्कीर्ण पुराणों में सरस्वती के और पितरों के माहात्म्य का आधिक्य रहने की बात मत्स्य पुराण में भी पाई जाती है (५३।६८,६९)।

पुराणशास्त्र और पुराणग्रन्थों के पाठों की परम्परा और वर्तमान स्वरूप

ग्रन्थविशेषवाचक पुराणशब्द का उल्लेख ऋग्वेद की, यजुर्वेद की और सामवेद की मन्त्रसंहिताओं में नहीं मिलता है। किन्तु शौनकियों की अथर्ववेदमन्त्रसंहिता में (११।७।२४; १५।६।११,१२) ग्रन्थविशेषवाचक पुराणशब्द पाया जाता है। ब्राह्मणग्रन्थों में भी मा.वा.शु.य.वे.

शतपथ-ब्राह्मण में (११।५।६।८, ११।५।७।९, १३।४।३।१३, १४।५।४।१०, १४।६।१०।६, १४।७।३।११) का.वा.शु.य.वे. बृहदारण्यकोपनिषद् में (२।४।१०, ४।१।२, ४।५।१०), तैत्तिरीयारण्यक में (२।१०), छान्दोग्योपनिषद् में (७।१।२,४; ७।२।१) और गोपथब्राह्मण में (१।१।१०, १।२।१०) भी ग्रन्थविशेषवाचक पुराणशब्द का उल्लेख मिलता है। बृहदारण्यकोपनिषद् में उल्लिखित पुराणशब्द का अर्थ वेद के ब्राह्मणभाग में अन्तर्भूत वाक्यप्रकरणविशेष ही होने की बात शङ्करभगवत्पाद की व्याख्या से अवगत होती है। उन का कहना है **"पुराणम् असद् वा इदमग्र आसीत् इत्यादि", "···· एवं मन्त्र-ब्राह्मणयोरेव ग्रहणम्"** (बृ.उ.२।४।१०)। सायणव्याख्या में तो कहीं **"पुराणं वैष्णवादि"** (मा.वा.शु.य.वे.शतपथ.११।५।६।८) ऐसा उल्लेख मिलता है तो कहीं **"इदं वा अग्रे नैव किञ्चनासीन् न द्यौरासीदित्यादिकं जगतः प्रागवस्थानमुपक्रम्य सर्गप्रतिपादकं वाक्यजातं पुराणम्"** (ऐतरेयिब्राह्मणव्याख्यारम्भभाग) ऐसा ब्राह्मणवाक्यविशेष को ही पुराण मानने वाला उल्लेख मिलता है। सायण ने ऋग्वेदभाष्य-भूमिका में याज्ञवल्क्यस्मृति के वचन से पुराण का भी वेदार्थ ज्ञान में उपयोग दिखाते हुए लिखा है– **"उपनिषदुक्ताः सृष्टिस्थितिलयादयो ब्रह्म-पाद्म-वैष्णवादिपुराणेषु स्पष्टीकृताः"**। इस उल्लेख से सायण भी मूल रूप में ब्राह्मणवाक्यविशेष को ही पुराण मानते हुए और ब्राह्म-पाद्मादिपुराणग्रन्थों को मूल पुराण ग्रन्थों के व्याख्यानात्मक ग्रन्थ होने से पुराण मानते हुए प्रतीत होते हैं। इस स्थिति में शतपथव्याख्या में आया हुआ उन का **"पुराणं वैष्णवादि"** यह कथन चिन्त्य ही प्रतीत होता है। जो कुछ हो, मन्त्र-ब्राह्मणग्रन्थों में उल्लिखित पुराण से भिन्न वर्तमान काल में उपलब्ध ब्रह्मपुराणादि पुराणग्रन्थ पौरुषेय ग्रन्थ समझे जाते हैं। पौरुषेय ग्रन्थ कहने से प्रतिपाद्य विषयों का प्रमाणान्तर से ज्ञान करके किसी पुरुष से विरचित ग्रन्थ समझा जाता है। अपौरुषेय ग्रन्थ वेदमन्त्रसंहिता-ब्राह्मणग्रन्थों की तरह इन पौरुषेय ग्रन्थों का परम्परा में गुर्वध्ययनपूर्वकत्व नहीं माना जाता है। अतः इन ग्रन्थों को केवल लिखित पुस्तकों के आधार में भी पढा जाता है। ऐसी ही परम्परा मालूम पडती है। सामान्यतया छः वेदाङ्गस्मृतिरूप महास्मृतियों को और विशेषतया कल्परूप महास्मृति को छोडकर अन्य स्मृतियों के और पुराणों के अध्ययन में शब्दग्रहण में विशेष प्रयास न करके अर्थ-तात्पर्यग्रहण में ही प्रयास करने की परम्परा चली आ रही प्रतीत होती है। कहा भी गया है–

आगमेषु पुराणेषु स्मृतिष्वपि कथासु च। अर्थमेव तु गृह्णीयान् न च शब्दं विचारयेत्॥–भारद्वाजस्मृति ७।१२३।

उक्त वस्तुस्थिति से अग्निपुराण-ब्रह्मपुराणादि उपलभ्यमान पुराणों में आवाप (प्रक्षेप), उद्वाप (निरसन) पाठभ्रंश और लेखकप्रमाद इत्यादि दोष पुराकाल से ही सम्भावित माने गए प्रतीत होते हैं। इस विषय में मार्कण्डेयस्मृति में कहा गया है–

तस्मादेतेषु सर्वेषु विद्याभेदेषु कृत्स्नशः। उपदिष्टेषु विशयो नास्त्येव सुतरां खलु॥
नैवं स्मृतिषु सर्वासु पुराणेष्वखिलेषु वा। तस्मात् तन्मध्यसम्प्राप्तप्रक्षिप्तग्रन्थविस्तरैः॥
तानि सर्वाण्यप्रामाण्यकलङ्कितशरीरतः। आचारसंशयेष्वत्र सम्यक् स्युर् न विधायकाः॥–स्मृतिसन्दर्भ, षष्ठ भाग, पृ.६६।

१२२६ वैक्रमाब्द में रचित दानसागरनामक धर्मशास्त्रनिबन्धग्रन्थ में बङ्गाल के राजा बल्लालसेन ने पुराणों में अनेक प्रक्षेप और दूषण घुसने की बात लिखी है। वहां कहा गया है–

प्रचरद्रूपतः स्कन्दपुराणैकांशतोऽधिकम्। यत् खण्डत्रितयं पौण्ड्र-रेवा-ऽवन्तिकथाश्रयम्॥
तार्क्ष्यं पुराणमपरं ब्राह्ममाग्नेयमेव च। त्रयोविंशतिसाहस्रं पुराणमपि वैष्णवम्॥
षट्सहस्रमितं लैङ्गं पुराणमपरं तथा। दीक्षा-प्रतिष्ठा-पाषण्डयुक्ति-रत्नपरीक्षणैः॥
मृषावंशानुचरितैः कोषव्याकरणादिभिः। असङ्गतकथाबन्ध-परस्परविरोधतः॥
तन् मीनकेतनादीनां भण्डपाषण्डलिङ्गिनाम्। लोकवञ्चनमालोक्य सर्वमेवाऽवधीरितम्॥–उपक्रमणिकाभाग, श्लो.६२-६६।

वैक्रमाब्द के त्रयोदश शतक में रचित जगन्मोहन-नामक ज्योतिषग्रन्थ में लक्ष्मणाचार्य ने भी पद्मपुराणादि कतिपय पुराणों में बहुत प्रक्षिप्तांश रहने की बात लिखी है। उन का कथन है–

पुराणवचनेषु पद्मपुराणादिकतिपयपुराणेषु कृत्रिमवचनानि बहूनि दृश्यन्ते।–तिथिफलाध्याय, प्रथमभाग, पृ.२०७।

वैक्रमाब्द के सप्तदश शतक के मित्रमिश्र ने भी वीरमित्रोदय में पुराणों को अव्यवस्थित कहा है। उन का कथन है—

पुराणानामव्यवस्थितत्वात्।—संस्कारप्रकाश, पृ.६५५।

काशी के प्रसिद्ध बडे पण्डित बदरीनाथ शुक्ल ने भी वाराणसीस्थ चौखम्बाविद्याभवन से प्रकाशित **'मार्कण्डेय पुराण एक अध्ययन'** (२०१८ वै.) नाम के ग्रन्थ में पुराणों में प्रक्षेपों की पर्याप्त सम्भावना दिखाई है। उन का कथन है—

"इस प्रकार वेद जो कुछ उपलब्ध हैं अपने आदिम शब्द और अर्थ दोनों रूपों में ज्यों के त्यों आज भी सुरक्षित हैं, पर पुराण केवल अपने मौलिक अर्थों में ही सुरक्षित हैं। पुराणों के विषय में इस सम्भावना के लिए पर्याप्त स्थान है कि उन में नूतन भाषा के साथ नूतन अर्थ का भी समावेश हुआ है।" —प्राक्कथन, पृ.९-१०।

श्रीमज्जगद्गुरु-शाङ्करमठविमर्श-ग्रन्थ के सम्पादक जयपुर-विश्वनाथ राजगोपालशर्मा भी कहते हैं— **"इन उदाहरणों से मेरा अभिप्राय है कि जव किसी महान् की स्तुति या निन्दा करना हो तो स्वार्थसिद्ध प्राप्त करने वालों द्वारा अपने अपने हित के लिये पुराणों में क्षिप्त करते हुए आ रहे हैं। मेरे कहने का अभिप्राय यह नहीं है कि ये सब पुराण-प्रमाण नहीं हैं, पर इन पुराणों के आधार पर निश्चित रूप से निःसन्देह किसी विषय की पुष्टि नहीं किया जा सकता है।"** —(१९६३ इ.), पृ.११६।

संस्कृतवाङ्मयग्रन्थेतिहासलेखक काशी के प्रसिद्ध पण्डित बलदेव उपाध्याय ने भी लिखा है— **"मूलभूत पुराणों में कालान्तर में यत्र-तत्र स्फुट श्लोक ही नहीं जोडे गये, प्रत्युत अध्याय का अध्याय जोडा गया है। अनेक पुराणों में प्रतिसंस्कार की मात्रा ने मूल स्वरूप को सर्वात्मना आच्छादित कर लिया है। उन के मूल रूप को खोज निकालना बहुत अधिक गम्भीर अनुशीलन चाहता है।"** —पुराणविमर्श (१९८७ इ.), पृ.५३०।

पुराणपाठों की उक्त वस्तुस्थिति को देखकर ही हरिहरानन्द करपात्र ने भी पुराणों की व्यवस्था श्रुति-स्मृति-अनुकूल होने पर ही मान्य होने की बात मानी है। उन का कथन है—

"व्यासोक्तपुराणानां श्रुतिस्मृत्यनुसारेणैव व्यवस्था युक्ता।" —चातुर्वर्ण्यसंस्कृतिविमर्श, द्वितीयभाग, पृ.९५।

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि पुराणग्रन्थों के वर्तमान स्वरूप बहुत ही विवेच्य हैं, और उन में पाये जाने वाले विषय श्रुति-स्मृतियों के अनुकूल और अविरोधी होने पर ही ग्राह्य वा स्वीकार्य हो सकते हैं।

गरुडपुराण का विशेष परिचय

गरुडपुराण के मुद्रित संस्करणों में तीन संस्करण विशेष प्रसिद्ध हैं। इन में प्रथम १८९० इ. (१९४७ संवत्) का कलिकाता के जीवानन्द का संस्करण प्रतीत होता है। दूसरा कलिकाता का ही १८१२ शकाब्द (१९४७ संवत्) का बङ्गवासी-ष्टीम-मेसिन-यन्त्र में मुद्रित संस्करण प्रतीत होता है। तीसरा मुम्बयी के वेङ्कटेश्वर-यन्त्रालय का १९६३ विक्रमसंवत् का संस्करण दिखाई देता है। चौखम्बा-संस्कृत-सीरीज-आफिस (वाराणसी) का २०२१ संवत् (१९६४ इ.) का संस्करण जीवानन्दसंस्करण का पुनर्मुद्रण बताया गया है। जीवानन्द के संस्करण में पूर्वखण्ड में २२९ अध्याय और उत्तरखण्ड (प्रेतकल्प) में ३५ अध्याय हैं। वङ्गवासीसंस्करण में पूर्वखण्ड में २४३ अध्याय और उत्तरखण्ड में ४५ अध्याय हैं। वेङ्कटेश्वरसंस्करण में पूर्वखण्ड (प्रथमांश आचारकाण्ड) में २४१ अध्याय, उत्तरखण्ड द्वितीयांश (धर्मकाण्ड-प्रेतकल्प) में ४९ अध्याय और उत्तरखण्ड तृतीयांश (ब्रह्मकाण्ड) में २९ अध्याय हैं। पण्डित कृष्णमणि त्रिपाठी ने अष्टादशपुराणपरिचयग्रन्थ (संवत् २०१३-२०१४) में इसी संस्करणको गरुडपुराण में लिया है। किन्तु कृष्णमणि त्रिपाठी ने ही 'पुराणपर्यालोचनम्' नाम के ग्रन्थ के गवेषणात्मक भाग में (सन्.१९७६, पृ.३६५) तो गरुडपुराण के पूर्वखण्ड में २२९ अध्याय और उत्तरखण्ड में ३५ अध्याय रहने की बात लिखी है। वहाँ ब्रह्मखण्ड की कोई चर्चा नहीं है। गरुडपुराण के पूर्वखण्ड मे २४३ अध्याय और उत्तरखण्ड प्रेतकल्प में ४५ अध्याय रहने की बात मुरादावादनिवासी पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्रद्वारा १९०५ इ. (१९६२ संवत्) में रचित और प्रकाशित अष्टादशपुराणदर्पण से भी अवगत होती है। यह किसी मुद्रित संस्करण की बात है अथवा हस्तलिखित पोथी की बात है, नहीं बताया गया है। तथापि यह बात वङ्गवासीसंस्करण की प्रतीत होती है। पण्डित बलदेव उपाध्याय ने पुराणविमर्श ग्रन्थ में (१९८७ इ., पृ.६१) गरुडपुराण के पूर्वखण्ड के २४२ अध्याय तक का उल्लेख किया है, और उत्तर खण्ड (प्रेतकल्प) में ४५ अध्याय होने की बात लिखी है। हिन्दूधर्मकोश के रचयिता राजबली पाण्डेय ने

(१९८८ इ., पृ.२२८) हिन्दीविश्वकोशकार नगेन्द्रनाथ वसु को प्राप्त गरुडपुराण में पूर्वखण्ड में २४७ अध्याय और उत्तरखण्ड में ४५ अध्याय रहने की बात लिखी है। नेपाल के राष्ट्रिय अभिलेखालय में प्राप्त हस्तलिखित प्रतियों में पूर्वखण्ड में किसी में २४७ अध्याय, किसी में २५३ अध्याय और किसी में २५४ अध्याय देखे जातें हैं। कोई प्रति नेवारी लिपि में, कोई प्रति आंशिक रूप में मैथिली और आंशिक रूप में नेवारी लिपि में, कोई प्रति देवनागरी लिपि में हैं। उन का लेखनकाल किसी का १७३९ संवत्, किसी का १७६३ संवत्, किसी का १८१० संवत्, किसी का १८९१ संवत् इत्यादि है। इन प्रतियों में उत्तरखण्ड नहीं है। पूर्वखण्ड की समाप्ति पर ही पुराण की समाप्ति है। नेपाल के राष्ट्रिय अभिलेखालय में उत्तरखण्ड की ४५ अध्याय वाली और ३५ अध्याय वाली प्रतियाँ भी स्वतन्त्ररूप में अलग-अलग मिलती हैं।

गरुडपुराण की ग्रन्थसङ्ख्या नारदीयपुराण, देवीभागवत, ब्रह्मवैवर्तपुराण, भागवत, शिवपुराण, स्कन्दपुराण के मत में १९००० ग्रन्थ (अनुष्टुप्), मत्स्यपुराण के मत में १८००० ग्रन्थ (अनुष्टुप्) और अग्निपुराण के (२७२।२३) मत में ८००० ग्रन्थ (अनुष्टुप्) होने की बात अवगत होती है। बलदेवोपाध्यायसम्पादित चौखम्बा-संस्कृत-सीरिज-अफिस-नामक निकाय से प्रकाशित (१९६६ इ.) अग्निपुराण की भूमिका में (पृ.११-१२) विष्णुपुराण, देवीभागवत, अग्निपुराण और मत्स्यपुराण के मत से पुराणों की श्लोकसङ्ख्या और वर्तमान संस्करण में उपलब्ध तत्तत् पुराणों की श्लोकसङ्ख्या की सारणी दी गई है। उस में गरुडपुराण की मात्स्योक्त ग्रन्थसङ्ख्या में त्रुटि है। तथापि अग्निपुराणोक्त गरुडपुराणग्रन्थसङ्ख्या वहां भी ८००० ही दी गई है। वहां गरुडपुराण की वर्तमान श्लोकसङ्ख्या ८७३८ दी गई है। यह किस संस्करण की श्लोकसङ्ख्या है स्पष्ट नहीं है। तथापि यह सङ्ख्या जीवानन्दसंस्करण की विदित होती है। जीवानन्दसंस्करण में (१।१।३५) "**अष्टौ श्लोकसहस्राणि तथा चाष्टौ शतानि च। पुराणं गारुडं व्यासः पुराऽसौ माऽब्रवीदिदम्**" ऐसा उल्लेख मिलता है और जीवानन्दसंस्करण की श्लोकसङ्ख्या लगभग ८००० रहने की बात रामशङ्कर भट्टाचार्य ने लिखी है। रामशङ्कर भट्टाचार्य जैसे समीक्षक भी "**पुराण की श्लोकगणनापद्धति प्रायेण अज्ञात**" (गरुडपुराण, भूमिका, १९६४ इ., पृ.१०) बताते हैं। वस्तुतः अग्निपुराणादि पुराणों में दी हुई पुराणों की सङ्ख्या श्लोकसङ्ख्या (पद्यसङ्ख्या) नहीं है; वह ग्रन्थसङ्ख्या है। अर्थात् एक अनुष्टुप् के (श्लोक के) अक्षरसङ्ख्या को (३२ अक्षर को) १ ग्रन्थ मान कर ग्रन्थसङ्ख्या वा श्लोकसङ्ख्या बताई गई है, १ पद्य को १ श्लोक मान कर नहीं। इस से यह स्पष्ट रूप में समझना चाहिए

कि किसी पुराण में वंशस्थवृत्त का एक पद्य आएगा तो ४८ (१२×४=४८) अक्षरों से बने हुए उस एक पद्य को डेढ श्लोक या डेढ ग्रन्थ गिना जाएगा, वैसे दो पद्य आएंगे तो उन को तीन ग्रन्थ वा तीन श्लोक के रूप में गिना जाएगा। इस विषय को पण्डितों को तो अच्छी तरह समझना चाहिए। इतनी बात को भी अन्य अनेक ग्रन्थों के साथ पुराणविमर्श के लेखक बलदेव उपाध्याय भी नहीं समझ रहे प्रतीत होते हैं। उन्हों ने अग्निपुराण की भूमिका में (१९६६, पृ.११-१२) पद्मपुराण की पुराणोक्त श्लोकसङ्ख्या ५५ हजार और वर्तमान श्लोकसङ्ख्या ४८५२ लिखा है। यह वर्तमान सङ्ख्या आनन्दाश्रमसंस्करण के पद्मपुराण के अन्त्य में उल्लिखित है। आनन्दाश्रम के पद्मपुराण के सम्पादक ने श्लोकसङ्ख्या कहकर पद्यसङ्ख्या दी है, उक्त पारिभाषिक ग्रन्थसङ्ख्या नहीं। इस बात को पण्डितों को तो ठीकठीक समझना ही चाहिए; भ्रम में नहीं पडना चाहिए और भ्रम का प्रचार भी नहीं करना चाहिए।

गरुडपुराण के पूर्वखण्ड प्रथमांश आचारकाण्ड के विषय

गरुडपुराण के सम्यक् परिचय के लिए अब हम वेङ्कटेश्वर-संस्करण के सम्पूर्ण गरुडपुराण के विषयों को सङ्क्षेप में नीचे प्रस्तुत करते हैं। विषयों के पहले अङ्कित सङ्ख्या अध्यायों की है। वेङ्कटेश्वर-संस्करण के गरुडपुराण के पूर्वखण्ड (प्रथमांश आचारकाण्ड) के प्रमुख विषय अधोलिखित हैं— १. मङ्गलाचरण, सूत प्रति शौनकादि का भगवदवतार-मनुवंश-वर्णाश्रमादि-विषयक प्रश्न, भगवदवतारक्रम; २. गरुडपुराण-गुरुपरम्परा, रुद्रकृत सर्गादिप्रश्न में विष्णुकृत गरुडपुराणोपक्रमण; ३. व्यवहार-व्रत-दानधर्मादिनिरूपणयुक्त गरुडपुराण के श्रवण में सूतकृत शौनकादि मुनियों का उन्मुखीकरण; ४. सृष्टिकथन; ५. सप्तर्षि-मरीच्यादि-दक्ष-सती-विनायक-जन्मकथन; ६. स्वायम्भुव-मनु-प्रियव्रतोत्तानपाद-ध्रुव-द्वादशाऽऽदित्यादि की उत्पत्ति; ७. सूर्यादि की और सरस्वती की मन्त्र-पूजाओं का विधान; ८. विष्णुपूजा के लिए वज्रनाभमण्डलनिर्माण का विधि; ९. विष्णुदीक्षा में गुरुशिष्यकृत्य; १०. महालक्ष्मीपूजा; ११. सुदर्शनादिनवव्यूहार्चन-निरूपण; १२. करकाय-न्यासादिनिरूपण; १३. विष्णुपञ्जरस्तोत्र; १४. हरिध्याननिरूपण; १५. विष्णुसहस्रनामस्तोत्र; १६. हरिध्यान और सूर्यमन्त्र; १७. सूर्यपूजा; १८. मृत्युञ्जयपूजा; १९. गरुडदैवतप्राणेश्वरविद्या; २०. विषहर-विपक्षोन्मूलनादिमन्त्रनिरूपण; २१. पञ्चवक्त्रशिवपूजा; २२. सदाहोम-शिव-

पूजा; २३. मन्त्रोद्धारादिसहित-शिवार्चनपद्धति; २४. त्रिपुरामन्त्रकथनादि; २५. पादुकापूजन; २६. करन्यासादिकथन; २७. विषहरमन्त्रकथन; २८. गोपालपूजा; २९. मोहिनीमन्त्र; ३०. श्रीधरार्चन; ३१. करन्यासविधानादिसहित-विष्णुपूजनविधान; ३२. पञ्चतत्त्वपूजन; ३३. ग्रहपीडादिहर-सुदर्शनचक्रपूजन; ३४. नवाक्षरमन्त्रयुतहयग्रीवपूजन; ३५. गायत्रीनिरूपण; ३६. त्रैकालिकसन्ध्याविधि; ३७. गायत्रीकल्प; ३८. दुर्गापूजा; ३९. सूर्यपूजा; ४०. महेश्वरपूजा; ४१. स्त्रीलाभ-शत्रूच्चाटनादिमन्त्रनिरूपण; ४२. महेश्वरपवित्रारोपण; ४३. विष्णु का पवित्रारोपण; ४४. ब्रह्ममूर्तिध्यान; ४५. शालग्रामलक्षण; ४६. वास्तुमान; ४७. प्रासादलिङ्गमण्डपादिलक्षण; ४८. देवप्रतिष्ठा; ४९. वर्णाश्रमधर्म; ५०. शौचाचार; ५१. दानधर्म; ५२. महापातकप्रायश्चित्त; ५३. महापद्मादि नव निधि; ५४. प्रियव्रतवंशवर्णनप्रसङ्ग में भुवनकोषवर्णन; ५५. जम्बूद्वीपवर्षों का और भारतवर्ष में किरातादि की स्थिति का वर्णन; ५६. प्लक्षद्वीपाधिपत्यादि का वर्णन; ५७. सप्त पाताललोक, रौरवादि नरक और ब्रह्माण्ड; ५८. तत्तन्माससूर्यादिवर्णन; ५९. कृत्तिकादि-नक्षत्रदेवता, तिथि-योगिनीस्थितिफल, वापीखननादियोग्यनक्षत्र, अमृतादियोग; ६०. ग्रहदशा, ६१. स्थानविशेषस्थचन्द्रफल और तन्वादिभावस्थग्रहफल; ६२. लग्नघटिका-कार्याऽकार्यविचार, लग्न से कन्या का शुभाऽशुभता का विचार, चर-स्थिर-द्विस्वभावराशि; ६३. पुरुषलक्षण; ६४. स्त्रीलक्षण; ६५. स्त्री-पुरुषलक्षण; ६६. शालग्रामशिलालक्षण, षष्टि संवत्सर, स्वरोदय; ६७. वामदक्षनाडीस्वरविचार; ६८. रत्नोत्पत्ति और रत्नपरीक्षा; ६९. मुक्तापरीक्षा; ७०. पद्मरागपरीक्षा; ७१. मरकतपरीक्षा; ७२. इन्द्रनीलपरीक्षा; ७३. वैदूर्यपरीक्षा; ७४. पुष्परागपरीक्षा; ७५. कर्केतनाख्यरत्नपरीक्षा; ७६. भीष्माख्यरत्नपरीक्षा; ७७. पुलकाख्यरत्नपरीक्षा; ७८. रुधिराक्षाख्यरत्नपरीक्षा; ७९. स्फटिकपरीक्षा; ८०. विद्रुमरत्नपरीक्षा; ८१. तीर्थों का माहात्म्य; ८२. गया की उत्पत्ति और माहात्म्य; ८३. गयायात्राविधि; ८४. गयामाहात्म्य में पिशाच-वणिक्संवाद; ८५. गयापिण्डदानमन्त्र; ८६. गया में प्रेतशिला में पिण्डदान का माहात्म्य; ८७. चतुर्दशमन्वन्तरस्थ मनु-मनुपुत्र-सप्तर्षि-देवगणादि का वर्णन; ८८. रुचिनामकप्रजापति-पितृसंवाद; ८९. पितृस्तोत्र से भार्यालाभ, वरलाभ और रुचिस्तवपठनफल; ९०. रुचि से रौच्य मनु का जन्म; ९१. स्वायम्भुवादिमनुध्यातहरिध्यानविधि; ९२. मूर्तहरिध्यानविधि; ९३. याज्ञवल्क्योक्त स्त्रीसंस्कारवर्णन; ९४. ब्राह्मणादि का उपनयन का काल और ब्रह्मचारिधर्म; ९५. विवाहविधि और गृहस्थधर्म; ९६. सङ्करजातियों के नाम और गृहस्थकर्म; ९७. सौवर्णादि पात्रों की शुद्धि के प्रकार; ९८. पात्राऽपात्रविचार और दानधर्म; ९९. अमावास्यादि काल और श्राद्धविधि; १००. विनायकपूजा; १०१. ग्रहशान्ति; १०२. वानप्रस्थाश्रमधर्म; १०३. सन्न्यासिधर्म; १०४. कर्मविपाक; १०५. प्रायश्चित्त; १०६. आशौच और

आपद्वृत्ति; १०७. पराशरोक्त वर्णाश्रमधर्म; १०८. बृहस्पतिप्रोक्त नीतिमार्ग; १०९. सुखवृद्धिकर नीति; ११०. सुरगुरुप्रोक्त नीति; १११. नीतिसार; ११२. भृत्य-स्वामिगुणदोष; ११३. नीतिसार; ११४. नीतिसार; ११५. शौनकोक्तनीतिसार; ११६. तिथिव्रत; ११७. अनङ्गत्रयोदशीव्रत; ११८. अखण्डद्वादशीव्रत; ११९. अगस्त्यार्घविधि; १२०. रम्भातृतीयाव्रत; १२१. चातुर्मास्यव्रत; १२२. मासोपवासव्रत; १२३. भीष्मपञ्चकव्रत; १२४. माघकृष्णचतुर्दशी में शिवरात्रीव्रत और उस का माहात्म्य; १२५. एकादशीव्रत; १२६. नारायणपूजन; १२७. भीमैकादशी; १२८. व्रत-परिभाषा; १२९. प्रतिपदादिव्रत; १३०. षष्ठी-सप्तमीव्रत; १३१. दूर्वाष्टमी, कृष्णाष्टमी, श्रीकृष्णजन्मोत्सव; १३२. बुधाष्टमीव्रत; १३३. अशोकाष्टमी, महानवमी; १३४. महाकौशिकमन्त्र, ब्रह्माण्यादिमातृकापूजन; १३५. वीरनवमी, दमनकनवमी, दिग्दशमी, ऋष्येकादशी; १३६. श्रवणद्वादशीव्रत; १३७. कामत्रयोदशी में अशोकपूजाविधि, शिवचतुर्दश्यष्टमीव्रत, धामव्रत, वारव्रत, द्वादशर्क्षाच्युतपूजन, तिथियों में देवताओं का पूजन, प्रतिपदादि में धनदादिपूजा; १३८. ब्रह्मादिजन्मवर्णन, सूर्यवंशवर्णन; १३९. सोमवंश; १४०. पूरुवंश; १४१. सोमवंश में भावी नृपों का वर्णन; १४२. दशावतारचरित, पातिव्रत्यमाहात्म्य; १४३. रामचरित; १४४. कृष्णचरित; १४५. भारतेतिहास; १४६. रोगनिदान; १४७. ज्वरनिदानादि; १४८. रक्तपित्तनिदानादि; १४९. कासनिदानादि; १५०. श्वासनिदानादि; १५१. हिक्कानिदानादि; १५२. राजयक्ष्मनिदानादि; १५३. अरोचकनिदानादि; १५४. हृद्रोग और अम्लपित्त का निदानादि; १५५. मदात्ययादि-निदानादि; १५६. अर्शोरोगनिदानादि; १५७. अतीसारनिदानादि; १५८. मूत्राघात-मूत्रकृच्छ्रनिदानादि; १५९. प्रमेहनिदानादि; १६०. विद्रधिरोग और गुल्मरोग के निदानादि; १६१. उदररोगनिदानादि; १६२. पाण्डुरोग-शोथरोगनिदानादि; १६३. विसर्पनिदानादि; १६४. कुष्ठनिदानादि; १६५. क्रिमिरोगनिदानादि; १६६. वातव्याधिनिदानादि; १६७. वातरक्तनिदानादि; १६८. वात-पित्त-कफ-प्रकोप-हेत्वादि-निरूपणयुक्त वैद्यशास्त्रीय पदार्थों का निरूपण; १६९. द्रव्यगुणों का प्रतिपादन; १७०. ज्वर-ज्वरातीसार-ग्रहणी-गुल्म-अर्शः-पाण्डुरोग-रक्तपित्त-क्षय-कास-हिक्कादि रोगों के औषध; १७१. नाडीव्रणादिरोगचिकित्सा; १७२. स्त्रीरोगचिकित्सा; १७३. मधुरगणादि-द्रव्यगणों का और उन के कार्यों का प्रतिपादन; १७४. ब्राह्मीघृत-नारायणतैलादिकथन; १७५. हरिद्वारा रुद्र को उपदिष्ट ज्वरहरयोग; १७६. भृङ्गराजतैलादिकथन; १७७. नेत्ररोगहराञ्जनादिप्रतिपादन; १७८. स्त्री-पुरुषवशीकरण-धूप-लेप-तिलकादि-निरूपण; १७९. कर्णस्रावहरयोगादिकथन; १८०. स्त्रीवशीकरणधूपादिनिरूपण; १८१. चक्षुःशूलहर-लोमशातनादिद्रव्य; १८२. परिणामशूलहरक्वाथादि; १८३. ज्वरहरमन्त्र-धूपादि; १८४. अदृश्यकरणधूपादि; १८५. धनविद्याप्रदगणेशमन्त्रादि; १८६. गण्डमालाहरलेपादि; १८७. सर्व-

रोगहरयोगादि; १८८. नाडीव्रणापहयोगादि; १८९. स्त्रीगुल्महरयोगादि; १९०. विविध अञ्जन-उद्वर्तन-धूपों का कथन; १९१. नानाविध विषहरयोग; १९२. पाण्डुरोगहरमोदकादि; १९३. मेधाजनकचूर्णादि; १९४. सर्वरोगहरवैष्णवकवच; १९५. विद्याधराधिपत्वकरी विद्या; १९६. विष्णुधर्मविद्या; १९७. नागवशीकरणी गारुडविद्या, १९८. नित्यक्लिन्नत्रिपुरा विद्या; १९९. शुभाऽशुभ-प्रश्नोत्तरज्ञान के लिए यन्त्रोद्धार; २००. दक्षिण-वाम-नासापुटचारिवायुफल; २०१. अश्वायुर्वेद, गजायुर्वेद; २०२. योनिशूलहरयोग-जराहरणयोग-वाजीकरणयोगादि; २०३. गवायुर्वेद; २०४. वनौषधियों के और अन्य औषधद्रव्य के नाम और पर्याय, मानपरिभाषा; २०५. व्याकरण के नियम; २०६. संहितादिविषयक व्याकरणनियमों के उदाहरण; २०७. छन्दःशास्त्रनियमविशेष; २०८. आर्यादिलक्षण; २०९. समवृत्तों का विवरण; २१०. अर्धसमवृत्तों का विवरण; २११. विषमवृत्तों का विवरण; २१२. प्रस्तारादिलक्षण; २१३. वर्णाश्रमधर्म; २१४. स्नानविधि, सन्ध्योपासन, जपयज्ञ; २१५. तर्पण; २१६. होमादिवैश्वदेवकर्म; २१७. सन्ध्याविधि; २१८. पार्वणश्राद्धविधि; २१९. नित्यश्राद्ध, वृद्धिश्राद्ध; २२०. सपिण्डीकरण; २२१. धर्मसार; २२२. प्रायश्चित्त, शुच्यशुचिव्यवस्था, आशौचव्यवस्था, अगम्यागमनप्रायश्चित्तादि, कृच्छ्रादिलक्षण; २२३. विष्णुतोषणकर्म, प्रलय, युग और युगधर्म, वेदविभजन, पुराणलक्षण, पुराणोपपुराणगणना, अष्टादश विद्या, कलिधर्म; २२४. नैमित्तिक और प्राकृतिक प्रलय; २२५. आत्यन्तिक-प्रलय, संसारचक्र, कर्मविपाक, नरकागतलक्षण, स्वर्गागतलक्षण; २२६. साङ्ग-महायोगकथन; २२७. विष्णुभक्ति; २२८. विष्णुप्रणाममहिमा; २२९. पुरुषसूक्त से विष्णुपूजन का माहात्म्य; २३०. विष्णुमाहात्म्य; २३१. नृसिंहस्तुति; २३२. ज्ञानामृतवर्णन; २३३. मृत्युप्रशमन-मृत्यष्टक-स्तोत्र; २३४. चक्रधरस्तोत्र; २३५. ब्रह्मज्ञानप्रतिपादन; २३६. आत्मज्ञानस्वरूप; २३७. भगवद्गीतासार; २३८. अष्टाङ्गयोगव्यवस्था; २३९. ब्रह्मगीतासार; २४०. ब्रह्मगीतासार; २४१. गरुडपुराण-पठन-श्रवणफल, गरुडस्तुति।

गरुडपुराण के उत्तरखण्ड तृतीयांश ब्रह्मकाण्ड के विषय

गरुडपुराण के उत्तरखण्ड द्वितीयांश धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प की विस्तृत विषयानुक्रमणिका ऊपर ही दी जा चुकी है। अतः उस को यहाँ देना अनावश्यक है। अब हम यहां गरुडपुराण के उत्तरखण्ड तृतीयांश ब्रह्मकाण्ड के प्रतिपाद्य विषयों को सङ्क्षेप में प्रस्तुत करते

हैं। यह काण्ड केवल वेङ्कटेश्वर-संस्करण में ही है, अन्य संस्करणों में नहीं। इस खण्ड में २९ अध्याय हैं। विषयों के पहले अङ्कित सङ्ख्या अध्यायों की है। गरुडपुराण उत्तरखण्ड तृतीयांश ब्रह्मकाण्ड के प्रमुख विषय अधोलिखित हैं—

१. शौनक का सिद्धाश्रम में स्थित सूत के सन्निधि में जाना, पुराणों में हरि के ही नमन के विधान के विषय में प्रश्न और पुराणों का सात्त्विक-राजस-तामस-विभाग तथा देवताओं का नम्याऽनम्यविभाग; २. सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्म-विष्णु-महेश का तारतम्य; ३. गुणत्रय-सृष्ट्यादि; ४. ब्रह्मदेहादिनिरूपण; ५. अहंतत्त्वाभिमानिदेवोत्पत्यादि; ६. तत्त्वाभिमानिलक्ष्म्यादि-देवताकृत-विष्णुस्तुत्यादि; ७. शचीप्रभृति-देवताकृत-विष्णुस्तुत्यादि; ८. विष्वक्सेनकृतभगवत्स्तववर्णनादि; ९. आजानादिदेवकृतविष्णुस्तुत्यादि; १०. सप्तावरणवेष्टित शतकोटि-योजनविस्तृत-ब्रह्माण्डसृष्ट्यादि; ११. ब्रह्माजी के अज्ञान के हेतु को दिखाकर स्वोत्पादक के अन्वेषण के लिए ब्रह्माजी का पद्मनाडीप्रवेशादि; १२. विष्णुवचन से तपस्या में लगे ब्रह्माजी के आगे भगवान् का आविर्भाव और ब्रह्मकृत भगवत्स्तुति; १३. महत्तत्त्वात्मक ब्रह्मा से देवताओं की उत्पत्ति; १४. वैश्वदेव कर्म के लिए और भगवन्नैवेद्य के लिए उचित अन्नों का निरूपण, १५. विष्णु के मुख्य अवतार; १६. लक्ष्म्यवतारनिरूपण; १७. ब्रह्मशाप से भारती का द्रौपद्यादिदेहप्राप्ति; १८. सूत्रनामक वायुरूप गरुड की उत्पत्ति, शेषावतार इत्यादि; १९. हव्यवाहकन्या (नग्नजित्कन्या) नीला की कृष्णप्राप्ति के लिए तपस्या और विवाह; २०. भद्रा-मित्रविन्दा-विवाहादि, २१. कालिन्दी-स्वीकारादि; २२. स्त्रीपुरुषसुलक्षणवर्णन, लक्ष्मणाविवाह; २३. जाम्बवत्याख्यायिका, सोमपुत्रीतपस्योपक्रम; २४. वेङ्कटाचल में सोमपुत्री-जैगीषव्यमुनिसमागम, वेङ्कटाचलयात्राक्रमादि; २५. सोमपुत्री का जैगीषव्य के साथ में वेङ्कटाचलाऽऽरोहण, वेङ्कटेशदर्शन, भगवत्स्तुति; २६. स्वामिपुष्करिण्यादितीर्थ, नृसिंहादिदेवता, शालग्रामलक्षण, शालग्रामदानफलादि; २७. जैगीषव्यमुनिकृत तीर्थवर्णन, सोमपुत्री की तपस्या देहत्याग तथा जाम्बवती के रूप में जन्म और कृष्णद्वारा विवाह, वेङ्कटाचलयात्राविधि; २८. रुद्रपत्न्यादिदेवता-तारतम्य, विष्णुभिन्न देवताओं को छोडकर विष्णु का उपास्यत्व; २९. धर्मनिर्वचन, भागीरथ्यादितारतम्य, विष्णुसन्तोषकर-धर्मनिरूपण, भगवत्-तत्त्व-निरूपण।

गरुडपुराण-उत्तरखण्ड द्वितीयांश के धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प का विशेष परिशीलन

वैसे तो सम्पूर्ण गरुडपुराण को किसी भी समय में पढा जा सकता है और सुना जा सकता है (गरुड.२।४९।१३२) और अन्य पुराणों की तरह ही गरुडपुराण भी पवित्र पुण्यजनक और मङ्गलदायक है। तथापि गरुडपुराण के उत्तरखण्ड द्वितीयांश के धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प का श्राद्ध के अवसर में और विशेषतः और्ध्वदेहिक कर्म (अन्त्येष्टि) के अवसर में पाठ और श्रवण करने की परम्परा भारतवर्ष में यत्रतत्र चली आ रही है। इस लिए इस भाग का विशेष महत्त्व है। अत एव यहाँ इस भाग का विशेष परिशीलन करके संस्करण-प्रकाशन किया जा रहा है।

ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि गरुडपुराण के उत्तरखण्ड द्वितीयांश के धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में जीवानन्दसंस्करण में ३५ अध्याय, वङ्गवासी-संस्करण में ४५ अध्याय और वेङ्कटेश्वरसंस्करण में ४९ अध्याय हैं। गरुडपुराण नाम से हिन्दीभाषाटीकासहित एक ३४ अध्याय का ग्रन्थ भी मुद्रित मिलता है। इस ग्रन्थ को व्रजवल्लभ-हरिप्रसाद-नामक व्यक्तिद्वारा मुम्बई में मुम्बईवैभवनामक छापाखाने में संवत् १९८० (सन्१९२४) पौषकृष्ण चतुर्दशी इन्दुवासर में मुद्रित बताया गया है। विषय प्रायः समान ही होनेपर भी इस ग्रन्थ का पाठ उपर्युक्त अन्य प्रेतकल्पों के पाठों से विलक्षण ही दिखाई देता है। इस ग्रन्थ का आजकल उतना प्रचार भी नहीं देखा जाता है। किन्तु एक और गरुडपुराणनामक प्रेतकल्पग्रन्थ लोक में आजकल बहुप्रचारित है। इस में १६ अध्याय और श्रवणफलनामक सत्रहवां अध्याय वा परिशिष्ट भी देखे जाते हैं। १९४५ संवत् में भगीरथात्मज हरिप्रसाद से मुम्बयी में निर्णयसागरमुद्रणयन्त्रालय में मुद्रापित संस्कृतटीकासहित संस्करण में और १९४८ संवत् (१८१३ शके) में मुम्बयी में श्रीकृष्णदासात्मज गङ्गाविष्णु और खेमराज से स्वकीय वेङ्कटेश्वरमुद्रणालय में मुद्रित संस्करण में भी अन्त्य में "स्वकृतश्लोकाः" कहे गए १३ पद्य भी पाए जाते हैं; किन्तु इस ग्रन्थ के आधुनिक संस्करणों में लोकप्रतारक अथवा अज्ञ आलसी पण्डित-सम्पादकों ने और प्रकाशकों ने इन १३ पद्यों को उडा दिया है। न जाने क्यों, गीताप्रेस ने भी संवत् २०६० के उस के इस ग्रन्थ के संस्करण में ऐसा ही किया है। स्यात् अध्यात्मरामायण जैसे ग्रन्थ से भी अपनी रुचि से कुछ अंश हटादेने वाले (द्रष्टव्य— गीताप्रेस का अध्यात्मरामायण, २०६० का संस्करण, अयोध्याकाण्ड ६।२७-२८, और वेङ्कटेश्वरप्रेस इत्यादि के संस्करण) उन लोगों को ऐसा करना कोई अनुचित बात नहीं लगती है। लखनऊ के नवलकिशोरप्रेस के १५ अध्यायों के गरुडपुराण के संस्करण का भी रामशङ्कर भट्टाचार्य ने उल्लेख किया है। हम को उस को देखने का अवसर नहीं मिला है।

वङ्गवासीसंस्करण के प्रेतकल्प का वेङ्कटेश्वरसंस्करण के मूल गरुडपुराण के ४९ अध्याय वाले प्रेतकल्प से प्रायः साम्य ही दिखाई देता है। कहीं कहीं पर एक दो श्लोक वङ्गवासी-संस्करण में अधिक हैं, कुछ श्लोकों को हमने प्रस्तुत संस्करण में कोष्ठ में दिया भी है; कहीं कहींपर अनेक श्लोक न्यून भी हैं। वङ्गवासी-संस्करण में कहीं कहीं अधिक सङ्गत पाठ हैं तो कहीं कहीं असङ्गत पाठ भी हैं। उत्तरखण्ड-धर्मकाण्ड-प्रेतकल्प के प्रथम-द्वितीय-तृतीय अध्यायों में दोनों संस्करणों में प्रायः समानता ही है। वेङ्कटेश्वरसंस्करण के धर्मकाण्ड-प्रेतकल्प के बत्तीसवें अध्याय का कुछ भाग वङ्गवासीसंस्करण के प्रेतकल्प के चतुर्थ अध्याय में आया है। वेङ्कटेश्वरसंस्करण के प्रेतकल्प का चतुर्थ अध्याय वङ्गवासीसंस्करण के प्रेतकल्प के पञ्चम अध्याय में है। वेङ्कटेश्वरसंस्करण का पञ्चम अध्याय वङ्गवासीसंस्करण में षष्ठ अध्याय में है, यही प्रकार षोडश अध्याय तक चलता है। वेङ्कटेश्वरसंस्करण के प्रेतकल्प का सप्तदश अध्याय वङ्गवासीसंस्करण के प्रेतकल्प में नहीं दिखाई देता है। वेङ्कटेश्वरसस्करण के अष्टादश अध्याय के प्रारम्भ के कुछ श्लोक वङ्गवासीसंस्करण में नहीं है; तथापि अन्य अंशों में दोनों संस्करणों के अष्टादश अध्याय में समानता ही है। उन्नीसवें अध्याय से इकतीसवें अध्याय तक दोनों संस्करणों में प्रायः समानता ही है। बत्तीसवें अध्याय में वेङ्कटेश्वरसंस्करण में १३० श्लोक हैं, किन्तु वङ्गवासीसंस्करण में केवल ७६ श्लोक हैं, अन्य श्लोक प्रायः वङ्गवासी-संस्करण में चतुर्थ अध्याय में मिलते हैं। तेत्तीसवें, चौतीसवें पैंतीसवें और छत्तीसवें अध्यायों में दोनों संस्करणों में प्रायः समानता है। वेङ्कटेश्वरसंस्करण के सैंतीसवाँ अडतीसवाँ और उनतालीसवाँ ये तीन अध्याय वङ्गवासीसंस्करण में सैंतीसवें अध्याय में समाहित हैं। वेङ्कटेश्वरसंस्करण के चालीसवाँ, एकतालीसवाँ बयालीसवाँ, तैंतालीसवाँ, चौवालीसवाँ और पैंतालीसवाँ अध्याय वङ्गवासीसंस्करण में क्रमशः अठतीसवें, उनतालीसवें, चालीसवें, बयालीसवें और तैंतालीसवें अध्याय में हैं। वेङ्कटेश्वरसंस्करण के छियालीसवाँ और सैंतालीसवाँ अध्याय वङ्गवासीसंस्करण के चौवालीसवें अध्याय में और वेङ्कटेश्वरसंस्करण के अडतालीसवाँ और उनचासवाँ अध्याय वङ्गवासीसंस्करण के पैंतालीसवें अध्याय में समाहित हैं। इस प्रकार प्रतिपाद्य विषयों की दृष्टि से तो वेङ्कटेश्वरसंस्करण के उत्तरखण्ड-धर्मकाण्ड-प्रेतकल्प में और बङ्गवासीसंस्करण के उत्तरखण्ड-प्रेतकल्प में अत्यधिक मात्रा में समानता ही है।

जीवानन्दसंस्करण का प्रेतकल्प भी वेङ्कटेश्वरसंस्करण के उक्त प्रेतकल्प से प्रायः गतार्थ होता है। जीवानन्दसंस्करण के प्रेतकल्प के प्रथम दो अध्यायों के समाप्तिवाक्यों में "सारोद्धारे" ऐसा उल्लेख पाया जाता है। इस से इस की भी सारोद्धारात्मकता स्पष्ट होती है। इस में

भी सारोद्धारकर्ता की ओर से उल्लेख्य आवाप (प्रक्षेप) ज्यादा न होने पर भी उल्लेख्य उद्वाप (निरसन) तो किया गया ही प्रतीत होता है। इस में वेङ्कटेश्वरसंस्करण के उत्तरखण्ड-धर्मकाण्ड-प्रेतकल्प के पहले १० अध्यायों के विषय प्रायः छोडदिए गए हैं। वेङ्कटेश्वरसंस्करण के ग्यारहवें अध्याय के **"मानुषत्वं लभेत् कस्मात्"** इत्यादि विषय प्रायः इस में पहले अध्याय में आए हैं, बारहवें अध्याय के विषय दूसरे अध्याय में, तेरहवें अध्याय के विषय तीसरे अध्याय में, एवंरीत्या संक्षिप्त रूप में वेङ्कटेश्वरसंस्करण के विषय जीवानन्दसंस्करण में आए हैं, वेङ्कटेश्वरसंस्करण के प्रेतकल्प के चौबीसवें अध्याय के विषय जीवानन्दसंस्करण में तेरहवें और चौदहवें अध्यायों में, पच्चीसवें अध्याय के विषय पन्ध्रहवें अध्याय में, एवंरीत्या संक्षेप में विषय आए हैं; वेङ्कटेश्वरसंस्करण के प्रेतकल्प के बयांलीसवें अध्याय के विषय जीवानन्द-संस्करण में इकतीसवें अध्याय में, वेङ्कटेश्वरसंस्करण के तैंतालीसवें और पैंतालीसवें अध्यायों के विषय जीवानन्दसंस्करण में बत्तीसवें और तेत्तीसवें अध्यायों में, छियालीसवें अध्याय के विषय चौतीसवें अध्याय में और सैंतालीसवें अध्याय का विषय पैतीसवें अध्याय में आए हैं। वेङ्कटेश्वरसंस्करण के अडतालीसवें और उनचासवें अध्याय के विषय जीवानन्दसंस्करण में नहीं हैं। इस प्रकार जीवानन्दसंस्करण में वेङ्कटेश्वरसंस्करण के ४९ वें अध्याय में प्राप्त मोक्षोपायवर्णन और गरुडपुराणश्रवण का विधि और फल भी नहीं पाए जाते हैं। और भी प्रश्न-प्रपञ्च, कर्मविपाक का विस्तृत वर्णन इत्यादि कुछ कुछ विषय हटाए गए हैं। तथापि इस संस्करण में अनेक स्थल में महत्त्वपूर्ण और विशेष सुसङ्गत पाठ मिलते हैं। उन का भी प्रस्तुत संस्करण में पर्याप्त उपयोग किया गया है। ३५ अध्याय का प्रेतकल्प हस्तलिखित रूप में नेपाल के राष्ट्रिय अभिलेखालय (काठमाण्डु) में भी उपलब्ध है। किन्तु उस के पाठ में, अध्यायविभाजन में और अध्यायों के श्लोकों की सङ्ख्या में जहाँकहीं कुछ अधिक ही भेद भी दिखाई देता है। ४५ अध्याय का प्रेतकल्प भी हस्तलिखित रूप में नेपाल के राष्ट्रिय अभिलेखालय में उपलब्ध है। इन उत्तरखण्ड की पोथियों में पूर्वखण्ड नहीं है। तथापि समाप्तिवाक्य में उत्तरखण्ड का उल्लेख दोनों पोथियों में और गरुड-पुराण का अष्टादशसाहस्रसंहिता के रूप में निर्देश ३५ अध्याय वाली पोथी में मिलता है।

गरुडपुराण के नाम से लोक में बहुप्रचारित १६ अध्यायों के प्रेतकल्प में तो आवाप (प्रक्षेप) और उद्वाप (निरसन) का काम बहुत किया गया है।

अब यहां वेङ्कटेश्वरसंस्करण के ४९ अध्याय वाले प्रेतकल्प में वर्तमान और १६ अध्याय के गरुडपुराण के नाम से प्रचारित प्रेतकल्प में अनुपलभ्यमान विषयों का सङ्क्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है—

१. देहान्तरप्राप्ति के समय के विषय में प्रश्न और उस का उत्तर (१।६८; १०।७२-८९)।

२. ब्रह्ममीमांसासूत्र में **"अपि च सप्त"** (३।१।१५) कह कर प्रतिपादित और वैदिक परम्परा में प्रसिद्ध प्रमुख सात नरकों का उल्लेख (३।२-४८)।

३. अञ्जलिदान में अञ्जलिसङ्ख्या के और अञ्जलिदानवाक्य के विभिन्न वेदशाखासूत्र के अनुकूल विकल्प (४।७५-७७, ५।२१-२६, १५।६१-६२)।

४. शोकापवदन (४।८१-८५)।

५. क्रीतलब्धाशनविधान (५।३,४)।

६. वृषोत्सर्ग में चतुर्वत्सतरीपक्षादि विकल्प (६।१७, १४।२५,३६)।

७. वृषाऽलाभ में अनुकल्प (५।४४-४६)।

८. वसिष्ठ-वीरवाहनसंवाद (६।४-२७); विश्वम्भरवैश्य-लोमशसंवाद (६।५०-५९)।

९. तीर्थविवरण (६।५९-७६)।

१०. नारदकथा (६।८४-११०)।

११. पञ्चप्रेतोपाख्यान (७।२-१०२)।

१२. भीष्मयुधिष्ठिरसंवाद (२२।१८-७७)।

इत्यादि अनेक महत्त्वपूर्ण विषय १६ अध्यायों के गरुडपुराण में नहीं मिलते हैं।

अब यहां वेङ्कटेश्वरसंस्करण के ४९ अध्याय वाले प्रेतकल्प में अवर्तमान और गरुडपुराण के नाम से इस समय लोक में बहुप्रचारित १६ अध्याय के प्रेतकल्प में वर्तमान विषयों का सङ्क्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है—

१. भक्तिमार्ग में विशेष जोड देना (१।९-११, १५।९१-९५)।

२. मरणोत्तर तीन अथवा दो मुहूर्तों में यमलोकप्राप्ति और फिर मनुष्यलोक में आगमन (१।४०-४१)।

३. शाल्मलीवृक्ष में उल्लम्बन और ताडन (३।३४-३८)।

४. यम-चित्रगुप्तमन्त्रजपविधान (३।४२)।

५. शिव-शिवा-हरि-सूर्य-गणेशपूजोल्लेख (४।३६)।

६. आश्रित ब्राह्मण को छोडकर अन्य ब्राह्मण को दान देने की निन्दा (५।४२)।

७. गर्भस्तुति (६।१६-२३)।

८. हरिवंशश्रवणादि से पुत्रोत्पादन का उल्लेख (७।८)।

९. हरिनाम-माहात्म्यातिशय, अजामिलोदाहरण, "अच्युतं केशवम्" इत्यादि अर्वाचीन-कविकृत स्तोत्र का उल्लेख इत्यादि (८।१२-२१)।

१०. राज्य में कृत पापों के लिए भूमिदान ही देने की व्यवस्था (८।५०-५५)।

११. अन्तधेनु-रुद्रधेनु-ऋणधेनु-मोक्षधेनुदानविधान (८।५६)।

१२. तुलसीमहिमातिशय (९।६-९); गङ्गामाहात्म्यादि (९।२३-३१)।

१३. भागवतश्रवणविधान (९।३१-३२)।

१४. स्नुषादि से शव की प्रदक्षिणा और पूजा का विधान (१०।११)।

१५. शवदाह में मस्तकस्फोटन का विधान (१०।५६)।

१६. प्रेतपिण्डदान में कौशद्विजस्थापन-पूजन का विधान (११।२७)।

१७. जलाञ्जलिसङ्ख्या में और वाक्य में एकपक्षी व्यवस्था (११।३०)।

१८. नवम दिन में बहिःस्नान करके प्रमदाओं को अग्रतः करके लाजादूर्वा लेकर प्रेतगृह में जाना (११।३४-३६)।

१९. "कलौ न पलपैतृकम्" का प्रतिपादन (११।३७)।

२०. दश दिन तक प्रतिदिन ब्राह्मण को मिष्टान्न से भोजन (११।३९)।

२१. कलि में सभी वर्णों के लिए १० दिन के आशौच की व्यवस्था (१३।१९)।

२२. सपिण्डनोत्तर ग्रह-देवी-विनायकपूजन-रक्षाबन्धन-मन्त्रपूताऽक्षतदानादिव्यवस्था (१३।५४,५५)।

२३. सपिण्डनोत्तर क्रियावस्त्रत्याग-व्यवस्था (१३।५८)।

२४. कौशिकात्मज-भारद्वाजात्मजोदाहरण और "सप्तव्याधाः" इत्यादि श्लोकों का उल्लेख (१३।११६-११९)।

२५. षट्चक्रचिन्तन अजपाजपविधि (१५।४-५, ६६-९०)।

२६. माता-पिताओं के मृत्यु में प्रेतकल्पश्रवण की अत्यावश्यकता (श्रवणफल, श्लो. ७-१०) इत्यादि।

उक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि गरुडपुराण के नाम से बहुप्रचारित श्रवणफलपरिशिष्टसहित १६ अध्यायों का प्रेतकल्प मूल गरुडपुराण के प्रेतकल्प का सारोद्धार नहोकर एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है। पुराणसंहिताएं व्यासमुनिकृत मानी जाती हैं। किन्तु यह १६ अध्यायों का ग्रन्थ अर्वाचीन-पुरुषकृत है। इस के अधिकांश श्लोक मूल गरुडपुराण के प्रेतकल्प में नहीं मिलते हैं। ऐसी बातों को समझने में सहायता करने के लिए भी हम नें मूल गरुडपुराण के ४९ अध्याय वाले प्रेतकल्प के पद्यों की अर्धकानुक्रमणिका दी है। इस से जीवानन्दसंस्करण के और अन्य प्रेतकल्पों के पद्यों की भी परख हो सकेगी। १६ अध्यायों का गरुडपुराणनामक प्रेतकल्प भारत के राजस्थान के झुञ्झुणु-नामक

नगर के राजा शार्दूल के आश्रित पुराणवक्ता पण्डित सुखलाल मिश्र के पौत्र और हरिनारायण के पुत्र नौनिधिराम का बनाया हुआ ग्रन्थ है। इस में उन्हों ने नानाशास्त्रों से नाना विषय समाविष्ट किए हैं। यह बात उन के **"इत्येवं सर्वशास्त्राणां सारोद्धारो निरूपितः। मया ते षोडशाध्यायैः किं भूयः श्रोतुमिच्छासि"** (१६।११७) इस पद्य से भी स्पष्ट होता है। इस ग्रन्थ का अर्वाचीन-पण्डित-नौनिधिरामकृतत्व १९४५ संवत् में भगीरथात्मज हरिप्रसाद से मुम्बयी में निर्णयसागर मुद्रणालय में मुद्रापित और १९४८ संवत् में वेङ्कटेश्वरमुद्रायन्त्र में मुद्रित इस ग्रन्थ के संस्कृतटीकासहित संस्करण के अन्त्य में उपलब्ध अधोलिखित पद्यों से स्पष्ट होता है—

आसीद् वक्ता पुराणस्य *श्रीशार्दूलमहीपतेः*। झुञ्झुणूनगरस्याऽपि मिश्रः *श्रीसुखलालजी* ॥१॥
तस्य *श्रीहरिनारायणाऽऽत्मजस्* तत्सुतेन तु। मया *नौनिधिरामेण* कृतोऽयं *सारसङ्ग्रहः* ॥२॥
प्राचीनैर् यत्कृतः पूर्वं गारुडः सारसङ्ग्रहः। स तु नो बुद्धिदौर्बल्याद् ज्ञातस् तस्मादयं कृतः ॥३॥
पुनरुक्तिं परित्यज्य क्रमेणाऽयं मया कृतः। बालानां सुखबोधाय न तु पाण्डित्यगर्वतः ॥४॥
अत्राऽप्रमाणं यत् किञ्चित् प्रमादाल् लिखितं मया। विद्वद्भिः सुविचार्यैव *शोधनीयोऽनसूयिभिः* ॥५॥
सारोद्धारो मया मूलैर् बहुग्रन्थैर् यथा कृतः। तथैवाऽनेकटीकाभिरुद्धृतः सारसङ्ग्रहः ॥६॥
महाखेदान् मया तत्र यथास्थानं नियोजितः। प्राज्ञं विना प्रयासं मे को ज्ञास्यति विमूढधीः ॥७॥
विद्वानेव हि जानाति विद्वज्जनपरिश्रमम्। न हि वन्ध्या विजानाति गुर्वीं प्रसववेदनाम् ॥८॥
ये पूर्वसङ्ग्रहे मूढा नैव जानन्ति योग्यताम्। ते कथं हि भविष्यन्ति हर्षिताः पठनेऽस्य च ॥९॥
सारोद्धारमिमं मिश्राः पठन्तु न पठन्तु वा। मया तु स्वीयबोधाय कृतमेतन् *न सर्वशः* ॥१०॥
मङ्गलं भगवान् विष्णुर् मङ्गलं गरुडध्वजः। मङ्गलं पुण्डरीकाक्षो *मङ्गलायतनो* हरिः ॥११॥
लाभस् तेषां जयस् तेषां कुतस् तेषां पराजयः। येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥१२॥

राजानः परिपालयन्तु वसुधां धर्मे स्थिताः सर्वदा पृथ्वी कामदुघा भवत्वविरलं वर्षन्तु काले घनाः ।
ईर्ष्यामुज्झतु दुर्जनः परगुणेष्वासज्जतां सज्जनः सत्काव्यामृतवर्षिणी कविमुखे वाणी चिरं नन्दतु ॥१३॥

॥ इति श्रीगरुडपुराणे स्वकृतश्लोकाः समाप्ताः ॥

इस गरुडपुराणनाम से प्रचारित १६ अध्याय वाले प्रेतकल्प में उपलभ्यमान आश्रित ब्राह्मण को छोडकर अन्य ब्राह्मण को दान देने की निन्दा करने वाला श्लोक **"स्वमाश्रितं परित्यज्य वेदशास्त्रपरायणम्। अन्येभ्यो दीयते दानं कथ्यतेऽयमतिक्रमः"** (५।४२), और राजा को भूमिदान देने में अत्यधिक प्रेरणा करने वाले श्लोक **"न व्रतेभ्यो न तीर्थेभ्यो नाऽन्यदानाद् विनश्यति। राज्ये कृतं महापापं भूमिदानाद् विलीयते"** (८।५०), **"यो भूत्वा भूमिपो भूमिं नो ददाति द्विजातये। स नाऽऽप्नोति कुटीं ग्रामे दरिद्री स्याद् भवेभवे॥ अदानाद् भूमिदानस्य भूपतित्वाभिमानिनः। निवसेन् नरके यावच् छेषो धारयते धराम्"** (८।५३,५४), तथा मूल गरुडपुराण में अप्रतिपादित अन्तधेनु-रुद्रधेनु-ऋणधेनु-मोक्षधेनु-दान की कर्तव्यता दिखाने वाला श्लोक **"ततोऽन्तधेनुर् दातव्या रुद्रधेनुं प्रदापयेत्। ऋणधेनुं ततो दत्त्वा मोक्षधेनुं प्रदापयेत्"** (८।५६) इत्यादि नौनिधिराम के अपने कुल के आश्रयदाता राजा से अधिक से अधिक दान प्राप्त करने का लोभ व्यक्त कर रहे प्रतीत होते हैं। इस प्रसङ्ग में जैमिनीय-धर्ममीमांसा का लोभाधिकरण (१।३।३) स्मरणीय है। लोभमूलक स्मृति वैदिक धर्म में अप्रमाण मानी जाती है।

प्रेतकल्पपाठों का ग्राह्यत्वाऽग्राह्यत्व

वैदिक परम्परा में धर्म-मोक्ष का यथार्थज्ञान वेद से और ऋषि-मुनिप्रणीत वेदमूलक स्मृति-पुराण से ही होने की बात मानी जाती है। अन्य विद्वानों के ग्रन्थ श्रुति-स्मृति-पुराणों के तात्पर्यज्ञान में केवल सहायक ही माने जाते हैं। इस विषय में वैदिकधर्ममीमांसकशिरोमणि कुमारिलभट्ट के "धर्मव्यवस्था में ऋषिमुनियों के वाक्य ही प्रमाण होते हैं, अन्य कवियों के वाक्यों से धर्मार्थ ज्ञान नहीं हो सकता है" इत्यादि बताने वाला अधोलिखित कथन स्मरणीय है– **"तथा च प्रायश्चित्तादिदानकाले यो वाक्यमात्मीयमन्यकविकृतं वा श्लोकं सूत्रं वोच्चार्य मानवादिप्रायश्चित्तं दद्यान् न कश्चिद् धर्मार्थं प्रतिपद्येत – वेदेनैवाऽभ्यनुज्ञाता येषामेव प्रवक्तृता। नित्यानामभिधेयानां मन्वन्तरयुगादिषु। तेषां**

विपरिवर्तेषु कुर्वतां धर्मसंहिताः। वचनानि प्रमाणानि नाऽन्येषामिति निश्चयः" (तन्त्रवार्तिक १।३।७; आनन्दाश्रमसंस्करण, पृ.१२२)। इस वैदिक मान्यता की दृष्टि से नौनिधिरामकृत १६ अध्यायों का गरुडपुराणनामक प्रेतकल्पग्रन्थ सर्वथा अग्राह्य ठहरता है। तथापि अल्पश्रुत भोले-भाले ग्रामीण पण्डित-पुरोहित लोग ही नहीं, अनेक धर्मशास्त्रग्रन्थ के सम्पादक और धर्मकृत्यपद्धतियों के रचयिता काशी के पुराने प्रसिद्ध पण्डित नित्यानन्द पन्त पर्वतीय जैसे व्यक्ति भी नौनिधिरामकृत ग्रन्थ के वचन को धर्मकृत्य में प्रमाण के रूप में ग्राह्य मान कर उस के वचन को प्रस्तुत करते हुए दिखाई देते हैं (द्रष्टव्य- अन्त्यकर्मदीपक, १९५२ क्रैस्ताब्द., पृ.३५, टि.१,३; पृ.३६, टि.१,२ इत्यादि)। आधुनिक अनुसन्धाता लोग भी ऐसा ही करते हुए पाए जाते हैं (द्रष्टव्य- श्राद्धविमर्शः, उमाशङ्करत्रिपाठी, अनुसन्धानाधिकारिचरः, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः, वाराणसी, १९८१ क्रैस्ताब्दः, पृ.२७,४५,४७)। ऐसी बात सर्वथा वैदिक मान्यताविरुद्ध और अविवेकमूलक ही दिखाई देती है। गोरखपुर के गीताप्रेस ने भी इस १६ अध्याय के गरुडपुराण-सारोद्धार ग्रन्थको अनार्ष और सङ्कलनात्मक ग्रन्थ मानकर भी २०५९ संवत् से इस का जो विशेष प्रचार करना प्रारम्भ किया है वह कार्य भी शोच्य ही है।

जीवानन्दसंस्करण के गरुडपुराण का उत्तरखण्डरूप प्रेतकल्प भी सारोद्धाररूप ही प्रतीत होता है। इस के आरम्भ के दो अध्यायों के समाप्तिवाक्यों में **"सारोद्धारे"** ऐसा उल्लेख भी मिलता है। वेङ्कटेश्वरसंस्करण के ४९ अध्याय वाले प्रेतकल्प में और इस प्रेतकल्प में सामान्यतया सामञ्जस्य ही है, तथापि वेङ्कटेश्वरसंस्करण के प्रेतकल्प के कुछ विषय जीवानन्दसंस्करण में अप्राप्त हैं। उदाहरणार्थं वेङ्कटेश्वर-संस्करण के प्रेतकल्प के प्रश्नप्रपञ्च, कर्मविपाक का विशेष विस्तृत वर्णन इत्यादि तथा ४९ वें अध्याय में प्राप्त मोक्षोपायवर्णन और गरुडपुराणश्रवण का विधि और फल जीवानन्दसंस्करण के प्रेतकल्प में नहीं हैं। अत एव इस को भी अपूर्ण और अग्राह्य ही मानना पड रहा है। उपर्युक्त ३४ अध्याय वाले गरुडपुराणनामक प्रेतकल्प के विषय में भी यही बात लागू होती है।

वङ्गवासीसंस्करण के प्रेतकल्प में ४५ अध्याय रहने की और उस में वेङ्कटेश्वरसंस्करण के प्रेतकल्प के प्रायः सभी विषय आने की बात ज्वालाप्रसादमिश्र के अष्टादशपुराणदर्पण में उपलब्ध (पृ.३९३-३९४) ४५ अध्याय वाले प्रेतकल्प के विषयों के विवरण से भी सामान्यतया अवगत हो सकती है। तथापि उस में अध्यायविभाजन में ४ अध्याय कम दिखाई देने से, अनेक स्थलों में अनेक श्लोक न्यून

होने से, श्रवणोत्पत्तिवर्णनादि कुछ विषय भी न्यून होने से और अध्यायसमाप्तिवाक्यों में कहीं-कहीं मध्य में और अन्त में "सारोद्धारे" ऐसा उल्लेख होने से भी उस को भी प्राथमिकता देना युक्तिसङ्गत प्रतीत नहीं होता है।

वेङ्कटेश्वरसंस्करण का ४९ अध्याय वाला प्रेतकल्प जीवानन्दसंस्करण के और वङ्गवासीसंस्करण के प्रेतकल्पों से सामान्यतया बडा होने से और "सर्वं पदं हस्तिपदे निमग्नम्" इस न्याय से बडे में छोटों के अन्तर्भाव सम्भव होने से इन तीन प्रेतकल्पों में भी वेङ्कटेश्वरसंस्करण के ४९ अध्याय वाले प्रेतकल्प को ही विशेष ग्राह्य मानना समुचित लगता है। इस में कुछ प्रक्षेप हो सकते हैं, कुछ पुनरुक्तियां भी हैं, तथापि उन पुनरुक्तियों को उपनिषदों के विषयों की पुनरुक्ति की तरह ही अदोष माना जा सकता है। इस विषय में वङ्गवासीसंस्करण के सम्पादक भट्टपल्लीनिवासी तर्करत्न पञ्चाननदेवशर्मा की उक्त संस्करण में प्राप्त विज्ञप्ति में आए हुए अधोलिखित पद्य भी मननीय हैं—

प्रेतपञ्चकवृत्तान्तो बभ्रुवाहनचेष्टितम्। पर्णमानुषदाहादि पौनरुक्त्यस्य गोचरः ॥
बोध्यसंस्कारदार्ढ्यार्थं विहिताः पुनरुक्तयः। स्थूणानिखननन्यायात् ततो दोषो न कश्चन ॥

आस्थाय कापिलतनुं हरिरेकमेव वाच्यं पुनःपुनरवोचत साङ्ख्यशास्त्रे।
संस्कारदार्ढ्यमुपपादयितुं महान्तः शिक्षार्थिनामनुसरन्ति हि रीतिमेनाम् ॥

दक्षिणापथभवेन केन चित् पौनरुक्त्यपरिहारपूर्वकम्।
गारुडो विरचितस् तु सङ्ग्रहः प्रेतखण्डमिति मुद्रितोऽबुधैः ॥

एनां विपत्तिमपनोदयितुं प्रयत्नादाहृत्य दुर्लभपुरातनपुस्तकानि।
सम्यग् विलोक्य कृतपाठविचारचारु मुद्राङ्कितं सकलमेव पुराणमेतत् ॥
श्रीवीरसिंहविदुषा विदुषा च धीरानन्देन शोधितमिदं बहुयत्नपूर्वम्।
प्रीतिं परां यदि विधातुमलं बुधानां तद् भाविनी सफलताऽस्मदतिश्रमस्य ॥

तीन खण्ड वाले मूल गरुडपुराण के वेङ्कटेश्वरसंस्करण के सम्पादक ने भी इन पुनरुक्तियों को अदोष ही माना है और टिप्पणी में उपनिषदों के विषयों की पुनरुक्तियों की तरह इन पुनरुक्तियों की भी अदोषता स्पष्ट की है। पण्डित ज्वालाप्रसादमिश्रवर्णित गरुडपुराण के विषयों के अवलोकन से भी विद्वज्जनों को वङ्गवासीसंस्करण में भी उक्त पुनरुक्तियां स्थित होने की बात अवगत हो सकती है। अतः हमारी दृष्टि में उक्त प्रमुख तीन प्रेतकल्प पाठों में वेङ्कटेश्वरसंस्करण के ४९ अध्याय वाले पाठ को ही विशेष ग्राह्य और आधार मानने में कोई अनौचित्य नहीं दिखाई देता है।

गरुडपुराण-प्रेतकल्प में प्रतिपादित और्ध्वदेहिक कृत्यों की ग्राह्यताऽग्राह्यता

वेदशाखाविशेष के अध्ययन के मुख्य अधिकारी, शुद्धकुलीन, स्वधर्मपरिपालनशील, मुक्ति प्राप्त करने वाले वा ब्रह्मलोक को अथवा पितृलोक (स्वर्गलोक) को जाने वाले ब्राह्मणों के लिए और उन के वैदिककर्माधिकारी, शुद्धकुलीन, स्वधर्मपालनशील, देवयानमार्ग से ब्रह्मलोक अथवा पितृयाणमार्ग से पितृलोक अथवा स्वर्गलोक जाने वाले शिष्य-यजमानों के लिए सम्बद्ध श्रौतसूत्र-गृह्यसूत्र-परिशिष्ट-पितृमेधसूत्रों में विहित और्ध्वदेहिक कृत्य ही पर्याप्त होते हैं। पुराणों में प्रतिपादित कृत्य आवश्यक नहीं हैं। माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेदशाखाध्यायियों के प्रेतकृत्य-श्राद्धादि के विषय में शतपथब्राह्मण-कात्यायनश्रौतसूत्र-पारस्करगृह्यसूत्र-कात्यायनश्राद्धकल्पसूत्र-कातीयमन्त्रश्रान्तिहरसूत्रादि मूल ग्रन्थों के आधार में प्रस्तुत सम्पादक ने **"माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेदशाखाध्यायि-निरग्निकद्विज-सदाचारकर्म-संस्कारकर्म-श्राद्धकर्मादि-वैदिकमन्त्रसङ्ग्रहः"** (संवत् २०५२) नाम के ग्रन्थ में और उस की टिप्पणियों में स्पष्ट और विस्तृत प्रतिपादन किया है। तत्तद्-वेदशाखाध्यायिकुल में उत्पन्न द्विजाति के लिए श्रौत-स्मार्त सभी कर्म मुख्य रूप में अपनी शाखा के मन्त्र-ब्राह्मण-श्रौतसूत्र-गृह्यसूत्र-परिशिष्ट-धर्मसूत्रादि ग्रन्थों में बताई गई रीति से ही सम्पन्न करने की शास्त्रीय व्यवस्था भी प्रस्तुत सम्पादक ने **सन्ध्योपासनपद्धति** (चौखम्बा-विद्याभवन, वाराणसी, २००० क्रै.) की भूमिका में **"सन्ध्योपासनं कतमस्य ग्रन्थस्य विधानमनुसृत्य कर्तव्यम्"** इस प्रकरण में (पृ.७०-७५) सविवेचन सप्रमाण स्पष्ट किया है। गरुडपुराण में दश ही पिण्ड देने की बात को और दश ही पिण्डों से देह बनने की

बात को देखकर सामवेदियों को केवल दश ही पिण्ड नहीं देने चाहिए, उन के पितृमेधसूत्र के अनुसार बीस ही पिण्ड देने चाहिए और माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेदशाखाध्यायी अग्निहोत्री के निधन में उस शाखा के अध्येताओं को तीन दिन तक तीन ही पिण्ड देकर चतुर्थ दिन में ही विषम सङ्ख्या के अनेक ब्राह्मणों को भोजन करा के अस्थिसञ्चयनश्राद्ध करना चाहिए। उस के बाद एकादश दिन में जाकर ही एकोद्दिष्टश्राद्ध करना चाहिए। यह बात कात्यायनश्रौतसूत्र-पारस्करगृह्यसूत्र-निगमपरिशिष्टादि मूल ग्रन्थों से और कृत्यकल्पतरु के शुद्धिकाण्ड के और श्राद्धकाण्ड के अवलोकन से भी स्पष्ट होती है। ऐसे विषयों में ध्यान देना चाहिए। वेदशाखाविशेषाध्यायियों के लिए सामान्यतया पुराण केवल स्वस्वशाखोक्त कृत्यों के किसी किसी अंश के अथवा पक्ष के व्याख्या-प्ररोचना के रूप में ही उपयोगी होते हैं, किसी कृत्यविशेष के विशेष विधायक के रूप में नहीं। तथापि स्वधर्मशिथिल अथवा पापाचारयुक्त जनों के लिए और वेदाधिकाररहित आस्तिक जनों के लिए पुराणविहित और्ध्वदेहिक कृत्यविशेष भी आवश्यक और उपयोगी अथवा विशेष उपकारक भी हो सकते हैं। इसी लिए वैदिक और्ध्वदेहिक कृत्यों से पौराणिक और्ध्वदेहिक कृत्यों की भिन्नता के तुलनात्मक आकलन में सहयोग पहुँचाने के हेतु गरुडपुराण-प्रेतकल्प में प्रतिपादित और्ध्वदेहिक प्रमुख कृत्यों का सङ्क्षेप में नीचे प्रतिपादन किया जा रहा है—

१. अपने मृत्यु को अवश्यम्भावी जान कर और अपने वंश का उच्छेद होने पर अपना नरकवास नियत होने की बात को समझकर अपने वंशधर और अपने और्ध्वदेहिक कर्म करने वाले पुत्र को जन्म देना और उस को सुशिक्षित करना (१८।२८, २५।३१-४५, २९।४, ३०।१९-२३, ३४।९, ३५।१३,१४; २।४, १३।१८, २१।३२, ४८।५)।

२. अपने मृत्यु को निकटवर्ती जानकर ज्ञात-अज्ञात पातकों से शुद्धि के लिए यथाशक्ति प्रत्याम्नाय से भी षडब्दादिकृच्छ्र करने का निश्चय करना (४।१,१२)।

३. प्रायश्चित्त के लिए ब्राह्मणों से अथवा ब्राह्मण से यथाविधि अनुमति प्राप्त करके वपनपूर्वक भस्मादि से दशविध स्नान (भस्मस्नान, गोमयस्नान, मृत्तिकास्नान, जलस्नान, गोमूत्रस्नान, गोमयस्नान, गोदुग्धस्नान, गोदधिस्नान, गोघृतस्नान, कुशोदकस्नान) करना (४।२)।

४. यथाशक्ति प्रत्याम्नाय से भी षडब्दादिकृच्छ्र करना (४।१,२-५,१२,१७-१८; २२।६४)।

५. प्रायश्चित्ताङ्ग के रूप में दश दान (गो-भूमि-तिल-स्वर्ण-घृत-वस्त्र-धान्य-गुड-रजत-लवणों का दान) करना (४।३-४,१२)।

६. वैतरणी नदी को पार करने के लिए गोदान (वैतरणीदान) करना (४।५-६,१३; ५।१२३-१२७, ३०।४८-५३, ४७।१-३६)।

७. अष्टमहादान (तिल-लोह-हिरण्य-कार्पास-लवण-सप्तधान्य-भूमि-गायों का दान) करना (१।३०-३१, ४।७-८,१३; १९।४-६, ३०।१-१७,२४-२८)।

८. पददान (छत्र-उपानत्-वस्त्र-अङ्गुलीय-कमण्डलु-आसन-भाजन-भोज्यपदार्थ इत्यादि का दान) करना (४।८-९,१४; १८।२४; ३१।१०-१४)।

९. तिलपात्र का दान करना (४।१०,१३)।

१०. घृतपात्र का दान करना (४।१०,१३)।

११. उपकरणों से सम्पन्न शय्या का दान करना (४।१०,१३)।

१२. अपने अभीष्ट वस्तुओं का दान करना (४।१०)।

१३. अश्वदान करना (४।११, ४।२७-२९, ३१।१६)।

१४. रथदान करना (४।११, ४।२९-३०)।

१५. महिषीदान (भैंस का दान) करना (४।११, ४।३०, ३१।१७)।

१६. व्यजनदान (पङ्खे का दान) करना (४।११, ४।३२)।

१७. वस्त्र का दान करना (४।११)।

१८. अपनी शक्ति और इच्छा से गृह, जल, अन्न, वर्षवृत्ति, हाथी, नाऊ इत्यादि का दान करना (४।१२, ४।३३, ३८।२७-२८; ४।३५; ४।३६; ३८।२३; ३१।१६)।

१९. वेदपारग कन्यार्थी अकिञ्चन ब्राह्मण का विवाह कराना (३८।२४-२५)।

२०. ब्राह्मणकन्या का उपनयनस्थानापन्न विवाह कराना (३८।३५)।

२१. वापी, कूप, तडाग, आराम, देवतालय इत्यादि का बनाना अथवा जीर्णोद्धार करना (३४।४, ३८।२६,३६,३७)।

२२. पुत्रादि के अभाव में आत्मश्राद्ध (जीवच्-छ्राद्ध) करना (८।१०-३३, १३।९-१०, २७।४१-५३)।

२३. यथाधिकार सन्न्यास लेना (४।३७, ३६।९, ३८।६-७)।

२४. अनशनव्रत लेकर प्राणत्याग करना (४।३९, ३६।१२-१६, ३६।३७, ३८।१७)।

२५. तीर्थ में मरण के लिए तीर्थ को चलना, तीर्थसेवन करना (४।३८, ३६।१३-१९,२३-२४, ३८।१९,२०)।

२६. मरण के लिए अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्तिका, द्वारवती इन सात मोक्षदायिका पुरियों में से किसी एक का भावपूर्ण आश्रय लेना (३८।४-६; ४९।११३-११४)।

२७. हरिक्षेत्र, कुरुक्षेत्र, भृगुक्षेत्र, प्रभास, श्रीस्थल, त्रिपुष्कर, अर्बुद, भूतेश्वर इन क्षेत्रों में से किसी एक का भावपूर्ण आश्रय लेना (३८।२१,२२)।

२८. ज्ञान-वैराग्य के बल से देह में स्पृहा छोडकर घर से निकलकर तीर्थस्नान करके ब्रह्मात्मचिन्तन करना (४९।१०१-१०८)।

२९. अन्त्यकाल अत्यन्त सन्निकट होने पर भूमि का गोमय से उपलेपन करके उस में मण्डल बनाना (२।८,१०,११,२९; १५।६, २९।७,२९; २।१३, ३२।९७)।

३०. मण्डल में तिलविकरण करना (२।६,१६-१८; १५।७, २९।६,१५; ३२।९७, ३४।२९)।

३१. मण्डल में दक्षिणाग्र कुश विछाना (१।२८, २।१९-२३, २९।१८-२९, ३०।१२, ३२।८६,९६; ३४।३०)।

३२. मण्डल का दर्भजल से प्रोक्षण करना (२।२६-२८, २९।२६)।

३३. मण्डल में आतुर को पूर्व वा उत्तर शिर करके सुलाने के लिए दर्भों के ऊपर पवित्र लघुतूलीबिस्तरा लगाकर तूली और शिरोधानी (तकिया) के बीच में भी दर्भ रखकर बिस्तरा ठीक करना (३२।८७-८८, ३२।९८, २।९)।

३४. आसन्नमरण आतुर को गोमूत्र-गोमय-मृत्तिका-तीर्थोदक से नहलाना और शुद्धवस्त्रद्वय पहनाना (३२।८५-८६)।

३५. आतुर को भूमिगत रूप में उक्त विस्तरे में पूर्व वा उत्तर शिर करके सुलाना (३२।८७-८८, ३२।९८)।

३६. यदि पहले प्रायश्चित्त-दशदान-वैतरणीदान-अष्टमहादानादि नहीं हुआ है तो आसन्नमरण अर्धोन्मीलितलोचन आतुर से भी प्रायश्चित्त-दशदान-वैतरणीदान और यथाशक्ति अन्य दान इत्यादि कराना (४।१५६-१५८, ३०।१९,२०; ३०।२९)।

३७. आतुर के मुख में पञ्चरत्न अथवा सुवर्णखण्ड रखना (१।२८, २।६, १५।७, २९।६, ३२।९९, ३४।२९)।

३८ आतुर के हाथों में दर्भ रखना (२।२७)।

३९. मण्डल में शालग्रामशिला और द्वारवतीशिला स्थापित करना (१५।७, ३२।८९, ३८।९-१०)।

४०. मण्डल में तुलसी का स्थापन करना (२।२२-२५, १५।७, ३२।८८-१००; ३८।११)।

४१. मण्डल में घृतदीप का जलाना (३२।८९)।

४२. विष्णु के १० अवतारों का स्मरण करना (३०।३७-३८)।

४३. मण्डल में विष्णु का पूजन करना (३०।३९-४७, ३२।९०,१०२)।

४४. विष्णु का ध्यान करना (३२।९१)।

४५. अष्टाक्षर मन्त्र का अथवा द्वादशाक्षर मन्त्र का अथवा हरिशब्द का अथवा कृष्णशब्द का जप करना (३०।३९, ३२।८९,१०१, ३८।७-९)।

४६. (त्रैवर्णिक आतुर को) सेतुसामसूक्तादि सामवेद के सूक्तों को सुनाना (१५।८)।

४७. (त्रैवर्णिक आतुर का) विष्णुसूक्त का अथवा पुरुषसूक्त का पाठ अथवा श्रवण करना (२८।८, ३२।९३,१०३)।

४८. आतुर के पुत्र-पौत्रों का आतुर के सामने बैठना (१।३०)।

४९. बन्धु-बान्धव मित्र अमित्र सभी का क्षमापन करना (१।३०),

५०. आतुर के प्राण जाने में अस्वाभाविक विलम्ब और कष्ट दिखाई देने पर लवणदान करना (१।३०)।

५१. आतुर के मृत्यु होने पर सभी गाँव के बन्धुबान्धवों का मिलकर शवनिर्हण की व्यवस्था करना (३५।४३-४६)।

५२. पुत्रादि और्ध्वदेहिक कर्म के कर्ता का (मुण्डनपूर्वक) स्नान करना और शुद्धवस्त्रद्वय का परिधान करना (४।४१)।

५३. यदि कर्ता पुत्रादि अनाचारी अथवा पापाचारी हैं और पहले उस का प्रायश्चित्त नहीं हुआ है तो उस का षडब्दकृच्छ्रादि यथाशक्ति प्रायश्चित्त करना और मृत व्यक्ति भी अनाचारी अथवा पापाचारी था और उस का भी यदि पहले प्रायश्चित्त नहीं हुआ है तो उस के लिए भी यथाशक्ति षडब्दकृच्छ्रादि प्रायश्चित्त करना (४।१५६-१५८)।

५४. (यदि अन्त्यकाल में आतुर का स्नान और शुद्धवस्त्रपरिधापन नहीं हुआ है, अथवा वह सब होने पर भी वह फिर मलादिदूषित हुआ है तो) आतुर का मृत्यु होने पर शव का शुद्ध जल से प्रक्षालन करना और अहतवस्त्रद्वय-परिधापन करना (४।४१,४२)।

५५. शव का चन्दन-कुङ्कुमादि से प्रोक्षण करना (४।४२, १५।११)।

५६. शव के प्राणायतनों में सुवर्णशलाकाओं का रखना (१५।८-१०)।

५७. शव के हाथों में और गले में तुलसी रखना (१५।१०)।

५८. शव को वस्त्रयुग्म देना (१५।११)।

५९. शव का पुष्पमालापरिधापन करना (१५।११)।

६०. मृत्युस्थान में परिभाषित रूप में पिण्ड देना (श्राद्ध करना, प्रथम [मलिन] श्राद्धषोडशक का प्रारम्भ) (४।४२-.४९, ५।३०-३१, १५।३०-३४; ३४।११०; ३५।३३-३४)।

६१. मृतिस्थान में प्रथम नवश्राद्ध करना (५।६७-७५)।

६२. माषान्नयुत जलपूरितघटदान करना (३६।१०-११)।

६३. शिबिका में शव के कर-चरणों का बन्धन करना (३५।४१)।

६४. द्वारदेश में श्राद्ध करना (४।४२-४९, ५।३०-३१, १५।३०-३९, ३५।३३-३४)।

६५. पौत्रद्वारा दहनाग्नि निष्पन्न करके शवनिर्हारकों को देना (१।३२)।

६६. शव का प्रमुख द्वार से न निकाल कर अन्य द्वार से निकालना (१५।११)।

६७. तिल-दर्भ-घृत और लकडी लेकर शव को ढोकर यमगाथा वा यमसूक्त पढते हुए दक्षिण की ओर अरण्य को चलना (१।३२,३४; ४।५२. १५।१२-१३; २८।१४)।

६८. चत्वर में श्राद्ध करना (४।४२-४९, ४।५५, ५।३०-३१, ५।६८, १५।३०-३९, ३५।३३-३४)।

६९. मार्ग में विश्रामस्थल में श्राद्ध करना (४।४२-४९, ४।५५, ५।३०-३१, ५।६८, १५।३०-३९, ३५।३३-३४)।

७०. मार्ग में विश्रामस्थल में द्वितीय विषमश्राद्ध करना (५।६७-७५)।

७१. अरण्य में पहुँच कर चिताभूमि के समीप में शव को दक्षिण की ओर शिर करके शनैः रखना (४।५५)।

७२. चिताभूमि बनाना (१५।१३)।

७३. चिताभूमि में श्राद्ध करना (४।४२-४९, ४।५६, ५।३०-३१, १५।३०-३९, ३५।३३-३४)।

७४. चितास्थान में तृतीय विषमश्राद्ध करना (५।६७-७५)।

७५. चिताभूमि में पूर्वपश्चिमायत वेदी बनाना (४।५८, ४।६२, १५।४३)।

७६. चिताभूमि में पूर्व भाग में दक्षिण की ओर अग्नि का यथाविधि उपसमाधान करना (४।६२, १५।४२, १५।४८)।

७७. उपसमाहित अग्नि के समीप में चिता में आरोपित शव का शिर उत्तर की ओर जैसे पडे उस प्रकार से श्रीखण्ड-तुलसी-काष्ठ-पलाश इत्यादि उत्तम लकडी से पूर्वपश्चिमायत चिता बनाना (१५।१३-१४)।

७८. प्रेतवस्त्र का द्विधा करना (४।५८)।

७९. प्रेतवस्त्र के आधे भाग का श्मशानवासियों के लिए भूमि में फेंकना (४।५९)।

८०. शव का आज्य (घी) से अभ्यञ्जन करना (१।३३, ४।६०)।

८१. श्राद्ध करके प्रेत के हाथ में पिण्ड देना (४।५९)।

८२. चितापूर्वभाग में अग्नि का प्रज्वालन (१५।४८)।

८३. पुष्पाक्षतों से क्रव्यादाग्नि का पूजन (४।६४)।

८४. क्रव्यादाग्नि की प्रार्थना करना (४।६४-६५)।

८५. लोमभ्यः स्वाहा इत्यादि मन्त्रों से होम करना (१५।४६)।

८६. यमादि को आहुति देना (१५।४७-४८)।

८७. शव का अग्नि में आहुति के रूप में डालना (४।६५, १५।४५)।

८८. शव अर्धदग्ध होने पर तिल-घृत की आहुति देना (४।६५-६७, १५।४६)।

८९. मृतक के पुत्रादि का गाढ रोदन करना (४।६८, १५।५१)।

९०. दाहानन्तर चिता का दूध से सेचन करना (१५।५७)।

९१. अस्थिसञ्चयन करना (१।४१, ४।६८, ५।१५, १५।५१, ३४।१४)।

९२. दाहार्तिशमन के लिए प्रेतपिण्ड देना (४।६९, १५।५२)।

९३. कनिष्ठ-कनिष्ठपूर्वक शवनिर्हारकों का चिता की प्रदक्षिणा करके चिता की ओर न देखते हुए और सूक्त जपते हुए स्नान के लिए जाना (४।६९-७०)।

९४. जल के समीप में जाकर परिहित वस्त्रों का प्रक्षालन करना (४।७०, १५।५३)।

९५. प्रक्षालित वस्त्र का परिधान करके सम्बन्धि से उदककर्म के लिए **"उदकं करिष्यामः"** कह कर अनुमति मागना (४।७१)।

९६. सम्बन्धी का उदककर्म के लिए **"कुरुध्वम्"** कह कर अनुमति देना (४।७२)।

९७. एकवस्त्र प्राचीनावीती मुक्तशिख दक्षिणाभिमुख शवनिर्हारकों का मन्त्रपूर्वक जलावगाहन (स्नान) करना (१।३५, ४।७३, १५।५३)।

९८. तट में आकर शिखा बाँधकर यथाविधि सतिल जलाञ्जलि देना (४।७४-७७, ५।२१-२६, १५।५३, १५।६१-६२, ३४।११,१४-१६)।

९९. करतालिका देना, विष्णुः विष्णुः कहना, और प्रेतगुणों का कीर्तन करना (१५।५४)।

१००. उदकाञ्जलिदान के वाद नौ दिन तक दन्तधावन का त्याग करना (४।७८, ३४।२१)।

१०१. वस्त्रपरिधान और स्नानवस्त्र का सकृत् पीडन (४।७९)।

१०२. शुद्ध भूमि में बैठे हुए शवनिर्हारकों का शोकापनोदन करना (४।७९-८५)।

१०३. शोकापनोदन का अनुमोदन करके बालपुरस्सर शवनिर्हारकों का गांव को जाना (४।८६)।

१०४. शवनिर्हारकों का गृहद्वार में निम्बपत्रदशन, आचमन, अग्नि-जल-गोमय-गौरसर्षप-दूर्वाप्रवाल-वृषभों का और अन्य मङ्गल्य पदार्थों का स्पर्श करके गृहप्रवेश करना (१।३५, ४।८६-८८, १५।५५-५६, ३४।२३-२४)।

१०५. दश दिन तक घर के बाहर श्मशान में वा अन्य तीर्थ में प्रेतशब्दप्रयोगपूर्वक गर्तपिण्डदान करना (१।४३-४४, ४।१६७, ५।१७,२०,२८; ५।७८-८०; १५।६०,६३,६४,६८,७३,७५; २८।२३, ३४।३७)।

१०६. तीन दिन तक आकाश में मृन्मय पात्र में जल और दूध का प्रेत के लिए "अत्र स्नाहि" "पिबाऽत्र" कहकर रखना (५।१३-१४, १५।५९, ३४।१२,१३)।

१०७. एक अहोरात्र अथवा तीन अहोरात्र तक सपिण्डों का उपवास करना (१।३६, ५।७)।

१०८. मृतपुत्रादि सपिण्डों का दश दिन तक क्रीत वा लब्ध भोज्य पदार्थ खाना, पृथक् सोना, क्षारलवणरहित अन्न खाना, मांस नखाना, अधःशयन करना, परस्पर-स्पर्श न करना, दानाऽध्ययनवर्जन करना (५।३-७, ३४।२५)।

१०९. अधोमुख, मलिन, दीन, भोगवर्जित, अङ्गसंवाहन-केशमार्जनरहित मृतपुत्रादि सपिण्डों का मृन्मयपात्र में अथवा पत्रपात्री में भोजन करना (५।६-७, ३४।२५)।

११०. (यद्यपि गरुडपुराण को सदा सुनने योग्य (४९।१३२) और पापनाशक तथा स्वर्गप्रद (४९।१३६) माना गया है, तथापि इस के सुनने से वैराग्य जागरित होकर चित्तशुद्धि होने का (४९।१२६) और संयमनी (यमपुरी) के दुःख से मुक्ति मिलने का सिद्धान्त होने से (४९।१२५) पुत्रादि के गरुडपुराणश्रवणपुण्य से प्रेत को भी संयमनीदुःख से मुक्ति मिलने की भावना से गरुडपुराण प्रेतकल्प का सुनना)।

१११. पञ्चम, सप्तम, अष्टम और नवम दिन में नवश्राद्ध करना (५।६७-७५, ३४।३६)।

११२. शव को स्कन्ध में ढोकर जाने वालों के घर में दशम दिन में तैलोद्वर्तनक भेजना (१।४२)।

११३. दशम दिन में मृतव्यक्ति से अल्पवयस्कों का मुण्डन करना (५।२९)।

११४. दशम दिन में सपिण्डों का मलस्नान करना (१।४२)।

११५. दशम दिन में नवश्राद्ध करना (५।६७-७५, ३४।३६)।

११६. दशम पिण्ड के दान के बाद रात्रिशेष में शुचित्व के लिए ब्राह्मणादि सपिण्डों का जलादिस्पर्श करना (५।१९, ५।२८-२९)।

११७. दशम दिन की रात्रि में एकादशाहश्राद्ध के लिए ब्राह्मणों को न्यौता देना (५।१९)।

११८. एकादशाह में मध्यम-श्राद्धषोडशी करना (५।३७-३८; ५।७०; ३५।३५-३६)।

११९. एकादश दिन में वृषोत्सर्ग करना (१।४४, ५।२९, ६।१, ६।१४, ६।११५-, १३।४,७,८,१४-१६; १४।३५-,५२-; १८।८, २२।१०, ४१।१-१३)।

१२०. सधवा स्त्री के मरण में एकादशाह में वृषोत्सर्ग न करके दूध देने वाली सवत्सा गाय का दान करना (६।१३१)

१२१. प्रेत के उद्देश्य से एकादश दिन में शय्या, धेनु इत्यादि का दान करना (५।४७, ३१।२३)।

१२२. एकादश दिन में पददान करना (३१।१३)।

१२३. एकादश दिन में मृन्मय जलपात्र का दान करना (३१।२०)।

१२४. जीवितावस्था में प्रेत के जो प्रिय और उपभुक्त वस्तु थे उन वस्तुओं का एकादशाह में दान करना (५।४६, ३४।८३-८९)।

१२५. एकादश वा द्वादश दिन में आद्यश्राद्ध करना (५।५१, १८।८, ४१।१२)।

१२६. एकादशाह में नवश्राद्ध करना (५।६७-७५)।

१२७. एकादशाह से वर्ष पर्यन्त प्रतिदिन सान्नोदकुम्भ का दान करना (३४।६०-६२)।

१२८. एकादशाह में बहुब्राह्मणभोजन कराना (५।४७, ५।१५२)।

१२९. यदि एकादशाह में आद्यश्राद्ध नहीं हुआ तो द्वादशाह में आद्यश्राद्ध करना (५।५१, ४१।१३)।

१३०. द्वादशाह में बहुब्राह्मणभोजन कराना (५।४७, ५।१५२)।

१३१. द्वादशाह में शय्यादान करना (१८।१०)।

१३२. तृतीय श्राद्धषोडशी करना (५।४८-५३, ५।७०, ३५।३७)।

१३३. वर्ष पूर्ण होने पर अथवा अर्धवर्ष पूर्ण होने पर अथवा त्रिपक्ष में अथवा अभ्युदय प्राप्त होने पर अथवा द्वादशाह में सपिण्डीकरण करना (१।५२, ५।५३-५४, २६।१०,१३, ३४।११०-११२), ३४।१४५-१४६, ३५।१-९)।

१३४. त्रयोदश दिन में श्रवणाकर्म (श्रवणपूजा) करना (५।८१,१४६, [१६।४९-५३], १७।२१-२६)।

१३५. त्रयोदश दिन में पददान करना (१।४५, १८।११)।

१३६. वर्षपर्यन्त प्रतिमास मासादि में श्राद्ध करना (५।५१, ४१।१३)।

१३७. एक वा तीन दिन से न्यून मास में, त्रिपक्ष में, एक वा तीन दिन से न्यून छ महीने में और वर्ष में श्राद्ध करना (५।५२-५३)।

१३८. संवत्सर पूर्ण होने से पहले सपिण्डीकरण होने पर भी वर्षपर्यन्त प्रतिदिन सान्नोदकुम्भ का दान और प्रत्येक मास में मासादि में मासिक श्राद्ध करना (१।४५-४६, ५।६४, १८।९, २६।३४-३६, ६४-६७; २८।२४-२५, ३१।२२, ३७।१-७,१२-१६; ४१।१२)।

१३९. वर्षपर्यन्त घर के बाहर प्रतिदिन साम को दीपदान करना (१।३८, ५।७९, १८।५-,७; २८।१८, ३१।५-९)।

१४०. पुत्र का जीवनपर्यन्त दिवङ्गत पिता-माता का वार्षिक श्राद्ध करना (३४।१०)।

उपर्युक्त सामान्य और्ध्वदेहिक कृत्य के अतिरिक्त अधोलिखित विशेष और्ध्वदेहिक कृत्य भी गरुडपुराण के उत्तरखण्ड के धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में प्रतिपादित हैं—

१. और्ध्वदेहिक कर्म करने वाले उत्तराधिकारी के अभाव में और सन्न्यास के प्रसङ्ग में कर्तव्य आत्मश्राद्ध (जीवच्-छ्राद्ध) का विधान (८।९-३३, १३।९-१०)।

२. सङ्गृहीतापुत्रद्वारा किये जाने वाले श्राद्ध का विशेष विधान (२५।३६-४१)।

३. बालमरण में और्ध्वदेहिक कृत्य में विशेष (२५।३४-४६, २६।४-२५)।

४. रजस्वला के मरण में दाहकृत्य में विशेष (४।१७१-१७५)।

५. सूतिका के मरण में दाहकृत्य में विशेष (४।१७२-१७४)।

६. देशान्तर में मरने की भ्रान्ति से प्रतिकृतिदाह करके और्ध्वदेहिक कृत्य करनेपर मनुष्य जीवित रूप में लौटनेपर कर्तव्य का विधान (४।१६८-१७०)।

७. दुर्मरण में विधान (१।६९, ४।१०२-, ५।३९, १३।९-११, ४०।१-६५, ४४।१-२९)।

८. पञ्चक में मृत्यु होने पर विधान (१।६९, ४।१७५-१८५, ३५।१७-२८)।

९. नारायणबलि का विधान (४।११३-१३२, २१।२२-२४, २७।४१-५३, ३५।१३-१६, ४०।११-४३, ४४।६-२१)।

१०. प्रेतघटदान का विधान (२७।५२,५४-६०; २८।१-२)।

११. प्रेतपीडन के परिहार के लिए तर्पणादि का विधान (२३।१३-१५)।

१२. प्रवास में मरने पर अस्थिनाश की अवस्था में विधान (४।१०२-)।

१३. विभिन्न कारणों से आवश्यक होने पर प्रतिकृति-(पुत्तलक)-दाह का विधान (४।१३४-१६८,१७१; ३४।१२६, ४०।४४-६४)।

१४. नागदंश से मरण में विधान (४।१३२-१३४; ४४।२४-२९)।

प्रस्तुत संस्करण की विशेषता

श्राद्ध के समय में और अन्त्येष्टि के समय में पाठ अथवा श्रवण के लिए गरुडपुराण उत्तरखण्ड द्वितीयांश के धर्मकाण्डरूप प्रेतकल्प का शुद्ध और पृथक् पुस्तक के अभाव के निराकरण के लिए यह संस्करण प्रस्तुत किया जा रहा है। उपलभ्यमान १६ अध्यायों का और ३४ अध्यायों का सटीक गरुडपुराणग्रन्थ अथवा भाषाटीकासहित गरुडपुराणग्रन्थ मौलिक और मुनिकृत नहीं हैं। इस स्थिति में अन्य पुस्तक की दुर्लभता से उन अमुनिकृत ग्रन्थों के प्रयोग की बाध्यता से असमञ्जस में पडे हुए आस्तिक सज्जन गुरु-पुरोहित-पण्डितों को राहत देने की दृष्टि से ही मुख्यतया यह संस्करण प्रस्तुत किया जा रहा है। इसी लिए इस भूमिका में सरल और अल्पश्रुत आस्तिक सज्जन ग्रामीण गुरु-पुरोहित-पण्डितों के और आस्तिक सज्जन सामान्य शिक्षित जनों के उपयोग के लिए सामान्यतया पुराणों के विषय में और विशेषतया गरुडपुराण के विषय में तथा गरुडपुराण के प्रेतकल्प के पाठों और संस्करणों के विषय में आवश्यक जानकारी भी दी गई है। प्रेतकल्प में

प्रतिपादित और्ध्वदेहिक कृत्यों के सम्यक् आकलन के लिए उन का विस्तृत ही विवरण भी दिया गया है। इस से भारतवर्ष के उत्तरभाग में अत्यधिक सङ्ख्या में निवास करने वाले माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेदशाखाध्यायी विद्वज्जनों को भी स्वशाखा के शतपथब्राह्मण-श्रौतसूत्र-गृह्यसूत्र-परिशिष्टों में प्रतिपादित और्ध्वदेहिक कृत्यों से वैष्णव सम्प्रदाय के विशेष तत्त्वों से युक्त इस गरुडपुराणप्रेतकल्प में प्रतिपादित और्ध्वदेहिक कृत्यों का तुलनात्मक ज्ञान करने में भी सुविधा होगी। स्वशाखोक्त और्ध्वदेहिक कृत्यों की अवश्यकर्तव्यता और स्वशाखाविधि के अविरोधी और अनुकूल होने पर ही पुराणोक्त और्ध्वदेहिक कृत्यों की यथाशक्ति यथारुचि यथाचार कर्तव्यता मान्य होने की बात को समझने में भी इस से सहायता मिल सकेगी। इस संस्करण में अन्त्य में प्रेतकल्प की श्लोकार्धानुक्रमणिका भी दी जा रही है। इस से और्ध्वदेहिककृत्य-श्राद्धकृत्यादि के लोक में प्रसिद्ध और धर्मशास्त्रनिबन्ध में प्रसिद्ध वचनों को ढूँढने में और परखने में तथा प्रेतकल्प के विभिन्न पाठों और संस्करणों के तुलनात्मक अध्ययन में भी विशेष सहायता होगी। यद्यपि इस संस्करण का सामान्यतया आधार वैक्रमाब्द १९६३ संवत् का वेङ्कटेश्वर-संस्करण है, तथापि उस की मुद्रणाशुद्धियों का और अनेक सन्देहास्पद श्लोकों के पाठों का अर्थ की दृष्टि से समुचित होनेपर जीवानन्दसंस्करणादि अन्य संस्करणों की, हस्तलिखित प्रतियों की और धर्मशास्त्रनिबन्धादि की तथा पूर्वापर-अवलोकन की सहायता से भी अनेक स्थलों में विशेष संशोधन भी प्रस्तुत संस्करण में किया गया है। संस्कृत न जानने वाले आस्तिक लोगों की सुविधा के लिए हिन्दी अनुवाद भी साथ में प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत अनुवादक की मातृभाषा हिन्दी न होने से हिन्दी अनुवाद में कुछ भाषिक त्रुटियाँ रही होंगी। पुराण के मूल श्लोकों में भी यत्रतत्र लेखकप्रमादादिकृत अस्पष्टता और दुरूहता रहने से भी अनुवाद में कुछ त्रुटियाँ हो गई होंगी। तथापि मूल ग्रन्थका आशय अनुवाद में यथार्थ रूप में उतारने का पर्याप्त प्रयास यथामति किया गया है। गीताप्रेस-गोरखपुर की कल्याणपत्रिका के चौहत्तरवें वर्ष के (२००० क्रै.) विशेषाङ्क सङ्क्षिप्तगरुडपुराणाङ्क में भी गरुडपुराण का प्रायः मूल संस्कृत श्लोकों से रहित सङ्क्षिप्त हिन्दी अनुवाद उपलब्ध है, किन्तु गीताप्रेस-गोरखपुर के अन्य कतिपय प्रकाशनों की तरह ही इस अनुवाद में भी अनुवादक-प्रकाशकों की आग्रहपूर्ण दृष्टिविशेष से और मनमानी इच्छा से मूल के अनेक वाक्यों का अनुवाद ही छोड दिए जाने से वह

अनुवाद अधूरा है और श्रीराम आचार्य से सम्पादित प्रकाशित स्मृतिपुराणादिग्रन्थों की तरह ही कुछ स्थलों में भ्रामक भी है। **"परिधाय पुनस्तच्च ब्रूयुस्तं पुरुषं प्रति"** (२।४।७१), **"रात्रिशेषे शुचिर् भवेत्"** (२।५।१९), **"यावदाशौचमेकैकस्याञ्जलेर् दानमुच्यते"** (२।५।२१) इत्यादि अनेक स्थलों में हमारी दृष्टि से गीताप्रेस का उक्त अनुवाद बहुत अयथार्थ अथवा गलत भी है। नीरक्षीरविवेक विज्ञ पाठक लोग करेंगे ही।

उपसंहार

वेद भारतवर्ष के महान् निधि हैं। वैदिक जीवनयात्रापद्धति भारतवर्षनिवासियों के अभ्युदय और निश्श्रेयस की साधना की पद्धति है। वैदिक जीवनयात्रापद्धति में वैदिक कर्मकाण्ड का असाधारण स्थान है। प्रमुख वैदिक कर्मकाण्ड के सम्पादन में गुरु-पुरोहित-पण्डित-ब्राह्मणों की उपस्थिति परमावश्यक होती है। इस लिए भारतवर्षनिवासी समाज की प्रमुख धारा के वर्णाश्रमधर्मानुयायी लोगों में गुरु-पुरोहित-पण्डित-ब्राह्मणों का एक विशिष्ट स्थान है। अत एव उन को श्रुति-स्मृति-पुराण-वाङ्मय का और उन में निबद्ध धर्म-मोक्ष-सम्बद्ध ज्ञान का भी विशेष अनुशीलन करना ही चाहिए। किन्तु दुःख की बात है कि उक्त विषय में गुरु-पुरोहित-पण्डित-ब्राह्मणों में दिनप्रतिदिन दुर्बलता बढती ही जा रही मालूम होती है। इस से वैदिक धर्म की परम्परा में बडी क्षति हो रही है। यद्यपि लोक में सन्न्यासियों मठाधीशों और अन्य वेषधारियों को धर्माचार्य अथवा गुरु मानने का भ्रम भी व्यापक है, तथापि श्रुति-स्मृति-पुराण-प्रतिपादित शास्त्रीय दृष्टि में और कर्मकाण्डादि व्यवहार में भी गृहस्थ पण्डित ब्राह्मण ही वर्णाश्रमियों के गुरु अथवा आचार्य होते हैं, सन्न्यासी प्रभृति मठाधीश अथवा वेषधारी व्यक्ति नहीं। गृहस्थ पण्डित ब्राह्मण ही वैदिक समाज में संस्कारादि धर्मकृत्यों में यजमानों के घर-घर में जाकर आवश्यक ज्ञान देते हैं, और कृत्य कराते हैं। अतः उन को अपनी इस विशिष्ट स्थिति को समझना चाहिए और श्रुति-स्मृति-पुराणों का सम्यक् परिचय और उन में आवश्यक योग्यता प्राप्त करनी ही चाहिए। उन को श्रुति-स्मृति-पुराणों के मर्यादाक्रम को और व्यवस्था को समझना ही चाहिए और तदनुसार यथाविधि यथाशक्ति यथोचित धर्मकृत्य करना और कराना चाहिए। यजमानों को अपने गुरु-पुरोहित-पण्डित-ब्राह्मण को पूर्ण

सम्मान करके समुचित दानदक्षिणा भी देनी चाहिए। इसी दृष्टि से गरुडपुराण के उत्तरखण्ड का धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प समुचित भूमिकां के साथ सानुवाद रूप में इस संस्करण में प्रस्तुत किया जा रहा है। मनुष्य के काम में त्रुटि रह सकती है। त्रुटि में क्षमा करके और त्रुटि का परिमार्जन कर के आस्तिक सज्जन गुरु-पुरोहित-पण्डित-यजमानादि पाठक लोग इस संस्करण का अन्य समय में भी विषयज्ञानादि के लिए और श्राद्ध के समय में और अन्त्येष्टि के समय में पाठ और श्रवण के लिए उपयोग करके सम्पादक-अनुवादक के और प्रकाशक के सद्धर्मवाङ्मयप्रचार के प्रयास को सफल करें। किमधिकम्।

चतुष्षष्टितमो ग्रन्थसम्पादकजन्मदिवसः,
मधुशुक्लषष्ठी, ५०६९ तमस्य कलियुगाब्दस्य,
(२०६०।११।१४ वै.=२००४।२।२६ क्रै.),

वेदवेदाङ्गोपाङ्गस्मृतिपुराणादिशास्त्रवशवँवदः
शिवराज आचार्यः कौण्डिन्न्यायनः

स्वाद्ध्यायशला, १६८, शिवभक्तमार्गः,
लाजिम्पाद्, काष्ठमण्डपमहानगरम्-२,
नेपालदेशः। ☎ ००९७७-१-४४३३३२७।
Email– svadhyaya@hotmail.com

❁

अथ

श्रीगरुडपुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशो धर्मकाण्डनामकः प्रेतकल्पः

अथ प्रथमोऽध्यायः

श्रीगणेशाय नमः। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्॥
धर्मदृढबद्धमूलो वेदस्कन्धः पुराणशाखाढ्यः। क्रतुकुसुमो मोक्षफलो मधुसूदनपादपो जयति॥१॥
नैमिषेऽनिमिषक्षेत्रे शौनकाद्या मुनीश्वराः। कर्मणामन्तरे सूतं स्वासीनमिदमब्रुवन्॥२॥

सरस्वतीं च ब्रह्माणं लक्ष्मीं नारायणं तथा। शिवां शिवं तथाऽम्बां चाऽऽवुकं च कलये हृदि॥१॥

स्वशक्तिरूप श्री से युक्त गणेशजी को नमस्कार॥ विश्व-विराट्-तैजस-सूत्रात्मा-प्राज्ञ-ईश्वर-तुरीयब्रह्म-स्मरणपूर्वक भगवान् वासुदेव को नमस्कार॥ ब्रह्माण्डव्यापी ईश्वर को, जीव को और परब्रह्म को तथा इन के तत्त्व को प्रकाशित करने वाली वेदवाणीरूप सरस्वती को भी नमस्कार करके संसारभ्रमनिवर्तनद्वारा संसार के ऊपर जय करने वाले पुराण-इतिहास-रामायणादि जयपदव्यवहार्य ग्रन्थों का वाचन करे। *[विशेष— यह श्लोक जीवानन्दसंस्करण में है, वेङ्कटेश्वरसंस्करण में भी इस का प्रतीक उल्लिखित है]*। जिस का धर्म दृढ और सुसम्बद्ध मूल है, जिस का वेद धड है, पुराणरूप शाखाओं से जो समृद्ध है, यज्ञ जिस के फूल हैं और मोक्ष जिस का फल है वह भगवान् मधुसूदनरूपी वृक्ष सर्वोत्कृष्ट है॥१॥ देवता के क्षेत्र नैमिषारण्य में अपने यज्ञकृत्यों से अवकाश होने के समय में शौनकादि मुनियों ने सुखपूर्वक आसन में बैठे हुए सूतजी को यह कहा— ॥२॥

सूत जानासि सकलं वस्तु व्यासप्रसादतः। तेन नः सन्दिहानानां सन्देहं छेत्तुमर्हसि॥३॥
यथा तृणजलौकेति न्यायमाश्रित्य कञ्चन। देहिनोऽन्यतनुप्राप्तिं केचित्त्वेवं वदन्ति हि॥४॥
केचित् पुनर् यातनानां यामीनामुपभोगतः। पश्चाद् देहान्तरप्राप्तिं वदन्ति किमु तत्र सत्॥५॥

सूत उवाच

साधु पृष्टं महाभागाः शृणुध्वं भवतां पुनः। सन्देहो नोपपद्येत लोकार्थं किल पृच्छताम्॥६॥
तदहं कृष्णगरुडसंवादद्वारकं द्विजाः। अपाकरिष्ये सन्देहं भवतां भावितात्मनाम्॥७॥
नमः कृष्णाय मुनये य एनं समुपाश्रिताः। अञ्जस् तरन्ति संसारसागरं कुनदीमिव॥८॥
एकदा वैनतेयस्य लोकानां लोकनस्पृहा। बभूव सोऽथ बभ्राम तेषु नाम हरेर् गृणन्॥९॥

हे सूतजी, आप व्यासजी के अनुग्रह से सब कुछ जानते हैं, अतः आप सन्देहयुक्त हम लोगों का सन्देह हटाने में समर्थ हैं॥३॥ कोई लोग कहते हैं कि जिस प्रकार कोई जोंक एक तिनके में पश्चाद्‌भाग से ठहरते हुए अग्रभाग से दूसरे तिनके में जाता है उसी प्रकार मनुष्य का भी एक देह से दूसरे देह में जाना होता है॥४॥ फिर कोई यम की यातनाओं को भोगने के बाद ही मनुष्य को दूसरे देह की प्राप्ति होने की बात बताते हैं, इन में क्या सत्य है?॥५॥ **सूतजी ने कहा—** हे अत्यन्त पावन दीप्ति वाले ऋषिजन, अच्छा पूछा, सुनिए, लोक के लिए पूछने वाले आप लोगों को सन्देह हो नहीं सकता है॥६॥ तथापि हे ब्राह्मण लोग, मैं निर्मल अन्तःकरण वाले आप लोगों से प्रस्तुत सन्देह को कृष्ण और गरुड के संवाद के द्वारा हटाउँगा॥७॥ जिस में ज्ञान के लिए आश्रित होने से लोग संसाररूपी समुद्र को एक क्षुद्र नदी की भाँति पार कर जाते हैं उन कृष्ण मुनि (व्यासजी) को नमस्कार करता हूँ॥८॥ एक समय में गरुडजी को लोकों को देखने की इच्छा हुई, और उन्हों ने हरि का नाम गाते हुए उन लोकों में भ्रमण किया॥९॥

स पातालं भुवं स्वर्गं भ्रान्त्वाऽलब्धशमाशयः। लोकदुःखेनाऽतिदुःखी पुनर् वैकुण्ठमागमत्॥१०॥
न रजो न तमश्चैव सत्त्वं ताभ्यां च मिश्रितम्। यत्र प्रवर्तते नैव सत्त्वमेव प्रवर्तते॥११॥
न यत्र माया नाशश् च न वै रागादयो मलाः। श्यामावदाताः सुरुचः शतपत्रविलोचनाः॥१२॥
सुरासुरार्चिता यत्र गणा विष्णोः सुपेशसः। पिशङ्गवस्त्राभरणा मणियुङ्निष्कभूषिताः॥१३॥
चतुर्भुजाः कुण्डलिनो मौलिनो मालिनस्तथा। भ्राजिष्णुभिर् विमानानां पङ्क्तिभिर् ये महात्मनाम्॥१४॥
द्योतन्ते द्योतमानानां प्रमदानां च पङ्क्तिभिः। श्रीर् यत्र नानाविभवैर् हरेः पादौ मुदाऽर्चति॥१५॥
हरिं गायति दोलास्थं गीयमानालिभिः स्वयम्। ददर्श श्रीहरिं तत्र श्रीपतिं सात्वतां पतिम्॥१६॥
जगत्पतिं यज्ञपतिं पार्षदैः परिषेवितम्। सुनन्द-नन्द-प्रबला-ऽर्हण-मुख्यैर् निरन्तरम्॥१७॥

गरुडजी पाताल, भूलोक और स्वर्गलोक में घूमकर अशान्तचित्त और लोक के दुःख से दुःखी होकर फिर वैकुण्ठ में आगए॥१०॥ जिस वैकुण्ठलोक में रजोगुण नहीं रहता है, तमोगुण भी नहीं रहता है और रजोगुण तथा तमोगुण से मिला हुआ सत्त्वगुण भी नहीं रहता है, केवल सत्त्वगुण ही रहता है॥११॥ जिस वैकुण्ठ में छल नहीं रहता है, विनाश भी नहीं रहता है, राग-द्वेष इत्यादि मल भी नहीं रहते हैं, जिस वैकुण्ठ में श्यामवर्ण के निर्मल, सुन्दर कान्ति वाले, कमलपत्र जैसे नेत्र वाले, देवगण और असुरगण से पूजित, सुरूप, पीतवस्त्र और आभरण से युक्त, मणिजडित कण्ठाभरण से युक्त, चार भुजाओं से युक्त, कुण्डलों से भूषित, मुकुटयुक्त, मालाधारी, महात्माओं के चमकते हुए विमानों की पङ्क्ति से द्योतित, चमकती हुई अप्सराओं की पङ्क्ति से शोभित विष्णु के गण रहते हैं, जिस वैकुण्ठ में नाना विभव से युक्त लक्ष्मीजी हरि के पादों को प्रसन्नता से पूजती रहती है, और सखियोंद्वारा स्वयम् गीयमान लक्ष्मीजी झूले पर विराजमान हरि का गुणगान करती है, उस वैकुण्ठ में विनता के पुत्र गरुडजी ने लक्ष्मी के पति, सात्वतों के स्वामी, जगत् के स्वामी, यज्ञ के पति, सुनन्द नन्द प्रबल अर्हण इत्यादि पार्षदों से निरन्तर सेवित, भृत्यों के प्रति प्रसन्नता से मुस्कुराते हुए, बडे-बडे और अरुण नेत्रों

भृत्यप्रसादसुमुखमायतारुणलोचनम्। किरीटिनं कुण्डलिनं श्रिया वक्षसि लक्षितम्॥१८॥
पीतांशुकं चतुर्बाहुं प्रसन्नहसितानानम्। अभ्यर्हणासनासीनं ताभिः शक्तिभिरावृतम्॥१९॥
प्रधानपुरुषाभ्यां च महता चाहमा तथा। एकादशेन्द्रियैश् चैव पञ्चभूतैस् तथैव च॥२०॥
स्वरूपे रममाणं तमीश्वरं विनतासुतः। तद्दर्शनाह्लादयुतस्वान्तो हृष्यत्तनूरुहः॥२१॥
लोचनाभ्यामश्रु मुञ्चन् प्रेममग्नो ननाम ह। तमागतं नतं स्वीयवाहनं विष्णुरब्रवीत्।
भूमिः का लङ्घिता पक्षिँस् त्वयेयन्तमनेहसम्॥२२॥

गरुड उवाच

तव प्रसादाद् वैकुण्ठ त्रैलोक्यं सचराचरम्॥२३॥
मया विलोकितं सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम्। भूर्लोकात् सत्यपर्यन्तं पुरं याम्यं विना प्रभो॥२४॥

से युक्त, किरीट से शोभित, कुण्डलों से युक्त, वक्षस्थल में लक्ष्मी से संलक्षित, पीतवस्त्रयुक्त, चार भुजा वाले, प्रसन्न और मुस्कुराते मुह वाले, श्रेष्ठ आसन में विराजमान, अपनी प्रसिद्ध शक्तियों से युक्त; प्रकृति, पुरुष, महत्तत्त्व, अहङ्कार, ग्यारह इन्द्रिय तथा पञ्च महाभूतों से परिवृत, अपने स्वरूप में ही रमण करते हुए परमेश्वर श्रीहरि को देखा। हरि के दर्शन से उत्पन्न आनन्द से पूर्ण हृदय से युक्त और हर्षणयुक्त रोमों से भरे (रोमाञ्चित) गरुडजी ने आँखों से हर्षाश्रु गिराते हुए प्रेममगन होकर हरि को प्रणाम किया। आए हुए प्रणत अपने वाहन गरुडजी को विष्णु ने कहा— हे पक्षिन्, तूँ ने इतने समय तक किस-किस भूमि का भ्रमण किया? गरुडजी ने कहा— हे वैकुण्ठवासी भगवन्, आप के अनुग्रह से मैं ने इस गतिशील त्रिलोकी का विलोकन किया, हे प्रभो, यमराज की पुरी को छोडकर भूर्लोक से सत्यलोकपर्यन्त सभी स्थावर और जङ्गम जगत् को भी मैं ने देखा॥१२-२४॥

भूर्लोकः सर्वलोकानां प्रचुरः सर्वजन्तुषु। मानुष्यं सर्वभूतानां भुक्तिमुक्त्यालयं शुभम्॥२५॥
अतः सुकृतिनां लोको न भूतो न भविष्यति॥२६॥

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गस्य फलार्जनाय भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥२७॥

[मानुषत्वं लभेत् कस्मान् मृत्युं प्राप्नोति तत् कथम्। म्रियते कः सुरश्रेष्ठ देहमाश्रित्य कुत्र चित्॥
क्व यान्ति इन्द्रियाण्यस्य अस्पृश्यः स कथं भवेत्। क्व कर्माणि कृतानीह कथं भुङ्क्ते प्रसर्पति॥]
प्रेतः कौ क्षिप्यते कस्मात् पञ्चरत्नं मुखे कथम्। अधस्ताच् च तिला दर्भाः पादौ याम्यां व्यवस्थितौ॥२८॥

सभी प्रकार के जन्तुओं के विषय में भूर्लोक सभी लोकों में अधिकतायुक्त है, सभी प्राणियों में मनुष्यत्व ही भोग का और मुक्ति का शुभ आधार है॥२५॥ धार्मिक लोगों के लिए इस मनुष्यलोक से बढकर अन्य कोई लोक न कभी हुआ न ही कभी होगा। देवता लोग भी गीत गाते हैं और उस गीत में कहते हैं कि वे धन्य हैं जो देवत्व प्राप्त करके स्वर्गसुख भोगने के बाद स्वर्ग और मोक्ष फल प्राप्त करने के लिए फिर भी भारतभूमि में मनुष्य जन्म पाते हैं॥२६-२७॥ ऐसे धन्य भारत भूमि में स्वर्ग अथवा मोक्ष के लिए किए जाने वाले धर्मकृत्यों के रहस्य के ज्ञान के लिए गरुडजी भगवान् से पूछते हैं— [जीव मनुष्यत्व कैसे पाता है? मृत्यु को कैसे पाता है? हे देवताओं में श्रेष्ठ, देह में आश्रित होकर कौन मरता है? इस के इन्द्रिय कहाँ जाते हैं? वह कैसे अस्पृश्य हो जाता है? यहाँ किए गए कर्मों का फल कहाँ भोगता है? कहाँ जाता है?] *[विशेष— ये दो श्लोक बङ्गवासिसंस्करण में यहाँ हैं]* । मरते हुए मनुष्य को खाट इत्यादि से उतारकर क्यों पृथिवी में रख दिया जाता है? उस के मुह में क्यों पञ्चरत्न (स्वर्ण, रजत, मुक्ता, राजावर्त [लाजवर्द] और मूँगा) डाला जाता है? उस के तूली (बिस्तरे) के नीचे तिल और कुश क्यों बिछाए जाते हैं? उस के पैर क्यों दक्षिणदिशा की ओर किए जाते हैं?॥२८॥

किमर्थं पुत्त्रपौत्त्राश् च तस्य तिष्ठन्ति चाग्रतः। किमर्थं दीयते दानं गोदानमपि केशव॥२९॥
बन्धुमित्राण्यमित्राश् च क्षमापयन्ति तत् कथम्। तिला लोहं हिरण्यं च कार्पासं लवणं तथा॥३०॥
सप्तधान्यं क्षितिर् गावो दीयन्ते केन हेतुना। कथं हि म्रियते जन्तुर् मृतो वै कुत्र गच्छति॥३१॥
अतिवाहशरीरं च कथं हि श्रयते तदा। शवं स्कन्धे वहेत् पुत्त्रो अग्निदाता च पौत्त्रकः॥३२॥
आज्येनाभ्यञ्जनं कस्मात् कुत एकाऽऽहुतिक्रिया। वसुन्धरा किमर्थं च कुतः स्त्रीशब्दकीर्तनम्॥३३॥
यमसूक्तं किमर्थं च उदीच्यां दिशमाहरेत्। पानीयमेकवस्त्रेण सूर्यबिम्बनिरीक्षणम्॥३४॥
यवसर्षपदूर्वास् तु पाषाणे निम्बपत्रकम्। वस्त्रं नरश् च नारी च विदध्यादधरोत्तरम्॥३५॥

उस के आगे पुत्रपौत्रादि *[द्रष्टव्य– ?१/३३]* क्यों खडे रहते हैं? दान क्यों दिया जाता है? हे केशव, गोदान भी क्यों दिया जाता है?॥२९॥ बन्धु मित्र और अमित्र भी क्यों क्षमायाचन कराते हैं? तिल, लोहा, स्वर्ण, रुई, नमक, सप्तधान्य (यव, व्रीहि, तिल, कङ्गु, मुद्ग, चणक और श्यामाक), भूमि और गौ ये आठ वस्तु क्यों दिए जाते है? प्राणी कैसे मरता है? मरा हुआ प्राणी कहाँ जाता है?॥३०-३१॥ उस समय में मरा हुआ प्राणी अतिवाह शरीर (जीव को परलोक तक लेजाने वाले शरीर) में कैसे आश्रय लेता है? मृत मनुष्य के शरीर को पुत्र क्यों कन्धे पर लेजाय? और पौत्र (शव जलाने के) अग्नि को [प्रेतगृह में ही उखा (हण्डी) में निष्पन्न करके शवनिर्हारकों को] देने वाला क्यों हो?॥३२॥ शव का घी से लेपन क्यों करें? शवदाह में बीच में एक तिलाज्याहुति किस कारण से दी जाती है? शव का आश्रय भूमि ही क्यों? स्त्रियों का शवदाह के समय में गाढ रोदन-शब्द करने का विधान क्यों?॥३३॥ यमसूक्त का पाठ क्यों? शव को उत्तरदिशा की ओर लेजाना क्यों? अञ्जलिदान एकवस्त्र होकर क्यों दिया जाता है? सूर्यबिम्ब का निरीक्षण क्यों?॥३४॥ *[विशेष– यहाँ 'उदीच्यां दिशम्' के स्थान में 'अवाचीं दिशम्' पाठ उचित है, द्रष्टव्य– ४/५४]*। जौ, सरसों और दूर्वा का स्पर्श क्यों? पत्थर पर पग क्यों? नीम की पत्ति को दाँतों से काटना क्यों? अञ्जलिदान के समय में स्त्री और पुरुष दोनों एक अधरवस्त्र को ही उत्तरवस्त्र के रूप में भी क्यों प्रयुक्त करते हैं?॥३५॥

अन्नाद्यं गृहमागत्य न भोक्तव्यं जनैः सह। नवकांश् चैव पिण्डांश् च किमर्थं ददते सुताः॥३६॥
किमर्थं चत्वरे दुग्धं पात्रेऽपक्वे च मृन्मये। काष्ठत्रयं गुणाबद्धं कृत्वा रात्रौ चतुष्पथे॥३७॥
निशायां दीयते दीपो यावदब्दं दिनेदिने। दाहोदकं किमर्थं च किमर्थं च जनैः सह॥३८॥
भगवन्नातिवाहश् च नव पिण्डाः प्रदापयेत्। कथं देयं पितृभ्यश् च वाहस्यावाहनं कथम्॥३९॥
इदं चेत् क्रियते देव कस्मात् पिण्डं प्रदापयेत्। किं तत् प्रदीयते तस्य पिण्डदानाद्यनन्तरम्॥४०॥
अस्थिसञ्चयनं चैव घटस्फोटं तथैव च। द्वितीयेऽह्नि कुतः स्नानं चतुर्थे साग्निके द्विजे॥४१॥
दशमे किं मलस्नानं कार्यं सर्वजनैः सह। कस्मात् तैलोद्वर्तनं च स्कन्धवाहगृहं नयेत्॥४२॥
तैलोद्वर्तनकं चापि दद्युः स्थूलजलाशये। दशमेऽहनि यत् पिण्डं तद् दद्यादामिषेण तु॥४३॥

घर में आकर अन्न क्यों नहीं खाना चाहिए? बन्धुजनों से युक्त पुत्त्र प्रेत को नवक पिण्ड क्यों देते हैं?॥३६॥ कच्चे मिट्टी के पात्र में चत्वर में दूध क्यों दिया जाता है? रस्सी से तीन काष्ठों को बाँधकर उन को खडा करके उन के ऊपर रखकर रात में चौराहे पर प्रतिदिन वर्षपर्यन्त दीपक क्यों दिया जाता है? दाहोदक क्यों? और बन्धुजनों के साथ में दाहोदकदान क्यों?॥३७-३८॥ हे भगवन्, अतिवाह शरीरसम्बन्धी नव पिण्डों का दान क्यों करवाना चाहिए? पितरों को कैसे देना चाहिए? पितरों को वहन करके लाने वालों का आवाहन कैसे करना चाहिए?॥३९॥ हे देव, यह नवक पिण्डदान किया जाता है तो फिर और पिण्ड भी क्यों दिए जायं? पिण्डदानादि देने के बाद प्रेत को दिए जाने वाले पदार्थ क्या क्या हैं?॥४०॥ अस्थिसञ्चयन और घट फोडने का कार्य क्यों? दूसरे दिन स्नान क्यों? साग्निक द्विज के लिए चौथे दिन पर स्नान क्यों?॥४१॥ मृत्यु के दशम दिन में सभी बन्धुओं के साथ मलस्नान (शुद्धि के लिए स्नान) क्यों किया जाता है? कन्धे पर शव को लेजाने वालों के घर में दशम दिन में तेल और उबटन क्यों पहुँचाया जाए?॥४२॥ सभी के स्नानादि के लिए निर्मित गाँव के बडे जलाशय में दशम दिन में क्यों तेल और उबटन रखें? दशम दिन का जो पिण्ड होता है उस को आमिष (मांस) से क्यों दिया जाय?॥४३॥

पिण्डं चैकादशे कस्माद् वृषोत्सर्गादिपूर्वकम्। भाजनोपानहौ छत्रं वासांसि त्वङ्गुलीयकम्॥४४॥
त्रयोदशेऽह्नि देयं स्यात् पददानं किमर्थकम्। श्राद्धानि षोडशैतानि अब्दं यावत् कुतो घटः॥४५॥
अन्नाद्येनोदकेनैव षष्ट्याधिकशतत्रयम्। दिनेदिने च दातव्यं घटान्नं प्रेततृप्तये॥४६॥
प्राप्ते काले वै म्रियते अनित्या मानवाः प्रभो। छिद्रं तु नैव पश्यामि कुतो जीवः स निर्गतः॥४७॥
कुतो गच्छन्ति भूतानि पृथिव्यापो मनस् तथा। तेजो वदस्व मे नाथ वायुराकाशमेव च॥४८॥
कुतः कर्मेन्द्रियाणीह पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि च। वायवश् चैव पञ्चैते कथं गच्छन्ति चात्ययम्॥४९॥
लोभमोहादयः पञ्च शरीरे चैव तस्कराः। तृष्णा कामो ह्यहङ्कारः कुतो यान्ति जनार्दन॥५०॥
पुण्यं वाऽप्यथवाऽपुण्यं यत्किञ्चित् सुकृतं तथा। नष्टे देहे कुतो यान्ति दानानि विविधानि च॥५१॥

एकादश दिन का पिण्ड भी आमिष (मांस) से और वृषोत्सर्गपूर्वक देने का विधान क्यों है? वर्तन, जूते, छाता, वस्त्र, अँगूठी इत्यादि से युक्त पददान तेरहवें दिन में क्यों दिया जाता है? सोलह श्राद्ध क्यों? वर्षपर्यन्त घट क्यों? प्रेत की तृप्ति के लिए अन्नादि से और जल से युक्त तीन सौ साठ घट प्रति दिन क्यों देना चाहिए?॥४४-४६॥ हे प्रभो, समय आने पर मनुष्य मरता है, मनुष्य अनित्य हैं, मरते समय जीव कहाँ से निकल गया होता है? वह छिद्र तो नहीं देखता हूँ॥४७॥ हे नाथ, शरीर में स्थित पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश ये महाभूत और मन कहाँ जाते हैं?॥४८॥ इस शरीर में वर्तमान पाँच कर्मेन्द्रिय और पाँच बुद्धीन्द्रिय कहाँ जाते हैं? ये प्राणादि पाँच वायु कैसे विनाश को प्राप्त होते हैं?॥४९॥ हे जनार्दन, शरीर में वर्तमान लोभ-मोह-प्रधान लोभ मोह तृष्णा काम और अहङ्कार ये पाँच चोर कहाँ जाते हैं?॥५०॥ शरीर नष्ट होने पर धर्म अथवा अधर्म तथा जो कुछ अन्य सुकर्म हैं वे और विविध दान भी कहाँ जाते हैं?॥५१॥

सपिण्डनं किमर्थं च पूर्णे संवत्सरेऽपि वा। प्रेतस्य मेलनं केषां किंविधं तत्र कारयेत्॥५२॥
मूर्च्छनात् पतनाद् वापि विपत्तिर् यदि जायते। ये दग्धा ये त्वदग्धाश्च पतिता ये नरा भुवि॥५३॥
यानि चान्यानि भूतानि तेषामन्ते भवेच् च किम्। पापिनो ये दुराचारा ये चान्ये गतबुद्धयः॥५४॥
आत्मघाती ब्रह्महा च स्तेयी विश्वासघातकः। कपिलायाः पिबेच् छूद्रो यः पठेद् वेदमक्षरम्॥५५॥
धारयेद् ब्रह्मसूत्रं वा का गतिस् तस्य माधव। शूद्रस्य ब्राह्मणी भार्या सङ्गृहीता यदा भवेत्॥५६॥
भीतोऽहं पापिनस् तस्मात् तन् मे वद जगत्प्रभो। अन्यच्च शृणु विश्वात्मन् मया कौतुकिना रयात्॥
लोकाल्ँ लोकयता लोके जगाहे विश्वमण्डलम्। तत्राऽजनि जनान् दृष्ट्वा दुःखेष्वेव निमज्जतः॥५८॥
स्वान्ते मे दुर्धरा पीडा तत्पीडातो गरीयसी। त्रिदिवे दितिजातेभ्यो भूमौ मृत्युरुगादिभिः॥५९॥

वर्ष पूर्ण होने पर सपिण्डन क्यों? प्रेत का और किन लोगों का किस प्रकार का मेलन उस सपिण्डन में करना चाहिए?॥५२॥ हे माधव, मूर्छा से अथवा गिरने से यदि मृत्यु होती है तो उन का, जो पतित लोग मरने पर इस लोक में जलाए गए हैं और जो नहीं जलाए गए हैं, और भी जो लोग जलाए गए हैं और नहीं जलाए गए हैं उन का परिणाम क्या होगा? जो दुराचारी पापी, जो धर्म से अपगत बुद्धि वाले अन्य नास्तिक, आत्मघाती, ब्रह्महत्या करने वाले, चोरी करने वाले, विश्वासघाती, जो शूद्र होकर कपिला गाय का दूध पीए और वेद के अक्षर को पढे तथा जनेऊ पहने ऐसे लोगों की क्या गति होती है? हे जगत् के स्वामिन्, जब शूद्र की सङ्गृहीता ब्राह्मणी भार्या हो, उस पापी से मैं डरता हूँ, उस पापी की क्या गति होगी? मुझे बताइए; हे विश्व के आत्मा, और भी मेरा कहना सुनिए, कौतूहल से युक्त और वेग से लोकों को देखने वाले मैं ने विश्वमण्डल में प्रवेश किया, वहाँ दुःखों में डूबते हुए लोगों को देखकर उन की पीडा से भी बडी दुर्धर पीडा मेरे हृदय में उत्पन्न हुई, स्वर्ग में दैत्यों से, भूलोक में मृत्यु रोग इत्यादि से

इष्टवस्तुवियोगैश् च पाताले मामकं भयम्। एवं न निर्भयं स्थानमन्यदीश भवत्पदात्॥६०॥
असत्यं स्वप्नमायावत् कालेन कवलीकृतम्। तत्रापि भारते वर्षे बहुदुःखस्य भागिनः॥६१॥
जना दृष्टा मया रागद्वेषमोहादिविप्लुताः। केचिदन्धाः केकराक्षाः स्खलद्वाचस्तु पङ्गवः॥६२॥
खञ्जाः काणाश् च बधिरा मूकाः कुण्टाश् च लोमशाः। नानारोगपरीताश् च खपुष्पाच् चाभिमानिनः॥६३॥
तेषां दोषस्य वैचित्र्यं मृत्योर् गोचरतामपि। दृष्ट्वा प्रष्टुमनाः प्राप्तः को मृत्युश् चित्रता कथम्॥६४॥
मृतिर् यस्य विधानेन मरणादप्यनन्तरम्। विधिनाऽब्दक्रिया यस्य न स दुर्गतिमाप्नुयात्॥६५॥
ऋषिभ्यस्तु मया पूर्वमिति सामान्यतः श्रुतम्। ज्ञानाय तद्विशेषस्य पृच्छामीदमिति प्रभो॥६६॥
म्रियमाणस्य किं कृत्यं किं दानं वासवानुज। दाहमृत्व्योरन्तराले को विधिर् दहनस्य च॥६७॥

और प्रिय वस्तुओं के वियोग से तथा पाताल में (नागों को) मुझ से (गरुड से) भय है, हे जगदीश्वर, आप के चरणारविन्द से अन्य निर्भय स्थान कोई नहीं है॥५३-६०॥ सब जगत् स्वप्न में देखे हुए पदार्थ के तुल्य असत्य है और काल से कवलीकृत (निगला हुआ) है। उस में भी मैं ने भारतवर्ष में अधिक दुःख भोगने वाले, राग, द्वेष और मोह से व्याप्त, कोई अन्ध, कोई टेढी दृष्टि वाले, कोई हकलाकर बोलने वाले, कोई पङ्गु (दोनों पैरों से विकल), कोई लंगडे, कोई काने, कोई बहरे, कोई गूंगे, कोई लुंजे, कोई ज्यादा रोम वाले, कोई नाना प्रकार के रोगों से घिरे हुए और कोई आकाशपुष्पतुल्य पदार्थों की प्राप्ति से भी बडे अभिमानी मनुष्य देखे॥६१-६३॥ उन भारतवर्षवासियों के दोषों की विचित्रता को और मृत्युविषयता को देखकर पूछने में इच्छुक होकर आया हूँ, मृत्यु क्या है? और वह विचित्रता कैसे आती है?॥६४॥ जिस का विधिपूर्वक मृत्यु होता है और मृत्यु के बाद भी जिस की विधिपूर्वक वर्षपर्यन्त क्रिया होती है वह दुर्गति में नहीं पडेगा, यह बात मैं ने ऋषियों से सामान्यतया सुनी है, उस के विशेष ज्ञान के लिए हे प्रभो, मैं यह पूछता हूँ॥६५-६६॥ हे इन्द्र के भाई, मरते हुए मानव का कृत्य क्या है? दान क्या है? शवदाह और मृत्यु के बीच का विधान क्या है? शवदाह का विधि क्या है?॥६७॥

सद्यो विलम्बतो वा किं देहमन्यं प्रपद्यते। संयमन्यां क्रम्यमाणमावर्षं का मृतिक्रिया॥६८॥
प्रायश्चित्तं दुर्मृतेः किं पञ्चकादिमृतस्य च। प्रसादं कुरु मे मोहं छेत्तुमर्हस्यशेषतः॥६९॥
सर्वमन्ते मया पृष्टं ब्रूहि लोकहिताय वै॥७०॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे प्रश्नप्रपञ्चो नाम प्रथमोऽध्यायः॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

साधु पृष्टं त्वया भद्र मानुषाणां हिताय वै। शृणुष्वाऽवहितो भूत्वा सर्वमेवौर्ध्वदेहिकम्॥१॥

मृत जीव दूसरे देह में तत्काल पहुँचता है अथवा विलम्ब से पहुँचता है? यमपुरियों में चलते हुए जीव के प्रति वर्षपर्यन्त कर्तव्य प्रेतक्रिया कौन है?॥६८॥ दुर्मरण होनेवाले के लिए और पञ्चकादि में मरने वाले के लिए भी क्या प्रायश्चित्त है? अनुग्रह कीजिए, मेरे अज्ञान को निश्शेष करके हटाने में आप समर्थ हैं, मेरे पूछे हुए सब प्रश्नों के उत्तर लोक के हित के लिए बताइए॥६९-७०॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में प्रश्नप्रपञ्चनामक प्रथम अध्याय समाप्त हुआ॥१॥

हे कल्याणकारिन्, तुम ने मनुष्यों के हित के लिए अच्छा पूछा, सावधान होकर सभी और्ध्वदेहिक कृत्य सुनो॥१॥ हे महाभाग्ययुक्त

सम्यग् विभेदरहितं श्रुतिस्मृतिसमुद्धृतम्। यन् न दृष्टं सुरैः सेन्द्रैर् योगिभिर् योगचिन्तकैः॥२॥
गुह्याद्गुह्यतरं तच्च नाख्यातं कस्यचित् क्वचित्। भक्तस् त्वं हि महाभाग वैनतेय ब्रवीमि ते॥३॥
अपुत्रस्य गतिर् नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च। येन केनाऽप्युपायेन कार्यं जन्म सुतस्य हि॥४॥
तारयेन् नरकात् पुत्रो यदि मोक्षो न विद्यते। स्कन्धः पुत्रेण कर्तव्यो ह्यग्निदाता च पौत्रकः॥५॥
तिलदर्भैश् च भूम्यां वै कुटीऋतुमती भवेत्। पञ्च रत्नानि वक्त्रे तु येन जीवः प्ररोहति॥६॥
यदा पुष्पं प्रनष्टं हि क्व तदा गर्भधारणम्। आदराच्च ततो भूमौ येन गर्भं प्रधार्यते॥७॥
लेप्या तु गोमयैर् भूमिस् तिलान् दर्भान् विनिःक्षिपेत्। तस्यामेवातुरो मुक्तः सर्वं दहति किल्बिषम्॥८॥
दर्भतूली नयेत् स्वर्गमातुरस्य न संशयः। दर्भांस्तत्र क्षिपेद् वाथ तूलीगेन्दुकमध्यतः॥९॥

विनतापुत्र, तुम मेरे भक्त हो, इस लिए विभेद से रहित, श्रुति (वेद) से और स्मृति से सङ्गृहीत, और इन्द्रसहित देवताओं ने योगियों ने और योगचिन्तकों ने भी जिस को नहीं देखा है, जिस को अन्य किसी को भी कहीं भी नहीं बताया गया है ऐसा गुह्य से भी गुह्य उस और्ध्वदेहिक विधि को मैं तुम को अच्छी तरह बताता हूँ॥२-३॥ पुत्रहीन मनुष्य की सद्गति नहीं, स्वर्ग भी नहीं नहीं, इस हेतु जिस किसी भी उपाय से पुत्र का जन्म कराना चाहिए॥४॥ यदि पुत्र से मोक्ष न भी हो सकता है तो भी पुत्र नरक से उत्तारण तो करेगा, मृत मनुष्य के सद्गतिक्रिया में पुत्र से कन्धा दिया जाना चाहिए, और पौत्र दहनाग्नि का अग्निसंस्कार करने वाले को देने वाला होना चाहिए॥५॥ मरणासन्न पुरुष की शयनभूमि में तिल और कुश बिछाने से भूमि मृतपुरुष के कुटीरूप अतिवाहशरीर के उत्पादन के लिए ऋतुमती होगी। मरते हुए मनुष्य के मुख में पञ्च रत्न रखे जाते हैं जिस से जीव का प्ररोहण (उद्बोधन) होता है॥६॥ जब पुष्प (आर्तव) ही लुप्त हुआ हो वहाँ गर्भधारण कहाँ से होगा? अत एव भूमि में आदरपूर्वक वह कर्म (तिल कुश बिछाने का काम) करना चाहिए,जिस से अतिवाह शरीर की उत्पत्ति के लिए गर्भधारण होता है॥७॥ भूमि गोबर से लिपी जानी चाहिए, तिल और कुश बिछाना चाहिए, उस भूमि में रखा गया आतुर सब पाप को जला देता है॥८॥ कुश का बिछौना आतुर को स्वर्ग ले जाएगा, इस में सन्देह नहीं है, अथवा वहाँ आतुर के बिछौने और तकिया के बीच में कुश रखे॥९॥

सर्वत्र वसुधा पूता यत्र लेपो न विद्यते। यत्र लेपः स्थितस् तत्र पुनर् लेपेन शुध्यति॥१०॥
यातुधानाः पिशाचाश् च राक्षसाः क्रूरकर्मिणः। अलेपं ह्यातुरं मुक्तं विशन्त्येते वियोनयः॥११॥
नित्यहोमस् तथा श्राद्धं पादशौचं द्विजे तथा। मण्डलेन विना भूम्यामातुरो मुच्यते न हि॥१२॥
ब्रह्मा विष्णुश् च रुद्रश् च श्रीर् हुताशस् तथैव च। मण्डले चोपतिष्ठन्ति तस्मात् कुर्वीत मण्डलम्॥१३॥
अन्यथा म्रियते बालो वृद्धस् तार्क्ष्य युवाऽथ वा। योन्यन्तरं न गच्छेत् स क्रीडते वायुना सह॥१४॥
मिश्रितं लोहितामिश्रं तदेवं जन्म जायते। तस्यैव वायुभूतस्य न श्राद्धं नोदकक्रिया॥१५॥
मम स्वेदसमुद्भूतास् तिलास् तार्क्ष्य पवित्रकाः। असुरा दानवा दैत्या विद्रवन्ति तिलैस् तथा॥१६॥
तिलाः श्वेतास् तिलाः कृष्णास् तिला गोमूत्रसन्निभाः। दहन्तु ते मे पापानि शरीरेण कृतानि वै॥१७॥

जहाँ लेप नहीं है वहाँ सर्वत्र भूमि शुद्ध होती है, जहाँ लेप है वहाँ भूमि फिर लिपने से शुद्ध होती है॥१०॥ लेप से रहित भूमि में छोडे हुए आतुर में यातुधान (यक्ष), पिशाच और राक्षस इत्यादि क्रूर कर्म करने वाले वियोनि के भूत घूस जाते हैं॥११॥ भूमि में मण्डल (जल-भस्मादि से बनाए गए घेरे) के विना नित्य होम, श्राद्ध और ब्राह्मण का पादप्रक्षालन भी नहीं किए जाते हैं, और मरणासन्न आतुर को भी भूमि में मण्डल बनाए विना नहीं छोडा जाता है॥१२॥ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, श्री तथा अग्नि भी मण्डल में उपस्थित होते हैं, इस लिए मण्डल बनाना चाहिए॥१३॥ हे गरुड, यदि मण्डल के विना बालक, वृद्ध अथवा जवान मरता है तो वह अन्य देह प्राप्त नहीं कर सकता है, वायु के साथ में भटकता रहता है॥१४॥ इस प्रकार उस का केवल वायु से मिश्रित और लोहितादि आप्य और पार्थिव तत्त्वजन्य अवयव से रहित जन्म हो जाता है, इस प्रकार वायुरूप में प्राप्त उस मृतक का न तो श्राद्ध सफल होगा न तो उदकदानादि क्रिया ही सफल होगी॥१५॥ हे गरुड, मेरे पसीने से उत्पन्न तिल पवित्र हैं, इस लिए तिल से असुर, दानव और दैत्य भाग जाते हैं॥१६॥ तिल सफेद भी होते हैं, तिल काले भी होते हैं, तिल गोमूत्रवर्ण के भी होते हैं, वे तिल मेरे शरीर से किए गए पापों को दहन करें॥१७॥

एक एव तिलो दत्तो हेमद्रोणतिलैः समः। तर्पणे दानहोमेषु दत्तो भवति चाक्षयः॥१८॥
दर्भा रोमसमुद्भूतास् तिलाः स्वेदेषु नान्यथा। देवता दानवास् तृप्ताः श्राद्धेन पितरस्तथा॥१९॥
प्रयोगविधिना ब्रह्मा विश्वं चाप्युपजीवनात्। अपसव्यादितो ब्रह्मा पितरो देवदेवताः॥२०॥
तेन ते पितरस् तृप्ता अपसव्ये कृते सति। दर्भमूले स्थितो ब्रह्मा मध्ये देवो जनार्दनः॥२१॥
दर्भाग्रे शङ्करं विद्यात् त्रयो देवाः कुशे स्मृताः। विप्रा मन्त्राः कुशा वह्निस्तुलसी च खगेश्वर॥२२॥
नैते निर्माल्यतां यान्ति क्रियमाणाः पुनःपुनः। तुलसी ब्राह्मणा गावो विष्णुरेकादशी खग॥२३॥
पञ्च प्रवहणान्येव भवाब्धौ मज्जतां नृणाम्। विष्णुरेकादशी गीता तुलसी विप्रधेनवः॥२४॥
असारे दुर्गसंसारे षट्पदी मुक्तिदायिनी। तिलाः पवित्रमतुलं दर्भाश् चापि तुलस्यथ॥२५॥

दिया गया एक ही तिल स्वर्ण के द्रोणपरिमित (बत्तीस सेर) कणों के दान से तुल्य है। तर्पण में दान में और होम में प्रयुक्त तिल अक्षय होता है॥१८॥ कुश मेरे (विष्णु के) रोमों से उत्पन्न हैं और तिल मेरे (विष्णु के) पसीने से उत्पन्न हैं, इस में अन्यथा नहीं है, तिल-कुश से देवता और दानव तृप्त होते हैं, तिल-कुशयुक्त श्राद्ध से पितर तृप्त होते हैं॥१९॥ और्ध्वदेहिकादि कृत्यों के प्रयोग के शुद्ध विधि से ब्रह्माजी तृप्त होते हैं, इन कृत्यों से विविध रूप से उपजीवन करने से सम्पूर्ण विश्व ही तृप्त होता है, अपसव्यकरणादि क्रिया से ब्रह्माजी और देवताओं के भी देवता पितरलोग तृप्त होते हैं॥२०॥ इस लिए अपसव्य कर्म किए जाने पर वे पितर तृप्त होते हैं। कुश के मूलभाग में ब्रह्मा बैठे हैं, मध्य में विष्णु बैठे हैं और अग्रभाग में शङ्कर बैठे हुए जाने, इस प्रकार तीनों देवता कुश में बैठे हुए माने गए हैं, हे पक्षियों के स्वामी गरुड, ब्राह्मण, मन्त्र, कुश, अग्नि और तुलसी ये वारवार प्रयोग में लाने पर भी बासी नहीं होते हैं। हे पक्षिन्, तुलसी, ब्राह्मण, गाय, विष्णु और एकादशी ये पाँच संसारसागर में डूबते हुए लोगों के लिए नौकाएँ हैं। इस असार दुष्पार संसार में विष्णु, एकादशी, गीता, तुलसी, ब्राह्मण और गाय इन छः वस्तुओं का समुदाय मुक्तिदायक हैं। तिल बेजोड पवित्र हैं, कुश भी वैसे ही हैं, तुलसी भी वैसी ही है॥२१-२५॥

निवारयन्ति चैतानि दुर्गतिं यान्तमातुरम्। हस्ताभ्यामुद्धरेद् दर्भांस् तोयेन प्रोक्षयेद् भुवि॥२६॥
मृत्युकाले क्षिपेद् दर्भान् करयोरातुरस्य च। दर्भैस्तु क्षिप्यते योऽसौ दर्भैस्तु परिवेष्टितः॥२७॥
विष्णुलोके स वै याति मन्त्रहीनोऽपि मानवः। तूलीं कृत्वा कृतौ पादौ संस्थितौ क्षितिपृष्ठतः॥२८॥
प्रायश्चित्तं विशुद्धाग्नौ संसारेऽसारसागरे। गोमयेनोपलिम्पेत् तु दर्भास्तरणसंस्थिते॥२९॥
येन दत्तेन दानेन सर्वं पापं व्यपोहेति। लवणं तद्रसं दिव्यं सर्वकामप्रदं नृणाम्॥३०॥
यस्मादन्नरसाः सर्वे नोत्कटा लवणं विना। पितॄणां च प्रियं भव्यं तस्मात् स्वर्गप्रदं भवेत्॥३१॥
विष्णुदेहसमुद्भूतो यतोऽयं लवणो रसः। एतत् सलवणं दानं तेन शंसन्ति योगिनः॥३२॥
ब्राह्मणक्षत्रियविशां स्त्रीणां शूद्रजनस्य च। आतुरस्य यदा प्राणा न यान्ति वसुधातले॥३३॥

ये पदार्थ दुर्गति में जाते हुए आतुर को रोकते हैं। कुशों को हाथों से ले और उन कुशयुक्त हाथों से भूमि में जल छिडके॥२६॥ मृत्यु के समय में आतुर के हाथों में भी कुश रख दे। जो कुशों में रखा जाता है और जो कुशों से घिरा जाता है, वह मनुष्य मन्त्रहीन होने पर भी विष्णुलोक को जाता है। कुशयुक्त बिछौना बनाकर सुलाए गए जिस आतुर के पैर भूमि में पडे हैं, इस असार संसार में जिस का गोबर लिपी हुई भूमि में कुशयुक्त बिछौने में रहते हुए प्रायश्चित्त हुआ है उस के सब पाप अत्यन्त शुद्ध अग्नि में भस्म हो जाते हैं॥२७-२९॥ जिस लवण (नमक) को दिए जाने से दान के द्वारा सभी पापों को मनुष्य हटाता है, दिए जाने से वह दिव्य रस लवण मनुष्यों के सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाला है॥३०॥ क्योंकि लवण के अभाव में अन्न के सभी रस स्वादिष्ठ रूप में अभिव्यक्त नहीं हो सकते हैं, और लवण पितरों का भी प्रिय और कल्याणकारक है, इस लिए दान में देने पर लवण स्वर्गदायक होता है॥३१॥ क्योंकि यह लवणरस विष्णु के देह से उत्पन्न हुआ है, इस कारण से लवणयुक्त दान की तत्त्वदर्शी लोग प्रशंसा करते हैं॥३२॥ जिस समय में इस भूतल में मरणासन्न ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण के आतुरों का, स्त्रियों का तथा शूद्रजन का भी प्राण स्वाभाविक रूप से सुख से नहीं जाते हैं

लवणं तु तदा देयं द्वारस्योद्घाटनं दिवः। अन्यच् च शृणु पक्षीन्द्र मृत्यो रूपं प्रपञ्चतः॥३४॥
यस्य कालेन नो यायाद् वियोगः प्राणदेहयोः। प्राणिनश्च स्वसमये मृत्युरत्यन्तविस्मृतिः॥३५॥
यथा वायुर् जलधरान् विकर्षति यतस्ततः। तद्वज् जलदवत् तार्क्ष्य कालस्यैव वशानुगाः॥३६॥
सात्त्विका राजसाश् चैव तामसा ये च केचन। भावाः कालात्मकाः सर्वे प्रवर्तन्ते हि जन्तुषु॥३७॥
आदित्यश् चन्द्रमाः शम्भुरापो वायुः शतक्रतुः। अग्निः खं पृथिवी मित्र ओषध्यो वसवस् तथा॥३८॥
सरितः सागराश्चैव भावाभावौ च सर्पहन्। सर्वे कालेन सृज्यन्ते संक्षिप्यन्ते यथा पुनः॥३९॥
कालेन संह्रियन्ते च नूनं मृत्यावुपस्थिते। दैवयोगात् तदा व्याधिः कश्चिदुत्पद्यते खग॥४०॥
वैकल्यमिन्द्रियाणां च बलौजोरंहसां भवेत्। युगपद् वृश्चिककोटिशूकदंशो भवेद् यदि॥४१॥

उस समय में स्वर्गद्वार को खोलने वाले लवण का दान देना चाहिए। हे पक्षी में श्रेष्ठ गरुड, और भी सुनो, मृत्यु के रूप को विस्तार से बताता हूँ। जो अपने काल आने पर किसी से दूर नहीं जाता है, प्राण का और स्थूल देह का वियोग जिस का रूप हैं, वही अपने समय में प्राणी का अपने इस जीवन का अत्यन्त विस्मरण ही मृत्यु है॥३३-३५॥ जैसे वायु बादलों को जिधर भी ले जा सकता है वैसे ही, हे गरुड, बादल की तरह ही प्राणी काल के ही वश में चलने वाले हैं॥३६॥ जो कोई भी सात्त्विक, राजस और तामस भाव हैं, वे सब ही प्राणियों में काल के रूप में ही प्रवृत्त होते हैं॥३७॥ हे सर्पो को मारने वाले गरुड, सूर्य, चन्द्र, शिव, जल, वायु, इन्द्र, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, मित्रदेव, ओषधि-वनस्पति, वसुगण, नदी, समुद्र और जिस किसी भी पदार्थ का भाव और अभाव सभी ही काल से ही उत्पन्न किए जाते हैं और फिर क्षीण भी किए जाते हैं॥३८-३९॥ उक्त सूर्यादि सभी पदार्थ काल से ही निश्चित रूप में संहत (नष्ट) किये जाते हैं। हे पक्षिन्, मृत्यु समीप में आने पर दैवयोग से उस समय में प्राणी में कोई रोग उत्पन्न होता है॥४०॥ उस समय में इन्द्रियों की स्वकार्यों में असमर्थता, बल, ओज और गति में भी विकलता होती है। यदि कभी एक ही साथ करोंडों बिच्छुओं के नोक से दंश हो जाय तो उस समय में उस बिच्छुओं के दंश से हुई

तदाऽनुमीयते तेन पीडा मृत्युभवा खग। ततः क्षणेन चैतन्ये विकले जडतां गते ॥४२॥
प्रचाल्यन्ते ततः प्राणा याम्यैर् निकटवर्तिभिः। बीभत्सं तु तदा रूपं प्राणैः कण्ठगतैर् भवेत् ॥४३॥
फेनमुद्गिरते सोऽथ मुखं लालाकुलं भवेत्। अङ्गुष्ठमात्रपुरुषो हाहा कुर्वंस्ततस्तनोः ॥४४॥
तदैव नीयते दूतैर् याम्यैर् वीक्षन् स्वकं गृहम्। भूय एव हि ते तात मृत्युकालदशामिमाम् ॥४५॥
उष्मा प्रकुपितः काये तीव्रवायुसमीरितः। भिनत्ति मर्मस्थानानि दीप्यमानो निरिन्धनः ॥४६॥
उदानो नाम पवनस् ततश् चोर्ध्वं प्रवर्तते। भक्तानामबुभुक्षाणामधोगतिनिरोधकृत् ॥४७॥
यैर् नानृतानि चोक्तानि प्रीतिभेदः कृतो न च। आस्तिकः श्रद्दधानश् च स सुखं मृत्युमृच्छति ॥४८॥
यो न कामान् न संरम्भान् न द्वेषाद् धर्ममुत्सृजेत्। यथोक्तकारी सौम्यश् च स सुखं मृत्युमृच्छति ॥४९॥

पीडा से मृत्यु से होने वाली पीडा का अनुमान हो सकता है। वैसी पीडा होने के बाद क्षण में ही चेतना विकल होकर जडता प्राप्त होने पर समीप में रहने वाले यमदूतों से मरणासन्न प्राणी के प्राण खिंचे जाते हैं। जब निकलते हुए प्राण गले में पहुँचते हैं उस समय में प्राणी का रूप बीभत्स हो जाता है॥४१-४३॥ वह प्राणी फेन उगलता है, उस का मुख लार से पूर्ण हो जाता है। उस समय में यम के दूतों से हाहा चिल्लाता हुआ और अपने घर को देखता हुआ सूक्ष्मशरीर वाला अँगूठे का परिमाण का प्राणी स्थूल शरीर से खींचकर ले जाया जाता है। हे वत्स गरुड, इस मृत्युकाल की दशा को फिर भी तुम को बताता हूँ॥४४-४५॥ शरीर में प्रकुपित ऊष्मा तीव्र वायु से प्रेरित होकर प्रदीप्त होता हुआ अन्य इन्धन से रहित होने से शरीर के मर्मस्थानों को फोडता है॥४६॥ उस समय में भूख से रहित प्राणियों के खाए हुए अन्न को अधोगमन को रोकने वाला उदाननामक वायु ऊर्ध्व गति वाला हो जाता है॥४७॥ जिन्हों ने झूठ नहीं बोला है, जिन्हों ने मित्रों में और दम्पतियों में परस्पर में प्रेम का भेदन नहीं किया है, जो वेदों में प्रतिपादित पुनर्जन्मादि में विश्वास करने वाला और गुरु और शास्त्र में श्रद्धा करने वाला है वह सरल और कष्टरहित मृत्यु को पाता है॥४८॥ जो भोगेच्छा से, किसी आवेग से और द्वेषभाव से भी धर्म को नहीं छोडता है, जो शास्त्रोक्त कर्तव्यों का करने वाला और शीतल कोमल स्वभाव का है वह सरल और कष्टरहित मृत्यु को पाता है॥४९॥

मोहज्ञानप्रदातारः प्राप्नुवन्ति महत् तमः। कूटसाक्षी मृषावादी ये च विश्वासघातकाः॥५०॥
ते मोहं मृत्युमृच्छन्ति तथा ये वेदनिन्दकाः। विभीषकाः पूतिगन्धा यष्टिमुद्गरपाणयः॥५१॥
आगच्छन्ति दुरात्मानो यमस्य पुरुषास्तदा। प्राप्ते तु दृक्पथे घोरे जायते तस्य वेपथुः॥५२॥
क्रन्दत्यविरतं सोऽपि पितृमातृसुतानपि। सास्य वागस्फुटा यत्नेनैकवर्णा विभासते॥५३॥
दृष्टिर् वै भ्राम्यते त्रासाच् छ्वासाच् छुष्यति चाननम्। स ततो वेदनाविष्टस् तच्छरीरं विमुञ्चति॥५४॥
अस्पृश्यं कुत्सनीयं च तत्क्षणादेव जायते। उक्तं मृत्योः स्वरूपं तु प्रसङ्गादन्यदप्यथ॥५५॥
वैचित्र्यस्योत्तरं प्रश्ने द्वितीयस्य वदामि ते। कर्मणां प्राक्तनानां तु सदसत्त्वेन भेदतः॥५६॥
भवेद् भोगस्य वैचित्र्यं भ्राम्यतां प्राणिनामिह। देवत्वमसुरत्वं च यक्षत्वादि सुखप्रदम्॥५७॥

जो लोग धर्मादि पुरुषार्थों के भ्रमात्मक ज्ञान को प्रचार करने वाले हैं वे अन्धतामिस्र नरक में पहुँचते हैं, बनावटी गवाही देने वाला, भूठ बोलने वाला और जो विश्वासघातक होते हैं और जो वेद की निन्दा करने वाले हैं वे प्राप्तव्य परलोक की सद्गति की चेतना से रहित होकर मृत्यु में पहुँचते हैं। पापी के मृत्यु के समय में डर देने वाले, दुर्गन्धयुक्त और हाथ में लाठी और हथौडा लेते हुए तथा क्रूर हृदय वाले यमराज के पुरुष आगे आते हैं। दृष्टिपथ में ऐसे घोर दृश्य आने से उस मरणासन्न पापी के शरीर में कम्पन होता है॥५०-५२॥ वह मरणासन्न प्राणी निरन्तर पिता माता और पुत्रों को पुकारता है। उस की वह पुकार की वाणी अस्पष्ट होती है और बडे यत्न से उच्चरित उन शब्दों के एक एक अक्षर ही सुने जा सकते हैं॥५३॥ डर से दृष्टि घूमती है, श्वास से मुह सूख जाता है, तव वह पीडा से पूर्ण होकर उस स्थूल शरीर को छोड देता है॥५४॥ उस का वह स्थूल शरीर तत्काल में ही अस्पृश्य और हटाने योग्य हो जाता है। प्रसङ्ग से मृत्यु का और भी स्वरूप बताया गया, अब तुम्हारा प्राणी की शरीर-भोगादि की विचित्रता का जो द्वितीय प्रश्न था उस प्रश्न में उत्तर बताता हूँ। पूर्वजन्म के कर्मों के सद्रूप और असद्रूप भेदों से इस लोक में घूमने वाले प्राणियों के भोग की भी विभिन्नता होती है। हे पक्षियों के स्वामी गरुड, पूर्वकर्म के तारतम्य से ही सुखप्रद देवत्व, असुरत्व, यक्षत्व इत्यादि

मानुषत्वं पशुत्वं च पक्षित्वाद्यतिदुःखदम्। कर्मणां तारतम्येन भवतीह खगेश्वर॥५८॥
अत्र ते कीर्तयिष्यामि विपाकं कर्मणामहम्। वैचित्र्यस्य स्फुटत्वाय यैर् जीवः संसरत्ययम्॥५९॥
महापातकजान् घोरान् नरकान् प्राप्य दारुणान्। कर्मक्षयात् प्रजायन्ते महापातकिनः क्षितौ॥६०॥
जायन्ते लक्षणैर् यैस् तु तानि मे शृणु सत्तम। मृगाश्वसूकरोष्ट्राणां ब्रह्महा योनिमृच्छति॥६१॥
कृमिकीटपतङ्गत्वं स्वर्णहारी समाप्नुयात्। तृणगुल्मलतात्वं च क्रमशो गुरुतल्पगः॥६२॥
ब्रह्महा क्षयरोगी स्यात् सुरापः श्यावदन्तकः। हेमहारी तु कुनखी दुश्चर्मा गुरुतल्पगः॥६३॥
यो येन संवसत्येषां स तल्लिङ्गोऽभिजायते। संवत्सरेण पतति पतितेन सहाऽऽचरन्॥६४॥

और अतिदुःखप्रद मनुष्यत्व, पशुत्व और पक्षित्व इत्यादि भी होता है॥५५-५८॥ जीवों के शरीर-भोगादि की विचित्रता को स्पष्ट करने के लिए यहाँ मैं यह जीव जिन सत् अथवा असत् कर्मों से संसार में घूमता है उन कर्मों का विपाक (फल) तुम को बताउँगा॥५९॥ ब्रह्मघाती, सुरा पीने वाला द्विजाति, ब्राह्मण का कर्षमित स्वर्ण चोरने वाला चोर, गुरु की स्त्री में गमन करने वाला पुरुष, और इन चार प्रकार के लोगों से विशेष सम्पर्क करने वाला पुरुष ये पाँच प्रकार के महापातकी लोग महापातक से प्राप्त होने वाले भयङ्कर और अतिकष्टपूर्ण नरकों में पडकर दुःखभोग से पापकर्म का क्षय होने पर भूलोक में जन्म पाते हैं॥६०॥ हे सज्जन, भूलोक में जन्मते हुए वे महापातकी जिन लक्षणों से युक्त होकर जन्मते हैं उन लक्षणों को मेरी ओर से सुनो। ब्रह्मघाती मृग, घोडा, सूअर और ऊँट की योनि में जाता है॥६१॥ ब्राह्मण का कर्षमित वा उस से ज्यादा सोना चुराने वाला चोर सूक्ष्म कीट, कीट और पतङ्ग का जन्म पाएगा। गुरु की स्त्री में गमन करने वाला क्रम से घास, झुरमुट और लता का जन्म पाएगा॥६२॥ ब्रह्मघाती मनुष्य जन्म पाने पर भी क्षयरोगी (तपेदिक का बीमार) होगा, सुरा पीने वाला द्विजाति मृतदन्त वाला (नीले दाँतों से युक्त), स्वर्ण चुराने वाला नखप्रान्तपाक वाला होगा, गुरु के स्त्री में गमन करने वाला रोगाक्रान्त चर्म वाला होगा॥६३॥ जो मनुष्य उक्त महापातकियों में से जिस के साथ में वर्षदिन तक अथवा उस से ज्यादा सहवास करेगा वह उसी के चिह्न से युक्त जन्म पाता है। पतित (महापातकी) के साथ व्यवहार करने पर एक बरस में पतित (महापातकी) हो जाता है॥६४॥

संलापस्पर्शनिःश्वाससहयानाशनासनात्। याजनाध्यापनाद् यौनात् पापं संक्रमते नृणाम्॥६५॥
गत्वा दारान् परेषां च ब्रह्मस्वमपहृत्य च। अरण्ये निर्जने देशे जायते ब्रह्मराक्षसः॥६६॥
हीनजातौ प्रजायेत रत्नानामपहारकः। पत्रं च शाखिनो हृत्वा गन्धांश् छुच्छुन्दरी पुमान्॥६७॥
मूषको धान्यहारी स्याद् यानमुष्ट्रः फलं कपिः। निर्मन्त्रभोजनात् काको गृध्रो हृत्वा ह्युपस्करम्॥६८॥
मधु दंशः फलं गृध्रो गां गोधाऽग्निं बकस् तथा। स्याच् छ्वेतकुष्ठी स्त्रीवस्त्रं ह्यरुची रसहारकः॥६९॥
कांस्यहारी तु हंसः स्यात् परस्वस्य च हारकः। अपस्मारी गुरोर् हन्ता क्रूरकृद् वामनो भवेत्॥७०॥
धर्मपत्नीं त्यजञ् छब्दवेधी प्राणी भवेत् क्षितौ। देवविप्रस्वापहारी पाण्डुरः परमांसभुक्॥७१॥

मिलकर बातचित करने से, छूने से, निश्श्वास के सम्पर्क से, मिलकर यात्रा करने से, एक पङ्क्ति में मिलकर भोजन करने से, एक आसन में मिलकर बैठने से, यज्ञ कराने से, विधिवत् वेद पढाने से, और पुत्री-भगिन्यादि के लेनदेन से मनुष्यों में एक से दूसरे में पाप जाता है॥६५॥ दूसरे की पत्नी में गमन करने से और ब्राह्मण का कोई भी द्रव्य लेने से मनुष्य मरने के बाद निर्जन वन में ब्रह्मराक्षस हो जाता है॥६६॥ रत्नों का अपहरण करने वाला हीन जाति में जन्मेगा और वृक्ष के पत्र का और सुगन्धी द्रव्य का हरण करके पुरुष छुछुन्दर होगा॥६७॥ धान्य की चोरी करने वाला चूहा होगा, वाहन की चोरी करने वाला ऊँट होगा और फल चुराने वाला बन्दर होगा। विना मन्त्र भोजन करने वाला कौआ होगा और घर का सामान चुराने वाला गिद्ध होगा॥६८॥ मधु चुराने वाला वनमक्षिका होगा, फल चुराने वाला गिद्ध होगा, गाय चुराने वाला गोह, और अग्नि चुराने वाला बगला होगा; स्त्री का वस्त्र चुराने वाला श्वेतकुष्ठरोगी (कोढी) होगा और मधुर-अम्लादि रस चुराने वाला अरोचकरोगग्रस्त होगा॥६९॥ कांस्य चुराने वाला और किसी भी प्रकार का परधन चुराने वाला हाँस होगा, गुरु को मारने वाला अपस्मार (मिर्गी) रोग से ग्रस्त होगा, क्रूर कार्य करने वाला बौना होगा॥७०॥ धर्म के लिए व्याही गई पत्नी को त्यागने वाला पुरुष इस भूमि में शब्दवेधी प्राणी होगा। देवता का द्रव्य और ब्राह्मण का द्रव्य चुराने वाला और परमांस खाने वाला श्वेतत्वचा वाला होगा॥७१॥

भक्ष्याभक्ष्यो गण्डमाली महारोगी प्रजायते। न्यासापहारी काणः स्यात् स्त्रीजीवः खञ्जको भवेत्॥
कौमारदारत्यागी च दुर्भगोऽथैकमिष्टभुक्। वातगुल्मी विप्रयोषिद्गामी वा जम्बुको भवेत्॥७३॥
शय्याहर्ता क्षपणकः पतङ्गो वस्त्रहारकः। मात्सर्य्यादपि जात्यन्धो कपाली दीपहारकः॥७४॥
कौशिको मित्रहन्ता च क्षयी पित्रादिनिन्दकः। स्खलद्वागनृतवादी कूटसाक्षी जलोदरी॥७५॥
मशकः सोऽथ च्छिन्नोष्ठो विवाहे विघ्नकृद् भवेत्। स्याद् वाथ वृषलः सोऽयं चत्वरे वै विण्मूत्रकृत्॥७६॥
मूत्रकृच्छ्री दूषकस् तु कन्यायाः क्लीबतामियात्। द्वीपी स्याद् वेदविक्रेता वराहोऽयाज्ययाजकः॥७७॥
यतस्ततोऽश्नन् मार्जारो खद्योतो वनदाहकः। कृमिः पर्युषितादः स्यान् मत्सरी भ्रमरो भवेत्॥७८॥

अभक्ष्य भी जिस का भक्ष्य है वह गण्डमाला नाम के महारोग से पीडित होता है। धरोहर का अपहरण करने वाला काना होगा और स्त्री के काम के आधार में जीविका करने वाला लंगडा होगा॥७२॥ कुमारी अवस्था में धर्म के लिए विवाहित पत्नी को त्याग करने वाला पुरुष दूसरे जन्म में स्त्रियों का अप्रिय होगा, अकेला मिष्टान्न खाने वाला वातगुल्म रोग से पीडित होगा, ब्राह्मण की स्त्री में गमन करने वाला सियार होगा॥७३॥ शय्या का हरण करने वाला नङ्गा रहने वाला होगा, वस्त्र चुराने वाला पतङ्ग होगा। दूसरे के उत्कर्ष को देखकर अकारण भीतर-भीतर जलने वाला व्यक्ति जन्मान्ध होगा, दीपक चुराने वाला कपाल लेकर भीख माँगने वाला होगा॥७४॥ मित्र की हत्या करने वाला उल्लू होगा, पिता माता इत्यादि मान्य जनों का निन्दक क्षयरोगी होगा, झूठा बोलने वाला हकलाने वाला होगा, बनावटी गवाह देने वाला जलोदररोग से पीडित होगा॥७५॥ विवाह में विघ्न करने वाला मच्छर होगा, और फिर मनुष्य जन्म मिलने पर भी कटा हुआ होठ वाला होगा, अथवा वह शूद्र होगा। चत्वर में मल-मूत्र करने वाला मूत्रकृच्छ्र रोग से पीडित होगा। कन्या को दूषित करने वाला पुरुष नपुंसक (हिजडा) होगा। वेद मन्त्रों का धन के लिए अशास्त्रीय प्रयोग करने वाला दूसरे जन्म में बाघ होगा, यज्ञ कराने में अयोग्य व्यक्ति को यज्ञ कराने वाला वन्यसूकर होगा॥७६-७७॥ जहाँ कहीं जिस किसी का अन्न खाने वाला बिलार होगा, वन को जलाने वाला जुगुनू होगा, बासी खाने वाला कीडा होगा, दूसरे के उत्कर्ष को देखकर भीतर ही भीतर जलने वाला व्यक्ति भौंरा होगा॥७८॥

अग्न्युत्सादी तु कुष्ठी स्याददत्ताऽऽदानतो वृषः। सर्पो गोहारकोऽन्नस्य हारकः स्यादजीर्णवान्॥७९॥
जलहारी तु मत्स्यः स्यात् क्षीरहारी बलाकिका। अन्नं पर्युषितं विप्रे प्रददत् कुब्जतां व्रजेत्॥८०॥
फलानि हरते यस्तु सन्ततिर् म्रियते खग। अदत्त्वा भक्ष्यमश्नाति ह्यनपत्यो भवेन् नरः॥८१॥
प्रव्रज्याऽऽगमनाद् राजन् भवेन् मरुपिशाचकः। चातको जलहर्ता स्याज् जन्मान्धः पुस्तकं हरन्॥८२॥
प्रतिश्रुत्य द्विजेभ्योऽर्थमददज् जम्बुको भवेत्। परिवादाद् द्विजातीनां लभते काच्छपीं तनुम्॥८३॥
दुर्भगः फलविक्रेता वृकश् च वृषलीपतिः। मार्जारोऽग्निं पदा स्पृष्ट्वा रोगवान् परमांसभुक्॥८४॥
जलप्रस्रवणं यस्तु भिन्द्यान् मत्स्यो भवेन् नरः। हरेः कथां न शृण्वन्ति ये न साधुजनस्तवम्॥८५॥
तान् नरान् कर्णमूलोऽयं व्याप्नुयान् नेतराञ् जनान्। परस्याऽऽननसंस्थं यो ग्रासं हरति मन्दधीः॥८६॥

श्रौत वा गृह्य अग्नि का उत्सादन (त्याग) करने वाला व्यक्ति कोढी होगा, न दिया हुआ परद्रव्य को लेने वाला व्यक्ति बैल होगा। गाय का हरण करने वाला सर्प होगा, अन्न का हरण करने वाला अपच रोग से ग्रस्त होगा॥७९॥ जल चुराने वाला मछली होगा, दूध चुराने वाला छोटी जाति का बगला होगा। ब्राह्मण को बासी अन्न देने वाला कुबडा होगा॥८०॥ हे पक्षिन्, जो फलों का हरण करने वाला है उस के बच्चे मरेंगे, ब्राह्मण को अथवा ब्रह्मचारी अथवा सन्न्यासी भिक्षुक को दिए विना भोजन करने वाला सन्तानहीन होगा॥८१॥ हे पक्षिराजन्, सन्न्यास से पूर्वाश्रम में लौटने से मनुष्य मरुभूमि में पिशाच होगा, जल चुराने वाला पपीहा होगा, पुस्तक चुराने वाला जन्म से ही अन्धा होगा॥८२॥ कोई वस्तु देने का वचन देकर भी ब्राह्मणों को वह वस्तु न देने वाला सियार होगा, ब्राह्मणों के विद्यमान दोषों को वारवार कहने वाला कछुए का देह प्राप्त करेगा॥८३॥ फल बेचने वाला स्त्रियों के लिए अमनोहारी होगा, शूद्रस्त्री का पति होने वाला द्विजाति भेडिया होगा, आग को पैर से छूने से बिलार होगा, दूसरे के स्वामित्व का मांस खाने वाला कडे रोगों से ग्रस्त होगा॥८४॥ जो मनुष्य जल की द्रोणी को तोडेगा वह मछली होगा; जो मनुष्य हरि की कथा का और सज्जनों की प्रशंसा का अनादर करेगा उन को कर्णमूल में शोथ अथवा पाक होने का रोग व्याप्त करेगा, अन्य लोगों को नहीं। जो मनुष्य दूसरे के मुह का ग्रास छिनेगा वह मन्दबुद्धि होगा॥८५-८६॥

देवोपकरणान्येनं गण्डमालिनमीहते। दम्भेनाचरते धर्मं गजचर्मा भवेत् तु सः॥८७॥
शिरोऽर्तिप्रमुखा रोगा यान्ति विश्वासघातकम्। लिङ्गपीडी शिवस्वं च शिवनिर्माल्यमेव च॥८८॥
स्त्रियोऽप्यनेन मार्गेण हृत्वा दोषमवाप्नुयुः। एतेषामेव जन्तूनां भार्यात्वमुपजायते॥८९॥
भोगान्ते नरकस्यैतत् सर्वमित्यवधारय। खग प्रदर्श्यमेतत् तु मयोक्तं ते समासतः।
द्रव्यप्रकारा हि यथा तथैव प्राणिजातयः॥९०॥

एवं विचित्रैर् निजकर्मभिर् नृणां सुखस्य दुःखस्य च जन्मनामपि।
वैचित्र्यमुक्तं शुभकर्मतः शुभं तथाऽशुभाच् चाऽशुभमीरयन्ति॥९१॥

जो मनुष्य देवपूजा के अथवा देवालय के उपकरणों (सामानों) का हरण करेगा वह दूसरे जन्म में गण्डमाला रोग से ग्रस्त देह को चाहता है। जो दिखावे के लिए धर्म का आचरण कता है वह हाथी के चमडे के तुल्य चमडा वाला होगा॥८७॥ विश्वासघात करने वाले को शिरश्शूल (सिर का दर्द) इत्यादि कडे रोग लगेंगे। शिवालय के धन और शिव का नैवेद्य को हरण करने वाला जननेन्द्रिय की पीडा से युक्त होगा॥८८॥ स्त्रियाँ भी चोरी करने से इसी प्रकार से दोषफलभागिनी होंगीं। पाप करने वाली स्त्रियों को भी उस उस पाप के फल पाने वाले पुरुष की भार्यात्व प्राप्त होता है॥८९॥ ये जो पाप के चिह्न हैं वे उस उस पाप से प्राप्त होने वाले नरक के भोग के बाद प्राप्त होने वाले जन्म में दिखाई देने वाले चिह्न हैं, इस बात को निश्चित रूप से जानो। हे पक्षिन्, यह पाप फलों का प्रदर्शन मैं ने तुम को संक्षेप में बताया है। दुष्कर्म के विषयभूत जैसे जैसे द्रव्य होंगे वैसी वैसी प्राणियों की जातियाँ होंगी॥९०॥ इस प्रकार मनुष्यों के अपने अपने विविध कर्मों से मनुष्यों के सुखदुःखों में और जन्मों में भी विविधता होने की बात श्रुति-स्मृति शास्त्रों में बताई गई है, शुभ कर्मों से शुभ फल और अशुभ कर्मों से अशुभ फल प्राप्त होने की बात शास्त्र बताते हैं॥९१॥

एतत् ते सर्वमाख्यातं यत् पृष्टोऽहमिह त्वया॥९२॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे औध्र्वदेहिकविधिकर्मविपाकयोर् वर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

सूत उवाच

एवमुत्साहितः पक्षी स्वरूपं निरयस्य तु। पप्रच्छ नरकाण्येवं श्रुत्वा चोत्कूलितान्तरः॥१॥

गरुड उवाच

नरकाणां स्वरूपं मे वद येषु विकर्मिणः। पात्यन्ते दुःखभूयिष्ठास् तेषां भेदांश् च कीर्तय॥२॥

तुम ने हम को जो पूछा यह सब हम ने बता दिया॥९२॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में औध्र्वदेहिक विधि और कर्मफल का वर्णन करने वाला द्वितीय अध्याय समाप्त हुआ॥२॥

सूतजी ने कहा— इस प्रकार से उत्साहित किए गए और नरक के स्वरूप को सुनकर कौतुहल से युक्त हृदय वाले पक्षी गरुडजी ने नरकों के विषय में पूछा॥१॥ **गरुड ने कहा—** जिन में पापी लोग भेजे जाते हैंऔर पापी लोग बडा कष्ट भोगते हैं उन नरकों के स्वरूप को बताएँ और नरकों के भेदों का भी वर्णन करें॥२॥

श्रीभगवानुवाच

नरकाणां सहस्राणि वर्तन्ते ह्यरुणानुज। शक्यं विस्तरतो नैव वक्तुं प्राधान्यतो ब्रुवे ॥३॥
रौरवं नाम नरकं मुख्यं तद् वै निबोध मे। रौरवे कूटसाक्षी तु याति यश् चानृती नरः ॥४॥
योजनानां सहस्रे द्वे रौरवो हि प्रमाणतः। जानुमात्रप्रमाणं तु तत्र गर्त सुदुस्तरम् ॥५॥
तत्राङ्गारचयौघेन कृतं तद् धरणीसमम्। तत्राग्निना सुतीव्रेण तापिताङ्गारभूमिना ॥६॥
तन्मध्ये पापकर्माणं विमुञ्चन्ति यमानुगाः। स दह्यमानस्तीव्रेण वह्निना परिधावति ॥७॥
पदेपदे च पादोऽस्य स्फुट्यते शीर्यते पुनः। अहोरात्रेणोद्धरणं पादन्यासेन गच्छति ॥८॥
एवं सहस्रं विस्तीर्णं योजनानां विमुच्यते। ततोऽन्यत् पापशुद्ध्यर्थं तादृङ्निरयमृच्छति ॥९॥

श्रीभगवान् ने कहा— हे अरुण के छोटे भाइ गरुड, नरक तो हजारों हैं, अत एव उन को विस्तार से नहीं कहा जा सकता है, अतः मैं प्रमुख नरकों को बताता हूँ ॥३॥ रौरव नाम का नरक है, वह मुख्य नरक है, यह बात मुझ से जानो। बनावटी गवाह देने वाला व्यक्ति और वारवार झूठ का सहारा लेने वाला व्यक्ति रौरव नरक में पडता है ॥४॥ रौरव नरक का विस्तार दो हजार योजन है। उस में घुटने तक की गहराई से युक्त और अति कष्ट से पार किए जाने वाला गड्ढा है ॥५॥ वहाँ वह गड्ढा सुतीव्र और अङ्गारयुक्त भूमि को तापित करने वाले अग्नि से दहकते हुए कोयलों के ढेर से भरकर पृथ्वीतल से बराबरी में लाया गया है ॥६॥ यम के अनुचर पाप कर्म करने वाले को उस गड्ढे के बीच में छोडदेते हैं। वह तीव्र अग्नि से दग्ध होकर दौडता है ॥७॥ पग पग में इस का पैर फूटता है और टूटता है। एक-एक अहोरात्र में एक-एक वार पैर उठाता हुआ वह पापी वहाँ चलता है ॥८॥ इस प्रकार हजार योजन विस्तीर्ण नरक से वह पार पाता है। फिर पाप से छुटकारा पाने के लिए उसी प्रकार के कष्टप्रद द्वितीय नरक में जाता है ॥९॥

रौरवस्ते समाख्यातः प्रथमो नरको मया। महारौरवसंज्ञं तु शृणुष्व नरकं खग॥१०॥
योजनानां सहस्राणि सन्ति पञ्च समन्ततः। तत्र ताम्रमयी भूमिरधस्तस्या हुताशनः॥११॥
तया तपन्त्या सा सर्वा प्रोद्यद्विद्युत्समप्रभा। विभाव्यते महारौद्रा पापिनां दर्शनादिषु॥१२॥
तस्यां बद्धकराभ्यां च पद्भ्यां चैव यमानुगैः। मुच्यते पापकृन् मध्ये लुण्ठमानः स गच्छति॥१३॥
काकैर् बकैर् वृकोलूकैर् मशकैर् वृश्चिकैस्तथा। भक्ष्यमाणैस् तथा रौद्रैर् गतो मार्गे विकृष्यते॥१४॥
दह्यमानो गतमतिर् भ्रान्तस् तातेति चाकुलः। वदत्यसकृदुद्विग्नो न शान्तिमधिगच्छति॥१५॥
एवं तस्मान् नरैर् मोक्षस् त्वतिक्रान्तैरवाप्यंते। वर्षायुतायुतैः पापं यैः कृतं दुष्टबुद्धिभिः॥१६॥
तथान्यस् तु तमो नाम सोऽतिशीतः स्वभावतः। महारौरववद् दीर्घस् तथान्धतमसा वृतः॥१७॥

रौरव नाम का पहला नरक मैं ने तुम को बता दिया, हे गरुड, महारौरवनामक नरक को तुम सुनो॥१०॥ उस में चारों ओर पाँच हजार योजन हैं, वहाँ भूमि ताँबे की है और उस के नीचे आग है॥११॥ तपती हुई उस ताँबे की भूमि के कारण से वह सम्पूर्ण महारौरवभूमि पापियों के लिए दर्शन-स्पर्शनादि में अत्यन्त भयङ्कर और चमकती हुई बिजली की प्रभा की तरह दिखाई देती है॥१२॥ उस महारौरवभूमि में पापी हाथों और पैरों को बाँधकर यमानुचरों से छोडा जाता है और वह उस में लुढकता हुआ चलता है॥१३॥ उस भूमि में लुढका हुआ वह पापी खाते हुए कौए, बगुले, भेडिये, उलूकों, मच्छरों और बिच्छुओं से रास्ते में खींचा जाता है॥१४॥ सन्तप्त होता हुआ वह पापी कर्तव्यबुद्धिरहित, भ्रान्त और व्याकुल तथा तरसा हुआ बनकर वारवार बाप-बाप चिल्लाता है, शान्ति नहीं पाता है॥१५॥ जिन दुष्टबुद्धि वाले लोगों ने पाप किया है उन लोगों से दश करोड वर्ष बीतने पर उस नरक से पार पाया जाता है॥१६॥ उसी प्रकार तम नामक तीसरा नरक है, वह नरक स्वभाव से ही अत्यन्त ठण्डा, महारौरव जैसे ही लम्बा और गाढ अन्धकार से ढका हुआ है (इसी नरक को अतिशीत भी कहा जाता है ३।४७)॥१७॥

शीतार्तास् तत्र बध्यन्ते नरास्तमसि दारुणे। परस्परं समासाद्य परिरभ्याऽऽश्रयन्ति ते॥१८॥
दन्तास् तेषां च भज्यन्ते शीतार्तिपरिकम्पिताः। क्षुत्तृषातिबलाः पक्षिन्नथ तत्राप्युपद्रवाः॥१९॥
हिमखण्डवहो वायुर् भिनत्त्यस्थीनि दारुणः। मज्जासृगस्थिगलितमश्नन्त्यत्र क्षुधान्विताः॥२०॥
आलिङ्ग्यमाना भ्राम्यन्ते परस्परसमागमे। एवं तत्रापि सुमहान् क्लेशस्तमसि मानवैः॥२१॥
प्राप्यते शकुनिश्रेष्ठ यो बहूकृतसञ्चयः। निकृन्तन इति ख्यातस्ततोऽन्यो नरकोत्तमः॥२२॥
कुलालचक्राणि तत्र भ्राम्यन्त्यविरतं खग। तेष्वारोप्य निकृत्यन्ते कालसूत्रेण मानवाः॥२३॥
यमानुगाङ्गुलिस्थेन आपादतलमस्तकम्। न चैषां जीवितभ्रंशो जायते पक्षिसत्तम॥२४॥
छिन्नानि तेषां शतशः खण्डान्यैक्यं व्रजन्ति हि। एवं वर्षसहस्राणि भ्राम्यन्ते पापकर्मिणः॥२५॥

उस नरक में पापी मनुष्य जाडे से आर्त होते हैं, भयङ्कर अन्धकार में बाँधे जाते हैं और एक दूसरे को पाकर आलिङ्गन करके एक दूसरे में आश्रित होते हैं॥१८॥ उन के जाडे की आर्तता से कटकटाते हुए दाँत टूट जाते हैं। हे गरुड, भूख और प्यास से अतिप्रबल अनेक उपद्रव भी वहाँ प्राप्त होते हैं॥१९॥ वहाँ बहुत कडा और हिमकणों को वहाने वाला वायु पापियों की हड्डियों को तोड देता है, भूख से पीडित पापी यहाँ हड्डी से गलित मज्जा (हड्डी के भीतर का गूदा) और रगत खाते हैं॥२०॥ उस नरक में एक दूसरे के मिलन में परस्पर आलिङ्गन करते हुए पापी लोग घूमाए जाते हैं। इस प्रकार उस नरक में अन्धकार में पापी मनुष्यों से अत्यन्त बडा कष्ट पाया जाता है। हे पक्षिश्रेष्ठ, जो बहुत पापियों के भुण्ड से पूर्ण होता रहता है, तम नाम के नरक से भिन्न और नरकों में प्रधान वह निकृन्तन नाम से प्रख्यात नरक है॥२१-२२॥ हे पक्षिन्, उस नरक में कुम्हार के चक्र जैसे चक्र निरन्तर घूमते रहते हैं। उन चक्रों में रखकर पापी मनुष्य यमराजके अनुचर के अङ्गुलियो में स्थित कालसूत्र से पैर के तल से मस्तक तक काटे जाते हैं। हे पक्षि में श्रेष्ठ गरुड , उस प्रकार काटे जाने पर भी उनका जीवनका अन्त नहीं होता है॥ २३-२४ ॥ कटे हुए उनके सैकडों टुकडे फिर जुडकर एक हो जाते हैं। इस प्रकार पापी लोग जब

तावद् यावदशेषं च तत्पापं संक्षयं गतम्। अप्रतिष्ठं च नरकं शृणुष्व गदतो मम॥२६॥
तत्रस्थैर् नारकैर् दुःखमसह्यमनुभूयते। तान्येव तत्र चक्राणि घटीयन्त्राणि चान्यतः॥२७॥
दुःखस्य हेतुभूतानि पापकर्मकृतां नृणाम्। चक्रेष्वारोपिताः केचिद् भ्राम्यन्ते तत्र मानवाः॥२८॥
यावद् वर्षसहस्राणि न तेषां स्थितिरन्तरा। घटीयन्त्रेषु बद्धा ये बद्धा तोयघटी यथा॥२९॥
भ्राम्यन्ते मानवा रक्तमुद्गिरन्तः पुनःपुनः। अन्त्रैर् मुखविनिष्क्रान्तैर् नेत्रैरन्त्रावलम्बिभिः॥३०॥
दुःखानि प्राप्नुवन्तीह यान्यसह्यानि जन्तुभिः। असिपत्रवनं नाम नरकं शृणु चाऽपरम्॥३१॥
योजनानां सहस्रं यो ज्वलत्यग्न्याभृतावनिः। सप्त तीव्रकराश् चण्डैर् यत्र तीव्रे सुदारुणे॥३२॥
प्रतपन्ति सदा तत्र प्राणिनो नरकौकसः। तन्मध्ये चाऽरणं शीतस्निग्धपत्रं विभाव्यते॥३३॥

तक उन का वह सब पाप नष्ट नहीं हो जाता है तब तक हजारों वर्ष घूमाए जाते हैं। अब अप्रतिष्ठ नाम के नरक को बताते हुए मुझ से अप्रतिष्ठ नरक को सुनो॥२५-२६॥ उस नरक में रहे हुए नरकभोगी प्राणियों से असह्य दुःख भोगा जाता है। उस नरक में वे ही चक्र रहते हैं, दूसरी ओर पापी मनुष्यों के दुःख के कारण घटीयन्त्र रहते हैं। उस नरक में कोई पापी मनुष्य चक्रों में चढाकर हजारों वर्षों तक घूमाए जाते हैं, बीच में उन की कोई स्थिति नहीं होती है। जो पापी मनुष्य घटीयन्त्र में बाँधे गए हैं वे बँधी हुई जलघटी की तरह घूमाए जाते हैं, वे पापी वारवार रगत की उल्टी करते रहते हैं, उन की अँतडियाँ मुहसे निकली हुई होती है, उन की आँखें बाहर निकलकर अँतडियों में अवलम्बित होती हैं॥२७-३०॥ इस अप्रतिष्ठ नाम के नरक में पापी लोग जो दुःख पाते हैं वे प्राणियों के लिए असह्य होते हैं। असिपत्रवन नाम के और नरक को भी सुनो॥३१॥ जो नरक अग्नि से सन्तप्त भूमि वाला है, जलता रहता है और हजार योजन तक फैला हुआ है, जिस अतीव तीव्र और भयङ्कर नरक में सात सूर्य प्रचण्ड किरणों से नरक में पडे हुए प्राणियों को सदा सन्तप्त करते रहते हैं। उस नरक के बीच में शीतल और चिकने पत्ते वाला वन दिखाई देता है॥३२-३३॥

पत्राणि यत्र खण्डानि फलानां पक्षिसत्तम। श्वानश्च तत्र सुबलाश् चरन्त्यामिषभोजना:॥३४॥
महावक्त्रा महादंष्ट्रा व्याघ्रा इव महाबलाः। ततश्च वनमालोक्य शिशिरच्छायमग्रतः॥३५॥
प्रयान्ति प्राणिनस् तत्र क्षुत्तापपरिपीडिताः। मातर् भ्रातस् तात इति क्रन्दमानाः सुदुःखिताः॥३६॥
दह्यमानाङ्घ्रियुगला धरणिस्थेन वह्निना। तेषां गतानां तत्रापि अतिशीतः समीरणः॥३७॥
प्रवाति तेन पात्यन्ते तेषां खड्गास्तथोपरि। छिन्नाः पतन्ति ते भूमौ ज्वलत्पावकसञ्चये॥३८॥
लेलिह्यमाने चान्यत्र तप्ताशेषमहीतले। सारमेयाश्च ते शीघ्रं शातयन्ति शरीरतः॥३९॥
तेषां खण्डान्यनेकानि रुदतामतिभीषणे। असिपत्रवनं तात मयैतत् परिकीर्तितम्॥४०॥
अतः परं भीमतरं तप्तकुम्भं निबोध मे। समन्ततस् तप्तकुम्भा वह्निज्वालासमन्विताः॥४१॥

हे पक्षिश्रेष्ठ, जिस वन में पत्ते और फलों के टुकडे भी होते हैं। उस में बडे-बडे मुह वाले और बडे-बडे दाँतो वाले और बाघ की तरह महाबलवान् मांसभोजी कुत्ते घूमते रहते हैं। तब आगे शीतल छाया वाले वन को देखकर भूख और धूप से पीडित और भूमि में वर्तमान आग से सन्तप्त पैरों वाले प्राणी अत्यन्त दुःखित होकर मां-मां, भैया-भैया, बाप-बाप चिल्लाते हुए उस वन में जाते हैं। वहाँ पहुँचने पर भी अत्यन्त ठण्डी हवा वहती है, उस से उन के ऊपर तलवारतुल्य पत्ते गिरते हैं, और पापी लोग कटकर धधकते हुए आग के ढेर से युक्त भूमि में गिर जाते हैं॥३४-३८॥ आग की लपलपाती ज्वाला से युक्त और सन्तप्त सर्व महीतल वाले अति भयङ्कर उस असिपत्रवन नरक में अन्यत्र भी कुत्ते रोते हुए उन पापियों के शरीर से शीघ्र ही अनेक मांसखण्ड काट लेते हैं। हे वत्स गरुड, यह असिपत्रवन नाम का नरक मैं ने बतादिया॥३९-४०॥ अब इस से भी ज्यादा भयङ्कर तप्तकुम्भ नामक नरक को मुझ से तुम जानो। इस नरक में सभी ओर आग के ज्वालाओं से युक्त, अत्यन्त गरम और जलते हुए आग के ढेर से युक्त तथा गरम तेल से और गरम लोहचूर्ण से भरे हुए घडे रहते हैं। इन घडों में यमराज के दूतों से अधोमुख

ज्वलदग्निचयास् तप्ततैलायश्चूर्णपूरिताः। एषु दुष्कृतकर्माणो याम्यैः क्षिप्ता ह्यधोमुखाः॥४२॥
क्वाथ्यन्ते विस्फुटद्गात्रा गलन्मज्जाजलान्विताः। स्फुटत्कपालनेत्रास्थिच्छिद्यमाना विभीषणैः॥४३॥
गृध्रैरुत्पाट्य मुच्यन्ते पुनस्तेष्वेव वेगितैः। पुनश् चिमचिमायन्ते तैलेनैक्यं व्रजन्ति च॥४४॥
द्रवीभूतैः शिरोगात्रैः स्नायुमांसत्वगस्थिभिः। ततो याम्यैर् नरैराशु दर्व्याघट्टनघट्टिताः॥४५॥
कृतावर्ते महातैले क्वाथ्यन्ते पापकर्मिणः। एष ते विस्तरेणोक्तस् तप्तकुम्भो मया खग॥४६॥
आदिमो रौरवः प्रोक्तो महारौरवकोऽपरः। अतिशीतस् तृतीयस्तु चतुर्थो हि निकृन्तनः॥४७॥
अप्रतिष्ठः पञ्चमः स्यादसिपत्रवनोऽपरः। सप्तमस् तप्तकुम्भस्तु सप्तैते नरका मताः॥४८॥
श्रूयन्तेऽन्यान्यपि तथा नरकाणि नराधमाः। कर्मणां तारतम्येन तेषुतेषु पतन्ति हि॥४९॥
तथा हि नरको रोधः सूकरस्ताल एव च। तप्तकुम्भो महाज्वालः शबलोऽथ विमोहनः॥५०॥

बनाकर डाले हुए पापी लोग पकाए जाते हैं, टूटते हुए अङ्गों से युक्त और टपकते हुए मज्जारूपी जल से युक्त वे पापी लोग टूटती हुई खोपडी और नेत्रास्थि की अवस्था में भयङ्कर और वेगवान् गिद्धों से छीन-छीनकर उछाले जाते हैं और फिर उन्हीं तप्तकुम्भों में छोडे जाते हैं। वे पापी फिर चिमचिमाते हैं और पिघले हुए शिर, अङ्ग, स्नायु, मांस, त्वचा और हड्डियों से वे तेल से एकीभूत हो जाते हैं। तब यमराज के पुरुषों से शीघ्र ही करछुल के घट्टन से घट्टित होकर वे पापी लोग भंवरयुक्त महातैल में उबाले जाते हैं। हे पक्षिन्, मैं ने यह तप्तकुम्भ नाम का नरक विस्तारपूर्वक तुम को बतादिया॥४१-४६॥ पहला नरक रौरव कहा गया है, दूसरा महारौरव कहा गया है, तीसरा अतिशीत और चौथा निकृन्तन कहा गया है॥४७॥ पञ्चम नरक अप्रतिष्ठ होगा और छठा असिपत्रवन होगा, सातवाँ तप्तकुम्भ (कुम्भीपाक) होगा, ये सात प्रमुख नरक हैं॥४८॥ और भी उसप्रकार के नरक सुने जाते हैं, अपने-अपने कर्म के तारतम्य से पापी मनुष्य उस-उस नरक में पडते हैं॥४९॥ नरकों में– रोध, सूकर, ताल, तप्तकुम्भ, महाज्वाल, शबल, विमोहन,

क्रिमिश् च क्रिमिभक्षश् च लालाभक्षो विषञ्जनः। अधःशिराः पूयवहो रुधिरान्धश् च विड्भुजः॥५१॥
तथा वैतरणी मूत्रमसिपत्रवनं तथा। अग्निज्वालो महाघोरः सन्दंशो वाप्यभोजनः॥५२॥
तमश् च कालसूत्रं च लोहश् चाप्यभिदस्तथा। अप्रतिष्ठोऽप्यवीचिश् च नरका एवमादयः॥५३॥
तामसा नरकाः सर्वे यमस्य विषये स्थिताः। येषु दुष्कृतकर्माणः पतन्ति हि पृथक्पृथक्॥५४॥
भूमेरधस्तात् ते सर्वे रौरवाद्याः प्रकीर्तिताः। रोधे गोघ्नो भ्रूणहा च अग्निदाता नरः पतेत्॥५५॥
सूकरे ब्रह्महा मज्जेत् सुरापः स्वर्णतस्करः। ताले पतेत् क्षत्रहन्ता हत्वा वैश्यं च दुर्मतिः॥५६॥
ब्रह्महत्यां च यः कुर्याद् यश्च स्याद् गुरुतल्पगः। स्वसृगामी तप्तकुम्भी तथा राजभटोऽनृती॥५७॥
तप्तलोहैश् च विक्रेता तथा बन्धनरक्षिता। माध्वीविक्रयकर्ता च यस्तु भक्तं परित्यजेत्॥५८॥

क्रिमि, क्रिमिभक्ष, लालाभक्ष, विषञ्जन, अधःशिरा, पूयवह, रुधिरान्ध, विड्भुज, वैतरणी, मूत्र, असिपत्रवन, अग्निज्वाल, महाघोर, सन्दंश, अभोजन, तम, कालसूत्र, लोह, अभिद, अप्रतिष्ठ और अवीचि इस प्रकार के नरक हैं (द्रष्टव्य– १८।३०-३३)॥५०-५३॥ सभी नरक तमोमय हैं और यमराज के शासन के क्षेत्र में हैं, जिन में दुष्कर्म करने वाले अलग-अलग पडजाते हैं॥५४॥ वे रौरवादि सब नरक भूमि के अधोभाग में हैं। जो मनुष्य गोहत्या, भ्रूणहत्या और परगृहादि में आग लगाने का काम करता है वह रोध नाम के नरक में पडेगा॥५५॥ ब्रह्महत्या करने वाला, सुरा पीने वाला द्विजाति और ब्राह्मण का सोना चुराने वाला सूकर नाम के नरक में पड जाएगा। क्षत्रिय को जान से मारने वाला और वैश्य को जान से मारने वाला भी दुर्बुद्धि पापी ताल नाम के नरक में पडेगा॥५६॥ जो ब्रह्महत्या करेगा और जो गुरुपत्नी में गमन करेगा वह, और बहन में गमन करने वाला और झूठ व्यवहार करने वाला राजपुरुष भी तप्तकुम्भ नाम के नरक में पडेगा॥५७॥ तप्तलोहादि वस्तु (शस्त्रास्त्र) बेचने वाला तथा कारागारादि बन्धनस्थल के रक्षक और मद्यविक्रय करने वाला तथा अपने भक्त का परित्याग करने वाला पापी भी महाज्वाल नाम के नरक में पडेगा।

महाज्वाली दुहितरं स्नुषां गच्छति यस्तु वै। वेदो विक्रीयते यैश् च वेदं दूषयते तु यः॥५९॥
गुरुं चैवाऽवमन्यन्ते वाक्शरैस् ताडयन्ति च। अगम्यागामी च नरो नरकं शबलं व्रजेत्॥६०॥
विमोहे पतते शूरे मर्यादां यो भिनत्ति वै। दुरिष्टं कुरुते यस्तु कृमिभक्षं प्रपद्यते॥६१॥
देवब्राह्मणविद्वेष्टा लालाभक्षे पतत्यपि। कुण्डकर्ता कुलालश् च न्यासहर्ता चिकित्सकः॥६२॥
आरामेष्वग्निदाता च एते यान्ति विषञ्जने। असत्प्रतिग्रही यस् तु तथैवाऽयाज्ययाजकः॥६३॥
नक्षत्रैर् जीवते यस्तु नरो गच्छेदधोमुखम्। क्षीरं सुरां च मांसं च लाक्षां गन्धं रसं तिलान्॥६४॥
एवमादीनि विक्रीणन् घोरे पूयवहे पतेत्। यः कुक्कुटान् निबध्नाति मार्जारान् सूकरांश् च तान्॥
पक्षिणश् च मृगांश् छागान् सोऽप्येवं नरकं व्रजेत्॥६५॥

जो अपनी पुत्री में और पुत्रवधू में गमन करता है वह, जिन से वेद का विक्रय किया जाता है वे, जो वेद को दूषित करता है वह, जो वेदमन्त्रादिप्रद गुरु का अनादर करते हैं और वाग्बाण से उन को प्रताडित करते हैं वे तथा अगम्या स्त्री में गमन करने वाला भी शबल नाम के नरक में जाएंगे॥५८-६०॥ जो शूर पुरुषों के विषय में मर्यादाभङ्ग करता है वह विमोहन नाम के नरक में गिरता है। जो पुरुष दुरिष्ट (अविहित काल में अनधिकृत व्यक्ति से अविधि से और निषिद्ध द्रव्य से किया जाने वाला दुष्ट यज्ञ) करता है वह कृमिभक्ष नाम के नरक में पहुँचता है॥६१॥ देवताओं का और ब्राह्मणों का विद्वेषी लालाभक्ष नाम के नरक में पडता है। भूमि में निवास करने वाले प्राणियों को पीडित करते हुए कुण्ड खोदने वाला, कुम्हार, धरोहर का हरण करने वाला, शुल्क लेकर चिकित्सा करने वाला और बाग-बगींचों में आग लगाने वाला ये विषञ्जन नाम के नरक में जाते हैं। असत् व्यक्ति से अथवा असद् द्रव्य का अथवा असत् विधि से दान लेने वाला व्यक्ति, और अयाज्य को याजन करने वाला व्यक्ति, और ज्योतिष से जीविका करने वाला व्यक्ति भी अधोमुख नाम के नरक में जाएगा। दूध, सुरा (मदिरा), मांस, लाख, सुगन्धी द्रव्य, लवणादि रस और तिल इत्यादि वस्तु बेचने

आजाविको माहिषिकस् तथा चक्री ध्वजी च यः। रङ्गोपजीविको विप्रः शाकुनिर् ग्रामयाजकः॥६६॥
अगारदाही गरदः कुण्डाशी सोमविक्रयी। सुरापो मांसभक्षी च तथा च पशुघातकः॥६७॥
रुधिरान्धे पतन्त्येते एवमाहुर् मनीषिणः। उपविष्टं त्वेकपङ्क्त्यां विषमं भोजयन्ति ये॥६८॥
पतन्ति निरये घोरे विड्भुजे नात्र संशयः। मधुग्राहो वैतरणीमाक्रोशी मूत्रसंज्ञके॥६९॥
असिपत्रवनेऽशौची क्रोधनश् च पतेदपि। अग्निज्वालं मृगव्याधो भोज्यते यत्र वायसैः॥७०॥
इज्यायां व्रतलोपाच् च सन्दंशे नरके पतेत्। स्कन्दन्ते यदि वा स्वप्ने यतिनो ब्रह्मचारिणः॥७१॥

वाला व्यक्ति भयङ्कर पूयवह नाम के नरक में पडेगा। जो मुर्गों को, बिल्लियों को, सूअरों को, पक्षियों को, मृगों को और बकरों को बाँधता है (पोषता है) वह भी इसी प्रकार के नरक में जाएगा। जो जीविका के लिए बकरों का और भेडों का पालन करता है, जो जीविका के लिए भैंसों का पालन करता है, जो तैलपीडनयन्त्र का चक्र जीविका के लिए चलाता है, जो मद्यविक्रयस्थान का चिह्न ध्वज को अपनाकर जीविका करता है, जो विप्र होकर नट-नर्तक-वाद्यवादकादि कर्म से जीविका करता है, जो पक्षिपोषक है और गणविशेष का नियत याजक है वह विप्र, घर में आग लगाने वाला, विष देने वाला, कुण्ड का (पति जीवित रहते हुए ही जार से उत्पन्न व्यक्ति का) अन्न खाने वाला अथवा कुण्डपरिमित भोजन (बहुभोजन) करने वाला, सोमलता का विक्रय करने वाला, द्विजाति होकर सुरापान करने वाला, वृथामांस खाने वाला और अविधि से पशुहत्या करने वाला, ये सब रुधिरान्ध नाम के नरक में पडते हैं, मनीषी ऋषि-मुनि लोग ऐसा कहते हैं। जो एक पङ्क्ति में बैठे हुए लोगों को विषम (भिन्न-भिन्न) भक्ष्य-भोज्य देते हैं वे विड्भुज नाम के भयङ्कर नरक में पडते हैं, इस में कोई सन्देह नहीं है। मधु (शदह) निकालने वाला वैतरणी में, गाली देने वाला मूत्र नाम के नरक में, अशुचि होने पर शौच न करने वाला और क्रोधी व्यक्ति भी असिपत्रवन में पडेगा। मृगों को काणों से वेधने वाला (शिकारी) अग्निज्वाल नाम के नरक में पडेगा, जहाँ उस को यमदूतोंद्वारा कौओं को खिलाया जाता है॥६२-७०॥ यज्ञ में दीक्षित होने पर पालनीय व्रत को लुप्त करने से व्यक्ति सन्दंश नाम के नरक में पडेगा। यदि वानप्रस्थ का अथवा सन्यासी का अथवा ब्रह्मचारी का स्वप्न में वीर्य स्खलित हो जाता है तो वे,

पुत्त्रैरध्यापिता ये च पुत्त्रैराज्ञापिताश् च ये। ते सर्वे नरकं यान्ति निरयं चाप्यभोजनम्॥७२॥
वर्णाश्रमविरुद्धानि क्रोधहर्षसमन्विताः। कर्माणि ये तु कुर्वन्ति सर्वे निरयवासिनः॥७३॥
उपरिष्टात् स्थितो घोर उष्णात्मा रौरवो महान्। सुदारुणः सुशीतात्मा तस्याधस्तामसः स्मृतः॥७४॥
एवमादिक्रमेणैव सर्वेऽधोऽधः परिस्थिताः। दुःखोत्कर्षश् च सर्वेषु कर्मस्वपि निमित्ततः॥७५॥
सुखोत्कर्षश् च सर्वत्र धर्मस्येह निमित्ततः। पश्यन्ति नरकान् देवा ह्यधोवक्रान् सुदारुणान्॥७६॥
नारकाश् चापि ते देवान् सर्वान् पश्यन्ति ऊर्ध्वगान्। एतान्यन्यानि शतशो नरकाणि वियद्गते॥७७॥
दिनेदिने तु नरके पच्यते दह्यतेऽन्यतः। शीर्यते भिद्यतेऽन्यत्र चूर्ण्यते क्लिद्यतेऽन्यतः॥७८॥
क्वथ्यते दीप्यतेऽन्यत्र तथा वातहतोऽन्यतः। एकं दिनं वर्षशतप्रमाणं नरके भवेत्॥७९॥

जो पुत्रों से वेदादिशास्त्र पढाए गए व्यक्ति हैं और पुत्रों की आज्ञा पालित करने वाले व्यक्ति हैं वे, ये सब व्यक्ति नरक जाते हैं, वे सब अभोजन नाम के नरक में पडते हैं॥७१-७२॥ जो लोग क्रोध से अथवा हर्ष से युक्त होकर ब्राह्मणादि वर्णधर्मों के और ब्रह्मचर्याश्रमादि आश्रमधर्मों के विरुद्ध कर्म करते हैं वे सब चिरकाल तक नरक में वास करते हैं॥७३॥ नरकों में सब से ऊपर भयङ्कर, कडे धूप वाला और बडा नरक रौरव है। उस के नीचे बहुत भयङ्कर और अत्यन्त ठण्डा तामस नाम का नरक है। इसी प्रकार के क्रम से सभी नरक एक के नीचे दूसरा और उस के नीचे दूसरा करके रहे हैं। उन में दुःख का भी एक से दूसरे में अधिकता और उस से दूसरे में और अधिकता है, पाप कर्मों में भी दुःखहेतुत्व की क्रमशः अधिकता होती है॥७४-७५॥ धर्मरूप हेतु के उत्कर्ष से सुख में भी उत्कर्ष होता है। देवता लोग नरकों को कठोर और अधोमुख देखते हैं॥७६॥ नरक में रहने वाले लोग सभी देवताओं को ऊर्ध्वभाग में रहे हुए देखते हैं। हे आकाशचारी गरुड, ये और अन्य भी सैकडों नरक हैं॥७७॥ पापी पुरुष प्रतिदिन नरक में पकता है, दूसरी ओर जलता है, एक ओर गलता है दूसरी ओर टूटता है, एक ओर चूर्ण किया जाता है, दूसरी ओर गीला किया जाता है, कहीं उबाला जाता है, दूसरी ओर जलाया जाता है, और दूसरी ओर कडी हवा से प्रताडित किया जाता है। नरक में एक दिन सौ वर्ष जैसा लम्बा होता है॥७८-७९॥

ततः सर्वेषु निस्तीर्णः पापी तिर्यक्त्वमश्नुते। कृमिकीटपतङ्गेषु स्थावरैकशफेषु च ॥८०॥
गत्वा वनगजाढ्येषु गोष्वश्वेषु तथैव च। खरोऽश्वोऽश्वतरो गौरः शरभश् चमरी तथा ॥८१॥
एते चैकशफाः षट् च शृणु पञ्चनखानतः। अन्यासु बहुपापासु दुःखदासु च योनिषु ॥८२॥
मानुष्यं प्राप्य वै कुब्जो कुत्सितो वामनोऽपि वा। चण्डालपुक्कसाद्यासु नरयोनिषु जायते ॥८३॥
मुहुर् गर्भे वसन्त्येव म्रियन्ते च मुहुर्मुहुः। अवशिष्टेन पापेन पुण्येन च समन्वितः ॥८४॥
ततश्चारोहिणीं योनिं शूद्रवैश्यनृपादिकाम्। विप्रदेवेन्द्रतां चापि कदाचिदधिरोहति ॥८५॥
एवं तु पापकर्माणो निरयेषु पतन्त्यधः। यथा पुण्यकृतो यान्ति तन्मे निगदतः शृणु ॥८६॥
ते यमेन विनिर्दिष्टां योनिं पुण्यगतिं नराः। प्रगीतगन्धर्वगणा नृत्योत्सवसमाकुलाः ॥८७॥

तब सभी नरकों में दुःख भोगकर पार पाने पर पापी इस लोक में तिर्यग्योनि में जन्म पाता है; कृमियोनि में, कीटयोनि में, पतङ्गयोनि में, स्थावरयोनि में, एक खुर वाले पशुओं की योनि में जाकर वन में विचरण करने वाले हाथियों की योनि में, गाय की योनियों में और घोडे की योनि में भी जन्म पाता है। गदहा, घोडा, खच्चर, गौरमृग, शरभमृग, चमरी ये छः एक खुर वाले पशु हैं। अब प्रत्येक हाथ-पैर में पाँच नख वाले प्राणियों को सुनो (जिन प्राणियों की योनि में पापी जन्म पाता है)। और भी बहुत पापों से युक्त और दुःखद योनियों में पापी जन्म पाता है॥८०-८२॥ मनुष्ययोनि में प्राप्त होकर भी पापी कुबडा और कुत्सित रूप का बौना होता है और चण्डाल पुल्कस इत्यादि मनुष्ययोनि में जन्म पाता है॥८३॥ नरक में कष्ट भोगने से अवशिष्ट पापांश से युक्त होकर पापी लोग वारवार गर्भ में वसते हैं और वारवार मरते हैं॥८४॥ तब पुण्यविशेष से मनुष्य क्रमशः शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय इत्यादि उच्च-उच्चतर योनि में जन्म लेता है। कभी-कभी मनुष्य पुण्य से ब्राह्मणत्व में, देवत्व में और इन्द्रत्व में भी चढता है॥८५॥ इस प्रकार पापी लोग नीचे नरकों में गिरते हैं। पुण्य करने वाले जैसे जाते हैं उस बात को बताते हुए मुझ से सुनो॥८६॥ जो मनुष्य यम से निर्दिष्ट पुण्यफलरूप योनि में जाते हैं दिव्य गन्धों से और

हारनूपुरमाधुर्यैः शोभितान्यमलानि तु। प्रयान्त्याशु विमानानि दिव्यगन्धस्रगुज्ज्वलाः ॥८८॥
तस्माच् च प्रच्युता राज्ञामन्येषां च महात्मनाम्। जायन्ते नीरुजां गेहे सद्वृत्तपरिपालकाः ॥८९॥
भोगान् सम्प्राप्नुवन्त्युग्रांस् ततो यान्त्यूर्ध्वमन्यथा। अवरोहिणीं सम्प्राप्य पूर्ववद् यान्ति मानवाः ॥९०॥
जातस्य मृत्युलोके वै प्राणिनो मरणं ध्रुवम्। पापिष्ठानामधोमार्गाज् जीवो निष्क्रमते ध्रुवम् ॥९१॥
पृथिव्यां लीयते पृथ्वी आपश् चैव तथाप्सु च। तेजस् तेजसि लीयेत समीरे च समीरणः ॥९२॥
आकाशे च तथाऽऽकाशं सर्वव्यापि निशाकरे। तत्र कामस्तथा क्रोधः काये पञ्चेन्द्रियाणि च ॥९३॥
एते तार्क्ष्य समाख्याता देहे तिष्ठन्ति तस्कराः। कामः क्रोधो ह्यहंकारो मनस् तत्रैव नायकः ॥९४॥

माल्यों से उज्ज्वल वे लोग मधुर गीत गाते हुए गन्धर्व गणों से युक्त तथा नृत्य और उत्सव से युक्त होकर हारों से नूपुरों से और माधुर्य से भरे अप्सराओं के गणों से शोभित तथा निर्मल विमान में स्वर्ग जाते हैं॥८७-८८॥ उस स्वर्ग से पुण्य भोग के बाद इस लोक में आने पर वे राजाओं के और अन्य महापुरुषों के तथा नीरोग लोगों के घर में सद्वृत्त का परिपालक रूप में जन्म लेते हैं॥८९॥ वहाँ बडा उच्च भोग पाते हैं और फिर ऊपर जाते हैं, यदि सद्वृत्त का परिपालन न करके मनुष्य दुर्वृत्त हो जाते हैं तो फिर ऊपर बताए हुए क्रम से नीच और नीचतर योनि में जाते हैं॥९०॥ मर्त्यलोक में जन्मे हुए प्राणी का मरण अवश्य होता है। पापिष्ठ लोगों का जीव मरते समय अधोमार्ग से ही निकलता है॥९१॥ जीव के शरीर का पृथ्वीभाग पृथ्वी में लीन होता है, जलीयभाग जल में लीन होता है, तैजस भाग तेज में लीन होता है और वायवीय भाग वायु में लीन होता है॥९२॥ आकाशभाग आकाश में लीन होता है और सर्वेन्द्रियव्यापी मन चन्द्रमा में लीन होता है। उस में शरीर में काम, क्रोध और पाँच ज्ञानेन्द्रिय हैं॥९३॥ हे गरुड, ये तस्कर (कुत्सित कर्म करनेवाले) के रूप में वर्णित पदार्थ देह में रहते हैं, उन में काम, क्रोध, और अहङ्कार प्रमुख हैं, उन में मन नायक है॥९४॥

संहारश् चैव कालोऽसौ पुण्यपापेन संयुतः। पञ्चेन्द्रियसमायुक्तः सकलैर् विबुधैः सह॥९५॥
प्रविशेत् स नवे देहे गृहे दग्धे गृही यथा। शरीरे ये समासीनाः सर्वे वै सप्त धातवः॥९६॥
षाट्कौशिको ह्ययं कायः सर्वे वाताश्च देहिनाम्। मूत्रं पुरीषं तद्योगाद् ये चान्ये व्याधयस्तथा॥९७॥
पित्तं श्लेष्मा तथा मज्जा मांसं वै मेद एव च। अस्थि शुक्रं तथा स्नायुर् देहेन सह दह्यति॥९८॥
एष ते कथितस् तार्क्ष्य विनाशः सर्वदेहिनाम्। कथयामि पुनस् तेषां शरीरं च यथा भवेत्॥९९॥
एकस्तम्बं स्नायुबद्धं स्थूणात्रयविभूषणम्। इन्द्रियैश् च समायुक्तं नवद्वारं शरीरकम्॥१००॥
विषयैश् च समाक्रान्तं कामक्रोधसमाकुलम्। रागद्वेषसमाकीर्णं तृष्णादुर्गमतस्करम्॥१०१॥
लोभजालपरिच्छिन्नं मोहवस्त्रेण वेष्टितम्। सुबद्धं मायया चैतल् लोभेनाधिष्ठितं पुरम्॥१०२॥

संहारक काल भी शरीर में रहता है। जैसे एक गृह जलने पर गृही दूसरे घर में प्रवेश करता है वैसे ही पुण्य से और पाप से सहित और पाँच इन्द्रियों से युक्त होकर वह जीव भी सभी इन्द्रियादि-देवताओं के साथ नए देह में प्रवेश करता है। शरीर में रहे हुए जो सात धातु (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र) होते हैं वे सब, छः कोशों वाला यह देह, देहधारियों के प्राणादि सभी वायु, मूत्र, पुरीष, उन के संयोगविशेष से होने वाले रोग, पित्त, कफ, मज्जा (हड्डियों के भीतर रहने वाला गूदा), मांस, मेदा, हड्डी, वीर्य तथा स्नायु ये सब देह के साथ में जल जाते हैं॥९५-९८॥ हे गरुड, यह सभी देहधारियों का विनाश तुम को बता दिया, फिर उन का देह जैसा होता है वह भी बताता हूँ॥९९॥ शरीर एकस्तम्ब वाला (एक प्राण वाला), स्नायुओं से बँधा हुआ, तीन खूंटियों वाला (वात-पित्त-कफयुक्त), इन्द्रियों से युक्त तथा नौ छिद्र वाला है॥१००॥ यह शरीर गन्ध-रसादि विषयों से आक्रान्त, काम-क्रोधों से आकुल, राग और द्वेष से घिरा हुआ, तृष्णारूपी बहुत ही दुर्लङ्घ्य तस्कर से युक्त, लोभ के जाल से ढका हुआ, मोहरूपी वस्त्र से वेष्टित, माया से अत्यन्त दृढरूप में बँधा हुआ और लोभ से अधिष्ठित पुर है॥१०१-१०२॥

एतद्गुणसमाकीर्णं शरीरं सर्वदेहिनाम्। आत्मानं ये न जानन्ति ते नराः पशवः स्मृताः॥१०३॥
एवमेव समाख्यातं शरीरं ते चतुर्विधम्। चतुरशीतिलक्षाणि निर्मिता योनयः पुरा॥१०४॥
उद्भिज्जाः स्वेदजाश् चैव अण्डजाश् च जरायुजाः। एतत् ते सर्वमाख्यातं निरयस्य प्रपञ्चतः॥१०५॥
कथयामि क्रमप्राप्तं प्रष्टुं वा वर्तते स्पृहा॥१०६॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे नरकतत्प्रवेशनिर्गमनादिवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥

सभी देहियों का शरीर इन्ही गुणों से व्याप्त होता है। जो मनुष्य आत्मा को नहीं जानते हैं वे पशु माने गए हैं॥१०३॥ इसी प्रकार से चार प्रकार के शरीर तुम को बता दिया गया। पुरा काल में सृष्टि के समय में ही चौरासी लाख योनियाँ बनाई गईं॥१०४॥ उद्भिज्ज (पृथ्वी को भेदन करके अङ्कुर के रूप में उगने वालों की योनियाँ), स्वेदज (पसीने से जन्म लेने वाले जुएँ आदि की योनियाँ), अण्डज (अण्डे से निकलने वाले पक्षी सर्प इत्यादि की योनियाँ) और जरायुज (गर्भवेष्टन से निकलने वाले मनुष्य पशु इत्यादि की योनियाँ) ये चार प्रकार की योनियाँ हैं। यह सब तुम को नरक के विषय में विस्तार से बताया गया॥१०५॥ क्रम प्राप्त अन्य प्रश्नों का उत्तर भी बताता हूँ, नया कोई प्रश्न पूछने की इच्छा है तो उस का उत्तर भी देता हूँ॥१०६॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में नरक, नरक में प्रवेश, नरक से निर्गमन इत्यादि का वर्णन करने वाला तृतीय अध्याय समाप्त हुआ॥३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

ज्ञानतोऽज्ञानतो वाऽपि यन् नरैः कलुषं कृतम्। तस्य पापस्य शुद्ध्यर्थं विधेया निष्कृतिर् नरैः॥१॥
भस्मादिस्नानदशकमादौ कुर्याद् विचक्षणः। यथाशक्ति षडब्दादि प्रत्याम्नायाच् चरेदपि॥२॥
तदर्धं वा तदर्धं वा तदर्धार्धमथापि वा। यथाशक्त्या ततः कुर्याद् दश दानानि वै शृणु॥३॥
गो-भू-तिल-हिरण्या-ऽऽज्य-वासो-धान्य-गुडास्तथा। रजतं लवणं चैव दानानि दश वै विदुः॥४॥
प्रायश्चित्ते त्वागता ये तेभ्यो दद्यान् नरो दश। ततो यमद्वारपथे पूयशोणितसङ्कुले॥५॥
नदीं वैतरणीं तर्तुं दद्याद् वैतरणीं च गाम्। कृष्णस्तनी सकृष्णाङ्गी सा वै वैतरणी स्मृता॥६॥

ज्ञान से अथवा अज्ञान से मनुष्यों से जो पाप (कुकर्म) किया गया होता है, उस पाप की शुद्धि के लिए मनुष्यों से प्रायश्चित्त किया जाना चाहिए॥१॥ विचारवान् मनुष्य प्रायश्चित्त के आरम्भ में भस्मस्नानादि दश स्नान (भस्म-गोमय-मृत्तिका-शुद्धोदक-गोमूत्र-गोमय-दुग्ध-दधि-घृत-कुशोदकस्नान) करे, और अपनी शक्ति के अनुसार अनुकल्प रूप में भी षडब्दकृच्छ्र (छः वर्षों में पूर्ण होने वाला व्रत) करे, अथवा षडब्दकृच्छ्र का आधा (त्र्यब्दकृच्छ्र) करे, अथवा त्र्यब्दकृच्छ्र का आधा (सार्धाब्दकृच्छ्र) करे, अथवा सार्धाब्दकृच्छ्र का आधा (नवमासकृच्छ्र) करे, अथवा नवमासकृच्छ्र का आधा (सार्धचतुर्मासकृच्छ्र) करे। (षडब्दकृच्छ्र के प्रत्याम्नाय में १८० गोदान होते हैं, तदनुसार त्र्यब्दकृच्छ्रादि के प्रत्याम्नाय के गोदान की सङ्ख्या जाननी चाहिए)। तब यथाशक्ति दशदान करे, दश दान कौन हैं सुनो॥२-३॥ गौ, भूमि, तिल, स्वर्ण, घी, वस्त्र, धान्य, गुड, चाँदी और नमक इन दश वस्तुओं का दान दश दान माने जाते हैं॥४॥ प्रायश्चित्त में जो ब्राह्मण आए हुए हैं उन को मनुष्य इन दशों का दान दे। उस के बाद यमद्वार के पीब लहू इत्यादि से व्याप्त मार्ग में वर्तमान वैतरणी नाम की नदी को पार करने के लिए वैतरणी गौ का दान करे। काले थन वाली और काले रङ्ग से युक्त अङ्ग वाली जो गाय होती है वह वैतरणी गौ मानी गई है॥५-६॥

तिला लोहं हिरण्यं च कार्पासं लवणं तथा। सप्तधान्यं क्षितिर् गाव एकैकं पावनं स्मृतम्॥७॥
एतान्यष्टौ महादानान्युत्तमाय द्विजातये। आतुरेण तु देयानि पदरूपाणि मे शृणु॥८॥
छत्रोपानहवस्त्राणि मुद्रिका च कमण्डलुः। आसनं भाजनं भोज्यं पदं चाष्टविधं स्मृतम्॥९॥
तिलपात्रं सर्पिःपात्रं शय्या सोपस्करा तथा। एतत् सर्वं प्रदातव्यं यदिष्टं चात्मनोऽपि तत्॥१०॥
अश्वो रथश्च महिषी व्यजनं वस्त्रमेव च। ब्राह्मणेभ्यः प्रदातव्यं ब्रह्मपूर्वमपि स्वयम्॥११॥
दानान्यन्यान्यपि खग अर्पयेत् स्वीयशक्तितः। प्रायश्चित्तं कृतं येन दश दानान्यपि क्षितौ॥१२॥
दानं गोर् वैतरण्याश् च दानान्यष्टौ तथापि वा। तिलपात्रं सर्पिःपात्रं शय्यादानं तथैव च॥१३॥
पददानं च विधिवन् नासौ निरयगर्भगः। स्वातन्त्र्येणापि लवणदानमिच्छन्ति सूरयः॥१४॥

तिल, लोहा, सोना, कपास, नमक, सप्तधान्य (जौ, धान, तिल, कँगनी, मूँग, चना, साँवा), भूमि, गौ इन आठ चीजों में पृथक् एक-एक चीज का दान भी पावन (पापों से छुडाकर शुद्ध करने वाला) समझा गया है॥७॥ आतुर को ये आठ महादान उत्तम ब्राह्मण को देना चाहिए। पदरूप देय पदार्थों को मुझ से सुनो॥८॥ छाता, जूता, वस्त्र, अँगूठी, कमण्डलु (जलपात्र), आसन, वर्तन, और भोज्यपदार्थ ये आठ प्रकार के पद समझे गए हैं॥९॥ तिलपात्र, घृतपात्र और उपकरणों से युक्त शय्या यह सब देना चाहिए, आतुर की अपनी इच्छा का विषय जो पदार्थ हो वह भी देना चाहिए॥१०॥ घोडा, रथ, भैंस, व्यजन (पङ्खा), वस्त्र भी ब्राह्मणों को वेदमन्त्रपूर्वक अपने ही हाथ से देना चाहिए॥११॥ अपनी शक्ति के अनुसार और भी दातव्य वस्तु दे। जिस ने प्रायश्चित्त किया, इस लोक में दश दान भी दिए, वैतरणी गौ का दान किया, अष्ट महादान दिया, और तिलपात्रदान, घृतपात्रदान, शय्यादान तथा पददान भी विधिपूर्वक किया वह नरक के गर्भ में जाने वाला नहीं होता है। स्वतन्त्र (पृथक्) रूप से भी नमक का दान इष्ट होने की बात मुनि लोग बताते हैं

विष्णुदेहसमुत्पन्नो यतोऽयं लवणो रसः। आतुरस्य यदा प्राणा न यान्ति वसुधातले॥१५॥
लवणं च तदा देयं द्वारस्योद्घाटनं दिवः। यानि कानि च दानानि स्वयं दत्तानि मानवैः॥१६॥
तानितानि च सर्वाणि उपतिष्ठन्ति चाग्रतः। प्रायश्चित्तं कृतं येन साङ्गं खग स वै पुमान्॥१७॥
पापानि भस्मसात् कृत्वा स्वर्गलोके महीयते। अमृतं तु गवां क्षीरं यतः पतगसत्तम॥१८॥
तस्माद् ददाति यो धेनुममृतत्वं स गच्छति। दानान्यष्टौ तु दत्त्वा वै गन्धर्वनिलये वसेत्॥१९॥
आतपस् तत्र रौद्रो हि दह्यते येन मानंवः। छत्रदानेन सुच्छाया जायते पथि तुष्टिदा॥२०॥
असिपत्रवनं घोरमतिक्रामति वै सुखम्। अश्वारूढश् च व्रजति ददते यद्युपानहौ॥२१॥
भोजनाऽऽसनदानेन सुखं मार्गे भुनक्ति वै। प्रदेशे निर्जले दाता सुखी स्याद् वै कमण्डलोः॥२२॥

क्योंकि यह लवण-रस विष्णु के देह से उत्पन्न हुआ है। जब भूमि में सुलाए गए मरणासन्न आतुर के प्राण यथोचित समय में यथोचित रीति से नहीं निकल रहे हों उस समय में स्वर्ग के द्वार को खोलने वाला लवण दिया जाना चाहिए। जो कोई दान मनुष्यों ने स्वयम् दिया है वे सब आगे उपस्थित होते हैं। हे गरुड, जिस पुरुष ने सब अङ्गों से युक्त प्रायश्चित्त किया है वह सब पापों को भस्म करके स्वर्गलोक में सत्कृत होता है। हे पक्षियों में श्रेष्ठ गरुड, क्योंकि गायों का दूध अमृत है, इसी लिए जो दूध देने वाली गौ का दान करता है वह अमरत्व को प्राप्त होता है। अष्ट महादान देकर मनुष्य गन्धर्वलोक में निवास करता है॥१२-१९॥ वहाँ यममार्ग में भयङ्कर धूप है, जिस से पापी मनुष्य जलता है, छाते के दान से मार्ग में सन्तोषप्रद अच्छी छाया प्राप्त होती है॥२०॥ यदि जूता देता है तो भयङ्कर असिपत्रवन नाम के नरक को घोडे में सवार होकर सुख से पार करता है॥२१॥ भोजन का और आसन का दान देने से यममार्ग में सुखभोग प्राप्त होता है। कमण्डलु का दान करने वाला व्यक्ति यममार्ग के जल से रहित देश में सुखी होगा॥२२॥

यमदूता महारौद्राः करालाः कृष्णपिङ्गलाः। न पीडयन्ति दाक्षिण्याद् वस्त्राभरणदानतः॥२३॥
तिलपात्रं तु विप्राय दत्तं पत्ररथ ध्रुवम्। नाशयेत् त्रिविधं पापं वाङ्मनःकायसम्भवम्॥२४॥
घृतपात्रप्रदानेन रुद्रलोके वसेन् नरः। सर्वोपस्करसंयुक्तां शय्यां दत्त्वा द्विजातये॥२५॥
नानाऽप्सरोभिराकीर्णं विमानमधिरोहति। षष्टिवर्षसहस्राणि क्रीडित्वा शक्रमन्दिरे॥२६॥
इन्द्रलोकात् परिभ्रष्ट इह लोके नृपो भवेत्। सर्वोपस्करणोपेतं युवानं दोषवर्जितम्॥२७॥
योऽश्वं ददाति विप्राय स्वर्गलोके स तिष्ठति। यावन्ति रोमाणि हये भवन्ति हि खगेश्वर॥२८॥
तावतो राजिताल्ँ लोकानाप्नुवन्ति हि पुष्कलान्। चतुर्भिस् तुरगैर् युक्तं सर्वोपकरणैर् युतम्॥२९॥
रथं द्विजातये दत्त्वा राजसूयफलं लभेत्॥३०॥

वस्त्र के और अँगूठी के दान से महाभयङ्कर, बडे-बडे दाँत वाले, काले और भूरे यमदूत भी उक्त दान करने वाले के लिए मिलनसार होते है और यममार्ग के उस पथिक को पीडित नहीं करते हैं॥२३॥ हे पक्षिन्, ब्राह्मण को दिया गया तिलपात्र वाणी से मन से और शरीर से किए गए तीन ही प्रकार के पाप को अवश्य नष्ट करेगा॥२४॥ घृतपात्र के दान से मनुष्य रुद्रलोक में निवास करता है। सभी गृहोपकरणों से युक्त शय्या ब्राह्मण को देकर मनुष्य अनेक अप्सराओं से व्याप्त विमान में चढता है और साठ हजार वर्ष तक इन्द्र के घर में क्रीडा करके इन्द्रलोक से यहाँ उतरकर इस लोक में राजा होगा। काठी इत्यादि सभी उपकरणों से युक्त दोषरहित जवान घोडा ब्राह्मण को जो मनुष्य देता है वह स्वर्गलोक में रहता है। हे पक्षियों के स्वामी गरुड, घोडे का दान करने वाले लोग घोडे में जितने रोम होते हैं उतनी ही सङ्ख्या में भोगपर्याप्त और दिव्य आभायुक्त स्वर्गलोकों को प्राप्त करते हैं। चार घोडों से युक्त और सभी आवश्यक उपकरणों से सहित रथ ब्राह्मण को देने से मनुष्य राजसूयनामक बहुत बडे श्रौत यज्ञ का फल पाएगा॥२५-३०॥

दुग्धाधिकां च महिषीं नवमेघवर्णां सन्तुष्टतर्णकवतीं जघनाभिरामाम्।
दत्त्वा सुवर्णतिलकां द्विजपुङ्गवाय लोकोदयं स जयतीति किमत्र चित्रम्॥३१॥
तालवृन्तस्य दानेन वायुना वीज्यते पथि। कान्तियुक् सुभगः श्रीमान् भवत्यम्बरदानतः॥३२॥
रसान्नोपस्करयुतं गृहं विप्राय योऽर्पयेत्। न हीयते तस्य वंशः स्वर्गं प्राप्नोत्यनुत्तमम्॥३३॥
भवत्यत्र खगश्रेष्ठ फल-गौरव-लाघवम्। श्रद्धाऽश्रद्धाविभेदेन दान-गौरव-लाघवात्॥३४॥
ततो येनाऽम्बुदानानि कृतान्यत्र रसास्तथा। तदा खग तथाऽऽह्लादमापदि प्रतिपद्यते॥३५॥
अन्नानि येन दत्तानि श्रद्धापूतेन चेतसा। सोऽपि तृप्तिमवाप्नोति विनाऽप्यन्नेन वै तदा॥३६॥
आसन्ने मरणे कुर्यात् सन्न्यासं चेद् विधानतः। आवर्तेत पुनर् नासौ ब्रह्मभूयाय कल्पते॥३७॥

अधिक दूध देने वाली, नए मेघ के तुल्य वर्ण वाली, सन्तोषी बच्छे से युक्त, सुन्दर जघनभाग से शोभित, सौने के तिलक से युक्त भैंस श्रेष्ठ ब्राह्मण को देने से मनुष्य परलोक में उदय प्राप्त करता है, इस में आश्चर्य की क्या बात है॥३१॥ पङ्खे के दान से मनुष्य यमलोक मार्ग में शीतल पवन का स्पर्श पाता है, वस्त्र के दान से मनुष्य पुनर्जन्म होने पर स्त्रियों का प्रिय और धनवान् होता है॥३२॥ रस, अन्न और अन्य आवश्यक गृहोपकरण से युक्त घर ब्राह्मण को जो देता है उस का कुल कभी उच्छिन्न नहीं होता है, और वह जिस से बढकर कोई स्वर्ग नहीं है वैसे स्वर्ग को प्राप्त करता है॥३३॥ हे पक्षिश्रेष्ठ, श्रद्धा और अश्रद्धा के भेद से दान में गौरव अथवा लाघव होने से दान के फल में भी गौरव अथवा लाघव होता है॥३४॥ जिस ने इस लोक में जल का दान तथा मधुरादि रसों का दान किया है, हे पक्षिन्, वह यममार्ग में प्राप्त होने पर आपत्काल में भी आनन्द प्राप्त करता है॥३५॥ जिस ने शास्त्र में विश्वास होने से शुद्ध हुए मन से अन्न दान किए हुए होते हैं वह भी यमलोकमार्ग में जाते हुए अन्न के विना भी तृप्त होता है॥३६॥ मरण समीप में आने पर यदि कोई शास्त्रविधान के अनुसार सन्न्यास लेता है तो वह इस लोक में जन्म लेने के लिए फिर लौटकर नहीं आता है, वह ब्रह्मभाव में प्राप्त होने में समर्थ हो जाता है॥३७॥

आसन्नमरणो मर्त्यश् चेत् तीर्थं प्रति नीयते। तीर्थप्राप्तौ भवेन् मुक्तिर् म्रियते यदि मार्गगः।
पदेपदे क्रतुसमं भवेत् तस्य न संशयः॥३८॥
गृह्णीयाच् चेदनशनं व्रतं विधिवदागते। मृत्यौ न सोऽपि संसारे भूयः पर्यटति द्विज॥३९॥
किं दानमिति तुर्यस्य प्रश्नस्योत्तरमीरितम्। दाहमृत्य्वोरन्तरे किमिति प्रश्नोत्तरं शृणु॥४०॥
गतप्राणं ततो ज्ञात्वा स्नात्वा पुत्त्रादिराशु तम्। शवं जलेन शुद्धेन क्षालयेदविचारयन्॥४१॥
परिधाप्याऽहते वस्त्रे चन्दनैः प्रोक्षयेत् तनुम्। ततो मृतस्य स्थाने वै एकोद्दिष्टं समाचरेत्॥४२॥
प्रयोगपूर्वं दाहस्य योग्यतादिर् यथा भवेत्। आसनं प्रोक्षणं च स्यान् न स्यादेतच्चतुष्टयम्॥४३॥
आवाहनार्चने चैव पात्त्रालम्भावगाहने। भवेद् दानान्नसङ्कल्पः पिण्डदानं सदा भवेत्॥४४॥
पदार्थपञ्चकं न स्याद् रेखा-प्रत्यवनेजनम्। दद्यादक्षय्यमुदकं न स्यादेतत्त्रयं पुनः॥४५॥

जिस का मरण समीप में आया है वह पुरुष यदि तीर्थ में ले जाया जाता है तो तीर्थप्राप्ति होने पर मुक्ति ही मिलेगी, यदि मार्ग में ही मरण हो जाता है तो उस को पग-पग में यज्ञ के फल प्राप्त होते हैं, उस में कोई संशय नहीं है॥३८॥ मृत्यु आने पर यदि कोई विधिपूर्वक अनशनव्रत लेगा तो, हे पक्षिन्, वह भी फिर संसार में भ्रमण नहीं करता है॥३९॥ दान क्या है, इस चौथे प्रश्न का उत्तर बताया गया। दाह और मृत्यु के बीच में क्या करना चाहिए इस प्रश्न का उत्तर सुनो॥४०॥ मनुष्य को गतप्राण जानकर पुत्त्रादि और्ध्वदेहिक कृत्य करने वाला व्यक्ति शीघ्र ही स्नान करके ऊहापोह में न पडकर उस मृत व्यक्ति के शव को शुद्ध जल से धोए॥४१॥ अहत (नवीन) अधोवस्त्र और उत्तरीय पहनाकर शव को चन्दनों से छिडके। तब मृत्यु के स्थान में शास्त्रोक्त प्रयोग (पद्धति) से एकोद्दिष्टश्राद्ध करे, जिस से दाह में योग्यतादि आवे। उस एकोद्दिष्ट श्राद्ध में आसनदान और प्रोक्षण होगा, आवाहन, अर्चन, पात्त्रालम्भन और ब्राह्मण के अङ्गुष्ठ का भोज्यात्त्र में अवगाहन इन चार क्रियाओं का समुदाय नहीं होगा, दानार्थक अन्न का सङ्कल्प होगा और पिण्डदान सदैव होगा, रेखाकरणादि प्रत्यवनेजनान्त

स्वधावाचनमाशीश् च तिलकं च खगोत्तम। घटं दद्यात् समाषान्नं दद्याल् लोहस्य दक्षिणाम्॥४६॥
पिण्डस्य चालनं प्रोक्तं नैव प्रोक्तमिदं त्रिकम्। प्रच्छादनविसर्गौ च स्वस्तिवाचनकं तथा॥४७॥
एषु षट्सु विधिः प्रोक्तः श्राद्धेषु मलिनेषु ते। षडेव मरणस्थाने द्वारि चात्वरिके तथा॥४८॥
विश्रामे काष्ठचयने तथा सञ्चयने खग। मृतिस्थाने शवो नाम भूमिस् तुष्यति देवता॥४९॥
पान्थो द्वारि भवेत् तेन प्रीता स्याद् वास्तुदेवता। चत्वरे खेचरस्तेन तुष्येद् भूतादिदेवता॥५०॥
विश्रामे भूतसंज्ञोऽयं तुष्टास्तेन दिशो दश। चितायां साधक इति सञ्चितो प्रेत उच्यते॥५१॥
तिलदर्भघृतैधांसि गृहीत्वा तु सुतादयः। गाथां यमस्य सूक्तं वाऽप्यधीयाना व्रजन्ति हि॥५२॥
अहरहर् नयमानो गामश्वं पुरुषं वृषम्। वैवस्वतो न तृप्यति सुराया इव दुर्मदी॥५३॥

पदार्थपञ्चक नहीं होगा, अक्षय्योदक दे; हे पक्षिश्रेष्ठ, स्वधावाचन, आशीःप्रार्थना और तिलक इन तीन क्रियाओं का समुदाय नहीं होगा, माषान्नसहित जल का घडा दे, और लोहे की दक्षिणा भी दे॥४२-४६॥ उस श्राद्ध में पिण्ड का चालन कर्तव्य बताया गया है, प्रच्छादन, विसर्ग और स्वस्तिवाचन इन तीन पदार्थों का समुदाय अकर्तव्य बताया गया है॥४७॥ इन छः मलिन श्राद्धों में अनुसरणीय पद्धति तुम को बता दिया गया। हे पक्षिन्, मरणस्थान, द्वार, चत्वर, विश्रामस्थल, काष्ठचयनस्थान तथा सञ्चयनस्थान ये छः मलिनश्राद्ध के स्थान हैं। मृत्युस्थान में मृतव्यक्ति शव कहा जाता है, मृतस्थान के श्राद्ध से भूमिदेवता तुष्ट होती है, द्वारदेश में मृत व्यक्ति पान्थ होगा, द्वारदेश के श्राद्ध से वास्तुदेवता प्रसन्न होगी, चत्वरदेश में मृतव्यक्ति खेचर होगा, चत्वरदेश के श्राद्ध से भूतादिदेवता तुष्ट होगी॥४८-५०॥ विश्रामस्थल में यह मृतव्यक्ति भूत नाम का होता है, उस विश्रामस्थल के श्राद्ध से दशों दिशाएँ सन्तुष्ट होती हैं। चितास्थल में मृतव्यक्ति साधक कहा जाता है और सञ्चितिस्थल में प्रेत कहा जाता है॥५१॥ तिल, कुश, घी और इन्धन (लकडी) लेकर यमगाथा अथवा यमसूक्त पढते हुए श्मशान की ओर जाते हैं॥५२॥ प्रतिदिन गाय, घोडा, मनुष्य और बैल इत्यादि को ले जाता हुआ यमराज जैसे सुरापान में

इमां गाथामपेतेति सूक्तं वा पथि सम्पठेत्। दक्षिणस्यां दिश्यरण्यं व्रजेयुः सर्वबान्धवाः॥५४॥
पथि श्राद्धद्वयं कुर्यात् पूर्वोक्तविधिना खग। ततः शनैर् भूतले वै दक्षिणाशिरसं शवम्॥५५॥
स्थापयित्वा चिताभूमौ पूर्वोक्तं श्राद्धमाचरेत्। तृणकाष्ठतिलाज्यादि स्वयं निन्युः सुतादयः॥५६॥
शूद्रानीतैः कृतं कर्म सर्वं भवति निष्फलम्। प्राचीनावीतिना भाव्यं दक्षिणाभिमुखेन च॥५७॥
वेदी तत्र प्रकर्तव्या यथाशास्त्रमथाण्डज। प्रेतवस्त्रं द्विधा कृत्वाऽर्द्धेन तं छादयेत् ततः॥५८॥
अर्धं श्मशानवासार्थं भूमावेव विनिःक्षिपेत्। ततः पूर्वोक्तविधिना पिण्डं प्रेतकरे न्यसेत्॥५९॥
आज्येनाभ्यञ्जनं कार्यं सर्वाङ्गेषु शवस्य च। दाहमृत्व्योरन्तराले विधिः पिण्डस्य तं शृणु॥६०॥

अभ्यस्त मनुष्य सुरा से तृप्त नहीं होता है वैसे ही कभी तृप्त नहीं होता है॥५३॥ "अहरहर् नयमानः" इत्यादि गाथा का अथवा "अपेतो यन्तु पणयः" इत्यादि यमसूक्त (मा.वा. शुक्लयजुर्वेदमन्त्रार्षसंहिता ३५।१-१०) का श्मशान को जाते हुए मार्ग में सम्पाठ (सामूहिक पाठ) करे। सभी बान्धव दक्षिण दिशा में श्मशान के अरण्य को जाएं॥५४॥ हे पक्षिन्, पहले बताए गए विधि से मार्ग में दो श्राद्ध करे। तब श्मशान में पहुँचकर भूतल में दक्षिण की ओर शिर करके शव को धीरे से रखकर चिता बनाने के स्थल में पूर्वोक्त श्राद्ध करे। तृण, काष्ठ, तिल, घी इत्यादि आवश्यक पदार्थ पुत्रादि बन्धुवान्धवों को स्वयम् ले जाना चाहिए॥५५-५६॥ शूद्रद्वारा लाए गए तृण, काष्ठ इत्यादि से किया गया और्ध्वदेहिक कर्म सब निष्फल होता है। और्ध्वदेहिक कर्म में प्राचीनावीती (दक्षिण स्कन्ध में रखे हुए उत्तरीय और जनेऊ से युक्त) और दक्षिण दिशा की ओर किए गए मुह से युक्त होना चाहिए॥५७॥ हे पक्षिन्, चिताभूमि में श्रौतसूत्र-गृह्यसूत्र-पितृमेधसूत्रादि शास्त्र में बताई गई रीति से वेदी बनानी चाहिए। तब प्रेतवस्त्र को दो भाग में फाडकर आधे से प्रेत को ढके॥५८॥ आधे भाग को श्मशान में निवास करने वालों के लिए भूमि में ही फेंक दे। तब पूर्वोक्त विधि से श्राद्ध करके प्रेत के हस्त में पिण्ड रखे॥५९॥ शव के सभी अङ्गों में घी का लेपन करना चाहिए। शवदाह के और मृत्यु के बीच में पिण्ड का जो विधि है उस को सुनो॥६०॥

पूर्वोक्तैः पञ्चभिः पिण्डैः शवस्याहुतियोग्यता। अन्यथा चोपघाताय राक्षसाद्या भवन्ति हि॥६१॥
सम्मृज्य चोपलिप्याऽथ उल्लिख्योद्धृत्य वेदिकाम्। अभ्युक्ष्योपसमाधाय वह्निं तत्र विधानतः॥६२॥
पुष्पाक्षतैश् च सम्पूज्य देवं क्रव्यादसंज्ञकम्। श्रौतेन तु विधानेन ह्याहिताग्निं दहेद् बुधः॥६३॥
चण्डालाग्निं चिताग्निं च पतिताग्निं परित्यजेत्। त्वं भूतकृज् जगद्योनिस् त्वं लोकपरिपालकः॥६४॥
उपसंहर तस्मात् त्वमेनं स्वर्गं नयाऽमृतम्। इति क्रव्यादमभ्यर्च्य शरीराहुतिमाचरेत्॥६५॥
अर्धदग्धे तथा देहे दद्यादाज्याहुतिं ततः। अस्मात् त्वमधिजातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः॥६६॥
असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेत्युक्त्वा तु नामतः। एवमाज्याहुतिं दत्त्वा तिलमिश्रां समन्त्रकम्॥६७॥

पहले बताए गए पाँच पिण्डों से शव में अग्नि में डालने की योग्यता आती है। उन पाँच पिण्डों के अभाव में राक्षसादि विघ्न करने में समर्थ हो ही जाते हैं॥६१॥ वेदिका को बुहारकर तथा लिपकर स्फ्य से अथवा स्रुव से अथवा कुश से उल्लिखित करके वहाँ से कुछ मृत्तिका को निकाल के उत्तर की ओर फेंककर जल से वेदिका का अभ्युक्षण करके वहाँ श्रौतसूत्र-गृह्यसूत्रादि शास्त्र में बताए गए विधान से अग्नि को स्थापित करके उस क्रव्यादनामक अग्निदेव को फूल तथा अक्षतों से पूजकर विद्वज्जन आहिताग्नि के शव को श्रौतसूत्रोक्त विधि से दग्ध करे॥६२-६३॥ चाण्डाल के घर के अग्नि को दूसरी चिता के अग्नि को और पतित (ब्रह्महत्यादि महापातक करने वाले पापी अथवा उन के तुल्य पापी) के घर के अग्नि को भी शवदाह में वर्जित करे। "हे अग्निदेव, आप महाभूतों के सृष्टिकारक,जगत् के कारण हैं; आप लोक के पालक हैं, इस लिए आप इन को अपने में उपसंहृत कीजिए और अमृतरूप स्वर्ग में ले जाइए" ऐसे अर्थ वाले "त्वं भूतकृज्" इत्यादि मन्त्र से क्रव्याद अग्नि का अर्चन (पूजन) करके अग्नि में शरीर की आहुति करे॥६४-६५॥ तब शरीर का आधा भाग जलने पर "(हे अग्निदेव) इस मनुष्य से आपे उत्पन्न हुए हैं, आप से यह फिर उत्पन्न हो, अमुकशर्मा स्वर्ग लोक के लिए सुहुत हो" ऐसे अर्थ वाले "अस्मात् त्वमधिजातोऽसि" इत्यादि मन्त्र मृतव्यक्ति का नाम भी समाविष्ट करके बोलकर स्रुव से घी की आहुति दे। इस प्रकार तिलयुक्त

रोदितव्यं ततो गाढमेवं तस्य सुखं भवेत्। दाहस्यानन्तरं तत्र कृत्वा सञ्चयनक्रियाम्॥६८॥
प्रेतपिण्डं प्रदद्याच्च दाहार्तिशमनं खग। ततः प्रदक्षिणं कृत्वा चिताप्रस्थाऽनवीक्षकाः॥६९॥
कनिष्ठपूर्वाः स्नानार्थं गच्छेयुः सूक्तजापकाः। ततो जलसमीपे तु गत्वा प्रक्षाल्य चांशुकम्॥७०॥
परिधाय पुनस् तच् च ब्रूयुस्तं पुरुषं प्रति। उदकं तु करिष्यामः सचैलं पुरुषास् ततः॥७१॥
कुरुध्वमित्येव वदेच् छतवर्षावरे मृते। पुत्राद्या वृद्धपूर्वास् ते एकवस्त्राः शिखां विना॥७२॥
प्राचीनावीतिनः सर्वे विशेयुर् मौनिनो जलम्। अप नः शोशुचदधमनेन पितृदिङ्मुखाः॥७३॥
जलावघट्टनं चैव न कुर्युः स्नानकारकाः। ततस्तटे समागत्य शिखां बद्ध्वा ऋजून् कुशान्॥७४॥

घी की मन्त्रसहित आहुति देकर उस के बाद गाढ रूप में रोना चाहिए। इस प्रकार कृत्य करने से मृत व्यक्ति को सुख मिलेगा। हे पक्षिन्, दाह करने के पश्चात् वहाँ अस्थिसञ्चयन करके दाह की पीडा को शान्त करने वाला प्रेतपिण्ड भी दे। तब चिता की प्रदक्षिणा करके चितास्थल की ओर विलोकन नहीं करते हुए कनिष्ठ-कनिष्ठ को आगे करके वेद का सूक्त जपते हुए स्नान के लिए जायं। तब जल के समीप में जाकर वस्त्रों का प्रक्षालन करके फिर उन्हीं वस्त्रों को पहनकर उपस्थित श्यालकादि सम्बद्ध व्यक्ति से 'सचैल उदक कर्म करेंगे' ऐसे अर्थ वाले "उदकं करिष्यामः सचैलम्" इस वाक्य से उदककर्म करने की अनुमति माँगें। वर्षशतक भी जिस के आयु से कम हो ऐसे व्यक्ति मरने पर वह श्यालकादि सम्बद्ध व्यक्ति "कुरुध्वम्" (करें) इतना ही बोले। [सौ वर्ष से न्यून आयु वाले व्यक्ति मरने पर तो "कुरुध्वं मा चैवं पुनः" कह कर अनुमति देनी चाहिए। द्र.- पारस्करगृह्यसूत्र ३।१०।१४,१५]। वृद्ध-वृद्ध को आगे करते हुए पुत्रादि बान्धव एकवस्त्र होकर शिखाग्रन्थि खोलकर दाहिने कन्धे में वस्त्र वा यज्ञोपवीत वा दोनों करते हुए, मौनधारण करके दक्षिण दिशा की ओर मुख करते हुए "हमारे पाप को अपसारित (प्रक्षालित) करें" इस अर्थ का वाचक "अप नः शोशुचदघम्" (मा.वा.शु.य.वे.३५।६) इस मन्त्र से जल में प्रवेश करें॥६६-७३॥ स्नान करने वाले लोग जल का अवलोडन न करें। तब किनारे में आकर शिखा को बाँधकर दुःखी होकर सीधे कुशों को दक्षिणाग्र हाथों में रखकर अञ्जलि से तिलयुक्त जल लेकर पैतृक तीर्थ से (अङ्गुष्ठ और तर्जनी के मध्य से) दक्षिण दिशा में (अपने वेदशाखासूत्र के अनुसार)

दक्षिणाग्रहस्तयोस् तु कृत्वाथ सतिलं जलम्। आदायाञ्जलिना याम्यां दुःखी पैतृकतीर्थतः॥७५॥
एकवारं त्रिवारं वा दशवारमथापि वा। भूमावश्मनि वा सर्वे क्षिपेयुर् वाग्यताः खग॥७६॥
तृप्यतु तृप्यतां वापि तर्पयाम्युपतिष्ठताम्। प्रेतैतदमुकगोत्रेत्युक्तेष्वेवं समुच्चरेत्॥७७॥
जलाञ्जलौ कृते पश्चाद् विधेयं दन्तधावनम्। त्यजन्ति गोत्रिणः सर्वे दिनानि नव काश्यप॥७८॥
तत उत्तीर्योदकाद् वै वस्त्राणि परिधाय च। स्नानवस्त्रं सकृत् पीड्य विशेयुः शुचिभूतले॥७९॥
अश्रुपातं न कुर्वीत दत्त्वा दाहजलाञ्जलिम्। श्लेष्माश्रु बान्धवैर् मुक्तं प्रेतो भुङ्क्ते यतोऽवशः॥८०॥

एक बार, तीन बार अथवा दश बार भूमि में अथवा पत्थर में मन्त्रातिरिक्त अन्य बातचीत न करते हुए उस तिलयुक्त जल को फेंकें॥७४-७६॥ जल फेंकते समय **"अमुकप्रेतः अमुकगोत्रः"** इत्यादि रूप से उच्चारण करके **"तृप्यतु"** अथवा **"तृप्यताम्"** अथवा **"तर्पयामि"** अथवा **"उपतिष्ठताम्"** अथवा **"एतत्"** इत्यादि यथोचित रूप में उच्चारण करे। अर्थात् अपनी अपनी वेदशाखा के सूत्रों के अनुसार **"अमुकगोत्रः अमुकप्रेतस् तृप्यतु"** (अमुक गोत्र वाला अमुक नाम का प्रेत तृप्त होवे) (प्रचेता से और ब्रह्मपुराण से अनुसृत वेदशाखा के विधान में), अथवा **"अमुकगोत्रः अमुकप्रेतस् तृप्यताम्"** (हारीत से अनुसृत वेदशाखा के विधान में), अथवा **"अमुकगोत्रम् अमुकप्रेतं तर्पयामि"** (छन्दोगपरिशिष्ट से अनुसृत सामवेदशाखा के विधान में), अथवा **"अमुकगोत्र अमुकप्रेत मद्दत्तमेतज् जलं ते उपतिष्ठताम्"** (रामायण से अनुसृत वेदशाखा के विधान में), अथवा **"अमुकगोत्र अमुकप्रेत एतत् ते स्वधा"** (बैजवाप की वेदशाखा के विधान में) इत्यादि रूप में **उदकदान वाक्य बोले** (द्र.- निर्णयसिन्धु की कृष्णभट्टकृत संस्कृतव्याख्या, पृ.१९९७, हेमाद्रिकृत चतुर्वर्गचिन्तामणि, परिशेषखण्ड, श्राद्धकल्प, पृ.१५८४-१५८७। इस वस्तुस्थिति में पारस्कर के अनुयायियों के लिये अन्त्येष्टिदीपकादि के तिलकुशतोयाञ्जलिदान के वाक्य चिन्त्य ही दिखाई देते हैं; पारस्करानुसारि वाक्य तो **"अस्मत्तत्पितः अमुकशर्म्मन् अमुकगोत्त्र प्रेत एतत् त उदकम्"** इस प्रकार का होता है। द्रष्टव्य- भाष्यपञ्चकयुक्त पारस्करगृह्यसूत्र, हरिहरभाष्यपद्धति, पृ.३५३; गदाधरभाष्य, पृ.४८९; विश्वनाथभाष्य, पृ.३८०)॥७७॥ हे कश्यपपुत्र गरुड, जलाञ्जलिदान के पश्चात् सभी गोत्री बन्धु नौ दिन तक प्रतिदिन कर्तव्य दन्तधावन का परित्याग करते हैं॥७८॥ तब जल से निकलकर वस्त्र पहनके एक वार स्नानवस्त्र को निचोडकर शुद्ध भूमि में बैठें॥७९॥ शवदाहोत्तर जलदान करके अश्रुपात नहीं करे। क्योंकि प्रेत विवश होकर रोते हुए बान्धवों से नाक से और आँखों से मुक्त सिङ्घाण और आँसू खाता है, इस लिए नहीं रोना चाहिए,

अतो न रोदितव्यं हि क्रियाः कार्याः स्वशक्तितः। ततस् तेषूपविष्टेषु पुराणज्ञः सुकृत् स्वकः॥८१॥
शोकापनोदं कुर्वीत संसारानित्यतां ब्रुवन्। मानुष्ये कदलीस्तम्भे असारे सारमार्गणम्॥८२॥
करोति यः स सम्मूढो जलबुद्बुदसन्निभे। पञ्चधा सम्भृतः कायो यदि पञ्चत्वमागतः॥८३॥
कर्मभिः स्वशरीरोत्थैस्तत्र का परिदेवना। गन्त्री वसुमती नाशमुदधिर् दैवतानि च॥८४॥
फेनप्रख्यः कथं नाशं मर्त्यलोको न यास्यति। एवं संश्रावयेत् तत्र मृदुशाद्वलसंस्थितान्॥८५॥
तेऽपि संश्रुत्य गच्छेयुर् गृहं बालपुरःसराः। विदश्य निम्बपत्राणि नियता द्वारि वेश्मनः॥८६॥
आचम्य वह्निं सलिलं गोमयं गौरसर्षपान्। दूर्वाप्रवालं वृषभमन्यदप्यथ मङ्गलम्॥८७॥

अत एव अपनी शक्ति के अनुसार औध्र्वदेहिक क्रिया करनी चाहिए। जब बन्धुबान्धव शुद्ध भूमि में बैठते हैं तब अपना कोई धार्मिक पुराणज्ञ व्यक्ति संसार की अनित्यता को बताते हुए शोक का अपनोदन (निराकरण) करे। संसार की अनित्यता का स्पष्टीकरण करते हुए वह कहे— केले के स्तम्भ की तरह साररहित और जल के बुद्बुद की तरह क्षणभङ्गुर मनुष्य के शरीर में जो मनुष्य सारतत्त्व को खोजता है वह अत्यन्त मूढ (विचारशून्य) है, पाँच महाभूतों से बना हुआ शरीर अपने ही शरीर से किए गए कर्मों से यदि पाँच तत्त्वों में मिलने गया तो उस में विलाप क्यों करना? पृथिवी भी नष्ट होने वाली है, समुद्र भी नष्ट होने वाला ह, देवताएँ भी नष्ट होने वाली हैं, फेन जैसा यह मर्त्यलोक कैसे नष्ट नहीं होगा। वहाँ मुलायम हरित दूर्वादियुक्त भूमि में बैठे हुए शोकाक्रान्त लोगों का शोकापवदन करने वाला व्यक्ति ऐसा सुनाए॥८०-८५॥ वे शोकाक्रान्त लोग भी उस शोकापवदन को सुनकर न्यूनन्यून वय वाले व्यक्तिओं को आगे करते हुए अपने घर को जायं। संयत होकर घर के द्वार में नीम की पत्तियों को चबाकर आचमन करके अग्नि, जल, गोबर, पीले सारसों, दूवे के कोमल पत्र, बयल तथा अन्य भी माङ्गलिक पदार्थों का स्पर्श करके, धीरे से पत्थर पर पैर रखकर घर में प्रवेश करें।

प्रविशेयुः समालभ्य कृत्वाऽश्मनि पदं शनैः। श्रौतेन तु विधानेन आहिताग्निं दहेद् बुधः॥८८॥
ऊनद्विवर्षं निखनेन् न कुर्यादुदकं ततः। योषित् पतिव्रता या स्याद् भर्तारं याऽनुगच्छति॥८९॥
प्रयोगपूर्वं भर्तारं नमस्कृत्यारुहेच् चितिम्। चितिभ्रष्टा तु या मोहात् सा प्राजापत्यमाचरेत्॥९०॥
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च यानि लोमानि मानुषे। तावत्कालं वसेत् स्वर्गे भर्तारं यानुगच्छति॥९१॥
व्यालग्राही यथा व्यालं बिलादुद्धरते बलात्। तद्वदुद्धृत्य सा नारी तेनैव सह मोदते॥९२॥
तत्र सा भर्तृपरमा स्तूयमानाऽप्सरोगणैः। क्रीडते पतिना सार्धं यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥९३॥
ब्रह्मघ्नो वा कृतघ्नो वा मित्रघ्नो वा भवेत् पतिः। पुनात्यविधवा नारी तमादाय मृता तु या॥९४॥

जिस ने श्रौत अग्नि रखे थे उस के शव को श्रौत विधानों से दहन करे॥८६-८८॥ दो वर्ष से न्यून वय वाले बच्चे के शव को भूमि में गड्ढा खोदकर उस में रखकर मिट्टी और पत्थर से ढक दे (दाह न करे), उस का जलदानादि क्रिया भी न करे। जो पतिव्रता स्त्री होगी और जो पति का मरण होने पर पति का अनुगमन करना चाहेगी वह स्त्री पहले शास्त्रोक्त विधान सम्पन्न करके पति को नमस्कार करके चिता में चढे। जो चिता में चढने पर भी मोहवश चिता से उतरे वह स्त्री अपनी शुद्धि के लिए प्राजापत्य कृच्छ्र करे॥८९-९०॥ पति के मरण पर अनुगमन करने वाली स्त्री मनुष्य के शरीर में जो तीन करोड और आधा करोड लोम हैं उतने कालतक स्वर्ग में निवास करेगी॥९१॥ जैसे सर्प को पकडने वाला मनुष्य सर्प को बिल से बलात् निकालता है वैसे ही पति का अनुगमन करने वाली वह नारी अपने पापी पति को भी नरकगर्त से निकालकर उसी पति के साथ स्वर्ग में जाकर आनन्द का भोग करती है॥९२॥ वहाँ वह पतिपरायणा स्त्री अप्सराओं के गणों से प्रशंसित होती हुई चौदह इन्द्रों के समयतक (एक कल्प तक) पति के साथ में रमती है॥९३॥ पति ब्रह्महत्या करने वाला हो अथवा कृतघ्न हो अथवा मित्रहत्या करने वाला हो जो भी हो उस के शव को लेकर जलकर मरने वाली अविधवा स्त्री पति को सर्वथा पापरहित बनाती है॥९४॥

मृते भर्तरि या नारी समारोहेद्धुताशनम्। साऽरुन्धतीसमाचारा स्वर्गलोके महीयते॥९५॥
यावच्चाग्नौ मृते पत्यौ स्त्री नात्मानं प्रदाहयेत्। तावन्न मुच्यते सा हि स्त्रीशरीरात् कथञ्चन॥९६॥
मातृकं पैतृकं चैव यत्र चैव प्रदीयते। कुलत्रयं पुनात्येषा भर्तारं याऽनुगच्छति॥९७॥
आर्ताऽऽर्ते मुदिते हृष्टा प्रोषिते मलिना कृशा। मृते म्रियेत या पत्यौ सा स्त्री ज्ञेया पतिव्रता॥९८॥
पृथक् चितां समारुह्य न विप्रा गन्तुमर्हति। क्षत्रियाद्याः सवर्णाश् च आरोहेयुरपीह ताः॥९९॥
चाण्डालीमवधिं कृत्वा ब्राह्मणीतः समो विधिः। अगर्भिणीनां सर्वासामबालतोक्मनामपि॥१००॥
दहनस्य विधिः प्रोक्तः सामान्येन मया खग। विशेषमपि तस्याऽस्य कञ्चित् किं श्रोतुमिच्छसि॥१०१॥

पति मरने पर जो नारी चिता कीआग में चढती है, अरुन्धती के जैसा पतिव्रता का व्यवहार करने वाली वह नारी स्वर्गलोक में सत्कृत होती है॥९५॥ जब तक पति मरने पर स्त्री अपने को आग में नहीं जलाएगी तब तक वह स्त्रीशरीर से किसी प्रकार भी छुटकारा नहीं पाती है॥९६॥ जो स्त्री मृत पति का अनुगमन करती है वह माता का कुल, पिता का कुल और जहाँ दी जाती है वह पतिकुल इन तीनों कुलों के समुदाय को शुद्ध करती है॥९७॥ जो स्त्री पति आर्त होने पर आर्त होती है, पति प्रसन्न होने पर प्रसन्न होती है, पति परदेश जाने पर मलिन और कृश होती है और पति मरने पर मर जाती है उस स्त्री को पतिव्रता जानना चाहिए॥९८॥ ब्राह्मणी स्त्री पृथक् चिता में चढकर परलोक जाने में योग्य नहीं मानी जाती है। जो क्षत्रिया इत्यादि सवर्ण स्त्री हैं वे इस लोक में पृथक् चिता में अन्वारोहण भी कर सकती हैं॥९९॥ गर्भिणी और बालापत्य-स्त्रियों को छोडकर ब्राह्मणी से लेकर चाण्डाली तक सभी स्त्रियों के लिए पति के साथ चिता में जलकर मरने का विधान समान ही है॥१००॥ हे पक्षिन्, शवदाह का विधि सामान्य रूप से मैं ने बता दिया। इस शवदाह का कोई विशेष भी सुनना चाहते हो?॥१०१॥

गरुड उवाच

प्रोषिते तु मृते स्वामिन्यस्थ्नि नाशमुपेयुषि। कथं दाहः प्रकर्तव्यस् तन्मे वद जगत्पते॥१०२॥

श्रीकृष्ण उवाच

अस्थीनि चेन् न लभ्यन्ते प्रोषितस्य नरस्य च। तेषां च हि गतिस्थानं विधानं कथयाम्यहम्॥१०३॥

शृणु तार्क्ष्य परं गोप्यं पत्युर् दुर्मरणेषु यत्। लङ्घनैर् ये मृता जीवा दंष्ट्रिभिश्चाभिघातिताः॥१०४॥

कण्ठग्रहे विलग्नानां क्षीणानां तुण्डघातिनाम्। विषाग्निवृषविप्रेभ्यो विषूच्या चात्मघातकाः॥१०५॥

पतनोद्बन्धनजलैर् मृतानां शृणु संस्थितिम्। सर्पव्याघ्रैः शृङ्गिभिश् च उपसर्गोपलोदकैः॥१०६॥

ब्राह्मणैः श्वापदैश् चैव पतनैर् वृक्षवैद्युतैः। नखैर् लोहैर् गिरेः पातैर् भित्तिपातैर् भृगोस्तथा॥१०७॥

गरुड ने कहा— हे जगत् के पति, प्रवास के समय में गृहपति का मरण होने पर और अस्थियों की प्राप्ति न होने पर किस प्रकार दाह करना चाहिए यह बात मुझ को बताइए॥१०२॥ श्रीकृष्ण ने कहा— प्रवास में गए हुए मनुष्य की अस्थियाँ नहीं मिलती हैं तो उन का स्थानापन्न विधान मैं बताता हूँ॥१०३॥ हे गरुड, गृहपति के दुर्मरणों में जो कर्तव्य है उस परम गोप्य बात को सुनो। जो प्राणी अवैध अनशन से मरा है, जो सिंह-व्याघ्रादि दाढ वाले हिंस्र प्राणियों से मारे गए हैं, गले में पकडने में संलग्न हिंप्रक प्राणियों के तथा भूख से क्षीण हुए और चोंच से मारने वाले प्राणियों के आक्रमण से जो मरे हैं; विष से, आग से, बैल से, ब्राह्मण से और हैजा से जो मरे हैं, जो आत्महत्या करने वाले हैं उन सभी के और वृक्षादि से गिरकर मरने वालों के, फाँसी लगाकर मरने वालों के, जल में डूबकर मरने वालों के शवों के संस्थापन के विधि को सुनो। सर्प से, व्याघ्र-सिंहादि से, शृङ्ग वाले पशुओं से, सङ्क्रामक घातक रोगों से, पत्थर से, जल से, ब्राह्मणों से, कुत्ते के पैर के सदृश पैर वाले पशुओं से, वृक्षादि से गिरने से, वृक्ष के पात से, बिजली के पात से, नख वाले प्राणियों के नखों से, धर्मयुद्ध से अन्यत्र लोहे के शस्त्रास्त्रों से, पर्वतों से गिरने से, दीवाल के गिरने से, गिरिपृष्ठ से गिरने से,

खट्वायामन्तरिक्षे च चौरचाण्डालतस् तथा। उदक्या-शुनकी-शूद्र-रजकादिविदूषिताः॥१०८॥
ऊर्ध्वोच्छिष्टाधरोच्छिष्टोभयोच्छिष्टास्तु ये मृताः। शस्त्रघातैर् मृता ये च श्वाऽऽस्यसृष्टास्तथैव च॥१०९॥
तत् तु दुर्मरणं ज्ञेयं यच् च जातं विधिं विना। तेन पापेन नरकान् भुक्त्वा प्रेतत्वभागिनः॥११०॥
न तेषां कारयेद् दाहं सूतकं नोदकक्रियाम्। न विधानं मृताद्यं च न कुर्यादौर्ध्वदेहिकम्॥१११॥
न पिण्डदानं कर्तव्यं प्रमादाच् चेत् करोति हि। नोपतिष्ठति तत् सर्वमन्तरिक्षे विनश्यति॥११२॥
अतस्तस्य सुतैः पौत्रैः सपिण्डैः शुभमिच्छुभिः। नारायणबलिः कार्यो लोकगर्हाभिया खग॥११३॥
तथा तेषां भवेच् छौचं नान्यथेत्यब्रवीद् यमः। कृते नारायणबलावौर्ध्वदेहिकयोग्यता॥११४॥

खाट में, घर के द्वितीयादि भूमिरूप अन्तरिक्ष में, चोरों से, चाण्डाल से मरने वालों का तथा रजस्वला, चाण्डाली, शूद्र, रजक इत्यादि के स्पर्श से दूषित अवस्था में मरने वालों का, मुख उच्छिष्ट रहने पर अथवा गुद और मूत्रेन्द्रिय उच्छिष्ट रहने पर जो मरे हैं उन का, धर्मयुद्ध से अन्यत्र शस्त्रों के प्रहार से जो मरे हैं उन का, जो मरने पर कुत्ते के मुह से स्पृष्ट हुए हैं उन का जो मरण है उस मरण को और आवश्यक प्रायश्चित्त-अवरोहण-दानादि के विधि के विना हुए मरण को भी दुर्मरण जानना चाहिए। उस दुर्मरण रूप पाप से वे दुर्मृत मनुष्य नरकों को भोगकर प्रेतयोनि में जाते हैं॥१०४-११०॥ उस प्रकार दुर्मरण से मरने वालों का दाह नहीं कराना चाहिए, उन का आशौच भी नहीं रखना चाहिए, उन के लिए स्नान और उदकदान भी नहीं करना चाहिए, मृतकविधान तथा अन्य और्ध्वदेहिक कर्म भी नहीं करना चाहिए॥१११॥ उन को पिण्डदान भी नहीं करना चाहिए, यदि कोई मोह से दाहादि और्ध्वदेहिक कृत्य करता है तो भी वह सब मृतक को परलोक में उपलब्ध नहीं होता है, अन्तरिक्ष में ही नष्ट हो जाता है॥११२॥ अत एव उस दुर्मृत मनुष्य के शुभेच्छु पुत्र, पौत्र और सपिण्ड लोगों से लोकापवाद से डरकर नारायणबलि किया जाना चाहिए॥११३॥ वैसा करने से उन दुर्मरण वाले मनुष्यों की शुद्धि होगी अन्यथा नहीं, ऐसा यम ने कहा। नारायणबलि नाम का कृत्य किए जाने पर उन दुर्मरण से मरे हुए लोगों की और्ध्वदेहिक कृत्य में योग्यता होती है॥११४॥

तस्य शुद्धिकरं कर्म तद् भवेन् न तदन्यथा। नारायणबलिं सम्यक् तीर्थे सर्वं प्रकल्पयेत्॥११५॥
कृष्णाग्रे कारयेद् विप्रैर् येन पूतो भवेन् नरः। पूर्वं तु तर्पणं कार्यं विप्रैः पौराणवैदिकैः॥११६॥
सर्वौषध्यक्षतैर् मिश्रैर् विष्णुमुद्दिश्य तर्पयेत्। कार्यं पुरुषसूक्तेन मन्त्रैर् वा वैष्णवैरपि॥११७॥
दक्षिणाभिमुखो भूत्वा प्रेतं विष्णुमिति स्मरन्। अनादिनिधनो देवः शङ्खचक्रगदाधरः॥११८॥
अक्षयः पुण्डरीकाक्षः प्रेतमोक्षप्रदो भव। तर्पणस्याऽवसाने स्याद् वीतरागो विमत्सरः॥११९॥
जितेन्द्रियमना भूत्वा शुचिष्मान् धर्मतत्परः। भक्त्या तत्र प्रकुर्वीत श्राद्धान्येकादशैव तु॥१२०॥
सर्वकर्मविधानेन एकैकाग्रे समाहितः। तोयव्रीहियवान् दद्याद् गोधूमांश्च प्रियङ्गवः॥१२१॥
हविष्यान्नं शुभं मुद्रां छत्रोष्णीषे च दापयेत्। दापयेत् सर्वसस्यानि क्षीरं क्षौद्रसमन्वितम्॥१२२॥

दुर्मरण से मरे हुए व्यक्ति का वह नारायणबलिकर्म शुद्धिकारी होगा, नारायणबलि न होने पर शुद्धि नहीं होती है। नारायणबलि के सभी कृत्यों को ठीक रूप में तीर्थस्थल में सम्पन्न करे॥११५॥ नारायणबलि ब्राह्मणोंद्वारा कृष्ण के (प्रतिमा के) आगे करवाये, जिस से दुर्मरण से मरा हुआ व्यक्ति शुद्ध हो सके। नारयणबलि में पहले पुराणज्ञ और वेदज्ञ ब्राह्मणोंद्वारा तर्पण करना चाहिए॥११६॥ मिश्रित सर्वौषधियों और अक्षतों से विष्णु को उद्दिष्टकर तर्पण करे। यह तर्पण पुरुषसूक्त से अथवा वैष्णव मन्त्रों से दक्षिण की ओर मुह करके प्रेत को विष्णु के रूप में स्मरण करते हुए करना चाहिए। हे देव, आप आदि से और अन्त से रहित, शङ्ख, चक्र और गदा को धारण करने वाले, कभी क्षीण नहीं होने वाले और पुण्डरीक (कमलपत्र) के समान नेत्र वाले हैं, आप इस प्रेत को प्रेतयोनि से मुक्ति देने वाले हों, ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए। तर्पण के अन्त्य में रागशून्य और मत्सर से रहित होवे॥११७-११९॥ इन्द्रिय और मन को वश में रखने वाला, शुद्धियुक्त और धर्म में तत्पर होकर भक्तिपूर्वक वहाँ ग्यारह श्राद्ध सभी श्राद्धविधानों को सम्पन्न करते हुए एक-एक ब्राह्मण के आगे सावधान होकर करे। वहाँ जल, चावल, जौ, गेहूँ और कँगनी दे॥१२०-१२१॥ शुभ हविष्य अन्न, अँगूठी, छत्र और पगडी भी दे। सभी प्रकार के अन्न और मधुसहित दूध दे॥१२२॥

वस्त्रोपानहसंयुक्तं दद्यादष्टविधं पदम्। दापयेत् सर्वपात्रेभ्यो न कुर्यात् पङ्क्तिवञ्चनम्॥१२३॥
भूमौ स्थितेषु पिण्डेषु गन्धपुष्पाक्षतान्वितम्। दातव्यं सर्वविप्रेभ्यो वेदशास्त्रविधानतः॥१२४॥
शङ्खे खड्गेऽथ वा ताम्रे तर्पणं च पृथक्पृथक्। ध्यानधारणसंयुक्तो जानुभ्यामवनीं गतः॥१२५॥
ऋचा वै दापयेदर्घमर्घोद्दिष्टं पृथक्पृथक्। ब्रह्मा विष्णुश् च रुद्रश् च यमः प्रेतश् च पञ्चमः॥१२६॥
पृथक् कुम्भे ततः स्थाप्याः पञ्चरत्नसमन्विताः। वस्त्रयज्ञोपवीतानि पृथङ् मुद्राः पदानि च॥१२७॥
पञ्च श्राद्धानि कुर्वीत देवतानां यथाविधि। जलधारां ततः कुर्यात् पिण्डेपिण्डे पृथक्पृथक्॥१२८॥
शङ्खे वा ताम्रपत्रे वा अलाभे मृन्मयेऽपि वा। तिलोदकं समादाय सर्वौषधिसमन्वितम्॥१२९॥
ताम्रपात्रं तिलैः पूर्णं सहिरण्यं सदक्षिणम्। दद्याद् ब्राह्मणमुख्याय पददानं तथैव च॥१३०॥

वस्त्र और जूते से युक्त आठ प्रकार का पद भी दे। पददान सभी पात्र ब्राह्मणों को दे, पङ्क्ति में वञ्चन (भेद) न करे॥१२३॥ पिण्ड भूमि में रहते ही गन्ध, पुष्प और अक्षता से युक्त (पूजित) दान (देय वस्तु) वेद शास्त्र के विधानानुसार सभी ब्राह्मणों को देना चाहिए॥१२४॥ शङ्ख में अथवा खड्ग पात्र में अथवा ताम्रपात्र में तिलजल लेकर ध्यान की निरन्तरता करते हुए और घुटनों के बल पृथ्वी पर अवस्थित होकर पृथक्-पृथक् तर्पण करे॥१२५॥ अर्घ में उद्दिष्ट को ऋङ्मन्त्र से पृथक्-पृथक् अर्घ दे। उस के बाद पृथक्-पृथक् कुम्भों में ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, यम, और पञ्चम प्रेत को पञ्चरत्नसहित रूप में स्थापित करना चाहिए। वस्त्र, यज्ञोपवीत और अँगूठी तथा अन्य पददान के वस्तु भी वहाँ रखना चाहिए॥१२६-१२७॥ ब्रह्मादि देवता के पाँच श्राद्ध विधिपूर्वक करे। तब शङ्ख में अथवा ताम्रपात्र में अथवा उन के अभाव में मिट्टी के पात्र में सर्वौषधिसहित तिलोदक लेकर प्रत्येक पिण्ड में पृथक्-पृथक् जलधारा दे॥१२८-१२९॥ इस कृत्य में निमन्त्रित ब्राह्मणों में मुख्य ब्राह्मण को स्वर्णसहित तिलपूर्ण ताम्रपात्र दक्षिणासहित दे, उसी प्रकार पददान भी दे॥१३०॥ यम को उद्दिष्ट करके तिल लोहा

यमोद्देशे तिलाल्ँ लौहं ततो दद्याच्च दक्षिणाम्। एवं विष्णुबलिं दत्त्वा यथाशक्त्या विधानतः॥१३१॥
समुद्धरति तत् क्षिप्रं नात्र कार्या विचारणा। नागदंशान् मृतो यस् तु विशेषस् तत्र मे शृणु॥१३२॥
सुवर्णभारनिष्पन्नं नागं कृत्वा तथैव गाम्। विप्राय दत्त्वा विधिवत् पितुरानृण्यमाप्नुयात्॥१३३॥
एवं सर्पबलिं दत्त्वा सर्पदोषाद् विमुच्यते। पश्चात् पुत्तलकं कार्यं सर्वौषधिसमन्वितम्॥१३४॥
पलाशस्य च वृन्तानां विभागं शृणु काश्यप। कृष्णाजिनं समास्तीर्य कुशैश्च पुरुषाकृतिम्॥१३५॥
शतत्रयेण षष्ट्या च वृन्तैः प्रोक्तोऽस्थिसञ्चयः। विन्यस्य तानि वृन्तानि अङ्गेष्वेषु पृथक्पृथक्॥१३६॥
चत्वारिंशच् छिरोभागे ग्रीवायां दश विन्यसेत्। विंशत्युरःस्थले दद्याद् विंशतिं जठरे तथा॥१३७॥
बाहुद्वये शतं दद्यात् कटिदेशे च विंशतिम्। ऊरुद्वये शतं चापि त्रिंशज् जङ्घाद्वये न्यसेत्॥१३८॥

और दक्षिणा भी दे। इस प्रकार अपनी शक्तिअनुसार विधिपूर्वक विष्णुबलि देकर मनुष्य दुर्मरण से मरे हुए व्यक्ति को प्रेतभाव से उद्धार करता है, इस में उद्धार होता है या नहीं ऐसा सन्देह और ऊहापोह नहीं करना चाहिए। सर्प के दंश से जो मरता है उस में जो विशेष कर्तव्य है उस को मुझ से सुनो॥१३१-१३२॥ स्वर्ण के भार से निष्पन्न नाग की प्रतिमा बनाकर उस को और गौ को ब्राह्मण को विधिपूर्वक देकर पुत्र सर्पदंश से मरे पिता प्रति अनृणता प्राप्त करता है॥१३३॥ इस प्रकार सर्पबलि देकर सर्पदोष से मुक्त होता है। दुर्मण होने पर नारायणबलि के पश्चात् सर्वौषधियों से युक्त पुत्तलक (प्रेतप्रतिमा) बनाना चाहिए॥१३४॥ हे कश्यपपुत्र गरुड, पलाशपत्र के वृन्तों के स्थानविभाग सुनो। कृष्णसार मृग के चर्म को बिछाकर उस में कुशों से पुरुष की आकृति बनाकर तीन सौ साठ पलाशपत्रवृन्तों से अङ्गों में वृन्तों को पृथक्-पृथक् रखकर अस्थिसञ्चय करने की बात कही गई है॥१३५-१३६॥ कुश के पुरुष की आकृति में शिरोभाग में चालीस और गले में दश पलाशवृन्त रखे। वक्षःस्थल में बीस, पेट में बीस पलाशपत्रवृन्त दे॥१३७॥ दोनों बाहुओं में सौ, कटि में बीस, दो ऊरुओं (कटि और घुटने के बीच) में सौ, दो जङ्घाओं (घुटने से नीचे और पैर के ऊपर के भाग) में तीस पलाशवृन्त रखे॥१३८॥

दद्याच् चतुष्टयं शिश्ने षड् दद्याद् वृषणद्वये। दश पादाङ्गुलीभागे एवमस्थीनि विन्यसेत्॥१३९॥
नारिकेलं शिरःस्थाने तुम्बं दद्याच् च तालुके। पञ्चरत्नं मुखे दद्याज् जिह्वायां कदलीफलम्॥१४०॥
अन्त्रेषु नालिकं दद्याद् वालुकां घ्राण एव च। वसायां मृत्तिकां दद्याद्धरितालमनःशिलाः॥१४१॥
पारदं रेतसः स्थाने पुरीषे पित्तलं तथा। मनःशिलां तथा गात्रे तिलपक्वन्तु सन्धिषु॥१४२॥
यवपिष्टं तथा मांसे मधु शोणित एव च। केशेषु च जटाजूटं त्वचायाञ्च मृगत्वचम्॥१४३॥
कर्णयोस् तालपत्रं च स्तनयोश् चैव गुञ्जिकाः। नासायां शतपत्रं च कमलं नाभिमण्डले॥१४४॥
वृन्ताकं वृषणद्वन्द्वे लिङ्गे स्याद् गृञ्जनं शुभम्। घृतं नाभ्यां प्रदेयं स्यात् कौपीने च त्रपु स्मृतम्॥१४५॥
मौक्तिकं स्तनयोर् मूर्ध्नि कुङ्कुमेन विलेपनम्। कर्पूरागुरुधूपैश्च शुभैर् माल्यैः सुगन्धिभिः॥१४६॥

शिश्न (मेढ्र) में चार, दो अण्डकोशों में छः पलाशपत्रवृन्त दे, पैर के अङ्गुलियों के स्थल में दश पलाशपत्रवृन्त दे। इस प्रकार अस्थियों (हड्डियों) का विन्यास करे॥१३९॥ कुश के पुरुष की आकृति में शिरःस्थान में नारियल दे, तालुप्रदेश में तो गोल लौकी दे, मुखस्थान में पञ्चरत्न (सोना, चाँदी, मोती, लाजवर्द, मूँगा) दे, जिह्वास्थान में केले का फल दे॥१४०॥ आंतों के स्थान में कमलनाल दे, नाक के स्थान में बालू दे, मेदा के स्थान में मिट्टी, हरिताल और मैनसिल दे॥१४१॥ वीर्य के स्थान में पारा दे, पुरीषस्थान में पित्तल दे। इन्द्रिय में मैनसिल दे, सन्धियों में तिलपक्व वस्तु दे॥१४२॥ मांस के स्थान में यवचूर्ण दे, रक्त के स्थान में मधु दे, केशों के स्थान में कुश के जडसहित गुच्छ दे, त्वचा के स्थान में मृगचर्म दे, दोनों कान के स्थान में तालपत्र दे, दोनों स्तनों के स्थान में रत्ती दें, नासिका के स्थान में शतपत्र (कमलविशेष) दे, नाभिमण्डल के स्थान में कमल दे॥१४३-१४४॥ अण्डकोशों के स्थान में वैगन दे, लिङ्ग के स्थान में अच्छा गाजर दे, नाभिस्थान में घी देना चाहिए, गुह्य अङ्ग के स्थान में सीसा देय समझा गया है॥१४५॥ स्तनों में मोती देय समझा गया है, शिर में कुङ्कुम से विलेपन देय समझा गया है, कर्पूर और अगरु के धूप से सुवासित सुगन्धी मनोहर मालाओं से युक्त

परिधानं पट्टसूत्रं हृदये चैव विन्यसेत्। ऋद्धिवृद्धी भुजौ द्वौ च चक्षुर्भ्यां च कपर्दकम्॥१४७॥
दन्तेषु दाडिमीबीजान्यङ्गुलीषु च चम्पकम्। सिन्दूरं नेत्रकोणे च ताम्बूलाद्युपहारकम्॥१४८॥
सर्वौषधियुतं प्रेतं कृत्वा पूजां यथोदिताम्। साग्निके चापि विधिना यज्ञपात्रं न्यस्येत् क्रमात्॥१४९॥
शन्नो देवीः पुनन्तु मा इमं मे वरुणेति च। प्रेतस्य पावनं कृत्वा शालग्रामशिलोदकैः॥१५०॥
विष्णुमुद्दिश्य दातव्या सुशीला गौः पयस्विनी। तिला लोहं हिरण्यं च कार्पासं लवणं तथा॥१५१॥
सप्तधान्यं क्षितिर् गाव एकैकं पावनं स्मृतम्। तिलपात्रं ततो दद्यात् पददानं तथैव च॥१५२॥
कर्तव्यं वैष्णवं श्राद्धं प्रेतमुक्त्यर्थमात्मनः। प्रेतमोक्षं ततः कुर्याद्धृदि विष्णुं प्रकल्प्य च॥१५३॥

परिधान और पट्टसूत्र भी हृदयस्थल में रखे। दो भुजाओं के स्थान में ऋद्धि-वृद्धि नाम की ओषधियाँ रखे, नेत्रों के स्थान में कौडियाँ रखे, दाँतों के स्थान में अनार के बीज रखे, हाथ की उँगलियों के स्थान में चम्पकपुष्प रखे, नेत्र के कोणभाग में सिन्दूर दे, ताम्बूल इत्यादि का उपहार भी दे॥१४६-१४८॥ प्रेत के पुत्तलक को सर्वौषधि से युक्त करके यथाविधान पूजा भी करे। मृत व्यक्ति अग्नि वाला हो तो उस के पुत्तलक में जुहू उपभृत् स्रुव इत्यादि यज्ञपात्र भी यथाविधान क्रम से तत्तद् अङ्ग में रखे॥१४९॥ **"शन्नो देवीः"** (मा.वा.शु.य.वे.३६।१२), **"पुनन्तु मा"** (मा.वा.शु.य.वे.१९।३९), **"इमं मे वरुण"** (मा.वा.शु.य.वे.२१।१) इत्यादि मन्त्रों से (द्रष्टव्य- जीवानन्दसंस्करण २।३०।५९) शालग्रामशिलाजल से उक्त पुत्तलकरूप के प्रेत का शुद्धीकरण करके विष्णु को उद्दिष्टकर सुशील और दूध देने वाली गौ का दान करना चाहिए। तिल, लोहा, सोना, कपास, नमक, सप्तधान्य (जौ, धान, तिल, कँगनी, मूँग, चना और साँवा), भूमि और गौ एक-एक ही शुद्धीकरण में समर्थ समझा गया है। तब तिलपात्र दे और उसी प्रकार पददान भी दे॥१५०-१५२॥ अपने प्रेतमुक्ति के लिए वैष्णव श्राद्ध करना चाहिए। उस के बाद हृदय में विष्णु को कल्पित करके प्रेतमोक्षकृत्य करे॥१५३॥

एवं पुत्तलकं कृत्वा दाहयेद् विधिपूर्वकम्। तच्छुद्धये तु संस्कर्ता पुत्त्रादिर् निष्कृतिं चरेत्॥१५४॥
त्रीन् कृच्छ्रान् षड् द्वादश च तथा पञ्चदशापि च। प्रायश्चित्तनिमित्तानुसारेण विप्रवत् स्मृतः॥१५५॥
अशक्तौ गोहिरण्यादिप्रत्याम्नायं चरेदपि। आत्मनोऽनधिकारित्वे शुद्धिमेवं चरेद् बुधः॥१५६॥
अशुद्धेन तु यद् दत्तमुद्दिश्याऽशुद्धमेव च। नोपतिष्ठति तत् सर्वमन्तरिक्षे विनश्यति॥१५७॥
शुद्धिं सम्पाद्य कर्तव्यं दहनाद्यौर्ध्वदेहिकम्। अकृत्वा निष्कृतिं यस्तु कुरुते दहनादिकम्॥१५८॥
मतिपूर्वममत्या च क्रमात् तन्निष्कृतिं शृणु। कृत्वाग्निमुदकं स्नानं स्पर्शनं वहनं कथाम्॥१५९॥
रज्जुच्छेदाश्रुपातं च तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति। एषामन्यतमं प्रेतं यो वहेत् तु दहेत वा॥१६०॥

इस प्रकार पुत्तलक बनाके विधिपूर्वक दाहकर्म करना चाहिए। उस कृत्य में संलग्न होने से अपने में आई हुई अशुद्धि के निराकरण के लिए दुर्मरण से मरे हुए व्यक्ति का अग्निसंस्कार करने वाला पुत्रादि प्रायश्चित्त करे॥१५४॥ प्रायश्चित्त में प्रायश्चित्त के निमित्त के गौरव-लाघव को देखकर तीन कृच्छ्र अथवा छः कृच्छ्र अथवा बारह कृच्छ्र अथवा पन्द्रह कृच्छ्र करे। यह कृच्छ्र क्षत्रियादि के लिए भी ब्राह्मण की तरह ही कर्तव्य समझा गया है॥१५५॥ कृच्छ्र करने में अशक्ति होने पर गोदान हिरण्यादिदानरूप कृच्छ्रप्रतिनिधि का अनुष्ठान करे। अपने देह की अशुद्धि से और्ध्वदेहिक कर्म में अपने अधिकार नहोने पर विवेकशील पुरुष अशुद्धिनिमित्तानुसार कृच्छ्र से अथवा कृच्छ्रों से अथवा उन के प्रतिनिधि से अपने देह की शुद्धि करे॥१५६॥ अशुद्ध मनुष्य से दिया गया उदकादि अथवा अशुद्ध मृतव्यक्ति को दिया गया उदकादि भी परलोक में प्राप्त नहीं होता है, वह सब अन्तरिक्ष में नष्ट हो जाता है॥१५७॥ कर्ता की और मृतक की प्रायश्चित्त से शुद्धि सम्पादित करके शवदाहादि और्ध्वदेहिक कृत्य करना चाहिए। प्रायश्चित्त किए विना जो मनुष्य ज्ञानपूर्वक अथवा अज्ञान से दुर्मरण से मरे हुए व्यक्ति का दहनादि कृत्य करता है क्रम से उस का प्रायश्चित्त सुनो। पातकी के शव का अग्निसंस्कार, उदकदान, स्नान, स्पर्श, वहन, शोकापवदनादि कथा, शवबन्धन-रज्जुच्छेद, अश्रुपात (रोदन) करके पुरुष तप्तकृच्छ्र करने पर शुद्ध होता है। ऊपर वर्णित दुर्मरणों में से किसी भी दुर्मरण

कटोदकक्रियां कृत्वा कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत्। निमित्ते लघुनि स्वल्पं महन् महति कल्पयेत्॥१६१॥

गरुड उवाच

कृच्छ्रस्य तप्तकृच्छ्रस्य तथा सान्तपनस्य च। लक्षणं ब्रूहि मे स्वामिँस्त्रयाणामपि सुव्रत॥१६२॥

श्रीकृष्ण उवाच

त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम्। उपवासस्त्र्यहं चैव एष कृच्छ्र उदाहृतः॥१६३॥

तप्तक्षीरघृताम्बूनामेकैकं प्रत्यहं पिबेत्। एकरात्रोपवासश् च तप्तकृच्छ्र उदाहृतः॥१६४॥

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्। जग्ध्वा परेऽह्न्युपवसेत् कृच्छ्रं सान्तपनं चरन्॥१६५॥

से मरे हुए व्यक्ति के शव को जो मनुष्य ढोएगा अथवा जलाएगा अथवा उस के लिए स्नान-उदकदान-पिण्डदानादि और्ध्वदेहिक कृत्य करेगा वह सान्तपनकृच्छ्र नाम का प्रायश्चित्त करे। छोटे अकार्य के लिए छोटा और बडे अकार्य के लिए बडा कृच्छ्रव्रत का उपदेश करना चाहिए॥१५८-१६१॥ गरुड ने कहा— हे शोभनव्रत से तुष्ट होने वाले स्वामिन्, कृच्छ्र, तप्तकृच्छ्र तथा सान्तपन इन तीनों का लक्षण मुझ को बताइए॥१६२॥ श्रीकृष्ण ने कहा— तीन दिन प्रातःकाल में ही खाए, तीन दिन सायंकाल में ही खाए, तीन दिन माँगे विना दिए गए खाद्यवस्तु ही खाए और तीन दिन उपवास करे यह व्रत शास्त्रों में कृच्छ्र कहा गया है॥१६३॥ एक दिन गरम दूध ही पिए, एक दिन गरम घी ही पिए, एक दिन गरम जल ही पिए और एक अहोरात्र उपवास करे यह व्रत शास्त्रों में तप्तकृच्छ्र कहा गया है॥१६४॥ सान्तपनकृच्छ्र करने वाला व्यक्ति एक दिन गोमूत्र, गोमय, गोदुग्ध, गोदधि, गोघृत और कुशोदक स्मृतिशास्त्रानुसार मिलाकर (याज्ञवल्क्यस्मृति ३।३१४, पराशरस्मृति ११।२७-४०) खाकर दूसरे दिन उपवास करे॥१६५॥

मया तेऽयं समाख्यातो दुर्मृतस्य विधिः खग। तदा मृतं विजानीयाद् दीपे निर्वाणमागते॥१६६॥
अग्निदाहं ततः कुर्यात् सूतकं च दिनत्रयम्। दशाहं गर्तपिण्डं च कर्तव्यं प्रेतपूर्वकम्॥१६७॥
एवं विधिं ततः कुर्यात् ततः प्रेतश्च मुक्तिभाक्। मृतभ्रान्त्या प्रतिकृतेः कृते दाहे स वै यदि॥१६८॥
आयाति तेन कर्तव्यं मज्जनं घृतकुण्डके। जातकर्मादिसंस्काराः कर्तव्याः पुनरेव तु॥१६९॥
ऊढामेव स्वकां भार्यामुद्वहेद् विधिवत् पुमान्। वर्षे पञ्चदशे पक्षिन् द्वादशे वा गते सति॥१७०॥
अज्ञातस्य प्रोषितस्य कृत्वा प्रतिकृतिं दहेत्। रजस्वला-सूतिकयोर् विशेषं मरणे शृणु॥१७१॥
सूतिकायां मृतायां तु एवं कुर्वन्ति याज्ञिकाः। कुम्भे सलिलमादाय पञ्चगव्यं तथैव च॥१७२॥
पुण्याभिरभिमन्त्र्याऽपो वाचा शुद्धिं लभेत् ततः। शतशूर्पोदकेनादौ स्नापयित्वा यथाविधि॥१७३॥

हे पक्षिन्, दुर्मरण से मरे हुए व्यक्ति का यह विधान मैं ने तुम को बता दिया। पुत्तलकदाह में पुत्तलक निष्पन्न करके गोदानादि करते समय (४।१५१) जलाया गया दीप जिस समय में बुझ जाता है उसी समय को जिस का पुत्तलक बनाया गया है उस के मरण का समय समझे॥१६६॥ उस के बाद पुत्तलक का अग्नि में दाह करे, और तीन दिन आशौच रखे। दश दिन तक प्रेतपद का प्रयोग करते हुए गर्त में पिण्डदान करना चाहिए॥१६७॥ वहाँ इस प्रकार विधि करे तब प्रेत प्रेतभाव से मुक्ति पाता है। प्रवास में मरने की भ्रान्ति से पुत्तलकदाह किए जाने पर यदि वह मनुष्य लौट आता है तो उस से घी के कुण्ड में डूबकर निकलने का काम किया जाना चाहिए। उस के जातकर्मादि संस्कार फिर किए जाने चाहिए॥१६८-१६९॥ वह पुरुष पहले विवाहित अपनी पत्नी को ही विधिपूर्वक पुनः विवाह करे। हे पक्षिन्, प्रवास के समय से पन्द्रहवें वर्ष अथवा वारहवें वर्ष बीतने पर भी जीवित रूप में अज्ञात प्रोषित व्यक्ति का पुत्तलक बनाकर दहन करे। रजस्वला के और सूतिका के मरण में विशेष कृत्य सुनो॥१७०-१७१॥ सूतिका मर जाने पर याज्ञिक लोग ऐसा करते हैं– घडे में जल और पञ्चगव्य लेकर पवित्र ऋचाओं से जल का अभिमन्त्रण कर पवित्र मन्त्र से अपनी शुद्धि करे। तब मृत सूतिका को पहले विधिपूर्वक सौ शूर्प (सूप) के जल से

तेनैव स्नापयित्वा तु दाहं कुर्यात् खगेश्वर। पञ्चभिः स्नापयित्वा तु गव्यैः प्रेतां रजस्वलाम्॥१७४॥
वस्त्रान्तरावृतिं कृत्वा दाहयेद् विधिपूर्वकम्। मृतस्य पञ्चके दाहविधिं वच्मि शृणुष्व मे॥१७५॥
आदौ कृत्वा धनिष्ठार्धमेतन् नक्षत्रपञ्चकम्। रेवत्यन्तं सदा दूष्यमशुभं सर्वदा भवेत्॥१७६॥
दाहस् तत्र न कर्तव्यो विषादः सर्वजन्तुषु। न जलं दीयते तेषु अशुभं सर्वदा भवेत्॥१७७॥
पञ्चकानन्तरं सर्वं कार्यं कर्तव्यमन्यथा। पुत्त्राणां गोत्रिणां तस्य सन्तापोऽप्युपजायते॥१७८॥
गृहे हानिर् भवत्येव ऋक्षेष्वेषु मृतस्य च। अथवा ऋक्षमध्ये च दाहस् तु विधिपूर्वकः॥१७९॥
क्रियते मानुषाणां तु स वा आहुतिपूर्वकः। विप्रैर् विधिरतैः कार्यो मन्त्रैस्तु विधिपूर्वकम्॥१८०॥
शवस्थानसमीपे तु क्षेप्तव्याः पुत्तलास्ततः। दर्भक्लृप्तास्तु चत्वार ऋक्षमन्त्राभिमन्त्रिताः॥१८१॥

नहलाकर उस घडे के जल से और पञ्चगव्य से नहलाकर दाह करवाए। मृत रजस्वला को पञ्चगव्यों से नहलाकर पहने हुए वस्त्रों को हटाकर दूसरे वस्त्रों को पहनाकर विधिपूर्वक दाह करवाए। धनिष्ठादि नक्षत्रों के पञ्चक में मरे हुए व्यक्ति के दाह के विधि को बताता हूँ, मुझ से सूनो॥१७२-१७५॥ धनिष्ठा नक्षत्र के उत्तरार्ध को आदि में रखकर उस से रेवतीतक के जो यह नक्षत्रों का पञ्चक (साढे चार नक्षत्र का समुदाय) है यह सदा दोषग्रस्त और अशुभ होगा॥१७६॥ उन नक्षत्रों में दाह नहीं करना चाहिए, उन नक्षत्रों में दाह करने से सभी जन्तुओं में विषाद प्राप्त होगा। उन नक्षत्रों में प्रेत को जलाञ्जलिदान भी नहीं किया जाता है, उन नक्षत्रों में प्रेत को जलाञ्जलिदान देने से सर्वदा अशुभ होगा॥१७७॥ पञ्चक बीतने पर सभी दाहादि और्ध्वदेहिक कृत्य करना चाहिए, अन्यथा उस प्रेत के पुत्रों का और गोत्रियों का भी सन्ताप उत्पन्न होता है॥१७८॥ इन नक्षत्रों में मरने वालों के घर में हानि अवश्य होती है। अथवा विशेष विधि करके इन नक्षत्रों के बीच में भी शवदाह तो किया जाता है। विधि के सम्पादन में सन्नद्ध ब्राह्मणोंद्वारा विधिपूर्वक मनुष्य के पुत्तलकों की आहुति करके मन्त्रों से वह शवदाहकृत्य किया जाना चाहिए॥१७९-१८०॥ उस में कुश से बने हुए और तत्तत् नक्षत्रों के मन्त्र से अभिमन्त्रित चार पुत्तलक शवस्थान के समीप में रखने चाहिए॥१८१॥

ततो दाहः प्रकर्तव्यस् तैश् च पुत्तलकैः सह। सूतकान्ते तदा पुत्रैः कार्यं शान्तिकपौष्टिकम्॥१८२॥
पञ्चकेषु मृतो योऽसौ न गतिं लभते नरः। तिलान् गां च सुवर्णं च तमुद्दिश्य घृतं ददेत्॥१८३॥
विप्राणां दापयेद् दानं सर्वविघ्नविनाशनम्। भोजनोपानहौ च्छत्रं हेममुद्रां च वाससी॥१८४॥
दक्षिणा दीयते विप्रे पातकस्य प्रमोचनः। मया तेऽयं समाख्यातो विधिः पञ्चहरः स्थितः।
संयमिन्यां यथा यानं यथा वर्षं मृतक्रिया॥१८५॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे दहनविधि-कृच्छ्रलक्षणदग्धागमनरजस्वलामरणविधिपञ्चकमरणप्रायश्चित्तनिरूपणं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥

तब उन पुत्तलकों के साथ में शवदाह करना चाहिए। आशौच के अन्त्य में प्रेत के पुत्रों से हवन-दानादि शान्तिक-पौष्टिक कृत्य किया जाना चाहिए॥१८२॥ जो मनुष्य पञ्चक में मरा है वह सद्गति नहीं पाता है। इस लिए उस की सद्गति के लिए तिल, गौ, स्वर्ण और घी का दान करे॥१८३॥ सभी विघ्नों के नाश करने वाला दान ब्राह्मणों को देना चाहिए। उस दान में भोजन, जूते, छाता, सोने की अँगूठी और धोती-उपरना देने चाहिए॥१८४॥ ब्राह्मणों को दक्षिणा भी दी जाती है। पञ्चक में मरने के दोष को हटाने वाला और पातक को छुटाने वाला स्मृतिशास्त्रों में स्थित यह विधि मुझ से तुम को बताया गया। यमपुरी में जाना जैसा होता है और वर्षपर्यन्त मृतक के लिए क्रियाएँ जैसी होती है यह सब भी बताऊँगा॥१८५॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में दहनविधि, कृच्छ्रलक्षण, दग्धागमन, रजस्वलामरणविधि, पञ्चकमरणप्रायश्चित्त इन विषयों का निरूपण करने वाला चौथा अध्याय समाप्त हुआ॥४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

एवं दग्ध्वा नरं प्रेतं स्नात्वा कृत्वा तिलोदकम्। अग्रतः स्त्रीजनो गच्छेद् व्रजेयुः पृष्ठतो नराः॥१॥
प्राशयेन् निम्बपत्राणि रुदन्तो नामपूर्वकम्। विधातव्यं चाऽऽचमनं पाषाणोपरि संस्थिते॥२॥
ते प्रविश्य गृहं सर्वे सुताद्याश् च सपिण्डकाः। भवेयुर् दशरात्रं वै यता आशौचके खग॥३॥
क्रीतलब्धाशनाः सर्वे स्वपेयुस् ते पृथक्पृथक्। अक्षारलवणान्नाः स्युर् निमज्जेयुश् च ते त्र्यहम्॥४॥
अमांसभोजनाश् चाधः शयीरन् ब्रह्मचारिणः। परस्परं न संस्पृष्टा दानाध्ययनवर्जिताः॥५॥
मलिनाश् चाधोमुखाश् च दीना भोगविवर्जिताः। अङ्गसंवाहनं केशमार्जनं वर्जयन्ति ते॥६॥

श्रीकृष्ण ने कहा— इस प्रकार मृत मनुष्य को जलाकर स्नान करके तिलोदक देकर स्त्रियों का समुदाय आगे-आगे चले औ पुरुष लोग पीछे-पीछे चले॥१॥ गृहप्रवेश के समय में मृत व्यक्ति का नाम लेकर रोते हुए नीम की पत्तियों को खाएं। पत्थर के ऊपर रहते हुए आचमन करना चाहिए॥२॥ हे पक्षिन्, घर में प्रवेश करके पुत्रादि वे सब सपिण्ड दश अहोरात्र के आशौचतक संयत होवें॥३॥ खरीदा हुआ अथवा सहयोगी जनों से प्राप्त भोज्य पदार्थ खाकर रहने वाले वे सब अलग-अलग सोयें। तीन दिन तक वे क्षार-लवण से रहित भोजन करके रहें और प्रेतोदकदानार्थ स्नान भी अवश्य करें (द्रष्टव्य- मनुस्मृति ५।७३)॥४॥ मांसभोजन वर्जित करते हुए और ब्रह्मचर्य में रहते हुए भूमि में ही बिछाए गए विस्तरे में सोयें। परस्पर में स्पर्श न करने वाले और दान तथा अध्ययन से रहित होकर रहने वाले वे मलिन, अधोमुख, दीन और भोग से रहित होकर रहें। वे अङ्गों का संवाहन (तैलादि से उन्मर्दन) और केशों का कंगियों से मार्जन भी वर्जित करते हैं॥५-६॥ वे मिट्टी के अथवा पत्तियों के पात्र में भोजन करें। एक

मृन्मये पत्रजे वाऽपि भुञ्जीरंस् ते च भाजने। उपवासं तु ते कुर्युरेकाहमथवा त्र्यहम्॥७॥

गरुड उवाच

आशौचिन इति प्रोक्तमाशौचस्य च वै प्रभो। लक्षणं किं कियत्कालं भाव्यं वा तद्युतैर् नरैः॥८॥

श्रीकृष्ण उवाच

अपनोद्यं त्विदं कालादिभिराशु निषेधकृत्। पिण्डाध्ययनदानादेः पुङ्गतोऽतिशयो हि तत्॥९॥
दशाहं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते। जननेऽप्येवमेव स्यान् निपुणं शुद्धिमिच्छताम्॥१०॥
जन्मन्येकोदकानां तु त्रिरात्राच् छुद्धिरिष्यते। शावस्य शेषाच् छुध्यन्ति त्र्यहादुदकदायिनः॥११॥
आ दन्तजननात् सद्य आ चौलान् नैशिकी स्मृता। त्रिरात्रमा व्रतादेशाद् दशरात्रमतः परम्॥१२॥

अहोरात्र अथवा तीन अहोरात्र वे उपवास करें॥७॥ गरुड ने कहा— हे प्रभो, आशौचियों का उल्लेख किया गया, आशौच का लक्षण क्या है, मनुष्यों को कितने समय तक आशौचयुक्त होकर रहना चाहिए?॥८॥ श्रीकृष्ण ने कहा— यह आशौच काल-स्नान इत्यादि से शीघ्र ही हटाया जाने वाला है, और वह आशौच पिण्डदान, अध्ययन, दान इत्यादि पुण्यकर्म का निवारण करने वाला और मनुष्य में रहने वाला एक विशेष गुण है॥९॥ सपिण्डों में मरण का आशौच दश अहोरात्रतक रहने का विधान है। अच्छी तरह शुद्धि चाहने वालों के लिए जन्म में भी इसी प्रकार दश अहोरात्रतक ही आशौच रहने का विधान है॥१०॥ एकोदकों (सात पुरुषों से दूर के लोगों) के लिए तो जन्म में तीन अहोरात्र में शुद्धि मुनियों का इष्ट है। मरण में सपिण्ड से भिन्न उदक देने वाले लोग भी तीन अहोरात्र बीतने से अवशिष्ट दिनों में ही शुद्ध होते हैं॥११॥ दाँत निकलने से पहले ही बालक के मृत्यु होने पर तत्काल स्नानतक अथवा उसी दिनतक (सज्योति) आशौच रहता है, दाँत निकलने से ऊपर चूडाकर्म न होनेतक बालक का मृत्यु होने पर एक अहोरात्रतक आशौच रहता है, चूडाकर्म होने पर उपनयन नहोनेतक मृत्यु होने पर तीन अहोरात्रतक आशौच रहता है, उस के बाद मृत्यु होने पर दश अहोरात्रतक आशौच रहता है॥१२॥

आशौचं ते समाख्यातं सङ्क्षेपात् प्रकृतं ब्रुवे। जलं त्रिदिनमाकाशे स्थाप्यं क्षीरं च मृन्मये॥१३॥
अत्र स्नाहि पिबाऽत्रेति मन्त्रेणाऽनेन काश्यप। काष्ठत्रये गुणैर् बद्धे प्रीत्यै रात्रौ चतुष्पथे॥१४॥
प्रथमेऽह्नि तृतीये वा सप्तमे नवमे तथा। अस्थिसञ्चयनं कार्यं दिने तद्गोत्रजैः सह॥१५॥
तदूर्ध्वमङ्गसंस्पर्शः सपिण्डानां विधीयते। योग्याः सर्वक्रियाणां च समानसलिलास्तथा॥१६॥
प्रेतपिण्डं बहिर् दद्याद् दर्भपात्रविवर्जितम्। प्रागुदीच्यां चरुं कृत्वा स्नात्वा प्रयतमानसः॥१७॥
भूमावसंस्कृतानां च संस्कृतानां कुशेषु च। नवभिर् दिवसैः पिण्डान् नव दद्यात् समाहितः॥१८॥
दशमं पिण्डमुत्सृज्य रात्रिशेषे शुचिर् भवेत्। असगोत्रः सगोत्रो वा यदि स्त्री यदि वा पुमान्॥१९॥
प्रथमेऽहनि यो दद्यात् स दशाहं समापयेत्। शालिना सक्तुभिर् वाऽपि शाकैर् वाप्यथ निर्वपेत्॥२०॥

संक्षेप से आशौच तुम को बतादिया, अब प्रकृत और्ध्वदेहिक कृत्य बताता हूँ। हे कश्यपपुत्र, तीन दिनतक मिट्टी के वर्तन में जल और दूध सूत्र से बंधे तीन काष्ठों की तिगोडिये में आकाश में रात में चौराहे पर प्रेत की प्रीति के लिए "अत्र स्नाहि" "पिबाऽत्र" इस मन्त्र से रखना चाहिए॥१३-१४॥ उस गोत्र के मनुष्यों का सहयोग लेकर पुत्रों से प्रथम दिन में अथवा तृतीय दिन में अथवा सप्तम दिन में अथवा नवम दिन में अस्थिसञ्चयन किया जाना चाहिए॥१५॥ उस के बाद सपिण्डों का अङ्गस्पर्श किया जा सकता है, समानोदक पुरुष तो उस अस्थिसञ्चयन के बाद सभी धर्मकृत्यों के लिए योग्य होते हैं॥१६॥ स्नान करके शुद्धचित्त होकर स्वगृह से वा स्वग्राम से पूर्व दिशा में अथवा उत्तर दिशा में चरु (ओदन) पकाकर द्विगुणदर्भरहित तथा पात्रब्राह्मणरहित रूप में घर से अथवा गाँव से बाहर असंस्कृत प्रेत के लिए भूमि में और संस्कृत प्रेत के लिए कुशों में प्रेतपिण्ड दे। जितेन्द्रिय होकर नौ दिनों में नौ पिण्ड दे॥१७-१८॥ दशम दिन में दशम पिण्ड देकर दिन बीतने पर रात्री अवशिष्ट होने पर ही प्रेतपिण्ड देने वाला व्यक्ति (एकादशाहश्राद्ध के लिए ब्राह्मणों को निमन्त्रित करने के लिए) शुद्ध होगा। असगोत्र अथवा सगोत्र, स्त्री अथवा पुरुष जो व्यक्ति प्रथम दिन में पिण्ड देगा वही दशों दिनों का पिण्डदान समाप्त करे। शालिधान के ओदन से अथवा सत्तू से अथवा शाक से पिण्ड दे॥१९-२०॥ प्रथम दिन में

प्रथमेऽहनि यद् द्रव्यं तदेव स्याद् दशाहिकम्। यावदाशौचमेकैकस्याञ्जलेर् दानमुच्यते॥२१॥
यद् वा यस्मिन् दिने दानं तस्मिँस् तद्दिनसङ्ख्यया। दशाहेऽञ्जलयः पक्षिन् पञ्चपञ्चाशदन्तिमे॥२२॥
द्विवृद्ध्या वा भवेत् पक्षिन्नञ्जलीनां शतं पुनः। यदा हि त्र्यहमाशौचं तदा वाञ्जलयो दश॥२३॥
त्रयोऽञ्जलय एवं तु प्रथमेऽहनि वै तदा। चत्वारस् तु द्वितीयेऽह्नि तृतीये स्युस्त्रयस् तथा॥२४॥
शताञ्जलि यदा पक्षिन्नाद्ये त्रिंशत्तदाहनि। चत्वारिंशद् द्वितीयेऽह्नि त्रिंशदह्नि तृतीयके॥२५॥
एवं जलस्याऽञ्जलयो विभाज्याः पक्षयोर् द्वयोः। सर्वेषु पितृकार्येषु पुत्त्रो मुख्योऽधिकारवान्॥२६॥
पिण्डप्रसेकस् तूष्णीं च पुष्पधूपादिकं तथा। दशमेऽहनि सम्प्राप्ते स्नानं ग्रामाद् बहिश्चरेत्॥२७॥

पिण्ड देने में जो द्रव्य प्रयुक्त होता है दश दिनतक वही द्रव्य होना चाहिए। जबतक आशौच रहता है तबतक प्रतिदिन प्रेत के लिए एक-एक उदकाञ्जलि देने की बात मुनियों से बताई जाती है॥२१॥ अथवा जिस दिन में उदकाञ्जलि दिया जाता है उस दिन में वह दिन जितनवाँ है उतनी सङ्ख्या में उदकाञ्जलिदान देने की बात मुनियों से बताइ जाती है। हे पक्षिन्, इस प्रकार दश दिन में अन्तिम दिन तक पचपन अञ्जलि होते हैं॥२२॥ अथवा हे पक्षिन्, उत्तर दिन में पूर्वदिन की अञ्जलिसङ्ख्या से दो से अधिक सङ्ख्या में अञ्जलि देने से दश दिनों में सौ अञ्जलि होंगे। जब तीन दिन आशौच रहता है और दश दिन में दश अञ्जलि देने का पक्ष लिया जाता है, उस समय में प्रथम दिन में तीन अञ्जलि, द्वितीय दिन में चार अञ्जलि और तृतीय दिन में तीन अञ्जलि होंगे॥२३-२४॥ जब तीन दिन आशौच रहता है और सौ अञ्जलि देने का पक्ष लिया जाता है तब प्रथम दिन में तीस अञ्जलियां, दूसरे दिन में चालीस अञ्जलियाँ और तीसरे दिन में तीस अञ्जलियाँ देने की बात मुनियों से बताई जाती है॥२५॥ इस प्रकार दोनों पक्षों में दिनों में अञ्जलियों का विभाजन करना चाहिए। (इसी न्याय से तीन दिन आशौच रहने पर और ५५ अञ्जलि देने के पक्ष लेने पर प्रथम दिन में पन्द्रह, द्वितीय दिन में पच्चीस और तृतीय दिन में पन्द्रह अञ्जलि देने की बात उचित दिखाई देती है)। सभी पितृकार्यों में पुत्त्र मुख्य अधिकारयुक्त होता है॥२६॥ प्रेतपिण्ड देने के कृत्य में पिण्ड में जल देने का काम और पुष्प-धूपादि का दान भी (विना मन्त्र ही) मौनभाव से किया जाता है। दशम दिन (के कृत्यों की समाप्ति) में गाँव से बाहर स्नान करे॥२७॥

तत्र त्याज्यानि वासांसि केशश्मश्रुनखानि च। विप्रः शुध्यत्यपः स्पृष्ट्वा क्षत्रियो वाहनं तथा॥२८॥
वैश्यः प्रतोदं रश्मीन् वा शूद्रो यष्टिं कृतक्रियः। मृतादल्पवयोभिश् च सपिण्डैः परिवापनम्॥२९॥
कार्यं तु षोडशी षड्भिः पिण्डैर् दशभिरेव च। प्रथमा मलिना ह्येतैरादशाहं मृतेर् भवेत्॥३०॥
दिनानि दश यान् पिण्डान् कुर्वन्त्यत्र सुतादयः। प्रत्यहं ते विभज्यन्ते चतुर्भागैः खगोत्तम॥३१॥
भागद्वयेन देहः स्यात् तृतीयेन यमानुगाः। तृप्यन्ति हि चतुर्थेन स्वयमप्युपजीवति॥३२॥
अहोरात्रैस् तु नवभिर् देहो निष्पत्तिमाप्नुयात्। शिरस् त्वाद्येन पिण्डेन प्रेतस्य क्रियते तथा॥३३॥
द्वितीयेन तु कर्णाक्षि-नासिकं तु समासतः। गलांसभुजवक्षश् च तृतीयेन तथा क्रमात्॥३४॥
चतुर्थेन च पिण्डेन नाभि-लिङ्ग-गुदं तथा। जानु-जङ्घं तथा पादौ पञ्चमेन तु सर्वदा॥३५॥

वहाँ प्रेतपिण्डदान के समय पहने गए वस्त्र और केश, दाढी-मूछ तथा नख भी त्याग देने चाहिए। प्रेतकृत्य समाप्त करके ब्राह्मण जल का स्पर्श करने पर शुद्ध होता है, क्षत्रिय घोडा-हाथी-रथ इत्यादि वाहन का स्पर्श करने पर शुद्ध होता है, वैश्य वैल-घोडा इत्यादि हाँकने के पैने का अथवा चाबुक का अथवा रश्मि (लगाम) का स्पर्श करने पर शुद्ध होता है, शूद्र यष्टि (चलते समय लेने की लाठी) का स्पर्श करने पर शुद्ध होता है। मृत मनुष्य से न्यून वय (उम्र) वाले सपिण्डों को केशवपन करवाना चाहिए। मरण से दशम दिनतक किए जाने वाले दाह से पहले के छः और पीछे के दश पिण्डों से मलिन षोडशी होगी॥२८-३०॥ हे पक्षिश्रेष्ठ, दश दिनतक इस लोक में पुत्रादि प्रतिदिन जो पिण्ड करते हैं वे पिण्ड चार भागों में बांटे जाते हैं॥३१॥ दो भागों से देह बनेगा, तीसरे भाग से यम के अनुचर तृप्त होते हैं, चौथे भाग से प्रेत स्वयम् जीवनयात्रा चलाता है॥३२॥नौ अहोरात्र से देह बनेगा। पहले पिण्ड से प्रेत का शिर बनाया जाता है॥३३॥ दूसरे पिण्ड से तो सामूहिक रूप से कान आँखें और नाक बनाए जाते हैं। उसी प्रकार तृतीय पिण्ड से गला, कन्धा, बाहें और छाती बनाए जाते हैं॥३४॥ चौथे पिण्ड से नाभि, लिङ्ग और गुदा बनाए जाते हैं। पाँचवें पिण्ड से सर्वदा घुटने, जङ्घाएँ और पैर बनाए जाते हैं॥३५॥

सर्वमर्माणि षष्ठेन सप्तमेन तु नाडयः। दन्त-लोमान्यष्टमेन वीर्यं तु नवमेन च॥३६॥
दशमेन तु पूर्णत्वं तृप्तता क्षुद्विपर्ययः। मध्यमां षोडशीं वच्मि वैनतेय शृणुष्व मे॥३७॥
विष्ण्वादिविष्णुपर्यन्तान्येकादश तथा .खग। श्राद्धानि पञ्च देवानामित्येषा मध्यषोडशी॥३८॥
निमित्तं दुर्मृतिं कृत्वा यदि नारायणो बलिः। एकादशाहे कर्तव्यो वृषोत्सर्गोऽपि तत्र वै॥३९॥
एकादशाहे प्रेतस्य यस्योत्सृज्येत नो वृषः। प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि॥४०॥
अकृत्वा यद् वृषोत्सर्गं कृतं वै पिण्डपातनम्। निष्फलं सकलं विद्यात् प्रमीताय न तद् भवेत्॥४१॥
वृषोत्सर्गादृते नाऽन्यत् किञ्चिदस्ति महीतले। पुत्त्रः पत्न्यथ दौहित्रः पिता वा दुहिताऽथवा॥४२॥
मृतादनन्तरं तस्य ध्रुवं कार्यो वृषोत्सवः। चतुर्वत्सतरीयुक्तो यस्योत्सृज्येत वा वृषः॥४३॥

छठे पिण्ड से शरीर के सभी मर्मस्थान और सातवें पिण्ड से नाडियाँ बनाई जाती हैं। आठवें पिण्ड से दन्त और लोम तथा नवम पिण्ड से वीर्य बनाया जाता है॥३६॥ दशवें पिण्ड से शरीर की पूर्णता की जाती है और भूख का निवारण तथा तृप्तता की जाती है। हे विनता के पुत्त्र गरुड, मैं मध्यम षोडशी को बताता हूँ, मेरा कहना सुनो॥३७॥ हे पक्षिन्, विष्णुश्राद्ध से लेकर विष्णुश्राद्ध तक ग्यारहश्राद्ध और देवताओं के पाँच श्राद्ध इस प्रकार सोलह श्राद्धों की मध्यमषोडशी होती है॥३८॥ यदि दुर्मरण होने से नारायणबलि किया जाता है तो वहाँ ग्यारहवें दिन में वृषोत्सर्गकृत्य भी करना चाहिए॥३९॥ जिस (दुर्मरण से मरे हुए) प्रेत का ग्यारहवें दिन में वृषोत्सर्ग नहीं किया जाता है उस के लिए सैकडों श्राद्ध करने पर भी प्रेतत्व बना रहेगा॥४०॥ यदि वृषोत्सर्ग किए विना पिण्डदान किया गया तो वह सब निष्फल जाने, वह प्रेत के उपकार के लिए नहीं होगा॥४१॥ वृषोत्सर्ग को छोडकर पृथिवीतल में (दुर्मरणादि से होने वाले प्रेतभाव से मुक्ति देने वाला) दूसरा कोई कृत्य नहीं है। पुत्त्र से अथवा पत्नी से अथवा पुत्त्री के पुत्त्र से अथवा पिता से अथवा पुत्त्री से भी मरण के बाद मृत व्यक्ति के लिए वृषोत्सव अवश्य ही किया जाना चाहिए। जिस के लिए चार बछियों से युक्त अलङ्कृत वृष विधिपूर्वक छोडा जाएगा

अलङ्कृतो विधानेन प्रेतत्वं तस्य नो भवेत्। एकादशेऽह्नि सम्प्राप्ते वृषालाभो भवेद् यदि॥४४॥
दर्भैः पिष्टैस् तु सम्पाद्य तं वृषं मोचयेद् बुधः। वृषोत्सर्जनवेलायां वृषाभावः कथञ्चन॥४५॥
मृत्तिकाभिस्तु दर्भैर् वा वृषं कृत्वा विमोचयेत्। यदिष्टं जीवतस्तस्य दद्यादेकादशेऽहनि॥४६॥
मृतमुद्दिश्य दातव्यं शय्याधेन्वादिकं तथा। विप्रान् बहून् भोजयीत प्रेतस्य क्षुद्विशान्तये॥४७॥
तृतीयां षोडशीं वच्मि वैनतेय शृणुष्व ताम्। द्वादश प्रतिमास्यानि आद्यं षाण्मासिकं तथा॥४८॥
सपिण्डीकरणं चैव तृतीया षोडशी मता। द्वादशाहे त्रिपक्षे च षण्मासे मासिकेऽब्दिके॥४९॥
तृतीयां षोडशीमेनां वदन्ति मतभेदतः। यस्यैतानि न दत्तानि प्रेतश्राद्धानि षोडश॥५०॥
पिशाचत्वं स्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि। एकादशे द्वादशे वा दिने आद्यं प्रकीर्तितम्॥५१॥

उस का प्रेतभाव कभी नहीं होगा। ग्यारहवें दिन प्राप्त होने पर यदि वृष न मिल सके तो विचारशील व्यक्ति को कुश और चावल के चूर्ण से वृष की आकृति बनाकर उसी वृष को छोडना चाहिए। वृषोत्सर्ग के समय में किसी तरह यदि वृष का अभाव हो तो मिट्टियों से अथवा कुशों से वृष बनाकर छोडे। जीवनकाल में उस मृत व्यक्ति के जो वस्तु प्रिय थे एकादशाह में उन वस्तुओं का दान करे॥४२-४६॥ ग्यारहवें दिन में मृत व्यक्ति को उद्दिष्ट करके शय्या धेनु इत्यादि देने चाहिए और प्रेत की भूख की शान्ति के लिए बहुत ब्राह्मणों को भोजन कराए॥४७॥ हे विनतापुत्त्र गरुड, तीसरी षोडशी बताता हूँ, उस को सुनो। प्रतिमास किए जाने वाले बारह श्राद्ध, आद्य(ऊनमासिक)श्राद्ध, ऊनषाण्मासिकश्राद्ध तथा ऊनाब्दिकश्राद्ध और सपिण्डीकरणश्राद्ध इन सोलहश्राद्धों की तृतीय (उत्तम) षोडशी होती है। कोई मुनि मतभेद से द्वादशाहश्राद्ध, त्रिपक्षश्राद्ध, ऊनषाण्मासिकश्राद्ध, मासिकश्राद्ध बारह और आब्दिकश्राद्ध इन सोलह श्राद्धों को लेकर इस तृतीय षोडशी को बताते हैं। जिस के ये सोलह प्रेतश्राद्ध नहीं दिए गए अन्य सैकडों श्राद्ध देने पर भी उस का पिशाचत्व स्थिर ही रहता है। एकादश दिन में अथवा द्वादश दिन में पहला श्राद्ध बताया गया है॥४८-५१॥

मासादौ प्रतिमासं च श्राद्धं मृततिथौ खग। एकेनाऽह्ना त्रिभिर् वाऽपि हीनेषु विनतासुत॥५२॥
मासषण्मासवर्षेषु त्रिपक्षेषु भवन्ति हि। श्राद्धान्यथ स्यात् सापिण्ड्यं पूर्णे वर्षे तदर्धके॥५३॥
त्रिपक्षेऽभ्युदये वापि द्वादशाहेऽथ वा नृणाम्। आनन्त्यात् कुलधर्माणां पुंसां चैवायुषः क्षयात्॥५४॥
अस्थिरत्वाच् छरीरस्य द्वादशाहे प्रशस्यते। सपिण्डीकरणेष्वेवं विधिं पक्षीन्द्र मे शृणु॥५५॥
एकोद्दिष्टविधानेन कार्यं तदपि काश्यप। तिलगन्धोदकैर् युक्तं कुर्यात् पात्रचतुष्टयम्॥५६॥
पात्रं प्रेतस्य तत्रैकं पित्र्यं पात्रत्रयं तथा। सेचयेत् पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं खग त्रिषु॥५७॥
चतुरो निर्वपेत् पिण्डान् पूर्वं तेषु समापयेत्। ततः प्रभृति वै प्रेतः पितृसामान्यमश्नुते॥५८॥

हे पक्षिन्, तिथिबद्ध चान्द्रमास के आदि में मरण की तिथि में प्रतिमास श्राद्ध होता है, हे विनतापुत्र गरुड, एक दिन से अथवा तीन दिन से न्यून मास में षण्मास में और वर्ष में तथा त्रिपक्ष में भी श्राद्ध होते हैं, तब वर्ष पूर्ण होने पर अथवा वर्ष का आधा (षण्मास) पूर्ण होने पर अथवा तीन पक्ष पूर्ण होने पर अथवा अवश्य कर्तव्य अभ्युदयकृत्य आने पर अथवा बारहवें दिन में मनुष्यों का सपिण्डीकरणश्राद्ध होगा। कुलों के धर्मों में नाना प्रकार के भेद होने से, मनुष्यों के आयु में ह्रास होने से और शरीर अस्थिर होने से भी बारहवें दिन में सपिण्डीकरणश्राद्ध मुनियों द्वारा प्रशंसित हैं। हे पक्षियों में श्रेष्ठ गरुड, इस प्रकार किए जाने वाले सपिण्डीकरणश्राद्धों में अपनाए जाने वाले विधि को सुनो॥५२-५५॥ हे कश्यपपुत्र गरुड, वह सपिण्डीकरणश्राद्ध एकोद्दिष्टश्राद्ध की पद्धति से (वैश्वदेवश्राद्धरहित) करना च हिए। तिल, श्रीखण्डचन्दन और जल से युक्त चार पात्र बनाए, उन में एक पात्र प्रेत का होगा और तीन पात्र पितामहादि पितरों के होंगे। हे पक्षिन् प्रेतपात्र के अर्घ के अवशेष का पितरों के तीनों पात्रों में सेचन करे॥५६-५७॥ चार पिण्ड दे, और प्रथम पिण्ड (प्रेतपिण्ड) उन में (पितरों के ती नो पिण्डों में) मिलाए। तब से वह प्रेत पितरों की समानता को प्राप्त करता है॥५८॥

ततः पितृत्वमापन्ने तस्मिन् प्रेते खगेश्वर। श्राद्धधर्मैरशेषैस्तु तत्पूर्वानर्चयेत् पितॄन्॥५९॥
एकचित्यारोहणे च एकाह्नि मरणे तथा। सापिण्ड्यं तु स्त्रिया नास्ति कृते भर्तुः स्त्रियो भवेत्॥६०॥
पाकैक्यमथ कालैक्यं कर्त्रैक्यं च भवेत् खग। श्राद्धादौ सह दाहे च पतिपत्न्योर् न संशयः॥६१॥
भर्तुर् मृततिथेरन्यतिथौ चितिमथारुहेत्। तां मृताहनि सम्प्राप्ते पृथक् पिण्डेन योजयेत्॥६२॥
प्रत्यब्दं च नवश्राद्धं युगपत् तु समापयेत्॥६३॥
यस्य संवत्सरादर्वाक् सपिण्डीकरणं भवेत्। मासिकं चोदकुम्भं च देयं तस्यापि वत्सरम्॥६४॥
नवश्राद्धं सपिण्डत्वं श्राद्धान्यपि च षोडश। एकेनैव तु कार्याणि संविभक्तधनेष्वपि॥६५॥
पितामहीभिः सापिण्ड्यं तथा मातामहैः सह। उक्तं भर्त्रापि सापिण्ड्यं स्त्रिया विषयभेदतः॥६६॥

हे पक्षियों के स्वामिन्, तब उस प्रेत की पितृत्व में प्राप्ति होने पर उस प्रेत से लेकर तीन पितरों का सभी श्राद्धधर्मों से अर्चन करे॥५९॥ स्त्री का पति के साथ एक ही चिता में आरोहण करने पर तथा पति का और स्त्री का एक ही दिन में मरण होने पर भी स्त्री का पृथक् सपिण्डीकरण नहीं होता है, पति का सपिण्डीकरण करने पर स्त्री का भी सपिण्डीकरण स्वतः हो जाता है॥६०॥ हे पक्षिन्, पति और पत्नी का साथ में शवदाह होने पर पति-पत्नी के श्राद्धादि में पाक में काल में और कर्ता में भी ऐक्य होगा, इस में सन्देह नहीं॥६१॥ स्त्री यदि पति के मृततिथि से भिन्न अन्य किसी आसन्न तिथि में चिता में चढेगी तो उस को मृताह आने पर प्रतिवर्ष पृथक् ही काल में पिण्ड दे, नवश्राद्ध (प्रेतश्राद्ध) तो पति और पत्नी का साथ-साथ में ही समाप्त करे॥६२-६३॥ जिस प्रेत का संवत्सर पूर्ण होने से पहले ही सपिण्डीकरण होगा उस को भी वर्षपर्यन्त मासिकश्राद्ध और जलकुम्भ देना चाहिए॥६४॥ यदि क्रियाधिकारी पुत्र अनेक हैं और पितृधन बांटकर पृथक्-पृथक् रहते हैं तो भी नवश्राद्ध (प्रेतपिण्ड), सपिण्डीकरणश्राद्ध और सोलहश्राद्ध (मासिकादि) भी एक पुत्र से ही किए जाने चाहिए॥६५॥ स्त्री की परिस्थिति के भेद से स्त्री का सपिण्डीकरण पितामही प्रभृति के साथ में अथवा मातामहप्रभृति के साथ में अथवा केवल पति के साथ में ही हो सकने की बात बताई गई है॥६६॥

नवश्राद्धस्य ते कालं वक्ष्यामि शृणु काश्यप। मरणाह्नि मृतिस्थाने श्राद्धं पक्षिन् प्रकल्पयेत्॥६७॥
द्वितीयं च ततो मार्गे विश्रामो यत्र कारितः। ततः सञ्चयनस्थाने तृतीयं श्राद्धमुच्यते॥६८॥
पञ्चमे सप्तमे तद्वदष्टमे नवमे तथा। दशमैकादशे चैव नव श्राद्धानि वै खग॥६९॥
श्राद्धानि नव चैतानि तृतीया षोडशी स्मृता। एकोद्दिष्टविधानेन कार्याणि मनुजैस् तथा॥७०॥
प्रथमेऽह्नि तृतीये वा पञ्चमे सप्तमे तथा। नवमैकादशे चैव नवश्राद्धं प्रकीर्तितम्॥७१॥
उच्यन्ते षडिमानीह नव स्युरपि योगतः। उक्तानि ते मया तानि ऋषीणां मतभेदतः॥७२॥
रूढिपक्षो ममाभीष्टो योगः कैश्चिदिहेष्यते। आद्ये द्वितीये दातव्यं तथैवेकं पवित्रकम्॥७३॥
प्रेताय पिण्डो दातव्यो भुक्तवत्सु द्विजातिषु। प्रश्नस् तत्राभिरम्येति यजमानद्विजन्मना॥७४॥

हे कश्यपपुत्र गरुड, नवश्राद्ध का काल तुम को बताउँगा सुनो। हे पक्षिन्, मरण के दिन में मरण के स्थान में श्राद्ध करे॥६७॥ तब दूसरा श्राद्ध मार्ग में जहाँ विश्राम कराया गया वहाँ करे, तब फिर काष्ठसञ्चयनस्थान में तृतीय श्राद्ध बताया जाता है॥६८॥ हे पक्षिन्, पञ्चम दिन में, सप्तम दिन में, अष्टम दिन में, नवम दिन में तथा दशम दिन में और एकादश दिन में भी नवश्राद्ध होते हैं॥६९॥ ये नवश्राद्ध भी तृतीया षोडशी समझी गई है। ये श्राद्ध मनुष्यों से एकोद्दिष्टश्राद्ध की पद्धति से किए जाने चाहिए॥७०॥ प्रथम दिन में, तृतीय दिन में अथवा पञ्चम दिन में, सप्तम दिन में तथा नवम दिन में और एकादश दिन में भी नवश्राद्ध बताया गया है॥७१॥ ये छः बताए जाते है, योग से नव भी होंगे। मुझ से तुम को वे नवश्राद्ध ऋषियों के मतभेद से बताए गए॥७२॥ इस विषय में रूढिपक्ष मेरा अभीष्ट है, किन्ही लोगों से योगपक्ष इष्ट माना जाता है। आद्य और द्वितीय समूह के श्राद्धों में एककुशदलात्मक पवित्र देना चाहिए, जब ब्राह्मण भोजन कर चुके हों तब प्रेत को पिण्ड दिया जाना चाहिए। तृप्तिप्रश्न भी स्वदितम्? इत्यादि रूप का विशिष्ट बोलना चाहिए, विसर्गवाक्य भी अभिरम्यताम् ऐसा बोलना चाहिए, यजमान से और ब्राह्मण से भी अन्नपानदान के अन्त में 'अमुकनाम्नः

अक्षय्यममुकस्येति वक्तव्यं विरतौ तथा। एकोद्दिष्टं मे निबोध चेत्थमावत्सरं स्मृतम्॥७५॥
सपिण्डीकरणादूर्ध्वं यानि श्राद्धानि षोडश। एकोद्दिष्टविधानेन चरेद् वा पार्वणादृते॥७६॥
प्रत्यब्दं यो यथा कुर्यात् तथा कुर्यात् स तान्यपि। एकादशे द्वादशेऽह्नि प्रेतो भुङ्क्ते दिनद्वयम्॥७७॥
योषितः पुरुषस्यापि पिण्डं प्रेतेति निर्वपेत्। सापिण्ड्ये तु कृते तस्य प्रेतशब्दो निवर्तते॥७८॥
दीपदानं प्रकर्तव्यमावर्षं तु गृहाद् बहिः। अन्नं दीपो जलं वस्त्रमन्यद् वा दीयते च यत्॥७९॥
तृप्तिदं प्रेतशब्देन सपिण्डीकरणावधि। अब्दकृत्यं मयोक्तं ते समासाद् विनतासुत॥८०॥
वैवस्वतगृहे यानं यथा तत् तु निबोध मे। त्रयोदशेऽह्नि श्रवणाकर्मणोनन्तरं तु सः॥८१॥

प्रेतस्य दत्तमेतदन्नपानादिकमक्षय्यमस्तु इति ब्रूहि' इत्यादि बोलना चाहिए। ऐसे लक्षणों से युक्त श्राद्ध मेरे मत में एकोद्दिष्टश्राद्ध है। इसी प्रकार का एकोद्दिष्ट श्राद्ध वर्षपर्यन्त करने योग्य समझा गया है॥७३-७५॥ सपिण्डीकरण से ऊपर जो सोलह श्राद्ध होते हैं उन को भी सपिण्डीकरणरूप पार्वणश्राद्ध को छोडकर अन्य श्राद्ध को वैकल्पिक रूप में एकोद्दिष्टपद्धति से करे॥७६॥ जो व्यक्ति प्रतिवर्ष क्षयाहश्राद्ध पार्वण अथवा एकोद्दिष्ट जैसे रूप में करता है वह व्यक्ति उन सोलहश्राद्धों को भी वैसे ही रूप में करे। एकादश दिन में और द्वादश दिन में प्रेत श्राद्ध का पूर्ण उपभोग करता है॥७७॥ स्त्री को और पुरुष को भी पिण्ड 'प्रेत' शब्द से सम्बोधन करके दे। सपिण्डीकरण किए जाने पर तो मृतक का प्रेतशब्द हट जाता है॥७८॥ वर्षपर्यन्त घर के बाहर दीपदान करना चाहिए। अन्न अथवा दीप अथवा जल अथवा वस्त्र अथवा अन्य जो भी वस्तु दिया जाता है सपिण्डीकरण न होनेतक प्रेतशब्द से देने से तृप्तिदायक होता है। हे विनता के पुत्र गरुड, मुझ से तुम को सङ्क्षेप से वर्षपर्यन्त कर्तव्य प्रेतकृत्य बतादिया गया॥७९-८०॥ विवस्वान् के पुत्र धर्मराज के गृह में मृतकों का गमन जिस प्रकार होता है उस को मुझ से समझो। हे गरुड, तेरहवें दिन में श्रवणों की पूजा के बाद वह मृत व्यक्ति यम के अनुचरों से तुम से पकडे गए सर्प की तरह तथा पकडे गए बन्दर के समान

त्वद्गृहीताहिवत् तार्क्ष्य गृहीतो यमकिङ्करैः। तस्मिन् मार्गे व्रजत्येको गृहीत इव मर्कटः॥८२॥
वाय्वग्रसारिवद्रूपं देहमन्यत् प्रपद्यते। तत्पिण्डजं पातनार्थमन्यत् तु पितृसम्भवम्॥८३॥
तत्प्रमाणवयोऽवस्थासंस्थानं प्राग्भवो यथा। षडशीतिः सहस्राणि योजनानां प्रमाणतः॥८४॥
अध्वाऽऽन्तरालिको ज्ञेयो यममानुषलोकयोः। साधिकार्द्धक्रोशयुतं योजनानां शतद्वयम्॥८५॥
चत्वारिंशत् तथा सप्त प्रत्यहं याति तत्र सः। अष्टाचत्वारिंशता च त्रिशता दिवसैरिति॥८६॥
वैवस्वतपुरं याति कृष्यमाणो यमानुगैः। एवं क्रमेण यातव्ये मार्गे पापरतैस्तु यत्॥८७॥
जायते सप्रपञ्चं तच् छृणु त्वमरुणानुज। त्रयोदशदिने दूतैः पाशैर् बद्ध्वाऽतिदारुणैः॥८८॥
यमस्याङ्कुशहस्तैर् वै भ्रुकुटीकुटिलाननैः। दण्डप्रहारसम्भ्रान्तः कृष्यते दक्षिणां दिशम्॥८९॥

उस यममार्ग में अकेला (पुत्र-पत्नी-बान्धवादिरहित) चलता है॥८१-८२॥ वायु जैसे अदृश्य रूप में गमन करने में समर्थ रूप वाले दूसरे पिण्डज देह में जाता है। वह पिण्डज देह यममार्ग में चलकर अन्त में पातन (त्याग) के लिए होता है (द्रष्टव्य– १८।३८-४०)। अन्य योनि का देह तो पिता (के वीर्य) से होने वाला और व्यक्ति का पूर्वजन्म का कर्म जैसा है उसी के अनुसार प्रमाणविशेष से, वयोविशेष से, अवस्थाविशेष से और आकृतिविशेष से युक्त होता है। यमलोक और मनुष्यलोक के बीच का मार्ग छियासी हजार योजन प्रमाण का जानना चाहिए। उस मार्ग में वह प्रेत प्रतिदिन कुछ अधिक आधे कोस से युक्त दो सौ सैंतालिस योजन चलता है। इस प्रकार यम के अनुचरों से खींचा हुआ मनुष्य तीन सौ अडतालीस दिनों में यम के नगर में पहुँचता है। हे अरुण के छोटे भाइ गरुड, पाप में रमने वाले मनुष्य को इस क्रम से जिस यममार्ग में जाना है उस मार्ग में जो होता है उस को तुम विस्तार से सुनो। मृत्यु के तेरहवें दिन में यम के अत्यन्त कठोर स्वभाव वाले, भ्रुकुटी चढाने से कुटिल मुह वाले तथा हाथ में अङ्कुश लेते हुए दूतों से पाशों से बाँधकर दण्डप्रहार से आकुल होता हुआ वह पापी प्रेत दक्षिणदिशा की ओर खींचा जाता है॥८३-८९॥

कुशकण्टकवल्मीकशङ्कुपाषाणकर्कशे। तथा प्रदीप्तज्वलने क्वचिच्छ्वभ्रशतोत्कटे ॥९०॥
प्रदीप्तादित्यतप्ते च दह्यमानः सदंशके। कृष्यते यमदूतैश्च शिवावन्नादभीषणैः ॥९१॥
प्रयाति दारुणे मार्गे पापकर्मा यमालये। कलेवरे दह्यमाने महान्तं क्षयमृच्छति ॥९२॥
भक्ष्यमाणे तथैवाङ्गे भिद्यमाने च दारुणम्। छिद्यमाने चिरतरं जन्तुर् दुःखमवाप्नुते ॥९३॥
स्वेन कर्मविपाकेन देहान्तरगतोऽपि सन्। पुराणि षोडशाऽमुष्मिन् मार्गे तानि च मे शृणु ॥९४॥
याम्यं सौरिपुरं नगेन्द्रभवनं गन्धर्वशैलागमौ क्रौञ्चं क्रूरपुरं विचित्रभवनं बह्वापदं दुःखदम्।
नानाक्रन्दपुरं सुतप्तभवनं रौद्रं पयोवर्षणं शीताढ्यं बहुभीति षोडश पुराण्येतान्यदृष्टानि ते॥

कुश के अङ्कुर, काँटों, वल्मीकों (दीमक की मिट्टी के ढेरों), कीलों और पत्थरों से कांटेदार, जलते हुए आग से युक्त, कहीं सैकडों दरारों से युक्त, अत्यन्त प्रचण्ड सूर्य से तपे हुए. और वनमक्षिकायुक्त मार्ग में सियारों के समान चीत्कार करने से भयङ्कर यमदूतों से खींचा जाता है॥९०-९१॥ पाप करने वाला मनुष्य यमपुरी को जाते हुए भयङ्कर मार्ग से जाता है। उस समय शरीर जलने से वह प्रेत अत्यन्त क्षय को प्राप्त होता है॥९२॥ दूसरे देह में प्राप्त होने पर भी वह प्राणी अपने कर्म के परिणाम से अन्य जन्तुओं से अपने अङ्ग खाए जाने पर, तोडे जाने पर और काटे जाने पर बहुत समय तक अत्यन्त तीव्र दुःख पाता है। उस मार्ग में सोलह पुर हैं, उन को भी मुझ से सुनो॥९३-९४॥ वे सोलह पुर (१) याम्यपुर, (२) सौरिपुर, (३) नगेन्द्रभवन, (४) गन्धर्वपुर, (५) शैलागमपुर, (६) क्रौञ्चपुर, (७) क्रूरपुर, (८) विचित्रभवन, (९) बह्वापदपुर, (१०) दुःखदपुर, (११) नानाक्रन्दपुर, (१२) सुतप्तभवन, (१३) रौद्रपुर, (१४) पयोवर्षणपुर, (१५) शीताढ्यपुर और (१६) बहुभीतिपुर ये सोलह पुर तुम से नहीं देखे गए हैं *[<u>विशेष</u>— इन नगरों के इस पद्य के और पन्द्रहवें अध्याय के पद्य के (८२-८३) पाठ में प्राप्त क्रम में तथा प्रेत के इन नगरों में पहुँचने के क्रम के वर्णनों में विभिन्न स्थलों और संस्करणों के पाठों में कुछ असामञ्जस्य दिखाई देता है, सामञ्जस्य स्थापित करना उचित है]*॥९५॥

तत्र याम्यपुरं गच्छन् पुत्त्रपुत्त्रेति च ब्रुवन्। हाहेति क्रन्दते नित्यं स्वकृतं दुष्कृतं स्मरन्॥९६॥
अष्टादशे दिने तार्क्ष्य तत्पुरं प्राप्नुयादसौ। पुष्पभद्रा नदी यत्र न्यग्रोधः प्रियदर्शनः॥९७॥
विश्रामेच्छां करोत्यत्र कारयन्ति न ते भटाः। क्षितौ दत्तं सुतैस्तस्य स्नेहाद् वा कृपया तथा॥९८॥
मासिकं पिण्डमश्नाति ततः सौरिपुरं व्रजेत्। व्रजन्नेवं प्रलपते मुद्गराहतिपीडितः॥९९॥

जलाशयो नैव कृतो मया तदा मनुष्यतृप्त्यै पशुपक्षितृप्तये।
गोतृप्तिहेतोर् न च गोचरः कृतः शरीर हे निस्तर यत् त्वया कृतम्॥१००॥

तत्र नाम्ना तु राजासौ जङ्गमः कामरूपधृक्। भयात् तद्दर्शनाज् जाताद् भुङ्क्ते पिण्डं स शङ्कितः।१०१।
त्रिपक्षे जलसंयुक्तं क्षितौ दत्तं ततो व्रजेत्। व्रजन्नेवं प्रलपते खड्गाघातप्रपीडितः॥१०२॥

उन में याम्यपुर को जाता हुआ पापी मनुष्य अपने से किए गए दुष्कर्मों को समझता हुआ पुत्त्र, पुत्त्र कहता हुआ सदा हाहा करके चिल्लाता है॥९६॥ हे गरुड, वह मनुष्य अठारहवें दिन में जहाँ पुष्पभद्रा नाम की नदी है और देखने में प्रिय लगने वाला वटवृक्ष भी है उस याम्यपुर में पहुँचता है॥९७॥ यहाँ वह पापी मनुष्य विश्राम करने की इच्छा करता है, किन्तु वे यमपुरुष विश्राम नहीं कराते हैं। वहाँ वह प्रेत पृथ्वी में उस के पुत्त्रों से स्नेह से अथवा दया से दिया गया मासिक पिण्ड खाता है, तब सौरिपुर के लिए चलता है। यमपुरुषों के मुंगरों से मारे जाने से पीडित वह चलता हुआ प्रेत इस प्रकार प्रलाप करता है-॥९८-९९॥ उस समय में मनुष्यों की तृप्ति के लिए तथा पशुपक्षियों की तृप्ति के लिए मैं ने जलाशय नहीं बनाया, गायों की तृप्ति के लिए गायों का चरागाह भी नहीं बनाया; हे शरीर तुम ने जो किया उस का फलभोग करता हुआ चलो॥१००॥ उस नगर में नाम से जङ्गम कहलाने वाला और इच्छानुसार विविध रूपों को धारण करने वाला राजा है, उस के दर्शन से उत्पन्न भय से शङ्कित होता हुआ वह प्रेत त्रिपक्ष में पृथ्वी में दिया हुआ जलयुक्त पिण्ड खाता है और चलता है। यमपुरुषों के खड्गों के आघात से पीडित वह चलता हुआ प्रेत इस प्रकार प्रलाप करता है-॥१०१-१०२॥

न नित्यदानं न गवाह्निकं कृतं पुस्तं च दत्तं न हि वेदशास्त्रयोः।
पुराणदृष्टो न हि सेवितोऽध्वा शरीर हे निस्तर यत् त्वया कृतम्॥१०३॥
नगेन्द्रनगरं गत्वा भुक्त्वा चान्नं तथाविधम्। मासि द्वितीये यद् दत्तं बान्धवैस्तु ततो व्रजेत्॥१०४॥
व्रजन्नेवं प्रलपते कृपाणत्सरुताडितः। पराधीनमभूत् सर्वं मम मूर्खशिरोमणेः॥१०५॥
महता पुण्ययोगेन मानुष्यं लब्धवानहम्। तृतीये मासि सम्प्राप्ते गन्धर्वनगरे शुभम्॥१०६॥
तृतीयमासिकं पिण्डं तत्र भुक्त्वा व्रजत्यसौ। व्रजन्नेवं विलपते तदग्रेणाहतः पथि॥१०७॥
मया न दत्तं न हुतं हुताशने तपो न तप्तं हिमशैलगह्वरे।
न सेवितं गाङ्गमहो महाजलं शरीर हे निस्तर यत् त्वया कृतम्॥१०८॥

नित्यदान नहीं किया, गाय का दैनिक पोषण भी नहीं किया, वेद के और शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष इन छः वेदाङ्गशास्त्रों के पुस्तकों का दान भी नहीं किया; पुराणों से ज्ञात सन्मार्ग भी नहीं सेवित हुआ, हे शरीर, तुम ने जो किया उस का फलभोग करता हुआ चलो॥१०३॥ नगेन्द्रनगर में जाकर द्वितीय मास में बान्धवों से दिए गए उक्त प्रकार के अन्न को खाकर चलेगा *[विशेष— यहाँ त्रैपक्षिकश्राद्ध का और द्वितीय मासिकश्राद्ध का क्रम लोकप्रसिद्धक्रम से भिन्न है]*॥१०४॥ यमपुरुषों के खड्ग के मुठियों से ताडित वह चलता हुआ प्रेत इस प्रकार प्रलाप करता है– मुझ मूर्खशिरोमणि का अब सब कुछ पराधीन हो गया, बडे पुण्यों के योग से मैं ने मनुष्य जन्म पाया था (किन्तु वह सत्कर्म किए विना ही बीत गया)। तृतीय मास प्राप्त होने पर तृतीय मास में दिया गया शुभ पिण्ड को वहाँ गन्धर्वनगर में खाकर वह प्रेत चलता है। मार्ग में यमपुरुषों से खड्ग के अग्रभाग से विद्ध वह चलता हुआ प्रेत इस प्रकार विलाप करता है–॥२०५-२०७॥ मैं ने दान नहीं दिया, अग्नि में हवन भी नहीं किया, हिमालय पर्वत की गुफा में तपस्या भी नहीं किया, अहो! गङ्गा का पुण्य जल का सेवन भी नहीं किया; हे शरीर, तुम ने जो किया उस का फलभोग करता हुआ चलो॥१०८॥

तुर्ये शैलागमं मासि प्राप्नुयात् तत्र वर्षणम्। तस्योपरि भवेत् पक्षिन् पाषाणानां निरन्तरम्॥१०९॥
चतुर्थमासिकं श्राद्धं भुक्त्वा तत्र प्रसर्पति। स पतन्नेव विलपेत् पाषाणाद्यतिपीडितः॥११०॥
न ज्ञानमार्गो न च योगमार्गो न कर्म्ममार्गो न च भक्तिमार्गः।
न साधुसङ्गात् किमपि श्रुतं मया शरीर हे निस्तर यत् त्वया कृतम्॥१११॥
ततः क्रौञ्चपुरे मासि पञ्चमे याति काश्यप। भुवि दत्तं पिण्डजलं भुक्त्वा क्रूरपुरं व्रजेत्॥११२॥
व्रजन्नेवं विलपते पट्टिशैः पातितः पथि। हा मातर् हा पितर् भ्रातः सुता हा हा मम स्त्रियः॥११३॥
युष्माभिर् नोपदिष्टोऽहमवस्थां प्राप्त ईदृशीम्। एवं लालप्यमानं तं यमदूता वदन्ति हि॥११४॥
क्व माता क्व पिता मूढ क्व जाया क्व सुतः सुहृत्। स्वकर्मोपार्जितं भुङ्क्ष्व मूर्ख याता चिरं पथि॥११५॥

हे पक्षिन्, चौथे मास में वह शैलागमनगर में पहुँचेगा, वहाँ उस के ऊपर अनवरत पत्थरों की वर्षा होगी॥१०९॥ वहाँ चतुर्थ मास में दिए गए श्राद्ध को खाकर चलता है। पत्थर इत्यादि से अत्यन्त पीडित वह चलता हुआ ऐसा विलाप करेगा–॥११०॥ मैं ने न ज्ञानमार्ग अपनाया न तो योगमार्ग अपनाया, न कर्ममार्ग अपनाया, न तो भक्तिमार्ग ही लिया, न तो वर्णाश्रमधर्म की साधना में लगे हुए सज्जनों के सङ्ग से मैं ने कुछ सुना; हे शरीर, तुम ने जो किया उस का फलभोग करता हुआ चलो॥१११॥ हे कश्यपपुत्र, तब पञ्चम मास में वह क्रौञ्चपुर में जाता है। वहाँ पृथ्वी में दिए गए पिण्डजलों को खाकर वह क्रूरपुर को जाएगा॥११२॥ मार्ग में यमपुरुषों से पट्टिश (दोनों ओर धार वाला यष्ट्याकार बहुत लम्बा खड्ग) से वार-वार गिराया जाता हुआ वह चलता हुआ प्रेत ऐसा विलाप करता है– हाय माँ, हाय बाप, हाय भाई, हाय पुत्र, हाय पत्नियां, आप लोगों से सत्कर्म के विषय में उपदिष्ट न होने से आज मैं ऐसी अवस्था में पहुँचा। इस प्रकार वार-वार बोलते हुए उस प्रेत को यमदूत कहते हैं–॥११३-११४॥ हे मूर्ख, माँ कहाँ है? बाप कहाँ है? पत्नी कहाँ है? पुत्र कहाँ है? मित्र कहाँ है?, हे मूर्ख, चिरकालतक यममार्ग में अकेला चलने वाला तुम अपने कर्म से उपार्जित फलों का उपभोग करो॥११५॥

जानासि शम्बलमलं बलमध्वगानां नोऽशम्बलः प्रयतते परलोकगत्यै।
गन्तव्यमस्ति तव निश्चितमेव तेन मार्गेण येन न भवेत् क्रयविक्रयोऽपि॥
ऊनषाण्मासिके क्रूरे भुक्त्वा पिण्डन्तु सोदकम्। घटीमात्रन्तु विश्रम्य विचित्रनगरं व्रजेत्॥११७॥
व्रजन्नेवं विलपते शूलाग्रेण विदारितः॥११८॥
कुत्र यामि न हि गामि जीवितं हा मृतस्य मरणं पुनर् न वै।
इत्थमेव विलपन् प्रयात्यसौ यातनार्हधृतविग्रहः पथि॥११९॥
विचित्रनगरे तत्र विचित्रो नाम पार्थिवः। तत्र षण्मासपिण्डेन तृप्तः सन् व्रजते पुरः॥१२०॥
व्रजन्नेवं विलपते प्रासाग्रेण प्रपीडितः॥१२१॥

तुम जानते हो कि बटोहियों का अपने को त्राण करने में समर्थ बल शम्बल (मार्ग में भोज्य पदार्थ) ही है, शम्बल से रहित व्यक्ति परलोक में चलने के लिए समुचित रूप से यत्न नहीं करता है। तुम को निश्चित रूप से उसी मार्ग से जाना है जिस मार्ग में खरीदना और बेचना भी नहीं होता है॥११६॥ क्रूरपुर में ऊनषाण्मासिक श्राद्ध में दिए गए पिण्ड और जल को खाकर एक घटीतक विश्राम करके वह विचित्रनगर को चलेगा॥११७॥ यमपुरुषों से शूल के अग्रभाग से वेधा हुआ वह चलता हुआ प्रेत इस प्रकार विलाप करता है-॥११८॥ हाय, मैं कहाँ जा रहा हूँ (मैं मरना चाहता हूँ, किन्तु) जीवन जाने वाला नहीं है, एक वार मरे हुए व्यक्ति का (पुनर्जन्म विना) फिर मरण नहीं होता है। यातना के सहन के लिए योग्य शरीर को धारित करने वाला वह प्रेत यममार्ग में इसी प्रकार विलाप करता हुआ विचित्रनगर में जाता है। वहाँ विचित्र नाम का राजा है। वहाँ षाण्मासिक श्राद्ध में दिए गए पिण्ड से तृप्त होता हुआ आगे चलता है *[विशेष— यहाँ ऊनषाण्मासिकश्राद्ध का और षाण्मासिकश्राद्ध का क्रम लोकप्रचलित क्रम से भिन्न है]*॥११९-१२०॥ यमपुरुषों से प्रास (बर्छी) के नोक से अत्यन्त पीडित वह चलता हुआ प्रेत ऐसा विलाप करता है-॥१२१॥

माता भ्राता पिता पुत्त्रः कोऽपि मे वर्तते न वा। यो मामुद्धरते पापं पतन्तं दुःखसागरे॥१२२॥
व्रजतस्तत्र मार्गे तु तत्र वैतरणी शुभा। शतयोजनविस्तीर्णा पूयशोणितसङ्कुला॥१२३॥
आयाति तत्र दृश्यन्ते नाविका धीवरादयः। ते वदन्ति प्रदत्ता गौर् यदि वैतरणी त्वया॥
नावमेनां समारोह सुखेनोत्तर वै नदीम्॥१२४॥
तत्र येन प्रदत्ता गौः स सुखेनैव तां तरेत्। अदाग्री तत्र घृष्येत करग्राहं तु नाविकैः॥१२५॥
उखैः काकैर् बकोलूकैस् तीक्ष्णतुण्डैर् वितुद्यते। मनुजानां हितं दानमन्ते वैतरणी खग॥१२६॥
दत्ता पापं दहेत् सर्वं मम लोकन्तु सा नयेत्। सप्तमे मासि सम्प्राप्ते पुरं बह्वापदं मृतः॥१२७॥
व्रजेत् तु सोदकं भुक्त्वा पिण्डं वै सप्तमासिकम्। व्रजन्नेवं विलपते परिघाहतिपीडितः॥१२८॥

जो दुःख के सागर में पडते हुए मुझ पापी को इस दुःखसागर से बाहर निकालता है, ऐसा कोई व्यक्ति माता वा भाई वा पिता वा पुत्त्र है अथवा नहीं?॥१२२॥ उस मार्ग में चलते हुए उस प्रेत के अग्रभाग में सौ योजन चौडी, पीब लहू इत्यादि से पूर्ण शुभ वैतरणी नदी आती है, वहाँ मल्लाह इत्यादि नाव वाले देखे जाते हैं। वे कहते हैं कि यदि तुम ने वैतरणी गौ ब्राह्मण को दी है तो इस नाव में चढो और इस वैतरणी नदी को सुख से पार करो॥१२३-१२४॥ जिस ने वैतरणी गौ दी है वह वहाँ सुख से ही उस वैतरणी नदी को पार करेगा। न देने वाला वहाँ नाववालों से हाथ में पकडकर घसीटा जाएगा॥१२५॥ वह नुकीली चोंच वाले उखशब्दवाच्य पक्षी (गिद्ध-चील), कौआ, बगुला तथा उलूक इत्यादि पक्षियों से चोंच से मारा जाता है। हे पक्षिन्, मनुष्यों के अन्त्यकाल में वैतरणी गौ का दान हितकर होता है। दी गई वह वैतरणी गौ सभी पापों को भस्म करेगी और मेरे लोक (विष्णुलोक) में ले जाएगी। मरण का सातवां मास प्राप्त होने पर वह मृतक बह्वापद पुर में पहुँचकर सप्तम मासिक श्राद्ध में दिए गए जलसहित पिण्ड को खाकर चलेगा। यमपुरुषों कीलोहे की गदा से मारे जाने से पीडित वह चलता हुआ प्रेत इस प्रकार विलाप करता है-॥१२६-१२८॥

न दत्तं न हुतं तप्तं न स्नातं न कृतं हितम्। यादृशं चरितं कर्म मूढात्मन् भुङ्क्ष्व तादृशम्॥१२९॥
मास्यष्टमे दुःखदे तु पुरे भुक्त्वाऽथ सोदकम्। पिण्डं प्रयात्यसौ तार्क्ष्य नानाक्रन्दपुरं ततः॥१३०॥
प्रयाणे च प्रवदते मुसलाघातपीडितः। क्व जायाचटुलैश् चाटुपटुभिर् वचनैर् मम॥१३१॥
भोजनं भल्लभल्लीभिर् मुसलैश् च क्व मारणम्। नवमे मासि दत्तं वै नानाक्रन्दपुरे ततः॥१३२॥
पिण्डमश्नाति करुणं नानाक्रन्दान् करोत्यपि। दशमे मासि व्रजति सुतप्तभवनं ततः॥१३३॥
सरन्नेवं विलपते हलाहतिहतः पथि। क्व सूनुपेशलकरैः पादसंवाहनं मम॥१३४॥
क्व दूतवज्रप्रतिमकरैर् मत्पदकर्षणम्। दशमे मासि पिण्डादि तत्र भुक्त्वा प्रसर्पति॥१३५॥
मासे चैकादशे पूर्णे पुरं रौद्रं स गच्छति। गच्छन्नेवं विलपते यथा पृष्ठे प्रपीडितः॥१३६॥

न दान दिया, न तो हवन किया, न तो तपस्या की, न तो तीर्थ में स्नान किया, अपना हित नहीं किया। हे मूढबुद्धे, जैसा कर्म किया वैसा ही फलभोग करो॥१२९॥ हे गरुड, अष्टम मास में दुःखदपुर में जलसहित पिण्ड को खाकर वह प्रेत वहाँ से नानाक्रन्दपुर में जाता है॥१३०॥ यमपुरुषों के मुसलों के आघात से पीडित वह प्रेत जाते समय कहता है- प्रियतमा के चपल मिथ्याप्रशंसात्मक वचनों के साथ में होने वाला वह मेरा भोजन कहाँ! यमपुरुषों के भालाओं से, बर्छियों से और मुसलों से यह मारा जाना कहाँ!! तब नवम मास में दिए गए पिण्ड को नानाक्रन्दपुर में खाता है और नाना प्रकार का चिल्लाहट करता है। दशम मास में वह सुतप्तभवन नाम के पु॰ में जाता है। यमपुरुषों के हल के आघात से पीडित वह चलता हुआ प्रेत मार्ग में इस प्रकार विलाप करता है- पुत्त्र के कोमल हाथों से मेरे पैरों का दबा जाना कहाँ! और यमपुरुषों के वज्रतुल्य कठोर हाथों से मेरे पैरों का खींचा जाना कहाँ!! वहाँ दशम मास में पिण्डादि खाकर वह चलता है॥१३१-१३५॥ ग्यारहवाँ मास प्राप्त होने पर वह रौद्रपुर में जाता है। यमपुरुषों से पीठ में प्रताडित होता हुआ और चलता हुआ वह प्रेत इस प्रकार विलाप करता है- रुई के गद्दे

क्वाऽहं सतूलीशयने परिवर्तन् क्षणे-क्षणे। भटहस्तभ्रष्ट-यष्टिकृष्टपृष्ठः क्व वा पुनः॥१३७॥
क्षितौ दत्तं च पिण्डादि भुक्त्वा तत्र ततो व्रजेत्। पयोवर्षणमित्येतन्नामकं पुरमण्डज॥१३८॥
व्रजन्नेवं विलपते कुठारैर् मूर्ध्नि ताडितः। क्व भृत्यकोमलकरैर् गन्धतैलावसेचनम्॥१३९॥
क्व कीनाशानुगैः क्रोधात् कुठारैः शिरसि व्यथा। ऊनाब्दिकं च यच्छ्राद्धं तत्र भुङ्क्ते सुदुःखितः॥१४०॥
सम्पूर्णे तु ततो वर्षे शीताढ्यं नगरं व्रजेत्। गच्छन्नेवं छुरिकया छिन्नजिह्वस्तु रोदिति॥१४१॥
प्रियालापैः क्व च रसमधुरत्वस्य वर्णनम्। उक्तमात्रेऽसिपत्रादिजिह्वाच्छेदः क्व चैव हि॥१४२॥
वार्षिकं पिण्डदानादि भुक्त्वा तत्र प्रसर्पति। बहुभीतिकरं तत्तत्पिण्डजं देहमास्थितः॥१४३॥

पर लेटकर क्षणक्षण में करवटें बदलने वाला मैं कहाँ! यमराज के भटों (सिपाहियों) के हाथों से वरसती हुई लाठियों से खुरचे गए पीठ वाला मैं कहाँ!!॥१३६-१३७॥ हे अण्डज (पक्षिन्), पृथिवीलोक में दिए गए (एकादश मास के) पिण्डादि को वहाँ खाकर वहाँ से पयोवर्षण नाम के नगर को चलेगा॥१३८॥ यमपुरुषों से कुल्हाडियों से मत्थे में आहत और चलता हुआ वह प्रेत इस प्रकार विलाप करता है– नौकरों के कोमल हाथों से शिर में सवासित तैलों का छिडकाना कहाँ! यमराज के अनुचरों से क्रोध से मारी गई कुल्हाडियों से शिर में व्यथा कहाँ!! ऊनाब्दिक श्राद्ध जो दिया जाता है बहुत दुःखित होता हुआ वह वहाँ उस को खाता है॥१३९-१४०॥ तब वर्ष पूर्ण होने पर वह प्रेत शीताढ्यनगर को जाता है। यमपुरुषों से छुरी से जिह्वाच्छेदन से दुःखित और चलता हुआ वह प्रेत इस प्रकार रोता है–॥१४१॥ प्रिया के आलाप के साथ में मुख से उपभुक्त रस की मधुरता का वर्णन कहाँ! कुछ कहते ही यमपुरुषों के द्वारा मेरी जीभ का छुरी के धार से काटना कहाँ!!॥१४२॥ वहाँ वार्षिकश्राद्ध में दिए गए पिण्डदानादि का उपभोग करके तत्तत्पिण्डों से बने हुए शरीर में रहता हुआ वह प्रेत बहुभीतिकर नाम के पुर की ओर चलता है *[विशेष– इन नगरों में प्रेत की प्राप्ति का वर्णन पन्द्रहवें और सोलहवें अध्याय में भी आया है, वहाँ कुछ भेद भी है]*॥१४३॥

प्रकाशयति पाप्मानमात्मानं च विनिन्दति। योषिदप्येवमेतस्मिन् मार्गे वै परिदेवति॥१४४॥
ततो याम्यं नातिदूरे नगरं स हि गच्छति। चत्वारिंशद् योजनानि चतुर्युक्तानि विस्तृतम्॥१४५॥
त्रयोदश प्रतीहाराः श्रवणा नाम तत्र वै। श्रवणाकर्मतस् तुष्यन्त्यन्यथा क्रोधमाप्नुयुः॥१४६॥
ततस् तत्राशु रक्ताक्षं भिन्नाञ्जनचयोपमम्। मृत्युकालान्तकादीनां मध्ये पश्यति वै यमम्॥१४७॥
दंष्ट्राकरालवदनं भ्रुकुटीदारुणाकृतिम्। विरूपैर् भीषणैर् वक्त्रैर् वृतं व्याधिशतैः प्रभुम्॥१४८॥
दण्डासक्तमहाबाहुं पाशहस्तं सुभैरवम्। तन्निर्दिष्टां ततो जन्तुर् गतिं याति शुभाशुभाम्॥१४९॥
पापी पापां गतिं याति यथा ते कथितं पुरा। छत्रोपानहदातारो ये च वेश्मप्रदायकाः॥१५०॥

वह प्रेत अपने पापों का प्रकाशन करता है और अपनी निन्दा करता है। स्त्री प्रेत भी इसी प्रकार से इस मार्ग में विलाप करती है॥१४४॥ तब वह समीप में ही वर्तमान चौवालीस योजन में विस्तृत याम्यनगर (यमराज के नगर) को जाता है॥१४५॥ उस नगर में श्रवण नाम के तेरह द्वारपाल रहते हैं। श्रवणपूजाकृत्य से वे सन्तुष्ट होते हैं। श्रवणपूजा न करने से वे क्रुद्ध हो सकते हैं॥१४६॥ तब वहाँ वह पापी मनुष्य मृत्यु काल अन्तक इत्यादि के बीच में वर्तमान, लाल नेत्र वाले, टुटे हुए अञ्जन के राशि के तुल्य काले, दाढों से युक्त भयङ्कर मुख वाले, भ्रूकुटी से भयानक आकृति वाले, विरूप और भयङ्कर मुख वाले सैकडों व्याधियों से घिरे हुए, दण्ड से युक्त बाहों से युक्त तथा हाथ में पाश लिए हुए अत्यन्त भयङ्कर यमराज प्रभु को देखता है। तब प्राणी उन से निर्दिष्ट शुभ अथवा अशुभ गति में जाता है॥१४७-१४९॥ जैसे तुम को पहले ही बता दिया गया, पापी मनुष्य कष्टपूर्ण गति में जाता है। जो छाता औ जूता देने वाले होते हैं, जो घर देने वाले होते हैं और जो अन्य पुण्यकर्म करने वाले होते हैं वे तो उस यमपुरी में पहुँचने पर

ये तु पुण्यकृतस्तत्र ते पश्यन्ति यमं तदा। सौम्याकृतिं कुण्डलिनं मौलिमन्तं धृतश्रियम्॥१५१॥
एकादशे द्वादशे हि षण्मासे आब्दिके तथा। विप्रान् बहून् भोजयेत तत्र यन् महती क्षुधा॥१५२॥
जीवन् पुत्त्रकलत्रादिप्रदिष्टमितरैः खग। यो न साधयति स्वार्थमेवं पश्चादधि खिद्यते॥१५३॥
एतत् ते सर्वमाख्यातं संयमिन्यां यथा गतिः। प्रोक्तमावर्षकृत्यं ते किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥१५४॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे वर्षकृत्ययमलोकमार्गयातनादिनिरूपणं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥

यमराज को सुन्दर-सुखद आकृतिवाला, कुण्डलों से शोभित, शिर पर मुकुट से युक्त और शोभासम्पन्न देखते हैं॥१५०-१५१॥ चूंकि वहाँ बडी भूख लगती है, इस लिए मृत्यु के ग्यारहवें दिन में, बारहवें दिन में, छमासी में, और वार्षिक तिथि में पुत्त्रादि बहुत से ब्राह्मणों को भोजन कराए॥१५२॥ हे पक्षिन्, जो मनुष्य जीवनकाल में पुत्त्र, पत्नी इत्यादि बन्धुबान्धवों से और अन्य धार्मिक सज्जनों से उपदिष्ट अपने पारलौकिक स्वार्थ को सिद्ध नहीं करता है, वह पीछे जाकर उक्त प्रकार से दुःख पाता है॥१५३॥ यमनगरी में जिस प्रकार की गति होती है यह सब तुम को बता दिया गया, और वर्षपर्यन्त प्रेत के लिए कर्तव्य कृत्य भी तुम को बता दिया गया, तुम और क्या सुनना चाहते हो?॥१५४॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में वर्षकृत्य और यमलोक के मार्ग की यातनाओं का निरूपण करने वाला पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

गरुड उवाच

अपि साधनयुक्तस्य तीर्थदानरतस्य च। अकृते तु वृषोत्सर्गे परलोकगतिर् न हि॥१॥
तस्मात् कृष्ण वृषोत्सर्गः कर्तव्य इति मे श्रुतम्। किं फलं वृषयज्ञस्य पुरा केन कृतो हरे॥२॥
अनड्वान् कीदृशः प्रोक्तः कस्मिन् काले विशेषतः। को विधिस्तस्य निर्दिष्टः सर्वं मे कृपया वद॥३॥

श्रीकृष्ण उवाच

इतिहासं महापुण्यं प्रवक्ष्यामि खगेश्वर। ब्रह्मपुत्त्रेण यत् प्रोक्तं राजानं वीरवाहनम्॥४॥
विराधनगरे राजा वीरवाहननामकः। धर्मात्मा सत्यसन्धश् च वदान्यो विप्रतुष्टिकृत्॥५॥
स कदाचिद् वनं वीरो महात्माऽऽखेटकं गतः। किञ्चित् प्रष्टुमनास् तार्क्ष्य वसिष्ठस्याश्रमं ययौ॥६॥

गरुड ने कहा— हे कृष्ण, साधनों से युक्त और तीर्थस्नान तथा दानों में रमने वाले मनुष्य का भी वृषोत्सर्ग न करने पर परलोक में शुभ गति नहीं होती है, इस लिए वृषोत्सर्ग करना चाहिए, ऐसा मैं ने सुना है; हे हरि, वृषयज्ञ का फल क्या है? पहले वृषयज्ञ किस ने किया, बयल कैसा बताया गया है? विशेष रूप से किस काल में वृषयज्ञ किया जाता है? उस यज्ञ का क्या विधि शास्त्र में बताया गया है? यह सब बात कृपा करके मुझ को बताइए॥१-३॥ श्रीकृष्ण ने कहा— हे पक्षियों के स्वामिन्, जो इतिहास ब्रह्माजी के मानस पुत्र वसिष्ठ ने राजा वीरवाहन को बताया था उस महापुण्य इतिहास को बताऊँगा॥४॥ विराध नाम के नगर में वीरवाहन नाम का धर्मात्मा, प्रतिज्ञापालन करने वाला, महादानी, ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करने वाला राजा था॥५॥ किसी समय में वह महात्मा वीर शिकार खेलने के लिए वन में गया। हे गरुड, वह कुछ पूछने की इच्छा से वसिष्ठ के आश्रम में गया॥६॥

नमस्कृत्य मुनिं तत्र कृतासनपरिग्रहः। प्रश्रयावनतो राजा पप्रच्छ ऋषिसंसदि॥७॥

राजोवाच

मुने मया कृतो धर्मो यथाशक्ति प्रयत्नतः। यमस्य शासनं श्रुत्वा बिभेमि नितरां हृदि॥८॥
यमं च यमदूतांश्च निरयान् घोरदर्शनान्। न पश्यामि महाभाग तथा वद दयानिधे॥९॥

वसिष्ठ उवाच

धर्मा बहुविधा राजन् वर्ण्यन्ते शास्त्रकोविदैः। सूक्ष्मत्वान् न विजानन्ति कर्ममार्गविमोहिताः॥१०॥
दानं तीर्थं तपो यज्ञाः सन्न्यासः पैतृको महः। धर्मेषु गृह्यमाणेषु वृषोत्सर्गो विशेषितः॥११॥
एष्टव्या बहवः पुत्त्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्। यजेत वाऽश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत्॥१२॥

वहाँ मुनि को नमस्कार करके आसनग्रहण कर विनय से झुके हुए राजा ने ऋषियों की सभा में प्रश्न किया॥७॥ हे मुने, मैं ने अपनी शक्ति के अनुसार प्रयत्नपूर्वक धर्म किया है। यम की आज्ञा को सुनकर मैं हृदय से बहुत डरता हूँ॥८॥ हे दया के भण्डार महाभाग, जैसे कार्य करने से मुझ को भयङ्कर दर्शन वाले यमराज को, यमराज के दूतों को और नरकों को देखना नपडे वैसा कार्य बताइए॥९॥ वसिष्ठ ने कहा-- हे राजन्, शास्त्र में निष्णात मनुष्यों से बहुत प्रकार के धर्म बताए जाते हैं, किन्तु कर्ममार्गों से विमोहित लोग धर्म सूक्ष्म होने से धर्म को विवेकपूर्वक नहीं जानपाते हैं॥१०॥ दान, तीर्थयात्रा, तपस्या, यज्ञ, सन्न्यास, पितृयज्ञ इत्यादि धर्मों के नाम लेने पर सब से विशिष्ट धर्म वृषोत्सर्ग माना गया है॥११॥ बहुत से पुत्त्रों की इच्छा करनी चाहिए, क्योंकि उन में से कोई एक गया जा सकता है, अश्वमेधयज्ञ कर सकता है अथवा नील वृष का उत्सर्ग कर सकता है॥१२॥

ब्रह्महत्यादिपापानि ज्ञानाज्ञानकृतानि च। नीलोद्वाहेन शुध्येत् तु समुद्रप्लवनेन वा॥१३॥
एकादशाहे राजेन्द्र यस्य नोत्सृज्यते वृषः। प्रेतत्वं निश्चलं तस्य कृतैः श्राद्धैस्तु किं भवेत्॥१४॥
यथाकथञ्चित् कर्तव्यस् तीर्थे वा पत्तनेऽथ वा। वृषयज्ञः प्रमुच्येत नाऽन्यथा साधनैः खग॥१५॥
वृषभं पञ्चकल्याणं युवानं कृष्णकम्बलम्। गोयूथमध्ये नितरां विचरन्तं विधानतः॥१६॥
चतसृभिर् वत्सिकाभिर् द्वाभ्यां चैवैकया खग। विवाह्य मङ्गलद्रव्यैर् मन्त्रवत् तं समुत्सृजेत्॥१७॥
इह रतीति षड्ऋग्भिर् होमं कुर्याद् विभावसोः। कार्तिक्यां माघवैशाख्यां सङ्क्रमे पातपर्वसु॥१८॥
तीर्थे पित्र्ये क्षयाहे च विशेषेण प्रशस्यते। लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छे च पाण्डुरः॥१९॥

ज्ञान से अथवा अज्ञान से किए गए ब्रह्महत्यादि पाप नील वृष के बछियों से विवाह कराने से अथवा समुद्रस्नान से कट जाएंगे॥१३॥ हे राजाओं में श्रेष्ठ, मृत्यु के ग्यारहवें दिन में जिस का वृषोत्सर्ग नहीं किया जाता है उस का प्रेतत्व निश्चल रहता है, अनेक श्राद्ध करने से उस का क्या होगा? कुछ भी नहीं॥१४॥ हे पक्षिन्, किसी प्रकार से तीर्थ में अथवा नगर में वृषयज्ञ किया जाना चाहिए। (उस से मनुष्य प्रेतभाव से मुक्त होगा), वृषयज्ञ नहोने पर अन्य साधनों से प्रेतभाव से मुक्त नहीं होगा॥१५॥। हे पक्षिन्, चार पैरों में और मुह में अथवा पुच्छ में पाँच अङ्गों में विलक्षण वर्ण से युक्त, जवान, काले गलकम्बल (सास्ना) से युक्त, गायों के भुण्ड में स्वच्छन्द विचरण करने वाले वृषभ को चार अथवा दो अथवा एक ही बछिया के साथ विवाह कराकर मङ्गल द्रव्यों के साथ मन्त्रोच्चारणपूर्वक उस वृषभ को छोडे॥१६-१७॥ "इहरति" इत्यादि छः मन्त्रों से (मा.वा.शु.य.वे.८।५१, पारस्करगृह्यसूत्र ३।९।४) अग्नि में हवन करना चाहिए। कार्तिकपूर्णिमा में अथवा माघपूर्णिमा में अथवा वैशाखपूर्णिमा में अथवा सूर्य के सङ्क्रमण में अथवा व्यतिपात योग में अथवा अन्य पुण्यकाल में, तीर्थ में, विशेष करके पिता के क्षयाहश्राद्ध के दिन में वृषोत्सर्ग करना प्रशंसनीय है। वर्ण से जो लाल है और मुख में तथा पुच्छ में श्वेत है और खुरों में तथा सींगों में पीला है वह वृषभ (बैल) नीलवृष

पीतः खुरविषाणेषु स नीलो वृष उच्यते। श्वेतवर्णो भवेद् विप्रो लोहितः क्षत्त्र उच्यते॥२०॥
पीतवर्णो भवेद् वैश्यः शूद्रः कृष्णः स्मृतो बुधैः। यथावर्णं समुद्दिष्टो वर्णेषु ब्राह्मणादिषु॥२१॥
अथ वा रक्तवर्णस् तु सर्वेषामेव शस्यते। पिता पितामहश् चैव तथैव प्रपितामहः॥२२॥
आशासते सुतं जातं वृषोत्सर्गं करिष्यति। धर्मस् त्वं वृषरूपेण जगदानन्ददायकः॥२३॥
अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतः शान्तिं प्रयच्छ मे। गङ्गायमुनयोः पेयमन्तर्वेदि तृणं चर॥२४॥
धर्मराजस्य पुरतो वाच्यं मे सुकृतं वृष। दक्षिणांसे त्रिशूलाङ्कं वामोरौ चक्रचिह्नितम्॥२५॥
इति सम्प्रार्थ्य वृषभं गन्धपुष्पाक्षतादिभिः। वृषं वत्सतरीयुक्तं पूजयित्वा समुत्सृजेत्॥२६॥
तस्माद् राजन् विधानेन वृषोत्सर्गं समाचार। बहुसाधनयुक्तस्य नाऽन्यथा सद्गतिस् तव॥२७॥

कहा जाता है। श्वेत वर्ण का वृषभ ब्राह्मण जाति का होता है, लाल वर्ण का वृषभ क्षत्रिय जाति का होता है, पीले वर्ण का वृषभ वैश्य जाति का होता है, विज्ञ जनों से काले वर्ण का वृषभ शूद्र समझा गया है। ब्राह्मण क्षत्रिय इत्यादि वर्णों में अपने-अपने वर्ण के ही अनुसार ही वृषभ प्रयोज्य माना गया है॥१८-२१॥ अथवा लाल वर्ण का वृषभ सभी वर्णों के लिए प्रशस्त माना गया है। बाप दादा और परदादा पुत्र के जन्मने पर आशा करते हैं कि यह वृषोत्सर्ग करेगा। वृषोत्सर्ग करते समय प्रार्थना करनी चाहिए कि हे वृष तुम वृष के रूप में जगत् को आनन्द देने वालाधर्म हो, अष्टमूर्ति (महादेव) काअधिष्ठान (हरने का स्थान अथवा वाहन) हो, इस लिए मुझ को शान्ति दो, गङ्गा और यमुना के जल को पिओ और अन्तर्वेदि देश में घास चरो; हे वृष, धर्मराज के समक्ष में मेरा किया हुआ धर्म बताना होगा। दक्षिण अंस में त्रिशूलचिह्न से युक्त तथा वाम ऊरु में चक्रचिह्न से युक्त वृषभ को उक्त प्रकार से प्रार्थना करके बछियों से युक्त उस वृषभ को श्रीखण्डचन्दन फूल अक्षता इत्यादि से पूजा करके छोडे॥२२-२६॥ इस लिए, हे राजन्, विधिपूर्वक वृषोत्सर्ग करो, अन्य बहुत से साधनों से युक्त होने पर भी वृषोत्सर्ग के विना तुम्हारी सद्गति नहीं होगी॥२७॥

आसीत् त्रेतायुगे पूर्वं विदेहनगरे नृप। ब्राह्मणो धर्मवत्सेति स्वकर्मनिरतः सुधीः॥२८॥
विष्णुभक्तोऽतितेजस्वी यथालाभेन तुष्टिकृत्। पितृपर्वणि सम्प्राप्ते कुशार्थी काननं ययौ॥२९॥
अटन्नितस्ततस्तत्र चिन्वन् कुशपलाशकम्। सहसोपेत्य पुरुषाश् चत्वारश् चारुदर्शनाः॥३०॥
विभ्रान्तमनसं गृह्य प्रत्यग् जग्मुर् विहासया। बहुवृक्षसमाकीर्णं गिरिदुर्गभयानकम्॥३१॥
वनाद् वनान्तरं निन्युर् नदीनदसमाकुलम्। स तत्र नगरं राजन् ददर्श बहुविस्तरम्॥३२॥
गोपुरद्वार-रचितं सौधप्रासाद-मण्डितम्। चत्वराऽऽपण-पण्यादि-नरनारी-समाकुलम्॥३३॥
तूर्यद्वन्द्वाभिनिर्घोषवीणापटहनादितम्। कांश्चित् क्षुधार्दितान् दीनान् मलिनान् विगतौजसः॥३४॥
ततोऽतितुष्टान् मलिनान् वस्त्रखण्डसमावृतान्। अग्रतो हृष्टपुष्टांश् च स्वर्णवस्त्रोपशोभितान्॥३५॥

हे राजन्, पहले त्रेतायुग में विदेहनगर में अपने ब्रह्मकर्म में रमने वाले धर्मवत्स नाम के तथा बुद्धिमान्, विष्णु के भक्त, अत्यन्त तेजस्वी तथा धर्म से और न्याय से जो जीवनसाधन प्राप्त होता है उसी में सन्तुष्ट रहने वाले एक ब्राह्मण थे। पितृपर्व आने पर वे कुश के लिए वन गए थे॥२८-२९॥ वे इधर उधर घूमते हुए कुश और पलाश की समिधा सङ्कलित कर रहे थे। उस समय में सुन्दर स्वरूप वाले चार पुरुष एकाएक आकर इन विभ्रमयुक्त मन वाले ब्राह्मण को लेकर उस वन से आकाशमार्ग से बहुत से वृक्षों से युक्त, पर्वत और दुर्गों से भयानक और नदी-नदों से पूर्ण दूसरे वन को ले गए। हे राजन्, ब्राह्मण ने वहाँ बहुत विस्तृत, पुरद्वारादि से युक्त, चुने से लिपे गए विशाल भवनों से और देवमन्दिर-राजप्रासादों से शोभित; चबूतरे, बाजार, नाना विक्रेय वस्तु, पुरुष, स्त्री इत्यादि से समाकुल; वाद्ययुग्मों के शब्दों से और वीणा-नगाडाओं के ध्वनि से निनादित नगर को देखा। वहाँ उन्हों ने कुछ लोगों को भूख से पीडित, दीन, मलिन और ओज से रहित देखा; कुछ लोगों को भरपेट खाए हुए किन्तु मलिन और कटेफटे वस्त्रखण्डों को पहनते हुए देखा; आगे जाकर कुछ लोगों को प्रसन्न पुष्ट और स्वर्ण के आभूषणों से और उज्ज्वल वस्त्रों से शोभित देखा; उस से भी आगे जाकर कुछ लोगों को देवतातुल्य देखकर वे

ततोऽपि सुरसङ्काशान् स दृष्ट्वा विस्मितोऽभवत्। किं स्वप्न उत माया वै मदीयो मानसो भ्रमः॥३६॥
सन्दिहानं द्विजं निन्युः पुरुषा राजसन्निधिम्। स तद् ददर्श विप्रस्तु स्वर्णप्रासादमन्दिरे॥३७॥
सिंहासनं महादिव्यं छत्रचामरवीजितम्। तत्रोपविष्टं राजानं किरीटकनकोज्ज्वलम्॥३८॥
महत्या च श्रिया युक्तं स्तूयमानं सुवन्दिभिः। राजापि दृष्ट्वा तं विप्रं प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः॥३९॥
पूजयामास विधिवन् मधुपर्कासनादिभिः। सन्तुष्टमनसं देवमस्तौषीत् परया मुदा॥४०॥
अद्य मे सफलं जन्म पावितं च कुलं प्रभो। विष्णुभक्तस्य धर्मस्य यत् ते दृग्गोचरं गतः॥४१॥
नत्वा स्तुत्वा बहुविधमुवाचाऽनुवसन् नृपः। यतः समागतो देवः पुनस्तत्रैव नीयताम्॥४२॥
इति श्रुत्वा वचो राज्ञः पप्रच्छ द्विजपुङ्गवः।

विस्मित हुए। ऐसा देखकर यह स्वप्न है क्या, अथवा माया है क्या, अथवा मेरे मन का ही भ्रम है क्या ऐसा सन्देह कर रहे ब्राह्मणजी को उक्त चार पुरुष राजा के समीप में ले गए। उक्त ब्राह्मणजी ने सोने के राजभवनरूप गृह में वह महादिव्य सिंहासन को और उस में बैठे हुए छत्रयुक्त तथा वाराङ्गनाओं से चामरों से पङ्खा किए जा रहे, मुकुट तथा स्वर्णाभूषण से उज्ज्वल, बडी शोभा से युक्त, कुशल स्तुतिपाठकों से प्रशंसित हो रहे राजा को देखा। उक्त ब्राह्मणजी को देखकर उन के स्वागत में खडा होकर हाथ जोडे हुए राजा ने भी उक्त ब्राह्मण की शास्त्रोक्त विधि से आसन-समर्पण-मधुपर्कदान इत्यादि से पूजा की और पूजा-सत्कार से सन्तुष्ट हुए उक्त देवरूप ब्राह्मणजी की परम हर्ष से राजा ने स्तुति की॥३०-४०॥ हे प्रभो विप्रवर, विष्णु के भक्त और धर्ममूर्ति आप के दृष्टि में मैं जो आ गया इस से आज मेरा जन्म सफल हुआ, मेरा कुल ही पवित्र हुआ इत्यादि रूप में अनेक प्रकार से ब्राह्मण की स्तुति करके ब्राह्मण के समीप में बैठते हुए राजा ने 'ये ब्राह्मणदेव जहाँ से आए हैं फिर वहीं ले जाए जायं' ऐसा कहा॥४१-४२॥ राजा के ऐसे वचन को सुनकर ब्राह्मणवर ने पूछा

ब्राह्मण उवाच

कोऽयं देशः कुतो लोका उत्तमा मध्यमाधमाः॥४३॥

केन पुण्येन तु भवान् पारमेष्ठ्यविभूषितः। किमर्थमहमानीतः पुनस् तत्रैव नीयते॥४४॥

अपूर्वमिव पश्यामि सर्वं स्वप्नगतो यथा।

राजोवाच

स्वधर्मनिरतो यस्तु हरिभक्तिरतः सदा॥४५॥

विरक्त इन्द्रियार्थेभ्यः स मे पूज्यो न संशयः। तीर्थयात्रापरो नित्यं वृषोत्सर्गविशेषवित्॥४६॥

सत्यदानपरो यस्तु स नमस्यो दिवौकसाम्। दर्शनार्थमिहानीतः पूजार्हश् च परन्तप॥४७॥

यह देश कौन है? किस कारण से यहाँ के लोग उत्तम, मध्यम और अधम हैं? किस पुण्य से आप इस प्रकार के परमोच्च स्थान से विभूषित हुए हैं? मैं यहाँ क्यों लाया गया? क्यों फिर मुझ को वहीं ले जाया जाता हैं? स्वप्नावस्था में रहे हुए व्यक्ति की तरह मैं सब कुछ अपूर्व जैसा देख रहा हूँ। राजा ने कहा— जो कोही अपने धर्म में रमने वाला है, सदा हरि की भक्ति में डूबने वाला है और इन्द्रियों के गन्ध-रस-स्पर्श-रूप-शब्दादि विषयों से विरक्त है वह मेरे लिए पूज्य है, इस में कोई सन्देह नहीं है। जो नित्य तीर्थयात्रा में लगने वाला है, वृषोत्सर्गकृत्य का विशेषज्ञ है, सत्यपरायण और दानशील है वह तो देवताओं का भी नमस्करणीय है। हे अधर्मशील जनों को पश्चात्तापोद्भावन से तपाने वाले विप्रवर, आप यहाँ दर्शन के लिए लाए गए हैं, आप पूज्य हैं, मुझ को अनुगृहीत करें, हे ब्राह्मणदेव, मेरे साहस को क्षमा कीजिए, ऐसा बोलकर आँख की भौंहों के सङ्केत से मन्त्री को दिखाया और कहा कि ये मेरे मन्त्री विपश्चित् आप को सब कुछ बताएंगे, अपने विषय में अपने आप कहना उचित नहीं है। राजा के समीप में रहने वाले सब वेदों के ज्ञाता मन्त्री

अनुगृहाण मां देव क्षमस्व मम साहसम्। इत्युक्त्वा दर्शयामास मन्त्रिणं संज्ञया भ्रुवः॥४८॥
वदिष्यति समग्रं ते स्वयं वक्तुं न साम्प्रतम्। सामन्तः सर्ववेदज्ञो ज्ञात्वा हार्दं नृपस्य च॥४९॥

विपश्चिदुवाच

पूर्वजन्मनि वैश्योऽयं विश्वम्भर इति श्रुतः। विराधनगरे विप्र द्विजदेवविभूषिते॥५०॥
वैश्यवृत्त्या सदा जीवन् कुटुम्बपरिपालकः। गवां शुश्रूषको नित्यं ब्राह्मणानां च पूजकः॥५१॥
पात्रदानपरो नित्यमातिथेयोऽग्निसेवकः। गार्हस्थ्यं विधिवच् चक्रे भार्यया सत्यमेधया॥५२॥
स्मार्तेन लोकानजयच् छ्रौतेन तु हविर्भुजः। कदाचिद् बन्धुभिः साकं कृत्वा तीर्थानि भूरिशः॥५३॥
यावदायाति सदनं दृष्टवाल्ँ लोमशं पथि। दण्डवत् प्रणिपत्याऽऽशु कृताञ्जलिपुटं स्थितम्॥५४॥
पप्रच्छ विनयोपेतं करुणावारिवारिधिः।

विपश्चित् ने राजा के हृदय के भाव को जानकर कहा– हे विप्र, ये महाराज पूर्वजन्म में ब्राह्मणों से और देवमन्दिरों से सुशोभित विराध नाम के नगर में विश्वम्भर इस नाम से प्रसिद्ध वैश्य थे॥४३-५०॥ वैश्य की कृषि-पशुपालन-वाणिज्यरूप वृत्ति से सदा जीवनयात्रा चलाते हुए अपने कुटुम्ब का भरण-पोषण करने वाले, नित्य गायों की सेवा करने वाले, ब्राह्मणों की पूजा करने वाले, सत्पात्र में दान देने में सदा तत्पर, नित्य अतिथियों का सत्कार करने वाले और गृह्याग्नि के और श्रौताग्नि के सेवक ये अपनी सत्यमेधा नाम की भार्या के साथ में शास्त्रोक्त विधि से गृहस्थाश्रमधर्म का पालन करते थे॥५१-५२॥ इन्हों ने गृह्याग्निसाध्य कर्म से लोकों को और श्रौताग्निसाध्य कर्म से देवताओं को भी जीत लिया। ये किसी समय बन्धुओं के साथ में बहुत से तीर्थों में स्नान-दानादि करके घर को लौट रहे थे उस समय में मार्ग में इन्हों ने लोमश ऋषि को देखा। देखते ही तुरत डण्डे की तरह भूमि में पडकर प्रणाम करके हाथ जोडकर खडे हुए विनययुक्त इन को दया के सागर लोमशजी ने पूछा। ऋषि

ऋषिरुवाच

कुत आगम्यते साधो ब्राह्मणैर् बन्धुभिर् युतः॥५५॥ दृष्ट्वा त्वां धर्मनिलयं प्रक्लिन्नं मानसं मम।

विश्वम्भर उवाच

शीर्यमाणं शरीरं हि ज्ञात्वा मृत्युं पुरःस्थितम्॥५६॥
भार्यया धर्मचारिण्या तीर्थयात्रां विनिर्गतः। कृत्वा तीर्थानि विधिवद् विश्राण्य विपुलं वसु॥५७॥
यावद् व्रजाम्यहं वेश्म भवान् दृष्टिपथं गतः।

लोमश उवाच

तीर्थानि सन्ति भूरीणि वर्षेऽस्मिन् भारते शुभे॥५८॥ यत् त्वया ह्युपचीर्णानि तानि सर्वाणि मे वद।

वैश्य उवाच

गङ्गा च सूर्यतनया महापुण्या सरस्वती॥५९॥

ने कहा— हे गृहस्थधर्म की साधना करने वाले साधु, ब्राह्मणों से और बन्धुओं से युक्त तुम कहाँ से आ रहे हो?॥५३-५५॥ धर्म के घर तुम को देखकर मेरा मन दया से आर्द्र हुआ। विश्वम्भर ने कहा-मैं शरीर को टूटते हुए और मृत्यु को आगे उपस्थित जानकर धर्मचारिणी पत्नी के साथ तीर्थयात्रा को निकला था, शास्त्रोक्त विधि से तीर्थों की सेवा करके बहुत से धन का दान भी करके जब मैं घर को लौट रहा हूँ तब आप मेरे दृष्टि में पडे। लोमशजी ने कहा— इस पुण्यभूमि भारतवर्ष में बहुत से तीर्थ हैं॥५६-५८॥ जौन जौन तीर्थ का तुम ने सेवन किया उन सब तीर्थों को मुझे बताओ। वैश्य ने कहा— गङ्गा यमुना और महापुण्या सरस्वती इन नदियों का त्रिवेणी सङ्गम जहाँ है और जहाँ देवताओं के स्वामी ब्रह्माजी

दशाश्वमेधैरयजद् यत्र ब्रह्मा सुरेश्वरः। तीर्थराजस् ततः काशी महादेवो दयानिधिः॥६०॥
मृतानां यत्र जन्तूनां कर्णे जपति तारकम्। पुलहस्याश्रमं पुण्यं फल्गुर्तीर्थं च गण्डकी॥६१॥
चक्रतीर्थं नैमिषं च शिवतीर्थमनन्तकम्। गोप्रतारक-नागेशमयोध्या-बिन्दु-संज्ञितम्॥६२॥
यत्राऽऽस्ते मुक्तिदः साक्षाद् रामो राजीवलोचनः। आग्नेयं वायु-कौबेरं कौमारं भूरुहां पुनः॥६३॥
सौकरं मथुरा यत्र नित्यं सन्निहितो हरिः। पुष्करं सत्यतीर्थं च ज्वालातीर्थं दिनेश्वरम्॥६४॥
इन्द्रतीर्थं कुरुक्षेत्रं यत्र प्राची सरस्वती। तापी पयोष्णी निर्विन्ध्या मलयः कृष्णवेणिका॥६५॥
गोदावरी दण्डकं च ताम्रचूडं सदोदकम्। द्यावाभूमीश्वरं दृष्ट्वा श्रीशैलः पर्वतेश्वरः॥६६॥
असङ्ख्यलिङ्गतीर्थानि यत्र सन्ति सदा मुने। वेङ्कटाद्रौ महातेजाः श्रीरङ्गाख्यः स्वयं हरिः॥६७॥
वेङ्कटी नाम तत्रैव देवी महिषमर्दिनी। चन्द्रतीर्थं भद्रवटः कावेरी कुटिलाचलौ॥६८॥

ने दश अश्वमेध यज्ञ किए वह तीर्थों में श्रेष्ठ प्रयाग; तब काशी, जहाँ दया के घर महादेव मरते हुए प्राणी के कान में तारक मन्त्र (ओङ्कार) पढते हैं; पुलह का आश्रम, पवित्र फल्गुतीर्थ, गण्डकी नदी, चक्रतीर्थ, नैमिषारण्य, शिवतीर्थ, अनन्तक, गोप्रतारक, नागेश; अयोध्या, बिन्दु नामक तीर्थ, जहाँ मुक्ति देने वाले कमलपत्र के तुल्य नयन वाले राम रहते है; आग्नेयतीर्थ, वायुतीर्थ, कौबेरतीर्थ, कौमारतीर्थ, भूरुहतीर्थ, सौकरक्षेत्र; मथुरा, जहाँ हरि नित्य उपस्थित रहते हैं; पुष्करतीर्थ, सत्यतीर्थ, ज्वालातीर्थ, दिनेश्वरतीर्थ, इन्द्रतीर्थ; कुरुक्षेत्र, जहाँ सरस्वती नदी पूर्व की ओर वहती है वह तीर्थ; तापी नदी, पयोष्णी नदी, निर्विन्ध्या नदी, मलयपर्वत, कृष्णवेणिका नदी, गोदावरी नदी, दण्डकारण्य, ताम्रचूडतीर्थ, सदोदकतीर्थ; द्यावाभूमीश्वर को देखकर गन्तव्य पर्वतेश्वर श्रीशैल, हे मुने, जहाँ असङ्ख्य लिङ्ग और तीर्थ सदा उपस्थित हैं; वेङ्कटाद्रि में रहने वाले महातेजस्वी श्रीरङ्ग नाम के साक्षात् हरिका स्थान, वहीं रहने वाली वेङ्कटी नाम की महिषमर्दिनी देवी का स्थान, चन्द्रतीर्थ, भद्रवटतीर्थ, कावेरी, कुटिलाचल,

अवटोदा ताम्रपर्णी त्रिकूटः कोल्लको गिरिः। वासिष्ठं ब्रह्मतीर्थं च ज्ञानतीर्थं महोदधिः॥६९॥
हृषीकेशं विराजं च विशालं नीलपर्वतः। भीमकूटः श्वेतगिरी रुद्रतीर्थमुमावनम्॥७०॥
अवाप गिरिजा देवी तपसा यत्र शङ्करम्। वारुणं सूर्यतीर्थं च हंसतीर्थं महोदयम्॥७१॥
निमज्य यत्र काकोला राजहंसत्वमाययुः। असुरो यत्र देवत्वमवाप स्नानमात्रतः॥७२॥
विश्वरूपं वन्दितीर्थं रत्नेशः कुहकाचलः। नरनारायणं दृष्ट्वा मुच्यते पापकोटिभिः॥७३॥
सरस्वती-दृषद्वत्यौ नर्मदा शर्मदा नृणाम्। नीलकण्ठं महाकालं पुण्यं चाऽमरकण्टकम्॥७४॥
चन्द्रभागा वेत्रवती वीरभद्रं गणेश्वरम्। गोकर्णं बिल्वतीर्थं च कर्मकुण्डं सतारकम्॥७५॥
स्नानमात्रेण यत्राऽऽशु मुच्यते कर्मबन्धनात्। अन्यान्यपि च तीर्थानि कृतानि कृपया तव॥७६॥
उत्पद्यते शुभा बुद्धिः साधूनां यदनुग्रहः। एकतः सर्वतीर्थानि करुणाः साधवोऽन्यतः॥७७॥

अवटोदा नदी, ताम्रपर्णी, त्रिकूटपर्वत, कोल्लक पर्वत, वासिष्ठतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ, ज्ञानतीर्थ, महोदधि, हृषीकेश, विराजतीर्थ, विशालतीर्थ, नीलपर्वत, भीमकूट, श्वेतगिरि, रुद्रतीर्थ; उमावन, जहाँ पर्वतपुत्री ने तपस्या से शङ्कर को पति पाया; वारुणतीर्थ, सूर्यतीर्थ; महान् अभ्युदय कराने वाला हंसतीर्थ, जहाँ डूबकर द्रोणकाक भी राजहंस हो गए और जहाँ स्नान करने मात्र से असुर ने भी देवत्व प्राप्त किया; विश्वरूप, वन्दितीर्थ, रत्नेश; कुहकाचल, जहाँ नर को और नारायण को देखकर मनुष्य करोडों पापों से मुक्ति पाता है; सरस्वती नदी, दृषद्वती नदी, मनुष्यों को कल्याण देने वाली नर्मदा नदी, नीलकण्ठ, महाकाल, पवित्र अमरकण्टक, चन्द्रभागा नदी, वेत्रवती नदी, वीरभद्र, गणेश्वर, गोकर्ण, बिल्वतीर्थ; तारकसहित कर्मकुण्ड, जहाँ स्नान करने मात्र से मनुष्य कर्मबन्धनों से तुरत मुक्त होता है, इन तीर्थों का मैं ने सेवन किया और आप की कृपा से और भी तीर्थों का मैं ने सेवन किया॥५९-७६॥
जब साधुओं का अनुग्रह होता है तब उत्तम बुद्धि उत्पन्न होती है। सम्पूर्ण तीर्थ एक ओर रहते हैं तो प्राणियों के ऊपर दया से पूर्ण साधु लोग एक ओर;

अनुग्रहाय भूतानां चरन्ति चरितव्रताः। त्वं गुरुः सर्ववर्णानां विद्यया वयसाऽधिकः॥७८॥
अतः पृच्छाम्यहं किञ्चिदाधिभूतं चिरन्तनम्। किं कुर्यां कं नु पृच्छेऽहं मनो मेऽतिचलं मुने॥७९॥
निःस्पृहं ब्रह्मविषये विषयेष्वतिलालसम्। मनागपि न सहते विरहं तिमिरं ब्रुवत्॥८०॥
मोहितं विविधैर् भावैः कर्मणां क्षेत्रमुत्तमम्। शान्तिं यथा समायाति सम्पन्नमिव भूसुर॥८१॥
विवेकप्रवणं शुद्धं यथा स्यात् कृपया वद।

ऋषिरुवाच

मनस् तु प्रबलं नित्यं सविकारं स्वभावतः॥८२॥
वशं नयन्ति करिणं प्रमत्तमपि हस्तिपाः। तथापि साधुसङ्गत्या साधनैरप्यतन्द्रितः॥८३॥

प्राणियों के अनुग्रह के लिए चरितव्रत साधु लोग भूतल में घूमते हैं। आप सभी वर्णों के गुरु हैं, विद्या से और वय से भी श्रेष्ठ हैं॥७७-७८॥ इस लिए मैं मेरे मन में बहुत समय से मानस व्यथा के रूप में रहे हुए विषय में कुछ पूछता हूँ। हे मुने, मैं क्या करूँ, किस को पूछूँ, मेरा मन अतिचञ्चल है, मेरा मन ब्रह्म के विषय में स्पृहा से शून्य है, और गन्ध-रस-स्पर्श-रूप-शब्दादि विषयों में अत्यन्त इच्छा करने वाला है, अज्ञानान्धकार के विषय में बोलता हुआ मेरा मन विषयों से विरह अल्प मात्रा में भी नहीं सहता है। मेरा मन विविध भावों से मोहित है, कर्मों का उर्वर क्षेत्र है, हे भूमि में वर्तमान देवता (हे ब्राह्मण), सभी इच्छाओं की पूर्ति से युक्त जैसा होकर मेरा मन जैसे शान्ति को प्राप्त करता है, जैसे मेरा मन विवेक की ओर झुकेगा, जैसे शुद्ध होगा, कृपा करके आप उस प्रकार का उपदेश दीजिए। **ऋषि ने कहा—** मन तो अत्यन्त बलवान् है और स्वभाव से ही इच्छा-राग-द्वेषादि विकारों से भरा है॥७९-८२॥ तथापि जैसे महावत लोग मदमत्त हाथियों को भी वश में लेते हैं वैसे ही मन को भी अनलस और सतर्क होकर साधु लोगों की सङ्गति से, अन्य अभ्यासादि साधनों से,

तीव्रेण भक्तियोगेन विचारेण वशं नयेत्। इतिहासं प्रवक्ष्यामि तव प्रत्ययकारकम्॥८४॥
नारदोऽकथयन् मह्यं स्ववृत्तं गतजन्मनः।

नारद उवाच

कस्यचिद् द्विजमुख्यस्य दासीपुत्त्रः पुरा मुने॥८५॥
शिक्षितो बालभावेऽपि पाठितो नितरामहम्। तत्रापि सङ्गतिर् जाता महतां पुण्यकर्मणाम्॥८६॥
प्रावृट्काले मम गृहे स्थितानां भाग्ययोगतः। शुश्रूषणानुवृत्त्या च प्रश्रयेण दमेन च॥८७॥
सन्तोषं परमं प्राप्य कृपया त्विदमब्रुवन्। मनीषा निर्मला येन जाता मम शुभार्थिनी॥८८॥
यया विष्णुमयं सर्वमात्मन्येव ददृशिवान्।

मुनय ऊचुः

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामो हिताय तव बालक॥८९॥

तीव्र भक्तियोग से और विचार से भी वश में लेना चाहिए। इस विषय में तुम को विश्वास कराने वाला इतिहास बताऊँगा। नारद ने बीते हुए अपने जन्म का वृत्तान्त मुझ को बताया था। नारद ने कहा— हे मुनि लोमशजी, मैं पूर्वजन्म में किसी ब्राह्मण की दासी का पुत्र था, मैं बाल्यकाल में भी बहुत पढाया सिखाया गया था। उस में भी पुण्य कर्म करने वाले तथा वर्षासमय में मेरे गृह में रहे हुए महापुरुषों से भाग्ययोग से मेरी सङ्गति हुई। मेरी सेवा से, अनुगमन से, विनय से और इन्द्रियजय से भी परम सन्तोष पाकर उन महापुरुषों ने मुझ पर कृपा करके यह बताया, जिस से मेरी बुद्धि निर्मल और शुभमार्ग में चलने की इच्छा करने वाली हुई, जिस बुद्धि से मैं ने अपने में ही सम्पूर्ण चीज को विष्णुमय देखा। मुनियों ने कहा— हे वत्स, सुनो; हे बालक, तुम्हारे हित के लिए बताएंगे,

येन त्वै ध्रियमाणेन इहाऽमुत्र सुखं भवेत्। देवतिर्यङ्मनुष्याश्च संसारे विविधा जनाः॥९०॥
निबद्धाः कर्मपाशैस्तेऽभुञ्जन् भोगान् पृथग्विधान्। देवत्वं याति सत्त्वेन रजसा च मनुष्यताम्॥९१॥
तिर्यक्त्वं तमसा जन्तुर् वासनानुगतोऽबुधः। मातुर् लब्ध्वा पुनर्जन्म म्रियते च पुनःपुनः॥९२॥
एवं गत्वा ह्यसङ्ख्याता योनीस्ताः कर्मभूरपि। मानुष्यं दुर्लभं लब्ध्वा कदाचिद् दैवयोगतः॥९३॥
अनुग्रहेण महतां हरिं ज्ञात्वा विमुच्यते। रोगग्राहं मोहजालमपारं भवसागरम्॥९४॥
न पश्यामि तितीर्षोरन्यद् रामस्मरणं विना। नवनीतं यथा दध्नो ज्योतिः काष्ठादपि क्वचित्॥९५॥
मन्थनैः साधनैरेवं परं ज्ञात्वा सुखी भवेत्। आत्मा नित्योऽव्ययः सत्यः सर्वगः सर्वभृन् महान्॥९६॥
अप्रमेयः स्वयञ्ज्योतिरग्राह्यो मनसापि यः। सच्चिदानन्दरूपोऽसौ सर्वप्राणिहृदि स्थितः॥९७॥

जिस बात को मन में धारण करने से इस लोक में और परलोक में भी सुख होगा। संसार में देवता, पशुपक्ष्यादि तिर्यग्योनि प्राणी, मनुष्य इत्यादि विविध प्राणी कर्मपाशों से बद्ध होकर विभिन्न प्रकार के भोगों को भोगते हैं। जन्मजन्मान्तर की वासना का अनुगत होकर अज्ञानी प्राणी सत्त्वगुण से युक्त होने पर देवत्व में प्राप्त होता है, रजोगुण से युक्त होने पर मनुष्यत्व में प्राप्त होता है और तमोगुण से युक्त होने पर तिर्यक्त्व में (पशुपक्ष्यादिभाव में) प्राप्त होता है। माता से जन्म पाकर वारवार मरता है॥८३-९२॥ इस प्रकार असङ्ख्य योनियों में और कर्मभूमियों में जाकर कदाचित् दैवयोग से दुर्लभ मनुष्यत्व को पाकर महापुरुषों की कृपा से हरि को जानकर संसार से मुक्त होता है। रोगरूपी ग्राहों से युक्त, मोहरूपी जाल से घिरे हुए और दुष्पार संसारसागर को पार करने की इच्छा करने वाले मनुष्य के लिए राम के स्मरण को छोडकर अन्य सुलभ साधन नहीं है। जैसे मन्थन से दही से नवनीत, काष्ठ से भी कहीं ज्योति पाया जाता है, वैसे ही विवेक-वैराग्य-शम-दमादि साधन से परमात्मा को पाकर सुखी हो सकता है। आत्मा नित्य, नघटने वाला, परम सत्य, सर्वव्यापी, सब वस्तुओं को धारण करने वाला, परम महान्, चक्षुरिन्द्रियादि प्रमाण से अग्राह्य, स्वयम् प्रकाशित होने वाला, मन से भी अग्राह्य, कभी बाधित न होने वाला, चेतनारूप, आनन्दस्वरूप और सम्पूर्ण प्राणियों के हृदयों में रहा हुआ है॥९३-९७॥

विनश्यत्स्वपि भावेषु न विनश्यति कर्हिचित्। आकाशः सर्वभूतेषु स्थितस् तेजोजले तथा॥९८॥
आत्मा सर्वत्र निर्लेपः पार्थिवेषु यथाऽनिलः। भक्ताऽनुकम्पी भगवान् साधूनां रक्षणाय च॥९९॥
आविर्भवति लोकेषु गुणीवाऽज्ञैः प्रतीयते। एवं विवेकवत्या यो बुद्ध्या संशीलयेद् हृदि॥१००॥
भक्तियोगेन सन्तुष्ट आत्मानं दर्शयेदजः। ततः कृतार्थो भवति सदा सर्वत्र निःस्पृहः॥१०१॥
अतोऽहङ्कारमुत्सृज्य सानुबन्धे कलेवरे। चरेदसङ्गो लोकेषु स्वप्नप्रायेषु निर्ममः॥१०२॥
क्व स्वप्ने नियतं धैर्यमिन्द्रजाले क्व सत्यता। क्व नित्यता शरन्मेघे क्व वा सत्यं कलेवरे॥१०३॥
अविद्याकर्मजनितं दृश्यमानं चराचरम्। ज्ञात्वाऽऽचारवशी योगी ततः सिद्धिमवाप्स्यसि॥१०४॥
इत्युक्त्वा ते गताः सर्वे साधवो दीनवत्सलाः। सोऽहं तदुक्तमार्गेण तथैवाऽऽचरमन्वमहम्॥१०५॥

अन्य पदार्थ नष्ट होने पर भी आत्मा कभी भी नष्ट नहीं होता है। आकाश जैसे ही आत्मा सम्पूर्ण महाभूतों में स्थित है, तेज में और जल में भी स्थित है। जैसे पृथिवीरूप पदार्थों में वायु रहता है वैसे ही आत्मा भी निर्लेप होकर सर्वत्र रहता है। भक्तों पर दया करने वाले भगवान् साधुओं के रक्षण के लिए लोक में आविर्भूत होते हैं (अवतार लेते हैं), वे अज्ञ लोगों से गुणी जैसे माने जाते हैं। इस प्रकार विवेकयुक्त बुद्धि से जो मनुष्य हृदय में परमात्मा का पुनःपुनः विचार करता है उस की उस भक्तियोग से सन्तुष्ट होकर अजन्मा भगवान् उस को अपना दर्शन देते हैं। तब मनुष्य सदा सभी विषयों में इच्छा से रहित होकर कृतार्थ होजाता है॥९८-१०१॥ इस लिए सम्बद्ध अन्य पदार्थों से सहित शरीर में अहङ्कार को छोडकर इन स्वप्नतुल्य लोकों में ममता को छोडकर अनासक्त भाव से विचरण करना चाहिए॥१०२॥ स्वप्न में धैर्य नित्य कहाँ होता है! इन्द्रजाल (जादू) में सत्यता कहाँ होती है। शरत्काल के मेघ में नित्यता कहाँ होती है! शरीर में सत्यता कहाँ होती है! ॥१०३॥ दृश्यमान चञ्चल जगत् को अविद्या और कर्म से उत्पन्न जानकर आचारों के पालन से इन्द्रियजयी तथा एकाग्रमन वाला होकर तुम सिद्धि (मुक्ति) पा सकते हो॥१०४॥ ऐसा कहकर वे दीन लोगों पर वात्सल्यपूर्ण व्यवहार करने वाले सभी साधु लोग गए।

ततोऽचिरेणाऽऽत्मनीदं दृष्टवानहमद्भुतम्। ज्योतिर्मयं सदानन्दं शरच्छीतांशुनिर्मलम् ॥१०६॥
निषिच्य सुखसन्दोहैर् मां कृत्वाऽधिकसस्पृहम्। अन्तर्हितं महत् तेजो यथा सौदामिनी दिवि ॥१०७॥
भक्त्या तदेव मनसि भावयन्नहमद्भुतम्। काले कलेवरं त्यक्त्वा गतवान् हरिमव्ययम् ॥१०८॥
तस्येच्छया पुनर् ब्रह्मन् ब्रह्मणो मेऽभवज् जनिः। अनुग्रहाद् भगवतस् त्रिषु लोकेषु निःस्पृहः ॥१०९॥
आपीडयन् मुहुर् वीणां गायमानश्चराम्यहम्। इत्युक्त्वा मे स्वानुभवं ययौ यादृच्छिको मुनिः ॥११०॥
ममापि परमाश्चर्यं सन्तोषश् च महानभूत्। अतस्ते साधुसङ्गत्या भक्त्या च परमात्मनः ॥१११॥
विशुद्धं निर्मलं शान्तं मनो निर्वृतिमेष्यति। अनेकजन्मजनितं पातकं साधुसङ्गमे ॥११२॥
क्षिप्रं नश्यति धर्मज्ञ जलानां शरदो यथा।

उन लोगों से उस प्रकार उपदिष्ट मैं ने भी प्रतिदिन उन के बताए हुए मार्ग से उसी प्रकार साधना की ॥१०५॥ तब मैं ने थोडे ही समय में अपने में ही अद्‌भुत, ज्योतिर्मय, शरत्‌काल के चन्द्र की तरह निर्मल, सुख के राशि से सेचित करके मुझ को अपने में अधिक इच्छुक बनाकर मुझ में ही अन्तर्निहित, आकाश की बिजली के समान इस महान् तेज को देखा ॥१०६-१०७॥ मैं भक्तिपूर्वक मन में उसी अद्‌भुत तेज को वार-वार चिन्तन करता हुआ समय आने पर शरीर का त्याग करके अव्यय हरि में मिल गया ॥१०८॥ हे ब्राह्मण, उन्ही की इच्छा से मेरा ब्रह्माजी से फिर जन्म हुआ। भगवान् की कृपा से मैं किसी भी वस्तु की इच्छा से रहित होकर वारवार वीणा बजाता और गाता हुआ तीनों लोकों में घूमता हूँ। विना हेतु विचरण करने वाले वे मुनि इस प्रकार मुझ को अपना अनुभव बताकर गए ॥१०९-११०॥ मुझ को भी परम आश्चर्य और महान् सन्तोष हुआ। अत एव तुम्हारा भी साधुओं के सङ्गत से और भगवान् की भक्ति से शुद्ध और निर्मल होकर मन शान्त और सन्तुष्ट होगा। अनेक जन्मों में उत्पन्न पातक सज्जनों के सङ्गम में शरत्‌काल के जलों की मलिनता के समान शीघ्र ही नष्ट होता है।

वैश्य उवाच

पीत्वा ते वाक्यपीयूषं स्वान्तं मे शान्तिमागमत्॥११३॥
सर्वतीर्थफलं मेऽद्य सञ्जातं तव दर्शनात्। इति श्रुत्वा वचस्तस्य प्रोवाच ऋषिसत्तमः॥११४॥

लोमश उवाच

हिताय तव राजेन्द्र त्रिवर्गफलमिच्छतः। यत् त्वया सुकृतं भूरि वृषोत्सर्गं विना कृतम्॥११५॥
मन्येऽकिञ्चित्करं सर्वं नीहारसलिलं यथा। वृषोत्सर्गसमं किञ्चित् साधनं न महीतले॥११६॥
अनायासेन गच्छन्ति गतिं ते पुण्यकर्मणाम्। वृषोत्सर्गः कृतो येन अश्वमेधस्य याजकः॥११७॥
उभौ समौ मया दृष्टौ दिव्यौ तौ शक्रसन्निधौ। अतस्त्वं पुष्करं गत्वा वृषोत्सर्गं विधाय च॥११८॥
ततो याहि गृहं साधो येन सर्वं कृतं भवेत्।

वैश्य ने कहा— आप के वाक्यरूपी अमृत का पान करके मेरा मन शान्ति में पहुँचा। आप के दर्शन से आज मुझ को सम्पूर्ण तीर्थों का फल प्राप्त हुआ। उक्त वैश्य के इस प्रकार के वचन को सुनकर श्रेष्ठ ऋषिजी ने कहा। लोमशजी ने कहा— हे राजाओं में श्रेष्ठ, धर्म-अर्थ-कामरूप त्रिवर्गफल पाना चाहने वाले तुम्हारे हित के लिए कहता हूँ। तुम ने वृषोत्सर्ग के विना जो अनेक धर्मकार्य किया वह सब कुहासे के जल के समान अकिञ्चित्कर मानता हूँ। पृथ्वीतल में वृषोत्सर्गतुल्य दूसरा कोई साधन नहीं है॥१११-११६॥ जिन्हों ने वृषोत्सर्ग किया है वे लोग विना प्रयास ही पुण्यकर्म करने वालों की गति में जाते हैं। जिस ने वृषोत्सर्ग किया है और जिस ने अश्वमेध यज्ञ किया है वे दोनों ही मुझ से इन्द्र के समीप में दिव्यरूप से समान रूप में देखे गए हैं। इस लिए हे साधो, तुम पुष्करतीर्थ में जाकर वृषोत्सर्ग करके उस के बाद ही घर को जाओ, जिस से तुम से सम्पूर्ण धर्म सम्पन्न होगा।

विपश्चिदुवाच

ततः स पुनरागत्य कार्तिक्यां पुष्करे वने॥११९॥
वराहरूपी भगवान् यत्राऽऽस्ते यज्ञपूरकः। चकार विधिवत् सर्वं यदुक्तमृषिसत्तमैः॥१२०॥
गतानि बहुतीर्थानि ततो लोमशसङ्गतिः। ततोऽधिकतरं जातं पुण्यं नीलविवाहजम्॥१२१॥
स भुक्त्वा विषयान् दिव्यान् विमानवरमाश्रितः। तेन राजकुले जन्म वीरसेनस्य धर्मतः॥१२२॥
वीरपञ्चाननाख्यातं चतुर्वर्गैकसाधकम्। प्रकुर्वतो वृषोत्सर्गं तत्र ये परिचारकाः॥१२३॥
दिव्यरूपाऽभवन् स्पृष्टा गोपुच्छोदकशीकरैः। सुरूपाः पुष्टवपुषः पश्यन्तो दूरसंस्थिताः॥१२४॥
ततो दूरतरा ये च दृश्यन्ते मलिना जनाः। दुर्भगा मलिना रूक्षाः कृशा विगतवाससः॥१२५॥

विपश्चित् ने कहा— जहाँ यज्ञ को पूर्ण करने वाले वराहरूपी भगवान् रहते हैं उस पुष्कर वन में आकर श्रेष्ठ ऋषियों ने जो बताया था वह सब उक्त वैश्य ने शास्त्रोक्त विधि से कार्तिकपूर्णिमा में किया॥११७-१२०॥ बहुत से तीर्थों की यात्रा की, उस पुण्य से उक्त वैश्य का लोमश ऋषि से सङ्गम हुआ, उस से नीलविवाह (वृषोत्सर्ग) से उत्पन्न अधिक पुण्य सम्पन्न हुआ॥१२१॥ इस से स्वर्ग के श्रेष्ठ विमान में रहकर दिव्य भोगों के भोगने के बाद धर्म के प्रभाव से वीरसेन राजा के कुल में वीरपञ्चानन शब्द से विख्यात और धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूप चतुर्वर्ग के अद्वितीय साधक के रूप में उक्त वैश्य का जन्म हुआ। वहाँ पुष्करवन में वृषोत्सर्ग कर्म करते समय जो परिचारक थे और जिन में वृषोत्सर्ग कर्म में वृष के पुच्छ के जल के छीटें पडे थे वे दिव्यरूप वाले बने, दूर देश में रहकर भी वृषोत्सर्ग कर्म को जिन्हों ने श्रद्धापूर्वक देखा था वे ये सुरूप और हृष्ट-पुष्ट शरीर वाले हैं, वृषोत्सर्ग कर्म में उन लोगों से भी दूर देश में रहने वाले जो थे वे ही ये मलिन लोग हैं, और उस वृषोत्सर्ग कर्म के अवसर पर जो वृषोत्सर्ग कर्म को नदेखने वाले और वृषोत्सर्ग के गुणों में भी दोषारोपण करने वाले लोग थे वे ये स्त्रियों के अप्रिय, मलिन, खुरदरे, दुबले और कटेफटे वस्त्र वाले हैं। मैं ने पराशरमुनि से जो सुना था वह धर्मपूर्ण और

वृषयज्ञमपश्यन्तो ये चाऽसूयां प्रकुर्वते। सर्वं निवेदितं राज्ञश्चरितं पूर्वजन्मनः॥१२६॥
धर्म्यं विचित्रमाख्यानं श्रुतं मे यत् पराशरात्। अतस् त्वं स्वगृहं गच्छ कृपां कृत्वा ममोपरि॥१२७॥
श्रुत्वा विपश्चिद्वाक्यं स विस्मयं परमं गतः। गृहं जगाम विप्रोऽसौ प्रापितो राजसेवकैः॥१२८॥

वसिष्ठ उवाच

तस्माद् राजन् वृषोत्सर्गं वरिष्ठं सर्वकर्मणाम्। समाचर विधानेन यदि भीतो यमादपि॥१२९॥
वृषोत्सर्गसमं किञ्चित् साधनं न दिवः परम्। मया धर्मरहस्यं ते कथितं राजसत्तम॥१३०॥
पतिपुत्त्रवती नारी भर्तुरग्रे मृता यदि। वृषोत्सर्गं न कुर्वीत गां दद्याच् च पयस्विनीम्॥१३१॥

श्रीकृष्ण उवाच

श्रुत्वा वाक्यं वसिष्ठस्य राजा मधुपुरीं गतः। चकार विधिवत् सर्वं वृषोत्सर्गमहं खग॥१३२॥

विचित्र आख्यानरूप महाराज का पूर्वजन्म का सम्पूर्ण चरित्र आप को निवेदित किया। अत एव आप मेरे ऊपर कृपा करके अपने घर को जाइए॥१२२-१२७॥ उक्त राजा के विपश्चित् नाम के मन्त्री के वचनों को सुनकर वे धर्मवत्स नाम के ब्राह्मण अत्यन्त विस्मित हुए। और राजसेवकों से पहुँचाए गए वे ब्राह्मण अपने घर को गए॥१२८॥ **वसिष्ठ ने कहा**— इस लिए, हे राजन्, यदि तुम यमराज से डरे हुए हो तो सभी धर्मकृत्यों में श्रेष्ठ वृषोत्सर्ग कृत्य शास्त्रोक्त विधान से करो॥१२९॥ वृषोत्सर्ग के समान स्वर्ग का दूसरा कोई परम साधन नहीं है। हे राजाओं में श्रेष्ठ, धर्म का रहस्य मैं ने तुम को बता दिया॥१३०॥ पति से और पुत्र से युक्त स्त्री यदि पति से पहले मरी है तो उस के लिए वृषोत्सर्ग नहीं करे, दूध देने वाली गाय ब्राह्मण को दे॥१३१॥ **श्रीकृष्ण ने कहा**— हे पक्षिन्, वसिष्ठ के वचन को सुनकर राजा ने मथुरा जाकर शास्त्रोक्त विधि से सम्पूर्ण वृषोत्सर्ग का उत्सव किया॥१३२॥

गृहं गत्वा स आत्मानं कृतकृत्यममन्यत। कालेन निधनं प्राप्तो नीतो वैवस्वतानुगैः॥१३३॥
स कालनगरं हित्वा गतो दूरतरं पथि। श्राद्धदेवपुरं कुत्रेत्येवं दूतानपृच्छत॥१३४॥
पापिनो यत्र पात्यन्ते याम्यैः पापविशुद्धये। यत्र देवः स धर्मात्मा धर्माधर्मविचेतनः॥१३५॥
गतं पापपुरं तत् तु न द्रष्टव्यं भवादृशैः। अग्रे दृष्ट्वा धर्मराजमूचुस् ते परमादरात्॥१३६॥
दिव्यरूपस् तदा देवो देवगन्धर्वसंयुतः। आत्मानं दर्शयामास तस्य राज्ञो महात्मनः॥१३७॥
प्रणम्य दण्डवद् राजा कृताञ्जलिः पुरः स्थितः। तुष्टाव बहुधा देवं हर्षपूरितमानसः॥१३८॥
धर्मराजोऽपि राजानं प्रशस्येदमुवाच ह। नीयतां देवलोकाय यत्र भोगाः सुपुष्कलाः॥१३९॥
तद् वीरवाहनः श्रुत्वा पप्रच्छ समवर्तिनम्। न जाने केन पुण्येन स्वर्गं नयसि मां विभो॥१४०॥

तब घर जाकर उस ने अपने को कृतकृत्य माना। अपने काल में मृत्यु में प्राप्त वह राजा यमराज के अनुचरों से लेजाया गया। यमराज के नगर को मार्ग में छोडकर बहुत दूर पहुँचे हुए उस राजा ने यमराज के दूतों को पूछा कि यमराज का पुर कहाँ है?, जहाँ यमदूतों से पापी लोग पाप कटाने के लिए ढकेले जाते हैं, जहाँ धर्मपरायण और धर्म तथा अधर्म का विशेष चेतना वाले वे धर्मराजदेव रहते हैं॥१३३-१३५॥ आगे धर्मराज को देखकर उन यमदूतों ने अत्यन्त आदर से कहा कि वह पापियों का नगर तो पिछे छुट गया है, वह तो आप जैसे धार्मिक लोगों के लिए देखने योग्य नहीं है॥१३६॥ उस समय में दिव्यरूप वाले, देवताओं से तथा गन्धर्वों से युक्त धर्मराजदेव ने उस महात्मा राजा के आगे अपने को दिखाया॥१३७॥ वह राजा डण्डे के समान भूमि में पडकर धर्मराज को प्रणाम करके उन के आगे हाथ जोडकर रहा। उस राजा ने हर्ष से पूर्ण मन वाला होकर धर्मराजदेव की अनेक प्रकार से स्तुति की॥१३८॥ धर्मराज नें भी उस राजा की प्रशंसा करके कहा कि- जहाँ अत्यन्त पर्याप्त भोग्य सामग्रियाँ है उस देवलोक में इन को लेजाया जाय॥१३९॥ उस बात को सुनकर राजा वीरवाहन ने धर्मराज से पूछा कि हे विभो, मैं नहीं जानता हूँ, किस पुण्य से आप मुझ को स्वर्ग लेजाते है?॥१४०॥

धर्मराज उवाच

त्वया कृतानि पुण्यानि दानं यज्ञाः सविस्तराः। मथुरायां वृषोत्सर्गो वसिष्ठवचनात् किल॥१४१॥
धर्मः स्वल्पोऽपि नृपते यदि सम्यगुपासितः। द्विजदेवप्रसादेन स याति बहुविस्तरम्॥१४२॥
इत्युक्त्वा यमुनाभ्राता क्षणादन्तर्द्धिमाययौ। वीरवाहो दिवं गत्वा देवैः सह मुमोद ह॥१४३॥

श्रीकृष्ण उवाच

मया ते कथितं पक्षिन् वृषयज्ञः सुविस्तरः। प्राणिनां कर्मनिर्हारं श्रुत्वा पापैः प्रमुच्यते॥१४४॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे वृषोत्सर्गमाहात्म्यनिरूपणं नाम षष्ठोऽध्यायः॥

धर्मराज ने कहा— तुम ने बहुत से पुण्य किया, दान दिया, विस्तार से बहुत से यज्ञ किए, वसिष्ठ के वचन से मथुरा में तुम ने वृषोत्सर्ग किया॥१४१॥ हे राजन्, यदि स्वल्प मात्रा का भी धर्म शास्त्रोक्त रूप में ठीक प्रकार से सम्पन्न किया जाता है तो वह ब्राह्मणों की और देवताओं की प्रसन्नता से बहुत विस्तृत हो जाता है॥१४२॥ ऐसा कहकर यमुना के भाई धर्मराज क्षणभर में अन्तर्हित (अदृश्य) हो गए। वीरवाहन राजा ने स्वर्ग में जाकर देवताओं के साथ सुखभोग किया॥१४३॥ **श्रीकृष्ण ने कहा—** हे पक्षिन्, मैं ने तुम को विस्तारपूर्वक वषयज्ञ बतादिया। प्राणियों के पापकर्मों के निर्हरण के उपायों को सुनकर मनुष्य पापों से छुटकारा पाता है॥१४४॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में वृषोत्सर्ग का माहात्म्य बताने वाला छठा अध्याय समाप्त हुआ॥६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

गरुड उवाच

श्रुतं मे महदाख्यानं वृषोत्सर्गफलं हरे। पुनरन्यां कथां ब्रूहि यत्र ते महिमाऽद्भुतः॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच

अहं ते कथयाम्यद्य संवादं परमाऽद्भुतम्। सन्तप्तकस्य च प्रेतैस् तद्रूपज्ञापनाय वै॥२॥
विप्रः सन्तप्तकः कश्चित् तपसा दग्धकिल्बिषः। संसारासारतां ज्ञात्वाऽरण्येष्वेव चचार ह॥३॥
वैखानसमुनिव्रातैः प्रणिपातकृतेक्षणः। स कदाचित् तीर्थयात्रामुद्दिश्य स्माऽटति द्विजः॥४॥
प्रत्याकृष्टेन्द्रियत्वाच् च बहिर्वृत्तिनिरोधकः। संस्कारमात्रगमनो मार्गभ्रष्टो बभूव ह॥५॥
चलन्नेवं स्नानकाले मध्याह्नेऽथाभिलाषुकः। जलस्योन्मील्य नयने दिशः सर्वा न्यभालयत्॥६॥

गरुड ने कहा— हे हरि, मैं ने वृषोत्सर्ग के माहात्म्य को प्रकाशित करने वाली बडी कथा सुनी। फिर मुझ को जिस में आप का अद्भुत माहात्म्य वर्णित है ऐसी दूसरी कथा सुनाइए॥१॥ **श्रीकृष्ण ने कहा—** प्रेतों के रूपों का ज्ञान देने के लिए भी सन्तप्तक नाम के ब्राह्मण का प्रेतों के साथ हुए अत्यन्त अद्भुत संवाद को आज मैं तुम को बताता हूँ॥२॥ तपस्या से सम्पूर्ण पापों को दग्ध किए हुए सन्तप्तक नाम के कोई ब्राह्मण संसार की असारता को जानकर वन में ही विचरण करते रहते थे॥३॥ वानप्रस्थ धर्म में रहने वाले मुनियों के झुण्डों से प्रणामपूर्वक देखे जाने वाले उक्त ब्राह्मण किसी समय में तीर्थयात्रा के लिए घूमते थे॥४॥ इन्द्रियों को विषयों से अपनी ही ओर आकृष्ट करने से बाहरी वृत्तियों का निरोध करने वाले वे संस्कार मात्र के अवलम्बन से जाते हुए मार्ग से दूसरी ओर भटक गए॥५॥ इस प्रकार चलते हुए उन्हों ने मध्याह्न में स्नानकाल में जल की अभिलाषा करके आँख

स ददर्श तदा गुल्मैर् वीरुद्वृक्षशतैश् चितम्। त्वक्सारैः शाखिशाखाभिः सङ्कुलं गहनं वनम्॥७॥
तत्र तालास् तमालाश् च प्रियालाः पनसास् तथा। श्रीपर्णी शालशाखोटस्यन्दनास् तिन्दुकास् तथा॥८॥
सर्जार्जुनाम्रातकाश् च श्लेष्मातकबिभीतकौ। पिचुमर्दश्चिञ्चिणी च कर्कन्धूकर्णिकारकाः॥९॥
एते चान्ये च बहवो वृक्षास्तेषु न दृश्यते। पक्षिणामपि वै पन्था मनुष्यस्य कुतः पुनः॥१०॥
तस्मिन् वने महाघोरे सिंहव्याघ्रसमाकुले। तरक्षुगवयैर् ऋक्षैर् महिषैश् च निषेविते॥११॥
कुञ्जरै रुरुभिर् नागैर् मर्कटैश् च तथा मृगैः। श्वापदैश्च तथा चान्यैः पिशाचै राक्षसैर् वृते॥१२॥
सन्तप्तको द्विजः किञ्चिद्भयसन्त्रस्तमानसः। कान्दिशीकः समभवद् यद्भविष्यो ययौ पुनः॥१३॥
झङ्कारेषु च झिल्लीनां घूकानां घूत्कृतेष्वपि। दत्तकर्णः कुलीनाङ्गश् चचाल पदपञ्चकम्॥१४॥

खोलकर सभी दिशाओं को देखा॥६॥ उन्हों ने उस समय में झुरमुट, लता और पेडों से भरे हुए और बाँसों से और वृक्ष की शाखाओं से बहुत ही व्याप्त घनघोर वन को देखा॥७॥ उस वन में ताल, तमाल, चिरौंजी, कटहल, कुम्भेर, शाल, शाखोट, तिरिच्छ, तेंदू, बडा साल (विजयसार), कोह, अमाडा, लिसोडा, बहेडा, नीम, इमली, बेर, ये पेड और अन्य भी बहुत पेड थे, वहाँ पक्षियों को भी मार्ग नहीं दिखाई देता था मनुष्य की तो बात ही कहाँ॥८-१०॥ बबर शेरों से और बाघों से व्याप्त; चीतों से, नील गायों से, भालुओं से, वन्य भैसों से सेवित; हाथियों से, काले मृगों से, नागों से, बन्दरों से, हरिणों से तथा अन्य कुत्ते की तरह के पञ्चनख पैर वाले सियार भेडिया इत्यादि जङ्गली हिंस्रक जानवरों से तथा पिशाचों से और राक्षसों से ढके हुए उस महाघोर वन में वे सन्तप्तक ब्राह्मण कुछकुछ भय से सन्त्रस्त मन वाले होकर भय से भागने वाले हुए, और जो होगा सो होगा ऐसा विचार करते हुए फिर चलपडे॥११-१३॥ झींगुरों के झङ्कार और उल्लुओं के घूत्कार के ध्वनियों में कान लगाए हुए वे भूमि में ही लीन अङ्ग वाले होकर पाँच पग चले थे॥१४॥ हे पक्षिन्, इसी समय में उन्हों ने एक वटवृक्ष के अग्रभाग में स्नायुयों से बँधे हुए

स तत्र वटवृक्षाग्रे स्नायुबद्धं शवं तथा। ददर्श तद्भुजश् चैव पञ्च प्रेतान् सुदारुणान्॥१५॥
शिरास्थिचर्मशेषाङ्गान् पृष्ठलग्नोदरान् खग। त्यक्तान् नासिकया नेत्रकूपपातभयादिव॥१६॥
सूची-क्रकचकव्रातघात-पातित-कीकसान्। वसाक्त-नवमस्तिष्क-स्वाद-नित्यमहोत्सवान्॥१७॥
रणत्कोटिमहादंष्ट्रानस्थिग्रन्थ्यवघट्टितान्। तान् दृष्ट्वा त्रस्तहृदयो गतिमाकुञ्च्य संस्थितः॥१८॥
ते विलोक्याऽऽगतं विप्रमटवीं जनवर्जिताम्। अहं पूर्वमहं पूर्वं यामीत्युक्त्वा प्रदुद्रुवुः॥१९॥
तेषु द्वौ द्वावगृह्णीतामस्य हस्तावथापरौ। द्वौ द्वौ पादावगृह्णीतां मूर्धानं पञ्चमोऽग्रहीत्॥२०॥
स्वजात्युचितवाक्येन स्फुटवर्णवताऽब्रुवन्। अहं जक्षाम्यहं भक्षामीति कर्षणतत्पराः॥२१॥
सहसैव सहैवामुं गृहीत्वा व्यगमन् वियत्। कियत् स्थितं वटे मांसं कियन्नेति न्यभालयन्॥२२॥

शव को और उस को खाने वाले भयङ्कर पाँच प्रेतों को देखा॥१५॥ अवशिष्ट शिरा, हड्डी और चमडों से ही युक्त अङ्ग वाले, पीठ में धसे हुए पेट से युक्त, मानो नेत्रगर्तरूपी इनारे में गिरने के भय से नासिकाओं से त्यक्त, सुइयों के और आराओं के समूह के घात से गिराए गए हड्डियों से उपलक्षित, वसा से लिप्त खोपडी के अन्दर के ताजे गूदे को खाने के उत्सव में नित्य संलग्न, कटकटाते नोक वाले बडे-बडे दाँतों से युक्त, हड्डियों के गांठों से स्वयम् घिसे रहे उन प्रेतों को देखकर उक्त सन्तप्तक ब्राह्मण भयभीत हृदय वाले होकर अपनी गति को रोककर खडे होगए॥१६-१८॥ लोगों से वर्जित उस वन में आए हुए ब्राह्मण को देखकर 'मैं पहले जाता हूँ मैं पहले जाता हूँ' ऐसा कहते हुए वे पाँच प्रेत ब्राह्मण की ओर दौड पडे॥१९॥ उन प्रेतों में से दो प्रेतों ने उक्त ब्राह्मण के दो हाथ पकड लिए, और अन्य दो प्रेतों ने उक्त ब्राह्मण के दो पैर पकड लिए; पाँचवें प्रेत ने ब्राह्मण के शिर को पकड लिया॥२०॥ उक्त ब्राह्मण को अपनी ओर खींचने में लगे हुए वे प्रेत अपनी जाति के लिए उचित स्पष्ट वर्ण वाले वाक्य से 'मैं चखता हूँ, मैं खाता हूँ' ऐसा कहने लगे॥२१॥ वे प्रेत एकाएक उक्त ब्राह्मण को पकडकर उन के साथ में ही आकाश में चले गए, वटवृक्ष में स्थित शव में कितना मांस शेष है और कितना नहीं है ऐसा शोचकर उन प्रेतों ने उधर देखा॥२२॥

तेऽपश्यन् निजदंष्ट्रायःपाटितान्त्रमिमं शवम्। अवतीर्य ततो व्योम्नो गृहीत्वा चरणैः शवम्॥२३॥
स्वखण्डितशरीरं तु पुनर् व्योमैव चक्रमुः। स नीयमानमात्मानं विलोक्य वियति द्विजः॥२४॥
जगाम मनसा मां स शरणं भयविह्वलः। नमश् चक्रे चक्रधरं चेतसा चिन्मयं समम्॥२५॥

वक्रं नक्रं चक्रपातेन दूरे कृत्वा हृत्वा तस्य दुःखं मुकुन्दः।
मातङ्गं योऽमूमुचन् नक्रवक्त्रात् पाशं सोऽसौ कर्मणां मे लुनातु॥२६॥
रुद्धान् शुद्धान् भूपतीन् मागधेन भीमेनैनं घातयित्वा मुरारिः।
निर्बद्धान् यो भर्गयज्ञाय मुक्ताँश् चक्रे मेऽसौ कर्मपाशं लुनातु॥२७॥

मनसैवेह मामस्तौत् स्तूयमानोऽहमुत्थितः। अगच्छं सहसा तत्र यत्र प्रेतैः स नीयते॥२८॥

उन प्रेतों ने अपने दाँतरूपी छुरियों से फाडे गए अन्त्रों से युक्त उस शव को देखा। तब आकाश से उतरकर पैरों से अपने से खण्डित शरीर वाले उस शव को पकडकर फिर आकाश में ही चले गए। अपने को आकाश में लेजाए जा रहे देखकर भय से विह्वल उक्त सन्तप्तक ब्राह्मण मन से मेरे शरण में आ गए। उन्हों ने सर्वत्र समान रूप से वर्तमान चेतनामय चक्रधर विष्णु को चित्त से प्रणाम किया॥२३-२५॥ उन्हों ने कहा— जिन भगवान् मुकुन्द ने कुटिल ग्राह को चक्र के प्रहार से दूर करके उस हाथी के दुःख को हटाकर उस हाथी को ग्राह के मुह से मुक्त कराया वे भगवान् मुकुन्द मेरे कर्मों के पाशों को काटें॥२६॥ जिन भगवान् मुरारि ने भीमसेन के द्वारा मगधदेशाधिपति जरासन्ध को मरवाकर उस से कारागार में निरुद्ध और भर्ग के यज्ञ के लिए बाँधे गए निर्दोष राजाओं को मुक्त किया वे मुरारि(चक्र को छोडकर)मेरे कर्मों के पाशों को काटें॥२७॥ इस अवस्था में ब्राह्मण ने मन से ही मेरी स्तुति की, उस प्रकार स्तुति किया गया मैं उठा, और उक्त ब्राह्मण प्रेतों से जहाँ ले जाए जा रहे थे मैं एकाएक वहाँ गया॥२८॥ हे पक्षिन्, उन प्रेतों से ले जाए जा रहे ब्राह्मण को देखकर मेरा कौतुक

दृष्ट्वा तैर् नीयमानं तु कौतुकं मेऽभवत् खग। पप्रच्छ न कियन्तं वै कालं तान् पृष्ठतोऽन्वगाम्।२९।
मम सन्निधिमात्रेण द्विजातिं तञ्च सर्पहन्। तत्कालं शिबिकासुप्तभूपालसुखमाविशत्॥३०॥
मणिभद्रस्ततो मेरुं गच्छन् दृष्टो मया पथि। निकोच्याक्षि स्वपार्श्वं स नीतो वै यक्षराण् मया॥३१॥
तमवोचं महायक्षं त्वं हि प्रतिभटो भव। प्रेतान् नाशय तद् भूयः शवं च हर तद्गतम्॥३२॥
इत्युक्तः स महाघोरं कृत्वा रोषं सुदुःसहम्। जग्राह प्रेतरूपं तत् प्रेतानामपि दुःखदम्॥३३॥
स विवृत्य स्वकौ बाहू सृक्किणी परिलेलिहन्। भेदयन्नुरुवातेन प्रेतांस् तान् सम्मुखो ययौ॥३४॥
बाहुभ्यां द्वौ द्वौ च पद्भ्यां मूर्ध्नैकं च समाहरत्। प्रेतानथापि सहसा जघान दृढमुष्टिना॥३५॥
ते विवर्णमुखाः सर्वे तं द्विजं च शवं तथा। एकैकं हस्तपादेश् च गृहीत्वा युद्धमारभन्॥३६॥

हुआ, मैं ने कुछ भी नहीं पूछा, कुछ काल तक मैं उन के पीछे-पीछे चला॥२९॥ हे सर्पों को मारने वाले पक्षिन्, मेरे सान्निध्य मात्र से उक्त ब्राह्मण को तत्काल में पालकी में सोए हुए राजा के सुख के समान सुख प्राप्त हो गया॥३०॥ तब मैं ने मार्ग में सुमेरु पर्वत की ओर जाते हुए मणिभद्र यक्ष को देखा। अपने आँख के सङ्कोच के सङ्केत से मैं ने उस यक्षों के राजा को मेरे पास में लाया॥३१॥ उस महायक्ष को मैं ने कहा कि तू प्रतियोद्धा हो जाओ, प्रेतों को भगाओ, और फिर उन के पास में रहे शव को भी छीन लो॥३२॥ इस प्रकार मुझ से आदिष्ट उस मणिभद्र यक्ष ने महाभयङ्कर और अत्यन्त असह्य रोष करके प्रेतों को भी दुःख देने वाला भयङ्कर प्रेतरूप लिया॥३३॥ वह यक्ष अपनी दोनों भुजाओं को फैलाकर होठों के प्रान्तों को जीभ से वारवार चाटता हुआ और अपने निश्वास के महावात से उन प्रेतों को तितर-बितर करता हुआ उन प्रेतों के सम्मुख में गया॥३४॥ दो प्रेतों को दो भुजाओं से, अन्य दो प्रेतों को पैरों से और अन्य एक प्रेत को शिर से मारा। फिर भी प्रेतों को एकाएक दृढ मुक्के से मारा॥३५॥ विवर्णमुख होकर उन सब प्रेतों ने एक-एक हाथ से और पैर से उक्त ब्राह्मण को और शव को लेकर युद्ध करना आरम्भ किया॥३६॥ उन सब प्रेतों ने नखों से, हस्ततल के थप्पडों से, लातों से और दाँतों के प्रहारों से भी उस

ते नखैस्तलघातैश् च पादघातैस्तथैव च। दंष्ट्राघातैश् च सर्वे तमेकं प्रेतं व्यदारयन्॥३७॥
तेषां प्रहारान् विफलान् कृत्वा सम्पतितानथ। जीवं न तु शवं तेषां जह्रे प्राणमिवान्तकः॥३८॥
हृतमात्रे शवे ते तु पारियात्रे गिरौ द्विजम्। मुक्त्वाऽधावन् प्रमुदिता एकं प्रेतं सुदारुणाः॥३९॥
स वायुगमनः प्रेतः प्राप्तस्तैः क्षणमात्रतः। अदृश्यतां ययौ तेऽथ हताशा विप्रमागमन्॥४०॥
प्रारब्धमात्रे विप्रस्य पाटने तत्र पर्वते। मम स्थानस्य विप्रस्य महिम्नेव च तत्क्षणे॥४१॥
सद्यः स्मृतिः समुत्पन्ना तेषां पूर्वस्य जन्मनः। विप्रं प्रदक्षिणीकृत्य द्विजर्षभमथाब्रुवन्॥४२॥
अद्य नः क्षन्तुमर्होऽसीत्युक्त्वा ते सुरदाम्भिकाः। गिरेरिव परावर्तं समुद्रस्येव शोषणम्॥४३॥
तेषां तद् वचनं श्रुत्वाऽपृच्छत् के यूयमित्यथ। किं माया किमु वा स्वप्न उताहो चित्तविभ्रमः॥४४॥

एक प्रेतरूप मणिभद्र यक्ष को मारा॥३७॥ उन के साथ-साथ में हुए प्रहारों को प्रेतरूप मणिभद्र ने विफल कर दिया और जैसे यमराज प्राण को हरण करते हैं वैसे ही उस ने उन प्रेतों के प्राण को नहीं किन्तु शव को छीन लिया॥३८॥ शव को छीन लिए जाने पर ब्राह्मण को पारियात्र गिरि में छोडकर भयङ्कर रूप वाले और प्रसन्न होकर वे पाँच प्रेत उस एक प्रेतरूप यक्ष मणिभद्र की ओर दौडे॥३९॥ क्षणभर में ही वह वायु की तरह चलने वाला प्रेतरूप मणिभद्र यक्ष उन पाँच प्रेतों से घेरा गया और वह अदृश्य हो गया। तब वे पाँच प्रेत हताश होकर विप्र के समीप में आ गए॥४०॥ उस पारियात्र पर्वत में वे पाँच प्रेत ज्यों ही उस ब्राह्मण के शरीर को फाडने को जा रहे थे मानों मेरे वासस्थान के रूप में रहे उक्त ब्राह्मण के महिमा से उसी काल में उन पाँच प्रेतों में तत्काल पूर्वजन्म की स्मृति उत्पन्न हुई। तब उन पाँच प्रेतों ने उक्त श्रेष्ठ ब्राह्मण की प्रदक्षिणा करके कहा— ॥४१-४२॥ आज आप हम लोगों को क्षमा करने योग्य हैं। ऐसा बोलकर वे पाँच प्रेत मानों देवताओं के रूप का अनुकरण करने वाले हो गए। तब उक्त ब्राह्मण ने पर्वत के उलटजाने की तरह और समुद्र के सुख जाने की तरह आश्चर्यजनक रूप में उन प्रेतों में आए हुए परिवर्तन के अनुरूप उस वचन को सुनकर पूछा— आपे कौन है? यह माया है क्या? अथवा यह स्वप्न है क्या? अथवा यह चित्तविभ्रम है क्या?॥४३-४४॥

प्रेता ऊचुः

अवेहि तत्त्वमेवैतत् प्रेता वै कर्मजा वयम्।

ब्राह्मण उवाच

किंनामानः किमाचाराः कथं चेमां दशां गताः॥४५॥ अविनीताः कथं पूर्वं विनीताः साम्प्रतं कथम्।

प्रेता ऊचुः

शृणु विप्रेन्द्र वक्ष्यामः प्रश्नानामनुपूर्वशः॥४६॥ उत्तराणि महायोगिँस् त्वद्दर्शनगतांहसः।
अहं पर्युषितो नाम्ना एष सूचीमुखः स्मृतः॥४७॥ तृतीयः शीघ्रगस् तुर्यो रोधको लेखकः परः।

ब्राह्मण उवाच

प्रेतानां कर्मजातानां कुतो नाम निरर्थकम्॥४८॥ निरुक्तिमेषां नाम्नां वै प्रेता वदत मा चिरम्।

प्रेतों ने कहा— आप ने जो देखा यह सब यथार्थ ही है, हम अपने कर्मों के कारण बने हुए प्रेत हैं। ब्राह्मण ने कहा— आप लोग क्या नाम वाले है? क्या आचार करने वाले है? किस प्रकार इस अवस्था में आ गए हैं? पहले कैसे अविनीत थे और इस समय कैसे विनीत हो गए? प्रेतों ने कहा— हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ, हे महायोगिन्, आप के दर्शन से पाप से मुक्त हम लोग आप के प्रश्नों का उत्तर एक-एक करके क्रमशः बताएंगे। मैं नाम से पर्युषित हूँ, यह सूचीमुख समझा गया है, तीसरा शीघ्रग है, चौथा रोधक है और पञ्चम लेखक है। ब्राह्मण ने कहा— कर्मों के कारण से प्रेत बने हुए आप लोगों के ये निरर्थक नाम कैसे हो गए। हे प्रेत लोग, आप लोग इन नामों की निरुक्ति बताएं, विलम्ब न करें।

श्रीकृष्ण उवाच

एवमुक्तास् तु विप्रेण पृथगुत्तरमब्रुवन्॥४९॥

पर्युषित उवाच

कदाचिच् छ्राद्धकाले वै मया विप्रो निमन्त्रितः॥५०॥ स च कृत्वा विलम्बेन वृद्धो मद्गृहमागतः।
अकृतश्राद्धकर्माऽहं तं पाकं भुक्तवान् क्षुधा॥५१॥ अददामन्नमाकृष्य विप्रे पर्युषितं कियत्।
तस्मात् पापान् मृतः पापो योनिं वै कुत्सितां गतः॥५२॥ यतः पर्युषितं दत्तं ततः पर्युषितः स्मृतः।

सूचीमुख उवाच

कदाचिद् ब्राह्मणी का चित् तीर्थं भद्रवटं ययौ॥५३॥
पञ्चवर्षसुता वृद्धा पुत्त्रमात्रैकजीविता। अहं क्षत्रियदायादस् तस्या रोधमकारिषम्॥५४॥

श्रीकृष्ण ने कहा– ब्राह्मण से ऐसा कहे गए उन प्रेतों ने पृथक्-पृथक् उत्तर बताया॥४५-४९॥ **पर्युषित ने कहा–** किसी समय में श्राद्ध के काल में मैं ने ब्राह्मण को न्योता दिया था॥५०॥ वह वृद्ध ब्राह्मण विलम्ब से मेरे घर में आए। मैं ने श्राद्ध किए विना ही उस श्राद्ध के लिए पकाए गए अन्न को भूख से खाया॥५१॥ मैं ने कुछ बासी अन्न लाकर ब्राह्मण को दिया। उस पाप से मैं मरने पर इस निन्दित प्रेतयोनि में पड गया। चूंकि मैं ने ब्राह्मण को पर्युषित (बासी) अन्न दिया इसी लिए मुझ को पर्युषित समझा गया है। **सूचीमुख ने कहा–** किसी समय में पाँच वर्ष वय के पुत्त्र से युक्त और पुत्त्र में ही टिके हुए जीवन से युक्त कोई एक ब्राह्मणी भद्रवट नाम के तीर्थ में गई थी। मैं क्षत्रिय का पुत्त्र उन का अवरोध करने में लगा। निर्जन वन में वहाँ लुटेरे पापी

वने तु विजने तत्र पापाध्वगगतिं गतः। तस्याः सवस्त्रं पाथेयं तत्सूनोर् वसनानि च॥५५॥
गृहीतानि मया विप्र शिरस्यापीड्य मुष्टिना। तृषार्तस् तत्क्षणं बालः पात्रसंस्थं जलं पिबन्॥५६॥
तावन्मात्रोदके देशे मया हुङ्कृत्य वारितः। मयाऽथ सकलं पीतं जलं पात्रात् तृषावतः॥५७॥
बालोऽपि भयसन्त्रस्तः पिपासुर् व्यसुरापतत्। पुत्त्रशोकान् मृता माता कूपे प्रास्य निजं वपुः॥५८॥
एतस्मात् पातकाद् विप्र प्रेतत्वं प्राप्तवानहम्। सूच्यग्रप्रायविवरमुखः पर्वतदेहवान्॥५९॥
यद्यपि प्राप्नुयां भक्ष्यं भक्षितुं तु न शक्यते। मया क्षुधानलेनापि ज्वलताऽऽस्यं निकोचितम्॥६०॥
यत आस्ये तु विवरं सूच्यग्रेण समं मम। एतस्मात् कारणाद् विप्र नाम्ना सूचीमुखोऽस्म्यहम्॥६१॥

शीघ्रग उवाच

पुराऽहं वैश्यजातीयः साकं सख्या च केनचित्। वाणिज्यं कर्तुमगमं देशमन्यं महाधनः॥६२॥

पथिक के रूप में अवस्थित मैं ने उस ब्राह्मणी के वस्त्रसहित पाथेय को और उस के पुत्त्र के वस्त्रों को भी छीना। हे ब्राह्मण, उतने से अधिक जल से रहित उस देश में वर्तन में स्थित जल को पीता हुआ प्यास से आर्त उस बालक को शिर में मुक्के से मारकर हुंः कहके मैं ने जल पीने से रोक दिया। तब प्यास से युक्त उस बालक के वर्तन से मैं ने सब जल पी डाला॥५२-५७॥ भय से सन्त्रस्त प्यासा वह बालक निष्प्राण होकर गिरा। माता भी पुत्त्रशोक से अपने शरीर को इनारे में फेंककर मर गई॥५८॥ इस पाप से मैं प्रेतयोनि में प्राप्त हुआ। मैं सुई के नोक के तुल्य विवर से युक्त मुख वाला और पर्वततुल्य देह वाला हूँ॥५९॥ चूंकि (ब्राह्मणी के बालक को जलपान से रोकने से) मेरा मुख अत्यन्त सङ्कुचित है, इस लिए यदि मैं भक्ष्य पदार्थ पाऊँ तो भी भूख रूपी आग से जलते हुए भी मुख्ञ से नहीं खाया जा सकता है॥६०॥ हे ब्राह्मण, चूँकि मेरे मुख में छिद्र सुई के नोक के समान है, इस कारण से मैं नाम से सूचीमुख हूँ॥६१॥ शीघ्रग ने कहा— पुराकाल में अत्यन्त धनवान् वैश्यजाति का मैं किसी मित्र के साथ में व्यापार करने के लिए दूसरे देश में गया था॥६२॥

मित्रं च मे बहुधनं तस्य लोभो महांस् ततः। जातोऽप्यदृष्टवैमुख्यान् मे नष्टं मूलमप्युत॥६३॥
ततस्तस्मात् तु निष्क्रान्तावावां नावाऽथ निम्नगाम्। मार्गगां तर्तुमारब्धौ लोहितायति भास्करे॥
सखा स च मदुत्सङ्गे सुष्वापाऽध्वक्लमाकुलः। अभूत् तदाऽतिपापस्य क्रूरा मतिरतीव मे॥६५॥
तमुत्सङ्गगतं सूरे नष्टे पूरेऽक्षिपं तदा। तत्कृत्यं कुर्वतो नावि लोकैस्तु ज्ञातमेव न॥६६॥
तस्य यद् वस्तु तत् सर्वं मणिमुक्तादिकाञ्चनम्। आदाय शीघ्रगस् तस्माद् देशात् स्वगृहमागतः॥६७॥
तत् सर्वं स्वगृहे मुक्त्वा तस्य पत्न्यै न्यवेदयम्। दस्युभिर् मे हतो भ्राता धनमाच्छिद्य वै पथि।६८॥
प्रजावति प्रद्रुतोऽहं मा रोदीत्येवमब्रवम्। शोकार्ता साऽपि तत्कालं ममत्वं गृहबन्धुषु॥६९॥
त्यक्त्वा चातिप्रियान् प्राणान् जुहावाग्नौ यथाविधि। ततो निष्कण्टकं तद्धि वीक्ष्य हृष्टो गतो गृहम्॥

मेरा मित्र भी अत्यन्त धनी था, उस से उस का महान् लोभ उत्पन्न हुआ। मेरा तो दैव की विमुखता से मूल धन भी नष्ट हुआ॥६३॥ तब उस देश से निकले हुए हम दो अस्त होने के समय में सूर्य लाललाल होने पर मार्ग में पडी हुई नदी को नाव से पार करने में लगे थे॥६४॥ मार्ग के थकान से आकुल वह मेरा मित्र मेरे गोद में सोया। उस समय में अत्यन्त पापी मेरी अत्यन्त क्रूर बुद्धि उत्पन्न हुई॥६५॥ सूर्य अस्तङ्गत होने पर मैं ने गोद में सोए हुए मित्र को जल के राशि में फेंक दिया। उस समय में उक्त कार्य करते हुए मुझ को नाव में सवार लोगों ने तो जाना ही नहीं॥६६॥ उस मित्र के जो जितने वस्तु थे उन सब मणि, मोती, सुवर्ण इत्यादि वस्तुओं को लेकर शीघ्र चलने वाला मैं उस देश से अपने घर में आया॥६७॥ उन सब वस्तुओं को अपने घर में छोडकर उस मित्र की पत्नी को बता दिया कि मेरा वह भाई मार्ग में धन को छीनकर डांकुओं से मारा गया॥६८॥ भाभीजी, मैं किसी प्रकार भाग के निकला, रोओ मत ऐसा कह दिया, शोक से आकुल उस स्त्री ने भी तत्काल में घर में और बन्धुओं में ममता छोडकर शास्त्रोक्त विधि से अपने अतिप्रिय प्राणों को अग्नि में होमदिया। तब मेरे उस कार्य को निष्कण्टक देखकर प्रसन्न होकर मैं अपने घर में गया॥६९-७०॥

अभुञ्जं सर्वमागत्य यावज्जीवं तु तद् धनम्। मित्रं पूरे हि निःक्षिप्य यदहं शीघ्रमागतः॥७१॥
एतस्मात् कारणात् प्रेतः शीघ्रगोऽहं तु नामतः।

रोधक उवाच

अहं तु शूद्रजातीयः पुराऽभूवं मुनीश्वर॥७२॥
राजप्रसादाप्तशतमहाग्रामाधिकारवान्। वृद्धौ मे पितरावास्तां लघुरेकः सहोदरः॥७३॥
शीघ्रं स च मया भ्राता लुब्धेनैकः पृथक्कृतः। आप्तवान् परमं दुःखं सोऽन्नवस्त्रविवर्जितः॥७४॥
अदत्तां पितरौ छन्नं किञ्चित्किञ्चित् तु तस्य च। तस्मै पितृभ्यां यददत्तमाप्तेभ्यस् तन् मया श्रुतम्॥७५॥
तत् सर्वं तत्त्वतो ज्ञात्वा पित्रो रोधमकारयम्। शून्यमन्दिर एकस्मिन् बद्ध्वा तु निगडैर् दृढैः॥७६॥
ततस्तौ जहतुः प्राणान् दुःखितौ विषपानतः। सोऽसौ बालोऽपि बभ्राम पितृभ्यां रहितो द्विज॥७७॥

घर में आकर जीवनकालपर्यन्त तो उस धन का उपभोग किया (मरने पर तो प्रेतयोनि प्राप्त हुई)। चूँकि मित्र को जलराशि में फेंककर शीघ्र चलता हुआ घर में आया, इसी कारण से मैं प्रेत हुआ और नाम से शीघ्रग कहलाया। रोधक ने कहा— हे मुनिरूप ईश्वर, मैं तो पुराकाल में राजा की प्रसन्नता से मिले सौ महाग्रामों के अधिकार से युक्त शूद्रजातीय पुरुष था। मेरे बूढे मां-बाप थे, एक छोटा सहोदर भाई था॥७१-७३॥ लोभग्रस्त मुझ से वह मेरा अकेला भाई शीघ्र ही पृथक् किया गया। अन्न से और वस्त्र से रहित होकर उस ने अत्यन्त दुःख पाया॥७४॥ मेरे मां-बाप छिपाकर थोडा-थोडा तो उस को दिया करते थे। उस को मां-बाप से जो दिया जाता था उस के विषय में मैं ने आत्मीय जनों से सुना॥७५॥ उस सब बात को यथार्थ रूप में जानकर एक जनशून्य घर में दृढ जञ्जीरों से बाँधकर मैं ने मां-बाप का रोध (रोकने का काम) किया॥७६॥ तब उन्हों ने दुःखित होकर विष पीकर प्राणों को त्याग दिया,

पुरः पत्तनखर्वाटान् खेटानपि मृतः क्षुधा। एतस्मात् पातकाद् विप्र मृतः प्रेतत्वमागतः॥७८॥
रुद्धौ तु पितरौ यस्मान् नाम्नाऽहं रोधकस् ततः।

लेखक उवाच

अहं विप्र पुराऽभूवमवन्त्यां द्विजसत्तमः॥७९॥
भद्रस्य राज्ञो देवानां पूजनेऽधिकृतो ह्यहम्। बह्व्यस्तु प्रतिमास् तत्र बभूवुर् बहुनामिकाः॥८०॥
हेम्नस् तदङ्गेषु बहु रत्नजातं बभूव ह। तासां मे कुर्वतः पूजां पापा मतिरजायत॥८१॥
अखिलं तीक्ष्णलोहेन तासामङ्गं विशीर्य च। उल्लेखनं च रत्नानां नेत्रादिभ्यः कृतं मया॥८२॥
तथाकृतान्यथाऽङ्गानि प्रतिमानां निरीक्ष्य च। नेत्राणि च विरत्नानि नृपश् चुक्रोध वह्निवत्॥८३॥
प्रतिजज्ञे नृपः पश्चादेष ब्राह्मणपुङ्गव। आभ्यो रत्नं सुवर्णं च हृतं येन भविष्यति॥८४॥

हे ब्राह्मण, वह बालक भी मां-बाप से रहित होकर नगरों में, पत्तनों में, खर्वटों में और खेटों में घूमता रहा और भूख से मरा। इस पातक से मैं मरने पर प्रेतभाव में आ गया॥७७-७८॥ चूंकि मैं ने मां-बाप का रोध किया था, इस लिए मैं नाम से रोधक हुआ। लेखक ने कहा— हे ब्राह्मण, मैं पुराकाल में अवन्ती पुरी में ब्राह्मण था॥७९॥ मैं भद्र नाम के राजा का पूजनाधिकारी था। वहाँ सोने की बहुत नामों की बहुत प्रतिमाएँ थीं, उन के अङ्गों में नाना प्रकार के बहुत रत्न थे। उन प्रतिमाओं की पूजा करते हुए मेरी पापपूर्ण बुद्धि उत्पन्न हुई॥८०-८१॥ मैं ने तेज धार वाले लोह के शस्त्र से उन प्रतिमाओं के अङ्गों को खरोचकर नेत्रादि से रत्नों को उखाडने का काम भी किया॥८२॥ प्रतिमाओं के उक्त प्रकार के खरोचे गए अङ्गों को और रत्नों से रहित नेत्रों को भी देखकर राजा आग के समान क्रोध से प्रज्वलित हुआ॥८३॥ हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ, पीछे इस राजा ने प्रतिज्ञा की कि इन प्रतिमाओं से जिस ने सोना और रत्न चुराया होगा वह निश्चित रूप में ज्ञात होते ही मेरा वध्य होगा, इस में सन्देह नहीं। वह सब जानकर मैं ने रात में तलवार लेकर राजा के घर में घूसकर राजा

ज्ञातश् च स हि मे वध्यो भविष्यति न संशयः। अहं तत्सकलं ज्ञात्वा रात्रावसिधरो गृहम्॥८५॥
राज्ञः प्रविश्य राजानं पशुमारममारयम्। गृहीत्वाऽथ मणीन् स्वर्णं निशीथेऽहं गतोऽन्यतः॥८६॥
व्याघ्रेण महताऽरण्ये नखटङ्कैर् विटङ्कितः। लेखनात् प्रतिमाया यन् मया लोहेन कर्तितम्॥८७॥
एतस्मात् पातकात् प्रेतो लेखको नामतोऽस्म्यहम्। आसीन् नरकभोगान्ते नः प्रेतत्वमिदं द्विज॥८८॥

ब्राह्मण उवाच

संज्ञास्तादृश्य आख्याता यथैता भवतां दशाः। वदन्त्वाचारमात्रां मे प्रेता आहारमप्युत॥८९॥

प्रेता ऊचुः

वेदमार्गानुसरणं लज्जा धर्मो दमः क्षमा। धृतिर् ज्ञानं नैव यत्र वयं तत्र वसामहे॥९०॥
तस्य पीडां वयं कुर्मो नैव श्राद्धं न तर्पणम्। यस्य गेहे तदङ्गात् तु मांसं च रुधिरं क्रमात्॥९१॥

को पशु की तरह मार दिया। तब सोना और रत्न लेकर मैं अर्धरात्रि में अन्यत्र चला गया॥८४-८६॥ इतने में मैं वन में बडे बाघ से नखरूपी छेनियों से छेदा गया (और मरा)। चूँकि मैं ने लोह के शस्त्र से प्रतिमा का लेखन (खरोचने का काम) करके प्रतिमा को काटा था, इसी पाप से मैं प्रेत हो गया और मैं नाम से लेखक हूँ। हे ब्राह्मण, पापों के अनुसार नरकों के भोग के अन्त में हम लोगों को यह प्रेतत्व प्राप्त हो गया था॥८७-८८॥ ब्राह्मण ने कहा— हे प्रेत लोग, जैसी आप लोगों की अवस्था है वैसी ही आप लोगों के ये नाम बताए गए, अब आप लोग मुझ को अपना कुछ आचार और आहार भी बताएं॥८९॥ प्रेतों ने कहा— जहाँ वेद में बताए गए वर्णाश्रमधर्ममार्ग का अनुसरण नहीं होता है, जहाँ लोकलज्जा नहीं है, जहाँ साधारणधर्म भी नहीं है, जहाँ इन्द्रियों का जय, क्षमा, धैर्य और ज्ञान नहीं हैं उस व्यक्ति में हम लोग वास करते हैं, उस व्यक्ति को हम कष्ट पहुँचाते हैं, जिस व्यक्ति के घर में कभी भी श्राद्ध नहीं होता है, पितरों का जल से तर्पण भी नहीं होता है उस के अङ्गों से तो हम क्रमशः मांस खाते हैं और लहू पीते हैं, हमारा यह आचार बताया गया। हमारे सभी लोगों से निन्दित आहार को भी सुनिए, हे पापरहित ब्राह्मण, हमारे आहार को आप ने देखा भी है, आप से अज्ञात और भी थोडा सा हम बताते हैं।

जक्षामश् च पिबामश् च उक्त आचार एष नः। शृणु चाहारमस्माकं सर्वलोकविगर्हितम्॥९२॥
दृष्टस्त्वया च किञ्चिद् वै ब्रूमोऽज्ञातं त्वयाऽनघ। वमनं विड् दूषिका च श्लेष्मा मूत्राश्रुणी तथा॥९३॥
एतद् भक्ष्यञ्च पानञ्च मा पृच्छाऽतः परं द्विज। लज्जा नो जायते स्वामिन्नाहारं वदतां स्वकम्॥९४॥
अज्ञानास् तामसा मन्दा कान्दिशीका वयं विभो। अकस्माज् जन्मनां विप्र स्मृतिः प्राप्ता तु पौर्विकी।९५।
विनीतत्वाविनीतत्वे जानीमो नैव नः प्रभो।

श्रीकृष्ण उवाच

एवं वदत्सु प्रेतेषु तथा श्रुतवति द्विजे॥९६॥
अदर्शयमहं रूपं तदा तार्क्ष्येदमेव वै। स तु दृष्ट्वा द्विजश्रेष्ठो हृद्गतं पुरुषं पुरः॥९७॥
स्तोत्रैस्तुष्टाव पक्षीश दण्डवत् प्रणनाम माम्। तेऽपि पेतुस् ततः प्रेता आश्चर्योत्फुल्लचक्षुषः॥९८॥
प्रणयेन स्खलद्वाचः खग नोचुः किमप्युत। रजसा घोरचित्तानां तमसा मूढचेतसाम्॥

उलटी में निकला वस्तु, गूह (पाखाना), आँखों का मल, खखार, मूत, और आँसू ये हमारे खाद्य और पेय पदार्थ है; हे ब्राह्मण, इस से अधिक न पूछिए, हे स्वामिन्, अपने आहार को बताते हुए हम को लज्जा होती है॥९०-९४॥ हे ब्राह्मणरूप सर्वव्यापक ब्रह्मन्, हम अज्ञानी, तमोगुणग्रस्त, मन्द और भय से भागने वाले हैं। हे विप्र, एकाएक हम को जन्मों की पूर्वस्मृति प्राप्त हो गई। हे लोकोद्धारसमर्थ ब्राह्मण, हम अपने विनीतत्व को अथवा अविनीतत्व को नहीं जानते हैं। श्रीकृष्ण ने कहा— हे गरुड, जिस समय में प्रेत इस प्रकार कह रहे थे और ब्राह्मण ने यह सब सुना था उसी समय में मैं ने मेरा यही (अभी वर्तमान) रूप दिखाया। हे पक्षियों के स्वामिन्, उक्त ब्राह्मण ने अपने हृदय में वर्तमान पुरुष को आगे उपस्थित देखकर स्तोत्रों से स्तुति किया, और मुझ को डण्डे के समान भूमि पर पडकर प्रणाम किया। आश्चर्य से फैले हुए आँखों वाले उन प्रेतों ने भी प्रणिपात (दण्डवत् प्रणाम) किया॥९५-९८॥ हे पक्षिन्, प्रेम से लडखडाते हुए वचन वाले वे प्रेत कुछ भी नहीं कह सके। "जो आप रजोगुण से घोर चित्त वाले और तमोगुण से मूढ चित्त वाले

कृपया यः समुद्धारं कुरुषे वै नमोऽस्तु ते ॥९९॥

एवं द्विजातौ ब्रुवति प्रभूतप्रभैश् च मुख्याम्बरचारियुक्तैः।
तदा मदिच्छाप्रभवैर् विमानैः षड्भिः समन्ताद् रुरुचे गिरिः सः।१००।
इत्थं विमानेन मदीयलोकं गतो द्विजस् सोऽप्यथ पञ्चभिस् तैः।
प्रेता ययुः स्वर्गमगण्यपुण्यं सत्सङ्गसंसर्गवशात् सुपर्ण ॥१०१॥

प्रेताः सङ्गवशेन नाकमगमन् सन्तप्तको ब्राह्मणो विष्वक्सेन इति प्रसिद्धविभवो नाम्ना गणे मेऽभवत्।
एतत्ते सकलं मया निगदितं यश्चैतदुत्कीर्तयेद् यश्चेदं शृणुयान् न सोऽपि पुरुषः प्रेतत्वमाप्नोति हि।१०२।

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे पञ्चप्रेतोपाख्यानं नाम सप्तमोऽध्यायः॥

प्राणियों का कृपा से उद्धार करते हैं, वैसे आप को नमस्कार हो" ऐसा जब उक्त ब्राह्मण बोल रहे थे उसी समय में बहुत प्रभा से युक्त, मुख्य आकाशचारी गन्धर्व अप्सरा इत्यादि से युक्त और मेरी इच्छा से उत्पन्न छः विमानों से वह पारियात्र पर्वत चारों ओर चमक उठा॥९९-१००॥ हे गरुड, इस प्रकार उक्त ब्राह्मण उन पाँच प्रेतों के साथ में विमानों से मेरे लोक (विष्णुलोक) में गए, वे पाँच प्रेत भी सत्सङ्ग के संसर्गमात्र के प्रभाव से अनगिने पुण्य करने वालों के लिए प्राप्य स्वर्ग में गए॥१०१॥ सत्सङ्ग के प्रभाव से प्रेतलोग भी स्वर्ग में गए। सन्तप्तक नाम के ब्राह्मण भी मेरे गण में प्रसिद्ध विभव वाले विष्वक्सेन नाम से प्रसिद्ध पुरुष हुए। यह सब मैं ने तुम को बताया। जो इस कथा का कीर्तन करेगा और जो भी इस कथा का श्रवण करेगा वह व्यक्ति भी प्रेतत्व को प्राप्त नहीं होगा॥१०२॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में पञ्चप्रेतोपाख्यान नाम का सप्तम अध्याय समाप्त हुआ॥७॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

गरुड उवाच

स्वामिन् कस्याऽधिकारोऽत्र सर्व एवौर्ध्वदेहिके। क्रियाः कतिविधाः प्रोक्ता वदैतत् सर्वमेव मे॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच

पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रो वा तद्भ्राता भ्रातृसन्ततिः। सपिण्डसन्ततिर् वापि क्रियार्हाः खग ज्ञातयः।२।
तेषामभावे सर्वेषां समानोदकसन्ततिः। कुलद्वयेऽपि चोच्छिन्ने स्त्रीभिः कार्याः क्रियाः खग॥३॥
यदृच्छयोच्छिन्नबन्धोः कारयेदवनीपतिः। पूर्वाः क्रिया मध्यमाश्च तथा चैवोत्तराः क्रियाः॥४॥
प्रतिसंवत्सरं पक्षिन्नेकोद्दिष्टविधानतः। श्राद्धं तत्र प्रकर्तव्यं फलं तस्य शृणुष्व मे॥५॥

गरुड ने कहा— हे स्वामिन्, इस लोक में सम्पूर्ण और्ध्वदेहिक कर्म में किस का अधिकार होता है? और्ध्वदेहिक क्रियाएँ कितने प्रकार की बताई गई हैं? यह सब मुझ को बताइए॥१॥ **श्रीकृष्ण ने कहा—** हे पक्षिन्, मृत व्यक्ति का पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, भाई अथवा भाई की सन्तति अथवा सपिण्ड की सन्तति इत्यादि ज्ञाति (अपने गोत्र के बन्धु) और्ध्वदेहिक क्रिया करने में अधिकारी होते हैं॥२॥ उन सभी लोगों के अभाव होने पर समानोदक (सात पुरुषों से परे के अपने गोत्र के बन्धु) की सन्तति और्ध्वदेहिक कृत्य में अधिकारयुक्त होती है। हे पक्षिन्, मृतव्यक्ति के पितृकुल के और मातृकुल के पुरुषसन्तान का विच्छेद होने पर स्त्रियों से और्ध्वदेहिक क्रिया की जानी चाहिए॥३॥ दैवगति से जिस मृत व्यक्ति के बन्धु उच्छिन्न हुए हैं उस मृत व्यक्ति की और्ध्वदेहिक क्रिया को राजा किसी योग्य व्यक्ति से करवाए। क्रियाएँ पूर्व क्रिया, मध्यम क्रिया और उत्तर क्रिया इन तीन प्रकारों की होती हैं॥४॥ हे पक्षिन्, उन क्रियाओं में प्रतिवर्ष मृततिथि में एकोद्दिष्टविधि से श्राद्ध करना चाहिए, उस का फल मुझ से सुनो॥५॥ जो व्यक्ति श्रद्धा से युक्त

ब्रह्मेन्द्ररुद्रनासत्यसूर्याग्निवसुमारुतान्। विश्वेदेवान् पितृगणान् वयांसि मनुजान् पशून्॥६॥
सरीसृपान् मातृगणान् यच्च चान्यद् भूतसंज्ञितम्। श्राद्धं श्रद्धान्वितः कुर्वन् प्रीणयत्यखिलं जगत्॥७॥
ते तृप्तास् तर्पयन्त्येनं पुत्त्रदारधनैस्तथा। अधिकारः क्रियाभेदः समासात् ते निरूपितः॥८॥

गरुड उवाच

उक्तेष्वेकोऽपि चेन् न स्यादधिकारी सुरोत्तम। कर्तव्यं किं तदा विष्णो पुरुषेण विजानता॥९॥

श्रीकृष्ण उवाच

अधिकारी यदा नास्ति यदि नास्ति च निश्चयः। जीविते सति जीवाय दद्याच् छ्राद्धं स्वयं नरः॥१०॥
कृतोपवासः सुस्नातः कृष्णासङ्गः समाहितः। कर्तारमथ भोक्तारं विष्णुं सर्वेश्वरं यजेत्॥११॥

होकर श्राद्ध करता है वह ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, अश्विनीकुमार, सूर्य, अग्नि, वसु, मरुत्, विश्वेदेव, पितरों के गण, पक्षी, मनुष्य, पशु, सर्पादि सरकने वाले जन्तु, मातृगण और अन्य जो कोई प्राणी नाम का वस्तु है उस सब जगत् को प्रसन्न करता है॥६-७॥ तृप्त हुए वे ब्रह्मादि इस श्राद्धकर्ता को पुत्त्र, पत्नी और धन से तृप्त करते हैं। और्ध्वदेहिक क्रिया में अधिकार और और्ध्वदेहिक क्रियाओं का भेद भी सङ्क्षेप से तुम्हारे लिए निरूपित किया गया॥८॥
गरुड ने कहा— हे देवताओं में उत्तम विष्णुभगवन्, यदि उक्त अधिकारियों में एक भी न हो तो जानकार पुरुष को क्या करना चाहिए॥९॥
श्रीकृष्ण ने कहा— जब अपने और्ध्वदेहिकक्रिया के लिए कोई अधिकारी नहीं है, यदि अमुक व्यक्ति मेरे लिए और्ध्वदेहिकक्रिया करदेगा यह निश्चय नहीं है तो स्वयम् जीवित रहते ही मनुष्य अपने जीव को श्राद्ध दे (जीवच्छ्राद्ध करे)॥१०॥ जीवच्छ्राद्ध करते समय उपवास करके, अच्छी तरह शास्त्रोक्त रूप से स्नान करके, कृष्ण में चित्त देकर, इन्द्रियों और मन को एकाग्र करके कर्ता और भोक्ता सर्वेश्वर विष्णु का याग करे॥११॥

सदक्षिणाश् च सतिलास् तिस्रश् च जलधेनवः। निवेदयेत् पितृभ्यश् च स्वधेति सुसमाहितः॥१२॥
अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नम इति स्मरन्। सोमाय त्वा पितृमते स्वधा नम इति स्मरन्॥१३॥
दक्षिणेन तु दद्याच् च तृतीयां दक्षिणायुताम्। यमायाऽङ्गिरसे चाऽथ स्वधा नम इति स्मरन्॥१४॥
तयोर्मध्ये तु निःक्षिप्य विप्रान् सम्मन्त्र्य भोजयेत्। प्रथमामुत्तरे न्यस्य द्वितीयां दक्षिणे न्यसेत्॥१५॥
मध्ये तृतीयां विन्यस्य पश्चादावाहनादिकम्। आवाहनादिना पूर्वं विश्वेदेवान् प्रपूज्य च॥१६॥
वसुभ्यस् त्वामहं विप्र रुद्रेभ्यस्त्वामहं ततः। सूर्येभ्यस् त्वामहं विप्र भोजयामीति तान् वदेत्॥१७॥
आवाहनादिकं शेषं कुर्याच् च पितृशेषवत्। सौम्यां धेनुं ततो दद्याद् वसूद्देशं द्विजाय तु॥१८॥
आग्नेय्यां चाथ रौद्राय याम्यां सूर्यद्विजाय तु। विश्वेभ्यश् चाथ देवेभ्यस् तिलपात्रं निवेदयेत्॥१९॥

इन्द्रियों और मन को अच्छी तरह एकाग्र करके दक्षिणाओं से और तिलों से सहित तीन जलधेनु स्वधा कहकर पितरों को निवेदित करे॥१२॥ "अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः" ऐसा स्मरण करते हुए प्रथम जलधेनु को उत्तर की ओर रखे। "सोमाय त्वा पितृमते स्वधा नमः" ऐसा स्मरण करते हुए दूसरी जलधेनु को दक्षिण की ओर रखे। "यमायाऽङ्गिरसे स्वधा नमः" ऐसा स्मरण करते हुए तीसरी दक्षिणायुक्त जलधेनु को उक्त दो धेनुओं के बीच में दक्षिण की ओर ही रखकर ब्राह्मणों को निमन्त्रित करके भोजन करवाए। दोनों जलधेनुओं के बीच में तृतीय जलधेनु के रखने के बाद में आवाहनादि करे। पहले आवाहनादि से विश्वेदेवों का पूजन करके ब्राह्मणों को क्रमशः 'हे विप्र, वसुओं के लिए मैं आप को भोजन कराता हूँ', 'हे विप्र, रुद्रों के लिए मैं आप को भोजन कराता हूँ', 'हे विप्र, आदित्यों के लिए मैं आप को भोजन कराता हूँ' ऐसा कहे॥१३-१७॥ आवाहनादि अवशिष्ट कर्म श्राद्ध के अवशिष्ट कर्मों की तरह करे। तब सौम्य धेनु को वसुओं की उद्देश से ब्राह्मण को दे, और आग्नेय धेनु को रुद्रों के उद्देश से ब्राह्मण को दे, तथा याम्य धेनु को आदित्यों के उद्देश से ब्राह्मण को दे। विश्वेदेवों के उद्देश से ब्राह्मण को तिलपात्र दे॥१८-१९॥

स्वस्तीत्येव तथाक्षय्यं जलं दत्त्वाऽथ तान् द्विजान्। विसर्जयेत् स्मरन् विष्णुं देवमष्टाक्षरं विभुम्।२०।
ततः कामं कुलेशानीं शिवं नारायणं स्मरेत्। चतुर्दश्यां ततो गच्छेद् यथाप्राप्तां सरिद्वराम्॥२१॥
[पूर्वेण विप्रः सौम्येन राजा वैश्योऽपरेण च। दक्षिणेन तथा शूद्रो मार्गेण विकिरन् यवान्॥]
वस्त्राणि लोहखण्डानि जितं त इति सञ्जपन्। दक्षिणाभिमुखो वह्निं ज्वालयेत् तत्र च स्वयम्।२२।
पञ्चाशता कुशैर् ब्राह्मीं कृत्वा प्रतिकृतिं दहेत्। हुत्वा श्माशानिकं होमं पूर्णाहुत्यन्तमेव हि॥२३॥
निरग्निरथवा भूमिं यमं रुद्रं च संस्मरन्। हुत्वा प्राधानिके स्थाने पश्चाद् दाहपयेच् च तम्॥२४॥
श्रपयेच् चाऽपरे वह्नौ मुद्गमिश्रं चरुं ततः। तिलतण्डुलमिश्रं च द्वितीयं सपवित्रकम्॥२५॥

स्वस्तिवाचन कराके अक्षय्य जल देकर अष्टाक्षर मन्त्र (ओं नमो नारायणाय) से प्रतिपाद्य सर्वव्यापक विष्णु का स्मरण करते हुए उन ब्राह्मणों का विसर्जन करे॥२०॥ तदनन्तर वारंवार कुलदेवी का, शिव का और नारायण का स्मरण करे। तब चतुर्दशी में जो उपलभ्य है उस उत्तम नदी को [ब्राह्मण ग्राम-नगरादिं के पूर्व मार्ग से, क्षत्रिय उत्तर मार्ग से, वैश्य पश्चिम मार्ग से और शूद्र दक्षिण मार्ग से मार्ग में जौ] वस्त्र और लोहखण्ड का विकरण (फेंकने का काम) करते हुए (द्रष्टव्य– हेमाद्रिकृत श्राद्धकल्प, पृ.१७०५) और **"जितं ते पुण्डरीकाक्ष जितं ते सर्वभावन, नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुषपूर्वज"** इस मन्त्र को जपते हुए जाय। नदी के तट में स्वयम् दक्षिणाभिमुख होकर अपने गृह्य अग्नि का ज्वालन करे॥२१-२२॥ पचास कुशों से ब्रह्मलोकगमन के हेतु अपनी प्रतिकृति (पुत्तलक) बनाकर पूर्णाहुति पर्यन्त का श्मशान में कर्तव्य होम करके उस प्रतिकृति का दहन करे॥२३॥ अथवा गृह्याग्नि से रहित व्यक्ति उक्त गृह्याग्निहोम के स्थान में स्थापित लौकिकाग्नि में होम करके उस के बाद उक्त प्रतिकृति का दहन करे (द्र.- हेमाद्रिकृत श्राद्धकल्प, पृ.१७०६)॥२४॥ तब दूसरे अग्नि में मूँग से युक्त चरु पकाए। तिल और तण्डुल से युक्त पवित्रयुक्त अन्य चरु भी पकाए॥२५॥

ओम् पृथिव्यै नमस् तुभ्यमिति चैकं निवेदयेत्। ओं यमाय नमश् चेति द्वितीयं तदनन्तरम्॥२६॥
ओं नमश् चाथ रुद्राय श्मशानपतये नमः। ततो दीप्तं समिद्धाऽग्निं भूमौ प्रकृतिदाहकम्॥२७॥
[क्रव्यादमग्निं तप्तायै भूम्यै नम इति स्मरन्। क्षीराक्तं जलकुम्भं तु विकिरेत् तत्प्रशान्तये॥]
सप्तभ्यो यमसंज्ञेभ्यो दद्यात् सप्त जलाञ्जलीन्। यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च॥२८॥
वैवस्वताय कालाय सर्वप्राणहराय च। स्वधाकारनमस्कारप्रणवैः सह सप्तधा॥२९॥
अमुकामुकगोत्रैतत् तुभ्यमस्तु तिलोदकम्। प्रदद्याद् दश पिण्डांस् तु अर्घपुष्पसमन्वितान्॥३०॥
धूपो दीपो बलिर् गन्धः सर्वेषामस्तु चाक्षयः। दश पिण्डांस् तु तान् दत्त्वा विष्णोः सौम्यं मुखं स्मरेत्॥
कुर्याच् च मासिकं मासि सपिण्डीकरणं ततः। आशौचान्ते ततः कुर्यादात्मनो वा परस्य तु॥३२॥

"**ओं पृथिव्यै नमस्तुभ्यम्**" इस मन्त्र से प्रथम चरु से लेकर एक चरुभाग को निवेदित करे। उस के बाद "**ओं यमाय नमस्तुभ्यम्**" इस मन्त्र से दूसरे चरुभाग को निवेदित करे॥२६॥ "**ओं रुद्राय श्मशानपतये नमस्तुभ्यम्**" इस मन्त्र से तीसरे चरुभाग को निवेदित करे। तब भूमि में दीप्त समिद्ध प्रतिकृति का दाहक [क्रव्यादाग्नि के प्रति "**तप्तायै भूम्यै नमः**" ऐसा स्मरण करते हुए उक्त क्रव्यादाग्नि की शान्ति के लिए दूध से युक्त जलकुम्भ फेंककर फोडे] ॥२७॥ तब प्रणव और स्वधा नमः इन शब्दों से युक्त यमाय, धर्मराजाय, मृत्यवे, अन्तकाय, वैवस्वताय, कालाय और सर्वप्राणहराय इन सात प्रकार के मन्त्रों से सात यमों को सात जलाञ्जलि दे॥ (ये मन्त्र "**ओं यमाय स्वधा नमः**" इत्यादि रूप के होंगे)॥२८-२९॥ "**अमुकशर्मन् अमुकगोत्र एतत् तुभ्यमस्तु तिलोदकम्**" इत्यादि प्रकार के वाक्य से (अवनेजन के रूप में) तिलोदक दे और (उक्त दो चरुओं से पाँच-पाँच पिण्ड बनाकर) अर्घ-फूलों से युक्त दश पिण्ड भी दे॥३०॥ सभी पिण्डों के लिए "**धूपोऽक्षयोऽस्तु**" इत्यादि मन्त्रों से धूप, दीप, बलि और गन्ध (चन्दन) दे। उन दश पिण्डों को देकर विष्णु के सौम्य मुख का स्मरण करे॥३१॥ मास-मास में मासिक श्राद्ध करे। तब वार्षिक आशौच के अन्त में सपिण्डीकरण करे।

कुर्यादस्थिरतां ज्ञात्वा शक्त्यारोग्यधनायुषाम्। एतत् ते सर्वमाख्यातं जीवच्छ्राद्धं मया खग।३३।

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे श्राद्धकर्त्रात्मश्राद्धयोर् निरूपणं नामाष्टमोऽध्यायः॥

अथ नवमोऽध्यायः

गरुड उवाच

उक्तमाद्यां क्रियां यावन्नृपोऽपीति त्वयाऽनघ। कस्यचित् केनचिद् राज्ञा किमाद्या सा कृता पुरा॥

मनुष्य के शक्ति, आरोग्य, धन, आयु इत्यादि की अस्थिरता को जानकर मनुष्य अपना अथवा दूसरे का भी उक्त विधान करे। हे पक्षिन्, मैं ने तुम को यह सम्पूर्ण जीवच्छ्राद्ध बता दिया॥३२-३३॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में श्राद्ध करने के अधिकारी का और आत्मश्राद्ध (जीवच्छ्राद्ध) का निरूपण करने वाला अष्टम अध्याय समाप्त हुआ॥८॥

गरुड ने कहा— हे पापरहित भगवन्, आप ने कहा कि और्ध्वदेहिक क्रियाओं में आद्या क्रियातक तो राजा भी करवाये। इतिहास में क्या किसी राजा ने किसी की वह आद्या क्रिया करवाई है?॥१॥ **श्रीकृष्ण ने कहा—** हे गरुड, जैसे पुराकाल में राजा ने क्रिया करवाई वह बताउँगा, सुनो। सत्ययुग

श्रीकृष्ण उवाच

सुपर्ण शृणु वक्ष्यामि यथा राज्ञा क्रिया कृता। आसीत् कृतयुगे राजा वाङ्गो वै बभ्रुवाहनः॥२॥
पृथिव्याश् चतुरन्ताया गोप्ता पक्षीन्द्र धर्मतः। चतुर्भागां भुवं कृत्स्नां स भुङ्क्ते वसुधाधिपः॥३॥
न पापकृत् कश्चिदासीत् तस्मिन् राज्यं प्रशासति। नासीच् चौरभयं तार्क्ष्य न क्षुद्रभयमेव हि॥४॥
नासीद् व्याधिभयं चापि तस्मिञ् जनपदेश्वरे। स्वधर्मे रेमिरे चासीत् तेजसा भास्करोपमः॥५॥
अक्षुब्धत्वेऽचलसमः सहिष्णुत्वे धरासमः। स कदाचिन् महाबाहुः प्रभूतबलवाहनः॥६॥
वनं जगाम गहनं हयानां च शतैर् वृतः। सिंहनादैश् च योधानां शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनैः॥७॥
आसीत् किलकिलाशब्दस् तस्मिन् गच्छति पार्थिवे। तत्रतत्र च विप्रेन्द्रैः स्तूयमानः समन्ततः॥८॥

में वङ्गदेश में बभ्रुवाहन नाम का राजा था॥२॥ हे पक्षियों में श्रेष्ठ, चार समुद्रपर्यन्त की पृथिवी का धर्मपूर्वक रक्षण करने वाला वह राजा चार भाग वाली सम्पूर्ण पृथ्वी का भोग करता था॥३॥ उस राजा के राज्य करते समय कोई भी पाप करने वाला नहीं था, हे गरुड, चोरों का भय और क्षुद्र दुर्जन लोगों का भय भी नहीं था॥४॥ जब वह देश का स्वामी था उस समय में रोगों का डर भी नहीं था। सभी लोग अपने-अपने धर्मों में रहकर प्रसन्न रहते थे। वह राजा तेस से सूर्य जैसा, अक्षुब्धता में पर्वत जैसा, सहनशीलता में पृथिवीजैसा था। बडे-बडे पुष्ट वलिष्ठ भुजाओं से युक्त, बहुत सैनिकों से और वाहनों से युक्त, सैकडों घोडों से घिरा हुआ और लडाकों के सिंहनाद से और शङ्खों तथा नगाडाओं के ध्वनियों से युक्त वह राजा किसी समय में घोर वन में गया॥५-७॥ उस राजा के ज़ाते समय बहुत हल्ला हुआ था। स्थान-स्थान में सभीओर श्रेष्ठ ब्राह्मणों से प्रशंसित होता हुआ वह राजा मृगों को मारने की इच्छा से बडी प्रसन्नता

निर्ययौ परया प्रीत्या वनं मृगजिघांसया। स गच्छन् ददृशे धीमान् नन्दनप्रतिमं वनम्॥९॥
बिल्वार्कखदिराकीर्णं कपित्थध्वजसंयुतम्। विषमैः पर्वतैश् चैव सर्वतश् च समन्वितम्॥१०॥
निर्ज्जलं निर्मनुष्यं च बहुयोजनमायतम्। मृगसिंहैर् महाघोरैरन्यैश् चापि वनेचरैः॥११॥
तद् वनं मनुजव्याघ्रः सभृत्यबलवाहनः। लीलया लोडयामास सूदयन् विविधान् मृगान्॥१२॥
मृगस्य कस्यचित् कुक्षिं ततो विव्याध भूमिपः। राजा मृगप्रसङ्गेन तमनु प्राविशद् वनम्॥१३॥
एकाकी वै हृतबलः क्षुत्पिपासासमन्वितः। स वनस्यान्तमासाद्य महच् चारण्यमासदत्॥१४॥
तृषया परयाऽऽविष्टोऽन्विष्यज् जलमितस्ततः। स दूरात् पूरचक्राह्वं हंससारसनादितैः॥१५॥
सूचितं सर आगत्य साऽश्व एव व्यगाहत। पद्मानां च परागेण उत्पलानां रजेन च॥१६॥
सुगन्धममलं शीतं पीत्वाऽम्भो निर्जगाम ह। मार्गश्रमपरिश्रान्तस् तडागतटमण्डपम्॥१७॥

से वन जाने को निकला। जाते हुए बुद्धिमान् उस राजा ने स्वर्ग के वन के समान वन को देखा॥८-९॥ बेल, मदार, खदिर इत्यादि से भरे हुए, कैथ, ताल इत्यादि वृक्षों से युक्त, सभी ओर ऊँचे नीचे पर्वतों से सहित, जल से और मनुष्यों से रहित तथा बहुत योजन विस्तीर्ण, मृगों से, सिंहों से और अन्य भयङ्कर वनचारियों से युक्त उस वन को नौकरों सैनिकों और वाहनों से युक्त उस मनुष्यश्रेष्ठ राजा ने विविध प्रकार के मृगों को मारते हुए आलोडित किया॥१०-१२॥ तब राजा ने किसी एक मृग के पेट में बाण से वेधा और राजा उसी मृग के प्रसङ्ग से उस के पीछे-पीछे दूसरे वन में प्रविष्ट हुआ॥१३॥ अकेला, सैनिकों से रहित, भूख और प्यास से युक्त वह राजा वन के किनारे में पहुँचकर दूसरे घोर जङ्गल में प्रविष्ट हुआ॥१४॥ अत्यन्त कडी प्यास से युक्त, इधर-उधर जल को खोजता हुआ वह राजा हंसों और सारसों के शब्दों से दूर से ही सूचित पूरचक्र नाम के सरोवर में आकर अश्व से सहित ही सरोवर में प्रविष्ट हुआ। रक्तकमलों के पराग से और नीलोत्पल की धूलियों पे सुगन्धित, निर्मल और ठण्डे जल को पीकर सरोवर से निकला मार्ग के परिश्रम से थके हुए राजा ने सरोवर के तट के

न्यग्रोधं वीक्ष्य तस्याऽऽशु जटास्वश्वं बबन्ध ह। स तत्रास्तरमास्तीर्य खेटकानुपधाय च॥१८॥
सुष्वाप वायुना तत्र सेव्यमानस् तदा क्षणम्। क्षणं सुप्ते नृपे तत्र प्रेतो वै प्रेतवाहनः॥१९॥
कश्चिदत्राऽऽजगामाऽथ युक्तः प्रेतशतेन च। अस्थिचर्मशिराशेषशरीरः परिविभ्रमन्॥२०॥
भक्ष्यं पेयं मार्गमाणो न बध्नाति धृतिं क्वचित्। तमपूर्वं नृपो दृष्ट्वाऽकरोदस्त्रं शरासने॥२१॥
दृष्ट्वा सोऽपि चिरं भूपं तस्थौ स्थाणुरिवाग्रतः। तमवस्थितमालोक्य राजा प्राप्तकुतूहलः॥२२॥
पप्रच्छ तं च कोऽसीति कुतो वा विकृतिं गतः।

प्रेत उवाच

प्रेतभावो मया त्यक्तो गतिं प्राप्तोऽस्म्यहं पराम्॥२३॥ त्वत्संयोगान् महाबाहो नास्ति धन्यतरो मया।

जनविश्रामार्थक मण्डप के तुल्य वटवृक्ष को देखकर उस की जटाओं में घोडे को बाँधा। वह राजा वहाँ आस्तरण बिछाकर और ढाल को तकिया बनाकर उस समय में वायु से सेवित होता हुआ क्षणभर सोया। जब वह राजा क्षणभर सोया था उसी समय में वहाँ सैकडों प्रेतों से युक्त और एक प्रेत में सबार कोई एक प्रेत उस स्थल में आ गया। अवशिष्ट हड्डी, चमडे और शिराओं से ही युक्त शरीरवाला, इधर-उधर घूमता हुआ, खाद्य और पेय पदार्थों को खोजता हुआ वह प्रेत कहीं धैर्य नहीं कर सकता था। अदृष्टपूर्व उस प्रेत को देखकर राजा ने धनु में अस्त्र (बाण) चढा लिया॥१५-२१॥ वह प्रेत भी राजा को देखकर बहुत समयतक ठूँठ के समान राजा के आगे खडा रहा। उस प्रकार खडे उस प्रेत को देखकर कौतूहलयुक्त राजा ने उस को पूछा— तुम कौन हो? किस कारण से ऐसी विकृति में प्राप्त हुए हो? प्रेत ने कहा— मैं ने प्रेतभाव को छोड दिया, हे महाबाहो, आप से भेंट होने से मैं परम गति में प्राप्त हुआ हूँ, मुझ से अधिक धन्य और कोई नहीं।

बभ्रुवाहन उवाच

किमेतद् विपिने घोरे सर्वत्राऽतिभयानके॥२४॥
दोधूयमाने वातेन वात्यारूपेण कौणप। पतङ्गा मशकाः क्षुद्राः कबन्धाश्च शिरांसि च॥२५॥
मत्स्याः कूर्माः कृकलासा वृश्चिका भ्रमराऽहयः। अधोमुखोर्ध्वपादास् ते क्रन्दमानाः सुदारुणम्॥२६॥
प्रवान्ति वायवो रूक्षा ज्वलन्तो विद्युदग्नयः। इतस्ततो भ्रमन्तीव वायुना तृणसन्ततिः॥२७॥
दृश्यन्ते विविधा जीवा नागाश् च शलभव्रजाः। श्रूयन्ते बहुधा रावा न दृश्यन्ते क्वचित्क्वचित्॥२८॥
दृष्ट्वेदं विकृतं सर्वं वेपते हृदयं मम।

प्रेत उवाच

येषां नैवाऽग्निसंस्कारो न श्राद्धं नेदकक्रिया॥२९॥

बभ्रुवाहन ने कहा— हे प्रेत, इस सभी ओर अतिभयङ्कर घनघोर और आंधी के रूप के वायु के झोंकों से वार-वार हिलाए जा रहे जङ्गल में यह क्या है। यहाँ पतङ्ग, मच्छर, मधुमक्खी, विना मस्तक के धड, विना धड के शिर, मछलियाँ, कछुए, गिरगिट, बिच्छू, भौंरे, साँप अधोमुख और ऊर्ध्वपाद होकर अत्यन्त दारुण चित्कार करते हुए दिखाई दे रहे हैं॥२२-२६॥ यहाँ रूक्ष वायु वह रहे हैं, बिजली के आग जल रहे हैं। वायु के कारण से तृणों की सन्तति (समूह) इधर-उधर घूमती हुई जैसी प्रतीत होती है॥२७॥ यहाँ विभिन्न प्रकार के जीव, हाथी, टिड्डियों के समूह देखे जाते हैं, विविध प्रकार के शब्द सुने जाते हैं, कहीं-कहीं नहीं भी दिखाई देते हैं। विकृत यह सब देखकर मेरा हृदय काँपता है। प्रेत ने कहा— जिन का अग्निसंस्कार (शवदाह) नहीं हुआ है, श्राद्ध नहीं हुआ है,

षट् पिण्डा दश गात्राणि सपिण्डीकरणं न हि। विश्वासघातिनो ये च सुरापाः स्वर्णहारिणः॥३०॥
मृता दुर्मरणाद् ये च ये चाऽसूयापरा जनाः। प्रायश्चित्तविहीना ये अगम्यागमने रताः॥३१॥
कर्मभिर् भ्राम्यमाणास् ते प्राणिनः स्वकृतैरिह। दुर्लभाहारपानीया दृश्यन्ते पीडिता भृशम्॥३२॥
एतेषां कृपया राजंस् त्वं कुरुष्वौर्ध्वदेहिकम्। येषां न माता न पिता न पुत्त्रो न च बान्धवाः॥३३॥
तेषां राजा स्वयं कुर्यात् कर्माणि तु यतो नृपः। आत्मनश् च शुभं कर्म कर्तव्यं पारलौकिकम्॥३४॥
विमुक्तः सर्वदुःखेभ्यो येनाऽञ्जो दुर्गतिं तरेत्। भ्रातरः कस्य के पुत्त्राः स्त्रियोऽपि स्वार्थकोविदाः।३५।
न कार्यस् तेषु विश्रम्भः स्वकृतं भुज्यते यतः। गृहेष्वर्था निवर्तन्ते श्मशाने चैव बान्धवाः॥३६॥

जलाञ्जलिदानादि क्रियाएँ नहीं हुई हैं, मृत्युस्थानादि में दातव्य छः पिण्ड, दश गात्रपिण्ड और सपिण्डीकरण भी नहीं हुए हैं वे लोग, जो विश्वासघाती हैं वे लोग, द्विजाति होकर सुरा पीने वाले, ब्राह्मण के कर्षमित अथवा अधिक सोना चुराने वाले, जो दुर्मरण से मरे हैं वे, जो अन्य लोगों के गुणों में भी दोषारोपण करने में वारवार प्रवृत्त होने वाले हैं वे, जो गुरुपत्नी प्रभृति अगम्य स्त्री में गमन करके समुचित प्रायश्चित्त न करने वाले हैं वे, अपने से ही किएगए ऐसे कर्मों से घुमाए गए ये प्राणी यहाँ आहार और पानी दुर्लभ होने से अत्यन्त पीडित दिखाइ देते हैं॥२८-३२॥ हे राजन्, आप कृपा करके इन लोगों का और्ध्वदेहिक कर्म कीजिए। जिन की न माँ है, न बाप है, न पुत्त्र है, न कोई बान्धव हैं उन का और्ध्वदेहिक कर्म राजा स्वयम् करे, क्योंकि वह नृप (मनुष्यों को विपत्ति से त्राण देने वाला) है। राजा को अपने लिए भी परलोक में शुभ फल देने वाला और्ध्वदेहिक कर्म करना चाहिए, जिस से सभी दुःखों से मुक्त होकर तत्त्वतः दुर्गति से पार पा सके। किस के कौन भाई हैं? कौन पुत्त्र हैं? स्त्रियाँ भी अपने स्वार्थ सिद्ध करने में ही विज्ञ होती हैं॥३३-३५॥ उन लोगों में विश्वास नहीं करना चाहिए, क्योंकि अपने से किए गए कर्मों का ही फल भोगा जाता है। धन-सम्पत्ति घर में ही छूट जाती है, बन्धु-बान्धव श्मशान में ही छूट जाते हैं,

शरीरं काष्ठमादत्ते पापं पुण्यं सह व्रजेत्। तस्मादाशु त्वया सम्यगात्मनः श्रेय इच्छता॥३७॥
अस्थिरेण शरीरेण कर्तव्यं चौर्ध्वदेहिकम्।

राजोवाच

कृशरूपः करालाक्षस् त्वं प्रेत इव लक्ष्यसे॥३८॥
कथयस्व मम प्रीत्या प्रेतराज यथातथम्। तथा पृष्टः स वै राज्ञा उवाच सकलं स्वकम्॥३९॥

प्रेत उवाच

कथयामि नृपश्रेष्ठ सर्वमेवादितस्तव। प्रेतत्वे कारणं श्रुत्वा दयां कर्तुमिहार्हसि॥४०॥
वैदिशं नाम नगरं सर्वसम्पत्सुखावहम्। नानाजनपदाकीर्णं नानारत्नसमाकुलम्॥४१॥

शरीर को भी काष्ठ से ज्वलित अग्नि ले लेता है, पाप और पुण्य ही जीव के साथ में जाते हैं। इस लिए अपने कल्याण को चाहने वाले आप से भी शीघ्र ही इस अस्थिर शरीर से अपना औध्र्वदेहिक कर्म किया जाना चाहिए। राजा ने कहा– दुबले पतले रूप वाला और भयानक आँखों से युक्त तुम प्रेत जैसा दिखाई देते हो, हे प्रेतराज, तुम प्रसन्न होकर मुझ को सब बात यथार्थ बताओ। राजा से उस प्रकार पूछे गए उस प्रेत ने अपनी सम्पूर्ण बात बताई॥३६-३९॥ प्रेत ने कहा– हे राजाओं में श्रेष्ठ, मैं प्रारम्भ से लेकर प्रेतत्व में कारण सब कुछ आप को बताता हूँ, सुनकर आप दया करें॥४०॥ सम्पूर्ण सम्पत्तियों से युक्त होने से लोक को सुख देने वाला, अनेक जनपदों से युक्त, नानारत्नों से भरा हुआ, अनेक पुष्पवाटिकाओं से सहित और अनेक धार्मिक जनों से भरा हुआ वैदिश नाम का नगर है। हे राजन्, मैं उस नगर में देवताओं की

नानापुष्पवनाकीर्णं नानापुण्यजनावृतम्। तत्राऽहं न्यवसं भूप देवार्चनरतः सदा॥४२॥
वैश्यजातिः सुदेवोऽहं नाम्ना विदितमस्तु ते। हव्येन तर्पिता देवाः कव्येन पितरो मया॥४३॥
विविधैर् दानयोगैश् च विप्राः सन्तर्पिता मया। आहारश् च विहारश् च मया वै सुनिवेशितः॥४४॥
दीनानाथविशिष्टेभ्यो मया दत्तमनेकधा। तत् सर्वं निष्फलं जातं मम दैवादुपागतम्॥४५॥
न मेऽस्ति सन्ततिस् तात न सुहृन् न च बान्धवाः। न च मित्रं हितस् तादृग् यः कुर्यादौर्ध्वदेहिकम्।४६।
प्रेतत्वं सुस्थिरं तेन मम जातं नृपोत्तम। एकादशं त्रिपक्षं च षाण्मासिकमथाऽऽब्दिकम्॥४७॥
प्रतिमास्यानि चान्यानि ह्येवं श्राद्धानि षोडश। यस्यैतानि न दीयन्ते प्रेतश्राद्धानि भूपते॥४८॥
प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि। एवं ज्ञात्वा महाराज प्रेतत्वादुद्धरस्व माम्॥४९॥

पूजा में सदाकाल रमता हुआ निवास करता था॥४१-४२॥ मैं वैश्य जाति का और नाम से सुदेव हूँ, यह बात आप को विदित हो। मैं ने हवियों के होम से देवताओं को और पिण्डादि के दान से पितरों को तर्पित किया था॥४३॥ विभिन्न प्रकार के दानों के संयोग से मैं ने ब्राह्मणों को भी सन्तृप्त किया था। मैं ने अकिञ्चन लोगों के लिए आहारस्थल (भोजनशाला) और विहारस्थल भी अच्छी तरह बनाया था॥४४॥ मैं ने दीनदुःखियों को अनाथों को और कुल-विद्या-चरित्र से मुझ से उच्च कोटि के पुरुषों को भी अनेक प्रकार से दान भी दिया। मेरे द्वारा सम्पादित वह सब कार्य दैवगति से निष्फल होने में आ गया॥४५॥ हे श्रद्धाभाजन राजन्, जो मेरा औध्र्वदेहिक कर्म करे वैसी मेरी कोई सन्तति नहीं है, कोई सद्भाव रखने वाला आत्मीय जन भी नहीं है, कोई बान्धव भी नहीं हैं, कोई हितकारी मित्र भी नहीं है॥४६॥ उसी हेतु से मेरा प्रेतत्व स्थिर हुआ। एकादशाहश्राद्ध, त्रिपक्षश्राद्ध, (ऊन)षाण्मासिकश्राद्ध, और (ऊन)वार्षिकश्राद्ध, अन्य मासिक श्राद्ध इस प्रकार सोलह श्राद्ध होते हैं। हे राजन्, जिस के ये सोलह प्रेतश्राद्ध नहीं दिएजाते हैं अन्य सैकडों श्राद्ध देने पर भी उस का प्रेतत्व स्थिर रहता है। ऐसा जानकर हे महाराज, मुझ को प्रेतत्व से छुटाइए॥४७-४९॥

वर्णानां चैव सर्वेषां राजा बन्धुरिहोच्यते। तन् मां तारय राजेन्द्र मणिरत्नं ददामि ते॥५०॥
यथा मम शुभावाप्तिर् भवेन् नृपवरोत्तम। तथा कार्यं महीपाल दयां कृत्वा मयि प्रभो॥५१॥
सपिण्डैर् वा सगोत्रैर् वा निष्ठुरैर् न कृतो हि मे। वृषोत्सर्गस्ततो दुष्टं प्रेतत्वं प्राप्तवानहम्॥५२॥
क्षुत्तृषाऽऽविष्टदेहश् च भक्ष्यं पानं न चाप्नुयाम्। अतो विकृतिरेषा वै कृशत्वादिरमांसका॥५३॥
क्षुत्तृड्जन्यं महादुःखमनुभवामि पुनःपुनः। अकल्याणं हि प्रेतत्वं वृषोत्सर्गं विना कृतम्॥५४॥
तस्माद् राजन् दयासिन्धो प्रार्थयामि तवाऽग्रतः।

राजोवाच

वर्तते मत्कुले प्रेत इति ज्ञेयं कथं नरैः॥५५॥ तन् ममाऽऽचक्ष्व हि प्रेत प्रेतत्वान् मुच्यते कथम्।

इस लोक में राजा सभी वर्णों का बन्‌, कहा जाता है, उस हेतु से हे राजाओं में श्रेष्ठ, मुझ को तारिए, आप को मैं श्रेष्ठ मणि देता हूँ॥५०॥ हे मुझ को तारने में समर्थ श्रेष्ठ राजाओं में उ॰म पृथिवीपति, मेरे ऊपर दया करके जिस प्रकार से मुझ को शुभ गति प्राप्त होगी आप को वैसा करना चाहिए॥५१॥ निष्ठुर सपिण्डों ने अथवा सगोत्रों ने मेरे लिए वृषोत्सर्ग नहीं किया, उस हेतु से मैं ने इस दुष्ट प्रेतत्व को पाया है॥५२॥ भूख और प्यास से देह पीडित होने पर भी भोज्य और पेय पदार्थ नहीं पाउँगा, इस हेतु से मांसरहित शरीर के दुबले पन की यह विकृति प्राप्त हुई है॥५३॥ भूख और प्यास से होने वाले महादुःख को वार-वार अनुभव कर रहा हूँ। वृषोत्सर्ग न होने से प्राप्त यह प्रेतत्व बहुत ही अकल्याणकारी है॥५४॥ उस हेतु से, हे दया के सागर राजन्, आप के आगे प्रार्थना करता हूँ। राजा ने कहा— हे प्रेत, मेरे कुल में प्रेत है यह बात मनुष्य कैसे जाने, और जीव प्रेतभाव से किस कार्य से मुक्त होता है, इस बात को मुझ को बताओ। प्रेत ने कहा— देखे गए सङ्केत से और अनुभव में आती हुई पीडा से मनुष्यों को प्रेत का अनुमान

प्रेतं उवाच

लिङ्गेन पीडया प्रेतोऽनुमातव्यो नरैः सदा ॥५६॥
वक्ष्यामि पीडास् ता राजन् या वै प्रेतकृता भुवि। ऋतुः स्यादफलः स्त्रीणां यदा वंशो न वर्धते ॥५७॥
म्रियन्ते चाल्पवयसः सा पीडा प्रेतसम्भवा। अकस्माद् वृत्तिहरणमप्रतिष्ठा जनेषु वै ॥५८॥
अकस्माद् गृहदाहः स्यात् सा पीडा प्रेतसम्भवा। स्वगेहे कलहो नित्यं स्याच् च मिथ्याभिशंसनम् ॥५९॥
राजयक्ष्मादिसम्भूतिः सा पीडा प्रेतसम्भवा। अपि स्वयं धनं मुक्तं प्रयत्नादनवे पथि ॥६०॥
नैव लभ्येत नश्येत सा पीडा प्रेतसम्भवा। सुवृष्टौ कृषिनाशः स्याद् वाणिज्याद् वृत्तिनाशनम् ॥६१॥
कलत्रं प्रतिकूलं स्यात् सा पीडा प्रेतसम्भवा। एवन्तु पीडया राजन् प्रेतज्ञानं भवेन् नृणाम् ॥६२॥
वृषोत्सर्गो यदि भवेत् प्रेतत्वान् मुच्यते तदा। तस्मान् नृप त्वमप्येवं वृषोत्सर्गं कुरु प्रभो ॥६३॥

करना चाहिए। इंस लोक में जो प्रेतकृत पीडाएँ होतीं हैं उन को मैं बताउँगा। जब स्त्रियों का ऋतुकाल अफल (गर्भधारणरहित) होता है, जब वंश की वृद्धि नहीं होती है, छोटे वय में ही कुल के मनुष्य मरजाते हैं तब उस पीडा को प्रेत से उत्पन्न जानना चाहिए। एकाएक वृत्ति का हरण होगा, लोक में अपनी अप्रतिष्ठा होगी एकाएक घर जल जाएगा तो उस पीडा को प्रेत से उत्पन्न जानना चाहिए। अपने घर में सदा कलह होगा, भूठे पातकों का आरोप लगेगा, राजयक्ष्मा (तपदिक) इत्यादि रोगों की उत्पत्ति होगी तो उस पीडा को प्रेत से उत्पन्न जानना चाहिए। अपने से ही अनुभूत ही मार्ग में यत्नपूर्वक लगाया हुआ धन भी नहीं लौटेगा, नष्ट होगा तो उस पीडा को प्रेत से उत्पन्न जानना चाहिए। अच्छी वर्षा होने पर भी खेतीबारी नष्ट होगी, व्यापार करते रहने पर भी जीविका नष्ट होगी, अपनी पत्नी ही प्रतिकूल हो जाएगी तो उस पीडा को प्रेत से उत्पन्न जानना चाहिए। इस प्रकार की पीडाओं से मनुष्यों को अपने कुल में प्रेत रहने का ज्ञान होगा ॥५५-६२॥ यदि प्रेत के लिए वृषोत्सर्ग होगा तो उस समय में जीव प्रेतत्वमुक्त होता है। इस लिए, हे राजन्, हे समर्थ पुरुष,

मामुद्दिश्य नृपेऽप्यत्राधिकारोऽत्यनुकम्पया। राजपुत्रो हतः कश्चिन् मयैवाऽऽप्तस्ततो मणिः॥६४॥
कुरुष्व तं गृहीत्वा मे तद्धनेन वृषोत्सवम्। कार्तिक्यां पौर्णमास्यां वाऽऽश्वयुङ्मध्येऽथवा नृप॥
रेवतीयुक्तदिवसे कृषीष्ठा मे वृषोत्सवम्। पुण्यान् विप्रान् समाहूय वह्निं स्थाप्य विधानतः॥६६॥
मन्त्रैर् होमस्तथा कार्यः षड्भिर् नृप विधानतः। बहून् विप्रान् भोजयेथास् तद्रत्नाप्तधनेन वै।
एवं कृते महीपाल मम मुक्तिर् भविष्यति॥६७॥

श्रीकृष्ण उवाच

तथेति प्रतिजग्राह मणिं राजा ततः खग॥६८॥
क्रियाधिकारस्तस्यैव यो धनग्राहको भवेत्। कुर्वतोस्तु तयोर् वार्तामेवं प्रेतमहीक्षितोः॥६९॥
झणत्कारस्तु घण्टानां भेरीणां भाङ्कृतिस् तथा। जातस् तदा राजसेना चतुरङ्गा समापतत्॥७०॥

आप भी इसी प्रकार मेरे लिए वृषोत्सर्ग कीजिए। अतिदया से इस कार्य को सम्पन्न करने में राजा में भी अधिकार है। मैं ने किसी राजपुत्र को मारा था, उस से मैं ने मणि (रत्न) पाया था। आप उस मणि को लेकर उस धन से मेरे लिए वृषोत्सर्ग कीजिए। कार्तिकपूर्णिमा में अथवा आश्विन के मध्यभाग में अथवा रेवतीनक्षत्र से युक्त दिन में मेरे लिए वृषोत्सर्ग कीजिएगा। हे राजन्, पवित्र ब्राह्मणों को बुलाकर अपने गृह्यसूत्ररूप शास्त्र में बताए गए विधि से अग्नि की स्थापना करके शास्त्रोक्त विधान से छः मन्त्रों से होम भी करना चाहिए। उस रत्न के विक्रय से प्राप्त धन से बहुत से ब्राह्मणों को भोजन करवाइएगा॥६३-६७॥ हे राजन्, ऐसा करने पर मेरी प्रेतत्व से मुक्ति होगी। श्रीकृष्ण ने कहा— हे पक्षिन्, तब राजा ने 'वैसा ही करेंगे' कहकर मणि को लिया॥६८॥ जो मृत व्यक्ति का धन लेने वाला है उसी का मृतव्यक्ति कीऔर्ध्वदेहिक क्रिया करने में अधिकार होता है। जब वे प्रेत और राजा इस प्रकार बातें कर रहे थे उसी समय में घण्टाओं का झणत्कार और बडे ढोलों का भाङ्कार सुना गया। तब हाथी, घोडे और पैदल सेना से युक्त राजा की चतुरङ्गिणी सेना आ गई॥६९-७०॥

तस्यामागतमात्रायां प्रेतश् चादृश्यतां गतः। तस्माद् वनाद् विनिःसृत्य राजापि पुरमागमत्॥७१॥
स कार्तिक्यां पूर्णिमायां प्रेतमुद्दिश्य संव्यधात्। वृषोत्सर्गं विधानेन तन्मण्याप्तधनेन च॥७२॥
प्रेतोऽप्ययं सपदिलब्धसुवर्णदेहः कर्मान्ते आगत इति प्रणनाम भूपम्।
देव त्वदीयमहिमाऽयमिति स्तुवन् स यातो दिवं गरुड भूपतिना कृतज्ञः।७३।
एतत् ते सर्वमाख्यातं यथा भूपतिनाऽपि सः। उद्धृतः प्रेतभावाद् वै किमन्यच् छ्रोतुमिच्छसि॥७४॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे राजकृतवृषोत्सर्गक्रियादिनिरूपणं नाम नवमोऽध्यायः॥

उस सेना के आते ही प्रेत अदृश्य हो गया। उस वन से निकलकर राजा भी अपने नगर में आ गया॥७१॥ उस राजा ने उस मणि से प्राप्त धन से कार्तिकपूर्णिमा में उक्त प्रेत के लिए शास्त्रोक्त विधि से वृषोत्सर्ग किया॥७२॥ इस प्रेत ने भी तत्काल प्राप्त सुवर्णदेह से युक्त होकर उस वृषोत्सर्ग कृत्य के अन्त्य में 'मैं आ गया' कहकर राजा को प्रणाम किया। हे गरुड, वह प्रेत 'महाराज, यह आप की महिमा है' ऐसा कहकर राजा की प्रशंसा और राजा के द्वारा किए गए उपकार के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हुआ स्वर्ग को चला गया॥७३॥ हे गरुड, वह प्रेत राजा से भी जिस प्रकार प्रेतभाव से उद्धृत हो गया यह सब तुम को बताया गया, और क्या सुनना चाहते हो?॥७४॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में राजा से किए गए वृषोत्सर्गादि क्रिया के वर्णन से युक्त नवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥९॥

अथ दशमोऽध्यायः

गरुड उवाच

सपिण्डीकरणे जाते आब्दिके च स्वकर्मभिः। देवत्वं वा मनुष्यत्वं पक्षित्वं वाऽऽप्नुयुर् नराः॥१॥
तेषां विभिन्नाऽऽहाराणां श्राद्धं वै तृप्तिदं कथम्। यदप्यन्यैर् द्विजैर् भुक्तं हूयते यदि वाऽनले॥२॥
शुभाशुभात्मकैः प्रेतैस् तद्दत्तं भुज्यते कथम्। श्राद्धस्याऽऽवश्यकत्वं तु अमावास्यादिषु श्रुतम्॥३॥

श्रीभगवानुवाच

प्रेतानां शृणु पक्षीन्द्र यथा श्राद्धं तु तृप्तिदम्। देवो यदपि जातोऽयं मनुष्यः कर्मयोगतः॥४॥
तस्याऽन्नममृतं भूत्वा देवत्वेऽप्यनुयाति च। गान्धर्व्ये भोगरूपेण पशुत्वे च तृणं भवेत्॥५॥

गरुड ने कहा— सपिण्डीकरण और वार्षिक श्राद्ध होने पर मृत मनुष्य अपने कर्म से देवत्व में अथवा मनुष्यत्व में अथवा पक्षित्व में प्राप्त होंगे॥१॥ विभिन्न प्रकार के आहार वाले उन देव-मनुष्य-पक्ष्यादियों के लिए श्राद्धकृत्य तृप्तिकारक कैसे हो सकता है? जो अन्य ब्राह्मणों से खाया गया है, अथवा आग में होमा गया है वह भी देवादि का तृप्तिकारक कैसे हो सकता है?॥२॥ श्राद्ध में दिया गया वस्तु शुभ रूप में अथवा अशुभ रूप में प्राप्त परलोकगत जीवों से कैसे भोगा जाता है? अमावास्यादि कालों में श्राद्ध करने की आवश्यकता तो ब्राह्मणग्रन्थरूप श्रुतियों में और श्रुतितुल्य श्रौतसूत्र-गृह्यसूत्रादि में सुना गया है॥३॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे पक्षियों में श्रेष्ठ गरुड, जिस प्रकार श्राद्ध परलोक में गए हुए जीवों के लिए तृप्तिदायक होता है उस प्रकार को सुनो। यदि यह मनुष्य अपने कर्म से देवता हुआ है तो उस के लिए श्राद्ध में दिया हुआ अन्न अमृत होकर देवत्व में अनुगमन करता है, गन्धर्वत्व में भी भोगरूप से अनुगमन करता है, परलोकगत जीव को पशुत्व प्राप्त होने पर तृण (घास) हो जाता है॥४-५॥

श्राद्धं हि वायुरूपेण नागत्वेऽप्यनुगच्छति। फलं भवति पक्षित्वे राक्षसेषु तथाऽऽमिषम्॥६॥
दानवत्वे तथा मांसं प्रेतत्वे रुधिरं तथा। मनुष्यत्वेऽन्नपानादि बाल्ये भोगरसो भवेत्॥७॥

गरुड उवाच

कथं कव्यानि दत्तानि हव्यानि च जनैरिह। गच्छन्ति पितृलोकं वा प्रापकः कोऽत्र गद्यते॥८॥
मृतानामपि जन्तूनां श्राद्धमाप्यायनं यदि। निर्वाणस्य प्रदीपस्य तैलं संवर्द्धयेच् छिखाम्॥९॥
मृताश् च पुरुषाः स्वामिन् स्वकर्मजनितां गतिम्। गाहन्तस् ते कथं स्वस्य सुतस्य श्रेय आप्नुयुः॥१०॥

श्रीभगवानुवाच

श्रुतेः प्रत्यक्षतस् तार्क्ष्य प्रामाण्यं बलवत्तरम्। श्रुत्या तु बोधितार्थस्य पीयूषत्वादिरूपता॥११॥

नागत्व प्राप्त होने पर भी श्राद्ध में दिया गया अन्न वायुरूप होकर अनुगमन करता है। पक्षित्व प्राप्त होने पर श्राद्ध का अन्न फल हो जाता है, यदि परलोक में गया हुआ मनुष्य अपने कर्म से राक्षसों के बीच में जन्मा है तो श्राद्ध का अन्न आमिष (अपक्व मांस) हो जाता है, दानवत्व प्राप्त होने पर मांस (पक्व मांस) हो जाता है, प्रेतत्व प्राप्त होने पर रुधिर हो जाता है। मनुष्यत्व में प्राप्त होने पर अन्नपानादि और बालकपन में भोगरस हो जाता है॥६-७॥ **गरुड ने कहा–** इस लोक में मनुष्यों से पितरों के लिए दिए गए अन्न और होमे गए अन्न पितृलोक में कैसे जाते हैं? यहाँ पहुँचाने वाला कौन कहा जाता है?॥८॥ यदि मरे हुए जन्तुओं को भी श्राद्ध तृप्त करने वाला होगा तो बुझे गए दीप की ज्वाला को भी तैल बढाएगा, ऐसा तो हो नहीं सकता॥९॥ हे स्वामिन्, अपने कर्म से प्राप्त गति में जाते हुए मनुष्य जो हैं वे अपने पुत्र के पुण्य के फल को कैसे पा सकेंगे?॥१०॥ **श्रीभगवान् ने कहा–** हे गरुड, वेद की प्रामाणिकता प्रत्यक्षप्रमाण से भी अधिक बलवती है। वेद से बताए गए धर्म की अमृतादिरूपता है॥११॥

नामगोत्रं पितॄणां वै प्रापकं हव्यकव्ययोः। श्राद्धस्य मन्त्रास् तद्वत् तु प्रापकाश् चैव भक्तितः॥१२॥
अचेतनानि चैतानि प्रापयन्ति कथन्त्विति। सुपर्ण नाऽवगन्तव्यं प्रापकं वच्मि तेऽपरम्॥१३॥
अग्निष्वात्तादयस् तेषामाधिपत्ये व्यवस्थिताः। काले न्यायागतं पात्रे विधिना प्रतिपादितम्॥१४॥
अन्नं नयन्ति तत्रैते जन्तुर् यत्रावतिष्ठते। नाम गोत्रं च मन्त्राश् च दत्तमन्नं नयन्ति ते॥१५॥
अपि योनिशतं प्राप्तांस् तांस् तृप्तिरुपतिष्ठति। तेषां लोकान्तरस्थानां विविधैर् नामगोत्रकैः॥१६॥
अपसव्यं क्षितौ दर्भे दत्ताः पिण्डास्त्रयस्तु वै। यान्ति तांस्तर्पयन्त्येवं प्रेतस्थानस्थितान् पितॄन्॥१७॥
अप्राप्तयातनास्थानाः श्रेष्ठा ये भुवि पञ्चधा। नानारूपास्तु जाता ये तिर्यग्योन्यादिजातिषु॥१८॥
यदाहारा भवन्त्येते पितरो यत्र योनिषु। तासुतासु तदाहारः श्राद्धान्नमुपतिष्ठति॥१९॥

पितरों के नाम और गोत्र का उच्चारण पितरों के उद्देश्य से होमे गए और दिए गए वस्तुओं को पहुँचाने वाला है। भक्तिपूर्वक उच्चरित श्राद्ध के मन्त्र भी उसी प्रकार पहुँचाने वाले हैं॥१२॥ अचेतन ये नाम और गोत्र तथा मन्त्र कैसे प्रापक हो सकते है? ऐसा नहीं सोचना चाहिए। और भी पहुँचाने वाला तुम को बताता हूँ॥१३॥ पितरों के अधिपति के रूप में रहने वाले अग्निष्वात्तादि जो हैं वे न्यायपूर्वक आए हुए और शास्त्रविहित काल में सत्पात्र ब्राह्मण में दिए गए अन्न को जहाँ परलोक गत प्राणी रहता है वहाँ ले जाते हैं। श्राद्ध में प्रयुक्त पितरों के नाम और गोत्र तथा मन्त्र जो हैं वे भी दिए गए अन्न को पितरों को ले जाते हैं॥१४-१५॥ जो सैकडों योनियों में प्राप्त पितर लोग हैं उन को भी श्राद्धदान से तृप्ति प्राप्त होती है। विविध नामों और गोत्रों से अपसव्य रीति से भूमि में बिछाए गए कुशों में दिए गए तीन पिण्ड तो दूसरे लोक में रहते हुए उन पितरों के पास जाते ही हैं और प्रेतस्थान में रहे हुए जो पितर लोग हैं उन को इस प्रकार तृप्त करते हैं॥१६-१७॥ अपने कर्म के प्रभाव से दूसरे जन्म में नरक के यातनास्थानों में अप्राप्त तथा लोक में जन्में हुए पाँच प्रकार के श्रेष्ठ प्राणी और जो भी तिर्यग्योन्यादि जातियों में जन्मे हुए नानारूप के अन्य प्राणी हैं ये सब पितर लोग जिस योनि में जिस आहार वाले होते हैं श्राद्ध में दिया गया अन्न उस-उस आहार के रूप में उपस्थित होता है॥१८-१९॥

यथा गोषु प्रनष्टासु वत्सो विन्दति मातरम्। तथान्नं नयते विप्रो जन्तुर् यत्राऽवतिष्ठते॥२०॥
पितरः श्राद्धभोक्तारो विश्वैर् देवैः सदा सह। एते श्राद्धं सदा भुक्त्वा पितॄन् सन्तर्पयन्त्यतः॥२१॥
वसुरुद्रादितिसुताः पितरः श्राद्धदेवताः। प्रीणयन्ति मनुष्याणां पितॄञ् श्राद्धेषु तर्पिताः॥२२॥
आत्मानं गुर्विणी गर्भमपि प्रीणाति वै यथा। दोहदेन तथा देवाः श्राद्धैः स्वांश्च पितॄन् नृणाम्॥२३॥
हृष्यन्ति पितरः श्रुत्वा श्राद्धकालमुपस्थितम्। अन्योन्यं मनसा ध्यात्वा सम्पतन्ति मनोजवम्॥२४॥
ब्राह्मणैः सह चाऽश्नन्ति पितरो ह्यन्तरिक्षगाः। वायुभूताश्च तिष्ठन्ति भुक्त्वा यान्ति परां गतिम्॥२५॥
निमन्त्रितास्तु ये विप्राः श्राद्धपूर्वदिने खग। प्रविश्य पितरस् तेषु भुक्त्वा यान्ति स्वमालयम्॥२६॥

जैसे गायों के झुण्ड के बीच में पडी हुई अपनी माता को बछडा खोजकर प्राप्त कर लेता है, वैसे ही श्राद्ध में भोजन करने वाला ब्राह्मण भी परलोक में गया हुआ प्राणी जहाँ रहता है वहाँ श्राद्ध में दिए गए अन्न को पहुँचाता है॥२०॥ पितर लोग सदाकाल विश्वेदेवों के साथ में श्राद्ध का भोग करते हैं। अत एव ये विश्वेदेव ही श्राद्ध का भोग करके पितरों को तृप्त करते हैं॥२१॥ श्राद्ध में सन्तृप्त किए गए श्राद्ध के देवता के रूप में रहने वाले वसु-रुद्र-आदित्यस्वरूप पितरलोग मनुष्य के पितरों को सन्तृप्त करते हैं॥२२॥ जैसे गर्भवती स्त्री दोहद (गर्भवती की अवस्था में हुई विशेष अभिलाषाओं) की पूर्ति से अपने को और गर्भ को भी प्रसन्न करती है वैसे ही देवता भी श्राद्धों से अपने को और मनुष्यों के पितरों को भी प्रसन्न करते हैं॥२३॥ श्राद्धकाल को उपस्थित सुनकर पितरलोग प्रसन्न होते हैं, वे एक दूसरे को मन में रखते हुए मन के वेग से तुल्य वेग से श्राद्ध में जुट जाते हैं॥२४॥ पितरलोग ब्राह्मणों के साथ में श्राद्ध में भोजन करते हैं, अन्तरिक्ष में चलने वाले वे वायुरूप में रहते हैं, श्राद्ध में भोजन करके परम गति को प्राप्त करते हैं॥२५॥ हे पक्षिन्, श्राद्ध से पूर्व के दिन में जो ब्राह्मण श्राद्ध में भोजन के लिए निमन्त्रित होते हैं उन में प्रविष्ट होकर पितरलोग श्राद्ध में भोजन करके अपने स्थान को चले जाते हैं॥२६॥

श्राद्धकर्त्रा तु यद्येकः श्राद्धे विप्रो निमन्त्रितः। उदरस्थः पिता तस्य वामपार्श्वे पितामहः॥२७॥
प्रपितामहो दक्षिणतः पृष्ठतः पिण्डभक्षकः। श्राद्धकाले यमः प्रेतान् पितॄंश् चापि यमालयात्॥२८॥
विसर्जयति मानुष्ये निरयस्थांश् च काश्यप। क्षुधार्ताः कीर्तयन्तश् च दुष्कृतं च स्वयंकृतम्॥२९॥
काङ्क्षन्ति पुत्त्रपौत्त्रेभ्यः पायसं मधुसंयुतम्। तस्मात् तांस् तत्र विधिना तर्पयेत् पायसेन तु॥३०॥

गरुड उवाच

स्वामिन् केनापि ते दृष्टा आगताः पितरो द्विजे। लोकादमुष्मादागत्य भुञ्जन्तो भुवि मानद॥३१॥

श्रीभगवानुवाच

गरुत्मञ् छृणु वक्ष्यामि यथा दृष्टास् तु सीतया। पितरो विप्रदेहे वै श्वसुराद्यास् त्रयः क्वचित्॥३२॥

यदि श्राद्धकर्ता ने श्राद्ध में एक ही ब्राह्मण को बुलाया है तो श्राद्धकर्ता का पिता उस ब्राह्मण के पेट में स्थित होंगे, वाम पार्श्व में पितामह (दादा) स्थित होंगे, दक्षिण पार्श्व में प्रपितामह (परदादा) स्थित होंगे और पिण्डभक्षक पितर पृष्ठभाग में स्थित होंगे। हे कश्यपसुत गरुड, श्राद्ध के समय में यमराज प्रेतों को, पितरों को और नरकस्थ प्राणियों को भी यमलोक से मनुष्यलोक में जाने के लिए छोड देते हैं। भूख से पीडित वे अपने से किए गए पापों का कीर्तन करते हुए पुत्र-पौत्रों से शहद से युक्त खीर की अभिलाषा करते हैं। इस लिए श्राद्ध में उन को खीर से तृप्त करे॥२७-३०॥ **गरुड ने कहा—** हे मानद स्वामिन्, ब्राह्मण में आए हुए और उस लोक से भूलोक में आकर श्राद्ध में भोजन करते हुए पितर लोग को किसी ने कभी देखा भी है क्या?॥३१॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे गरुड, सुनो, जिस प्रकार से श्वसुर इत्यादि तीन पितर लोगों को ब्राह्मण के देह में सीताजी ने कभी देखा था उस बात को मैं बताउँगा॥३२॥

गृहीत्वा पितुराज्ञां वै रामो वनमुपागमत्। ततः पुष्करयात्रार्थं रामोऽयात् सीतया सह॥३३॥
तीर्थं चापि समागत्य श्राद्धं प्रारब्धवांस्तु सः। फलं पक्वन्तु जानक्या सिद्धं रामे निवेदितम्॥३४॥
स्नातप्रियोक्तवाक्यात् तु सुस्नाता तमपालयत्। नभोमध्यगते सूर्ये काले कुतप आगते॥३५॥
आयाता ऋषयः सर्वे ये रामेण निमन्त्रिताः। तान् मुनीनागतान् दृष्ट्वा वैदेही जनकात्मका॥३६॥
रामाज्ञयाऽन्नमादाय परिवेष्टुमुपागता। अपासर्पत् ततो दूरे विप्रमध्ये तु संस्थिता॥३७॥
गुल्मैराच्छाद्य चात्मानं निगूढं सा स्थिता तदा। एकान्ते तु तदा सीतां ज्ञात्वा राघवनन्दनः॥३८॥
विमृश्य सुचिरं कालमिदं किमिति सत्वरम्। किञ्चित् क्वचिद् गता साध्वी त्रपायाः कारणेन हि॥
किं वा नभोजयन् विप्रान् सीतामन्वेषयाम्यहम्। विमृशन्नेवमेवं स स्वयं विप्रानभोजयत्॥४०॥

पिताजी की आज्ञा को लेकर राम वन गए थे। उस सयम में राम सीता के साथ में पुष्करतीर्थ की यात्रा में गए थे॥३३॥ तीर्थ में पहुँचकर राम ने श्राद्ध का प्रारम्भ भी किया। पक्व फल को लेकर सीता ने श्राद्धभोज्य अन्न सिद्ध होने की बात राम को निवेदित किया॥३४॥ मध्याह्नस्नान किए हुए प्रिय राम के वाक्य से सम्यक् मध्याह्नस्नान करके सीताजी उस सिद्ध श्राद्धभोज्य अन्न की रक्षा करती हुई रही। सूर्य आकाश के मध्य में प्राप्त होने पर और कुतपसंज्ञक श्राद्धकाल आने पर वे सब ऋषि जो राम से निमन्त्रित हुए थे आ गए। आए हुए उन मुनियों को देखकर जनक की पुत्री विदेहदेश में उत्पन्न सीताजी राम की आज्ञा से अन्न लेकर ऋषियों को अन्न परोसने के लिए आईं। ब्राह्मणों के बीच में उपस्थित सीताजी एकाएक वहाँ से हट गईं। उस समय में सीताजी अपने को झाडी से छिपाकर गुप्त होकर रह गईं। उस समय में सीता को एकान्त में रही हुई जानकर राम ने बहुत समयतक यह क्या है ऐसा सोचकर फिर कुछ जल्द ही लज्जा के हेतु से साध्वी सीता कुछ काल के लिए कहीं गई है, क्या मैं ब्राह्मणों को भोजन कराना छोडकर सीता का अन्वेषण करूँ ऐसा सोचते हुए राम ने स्वयम् ब्राह्मणों को भोजन परोसा॥३४-४०॥

गतेषु द्विजमुख्येषु प्रियां रामोऽब्रवीदिदम्। कथं लतासु लीना त्वं मुनीन् दृष्ट्वा समागतान्॥४१॥
तत् सर्वं मम तन्वङ्गि कारणं वद मा चिरम्। एवमुक्ता तदा भर्त्रा सीता साऽधोमुखी स्थिता।
मुञ्चन्ती चाऽश्रुसङ्घातं राघवं वाक्यमब्रवीत्॥४२॥

सीतोवाच

शृणु त्वं नाथ यद् दृष्टमाश्चर्यमिह यादृशम्॥४३॥
पिता तव मया दृष्टो ब्राह्मणाग्रे तु राघवः। सर्वाभरणसंयुक्तो द्वौ चान्यौ च तथाविधौ॥४४॥
दृष्ट्वा त्वत्पितरं चाऽहमपक्रान्ता तवाऽन्तिकात्। वल्कलाजिनसंवीता कथं राज्ञः पुरः प्रभो॥४५॥
भवामि रिपुवीरघ्न सत्यमेतदुदाहृतम्। स्वहस्तेन कथं देयं राज्ञे वा भोजनं मया॥४६॥
दासानामपि ये दासा नोपभुञ्जन्ति कर्हिचित्। तृणपात्रे कथं तस्मै अन्नं दातुं हि शक्नुयाम्॥४७॥

ब्राह्मण लोग चले जाने पर राम ने प्रिया को यह कहा कि आए हुए मुनियों को देखकर तुम कैसे लताओं में छिपगई? हे तन्वङ्गि, वह सब मुझ को बताओ, देर न करो। पति से इस प्रकार कही गई सीता अधोमुख होकर रह गई और आँसू की झडी को छोडती हुई राम को बताने लगी। सीता ने कहा— हे नाथ, जैसा जो अनूठा यहाँ देखा गया उस को आप सुनिए॥४१-४३॥ ब्राह्मण के अग्रभाग में मुझ से आप के पिताजी, सभी आभूषणों से युक्त, रघुकुलज दशरथ देखे गए। उसी प्रकार के अन्य दो पुरुष भी देखे गए॥४४॥ आप के पिताजी को देखकर मैं आप के समीप से दूर चली गई। हे वीरशत्रुओं को मारने वाले प्रभु, वल्कल और चर्म पहनने वाली मैं कैसे राजा के आगे हो जाऊँ, यह मैं ने सत्य कहा, मुझ से अपने हाथों से राजा को भोजन कैसे दिया जाय॥४५-४६॥ दासों के भी जो दास हैं वे भी जो जैसा अन्न कभी भी खाते नहीं हैं, वैसा अन्न तृण के पात्र में उन को मैं कैसे दे सकूंगी॥४७॥

याऽहं राज्ञा पुरा दृष्टा सर्वाभरणभूषिता। सा स्वेदमलदिग्धाङ्गी कथं यास्यामि भूपतिम्॥४८॥
अपकृष्टाऽस्मि तेनाऽहं त्रपया रघुनन्दन।

श्रीभगवानुवाच

इति श्रुत्वा प्रियावाक्यं रामो विस्मितमानसः॥४९॥
आश्चर्यमिति तज् ज्ञात्वा तदा स्वस्थानमागमत्। सीतया पितरो दृष्टा यथा तत् ते निवेदितम्॥५०॥
अपरं श्राद्धमाहात्म्यं किञ्चिच् छृणु समासतः। अमावस्यादिने प्राप्ते गृहद्वारे समास्थिताः॥५१॥
वायुभूताः प्रवाञ्छन्ति श्राद्धं पितृगणा नृणाम्। यावदस्तमयं भानोः क्षुत्पिपासासमाकुलाः॥५२॥
ततश् चास्तं गते सूर्ये निराशा दुःखसंयुताः। निःश्वसन्तश् चिरं यान्ति गर्हयन्तस् तु वंशजम्॥५३॥
तस्माच् छ्राद्धं प्रयत्नेन अमायां कर्तुमर्हति। यदि श्राद्धं प्रकुर्वन्ति पुत्राद्यास् तस्य बान्धवाः॥५४॥

जो मैं पुराकाल में राजा से सम्पूर्ण आभूषणों से विभूषित रूप में देखी गई थी वही मैं पसीने और मल से लिप्त अङ्ग वाली होकर राजा के समीप में कैसे जाउँगी॥४८॥ हे रघुकुलपुत्त्र, उसी कारण मैं लज्जा से दूर हटी हूँ। **श्रीभगवान् ने कहा—** प्रिया का ऐसा वाक्य सुनकर विस्मित चित्त वाले राम उस को आश्चर्य ही है ऐसा जानकर उस समय में अपने स्थान में आ गए। जैसे सीता से पितर लोग देखे गए थे,वह तुम को विदित करा दिया गया॥४९-५०॥ और भी कुछ श्राद्धमाहात्म्य सङ्क्षेप से सुनो। अमावस के दिन आने पर मनुष्यों के पितर लोग वायु के रूप में भूख और प्यास से पीडित होते हुए सूर्य के अस्त के समय तक घर के द्वार में उपस्थित होकर श्राद्ध की अभिलाषा करते हैं॥५१-५२॥ अमावस में श्राद्ध न करने पर सूर्य अस्त होते ही निराश और दुःखी होकर बहुत समयतक लम्बी-लम्बी सांस छोडते हुए और अपनी वंशज सन्तति की निन्दा करते हुए चले जाते हैं॥५३॥ अत एव मनुष्य को अमावस के दिन में प्रयत्नपूर्वक श्राद्ध करना चाहिए। यदि उन के पुत्रादि बान्धव श्राद्ध करते हैं तो पितर लोग जो गयाश्राद्ध से उद्धृत पितर लोग हैं उन के

उद्धृता ये गयाश्राद्धे ब्रह्मलोकं च तैः सह। भजन्ते क्षुत्पिपासा वा न तेषां जायते क्वचित्॥५५॥
तस्माच्छ्राद्धं प्रयत्नेन सम्यक् कुर्याद् विचक्षणः। तस्माच्छ्राद्धं चरेद् भक्त्या शाकैरपि यथाविधि॥५६॥
कुर्वीत समये श्राद्धं कुले कश्चिन् न सीदति। आयुः पुत्रान् यशः स्वर्गं कीर्तिं पुष्टिं बलं श्रियम्।५७।
पशून् सौख्यं धनं धान्यं प्राप्नुयात् पितृपूजनात्। देवकार्यादपि सदा पितृकार्यं विशिष्यते॥५८॥
देवताभ्यः पितृणां हि पूर्वमाप्यायनं शुभम्। ये यजन्ति पितॄन् देवान् ब्राह्मणांश् च हुताशनम्॥५९॥
सर्वभूतान्तरात्मानं मामेव हि यजन्ति ते। स्मार्तेन विधिना श्राद्धं कृत्वा स्वविभवोचितम्॥६०॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगत् प्रीणाति मानवः। अन्नप्रकिरणं यत् तु मनुष्यैः क्रियते भुवि॥६१॥
तेन तृप्तिमुपायान्ति ये पिशाचत्वमागताः। यच् चाम्बु स्नानवस्त्रेभ्यो भूमौ पतति खेचर॥६२॥

साथ में ब्रह्मलोक को जाते हैं, उन को कहीं भी भूख और प्यास नहीं लगती है॥५४-५५। इस लिए विचारशील मनुष्य (अमावस में) प्रयत्नपूर्वक अच्छी तरह उत्तम भोज्य-पेयों से श्राद्ध करे। इस लिए (अमावस मे) शास्त्र के विधान के अनुरूप अच्छा भोज्य-पेय न मिलने पर शाकों से भी भक्तिपूर्वक श्राद्ध करे॥५६॥ समय में श्राद्ध करे, श्राद्ध करने से कुल में कोई भी दुःखी नहीं रहता है। पितरों के पूजन से मनुष्य आयु, पुत्र, यश, स्वर्ग, कीर्ति, पुष्टि, बल, लक्ष्मी, पशु, सुख, धन, धान्य सब कुछ पा सकता है। सर्वदा ही देवकार्यों से पितृकार्य अधिक महत्त्वपूर्ण होता है॥५७-५८॥ देवताओं से पूर्व पितरों का आप्यायन (तृप्तीकरण) शुभ होता है। जो मनुष्य पितरों का, देवताओं का, ब्राह्मणों का और अग्नि का यजन-पूजन करते हैं वे सब ही सभी प्राणियों के अन्तरात्मा के रूप में स्थित मेरा (विष्णु का) ही यजन-पूजन करते हैं। स्व-स्व-गृह्यसूत्रादिरूप स्मृति में बताए गए विधि से अपनी सम्पत्ति के अनुरूप श्राद्धकर्म करके मनुष्य ब्रह्माजी से लेकर तृणगुच्छतक के जगत् को तृप्त करता है। श्राद्ध में मनुष्यों से जो अन्न भूमि में बिखेरा जाता है उस से जो पिशाचत्व में प्राप्त पितर लोग हैं वे तृप्त होते हैं। हे आकाशचारी पक्षिन्, श्राद्ध के लिए स्नान करते समय स्नान के वस्त्रों से जो जल भूमि में गिरता है उस से जो वृक्ष के रूप में प्राप्त पितर लोग हैं उन की तृप्ति होती है। श्राद्ध के समय में जो गन्धवासित जल भूमि में गिरता है

तेन ये तरुतां प्राप्तास् तेषां तृप्तिः प्रजायते। यानि गन्धाम्बूनि चैव पतन्ति धरणीतले॥६३॥
तेन चाऽऽप्यायनं तेषां ये देवत्वमुपागताः। ये चापि स्वकुलाद् बाह्याः क्रियाऽयोग्या ह्यसंस्कृताः।६४।
विपन्नास्ते तु विकिरसम्मार्जनजलाशिनः। भुक्त्वा चाऽऽचमनं यच्च जलं यच्चांह्रिसेवितम्॥६५॥
ब्राह्मणानां तथैवाऽन्यत् तेन तृप्तिं प्रयान्ति वै। पिशाचत्वमनुप्राप्ताः कृमिकीटत्वमेव ये॥६६॥
उद्धृतेष्वन्नपिण्डेषु भुवि ये चाऽन्नकाङ्क्षिणः। तैरेवाऽऽप्यायनं तेषां ये मनुष्यत्वमागताः॥६७॥
एवं वै यजमानानां तेषां चैव द्विजन्मनाम्। कश्चिज् जलान्नविक्षेपः शुचिरुच्छिष्ट एव वा॥६८॥
तेनाऽन्नेन कुले तेषां ये वै जात्यन्तरं गताः। भवत्याप्यायनं तेषां सम्यक् श्राद्धे कृते सति॥६९॥
अन्यायोपार्जितैर् द्रव्यैर् यच्छ्राद्धं क्रियते नरैः। तृप्यन्ति तेन चण्डाल-पुक्कसाद्युपयोनिषु॥७०॥

उस से जो देवत्व में प्राप्त पितर लोग हैं उन का आप्यायन (तृप्तीकरण) होता है। जो पितरलोग अपने कुल से बहिष्कृत हुए हैं, क्रिया के अयोग्य हैं, संस्काररहित अवस्था में मृत हैं वे सब विकर के अन्न को और सम्मार्जन के जल को भोगने वाले होते हैं। श्राद्ध में भोजन करके ब्राह्मणों से आचमन में प्रयुक्त जो जल होता है, पादधावन का जो जल होता है, ब्राह्मणों से उपभुक्त जो अन्य द्रव्य होता है उन से जो पितर लोग पिशाचत्व में और कृमिकीटत्व में प्राप्त हुए हैं वे तृप्ति पाते हैं॥५९-६६॥ अन्न के पिण्ड उत्थापित होने पर इस लोक में जो अन्न चाहने वाले लोग श्राद्ध शेष अन्न खाते हैं उन से उन पितरों का आप्यायन (तृप्तीकरण) होगा जो मनुष्यत्व में आ गए हैं॥६७॥ अच्छी तरह से श्राद्ध करने पर श्राद्ध के कर्ताओं का और श्राद्धभोजी ब्राह्मणों का शुद्ध अथवा जूठा भी जो कोई भी जल का और अन्न का विक्षेप होता है उस जल से और अन्न से यजमानों के कुल में जो कोई भी दूसरे जन्म में प्राप्त पितर लोग होते हैं उन सब का आप्यायन (तृप्तीकरण) होता है॥६८-६९॥ मनुष्यों से अन्याय से उपार्जित पदार्थों से जो श्राद्ध किया जाता है उस से चाण्डाल, पुक्कस इत्यादि उपयोनि में प्राप्त पितर लोग तृप्त होते हैं॥७०॥

एवं सम्प्राप्यते पक्षिन् यद् दत्तमिह बान्धवैः। श्राद्धं कुर्वद्भिरन्नाम्बुशाकैस् तृप्तिर् हि जायते॥७१॥
एतत् ते सर्वमाख्यातं यन् मां त्वं परिपृच्छसि। सद्यो देहान्तरप्राप्तिर् विलम्बेनाऽवनीतले॥७२॥
पृष्टवानसि तत् तेऽहं प्रवक्ष्यामि समासतः। सद्यो विलम्बितं चैवोभयथापि कलेवरम्॥७३॥
यतो हि मर्त्यः प्राप्नोति तद्विशेषं च मे शृणु। अधूमकज्योतिरिवाङ्गुष्ठमात्रः पुमांस्ततः॥७४॥
देहमेकं सद्य एव वायवीयं प्रपद्यते। यथा तृणजलौका हि पश्चात् पादं तदोद्धरेत्॥७५॥
स्थितिरग्र्यस्य पादस्य यदा जाता दृढा भवेत्। एवं देही पूर्वदेहं समुत्सृजति तं यदा॥७६॥
भोगार्थमग्रे स्याद् देहो वायवीय उपस्थितः। विषयग्राहकं यद्वन् म्रियमाणस्य चेन्द्रियम्॥७७॥
निर्व्यापारं तच् च देहे वायुनैव स गच्छति। शरीरं यदवाप्नोति तच् चाप्युत्क्राम्यति स्वयम्॥७८॥
गृहीत्वा स्वं विनिर्याति जीवो गर्भ इवाऽऽशयात्। उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम्।७९।

हे पक्षिन्, श्राद्ध करने वाले बान्धवों से जो दिया जाता है इस प्रकार पितरों से प्राप्त किया जाता है, श्राद्ध में दिए गए अन्न, जल और शाक इत्यादि से पितरों की तृप्ति होती ही है॥७१॥ जो मुझ को तुम पूछते हो यह सब तुम को बता दिया। भूमितल में मरने के बाद तत्काल दूसरे देह की प्राप्ति होती है अथवा विलम्ब से? यह प्रश्न जो तुम ने पूछा है उस का उत्तर सङ्क्षेप से मैं तुम को बताऊँगा। चूंकि मरा हुआ मनुष्य तत्काल भी दूसरा देह पाता है, विलम्ब से भी दूसरा देह पाता है, उस में जो विशेष बात है उस को भी मुझ से सुनो। मरने पर धूम से रहित ज्योति के सदृश अङ्गुष्ठपरिमाण का जीव एक वायवीय देह को तत्काल पाता है। जैसे जोंक अगले पाव की स्थिति जब दृढ होती है तब ही पिछले पाव को उठाती है वैसे ही जीव भी भोग के लिए आगे दूसरा वायवीय देह जब उपस्थित होगा तब ही उस पूर्वदेह को छोड देता है॥७२-७६॥ मरते हुए मनुष्य का विषयग्राहक जो इन्द्रिय होता है वह जैसे ही व्यापाररहित होकर देह में रहता है तब ही जीव वायु के साथ में जाता है और जो आगे वायवीय शरीर पाता है स्वयम् उसी में सङ्क्रान्त हो जाता है॥७७-७८॥ गर्भ जैसे गर्भाशय से अपने इन्द्रियों को लेकर निकलता है वैसे ही जीव भी

विमूढा नाऽनुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः। आतिवाहिकमित्येवं वायवीयं वदन्ति हि॥८०॥
एवं तु यातुधानानां तमेव च वदन्ति हि। सुपर्ण ईदृशो देहो नृणां भवति पिण्डजः॥८१॥
पुत्त्रादिभिः कृताश् चेत् स्युः पिण्डा दश दशाहिकाः। पिण्डजेन तु देहेन वायुजश् चैकतां व्रजेत्॥८२॥
पिण्डजो यदि नैव स्याद् वायुजोऽर्हति यातनाम्। देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा॥
तथा देहान्तरप्राप्तिः पक्षीन्द्रेत्यवधारय॥८३॥

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥८४॥

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः। न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥८५॥

पूर्वशरीर से अपने इन्द्रियादि को लेकर निकलता है। निकलते हुए जीव को अथवा शरीर में स्थित जीव को अथवा भोग करते हुए जीव को अथवा गुणों से युक्त जीव को भी मूढ लोग नहीं देख सकते हैं, ज्ञानचक्षु से युक्त पुरुष तो देखते ही हैं। वायवीय देह को आतिवाहिक देह कहते हैं॥७९-८०॥ इसी प्रकार भूत-प्रेत-पिशाचों का भी केवल वायवीय देह होने की बात विज्ञ लोग करते हैं। हे गरुड, मनुष्यों का पिण्डों से उत्पन्न देह भी ऐसा (वायवीयरूप) ही होता है॥८१॥ यदि पुत्रादि से दश दिनों के दश पिण्ड किए जाते हैं तो उन पिण्डों से उत्पन्न देह से वायवीय शरीर भी एकता में जाता है॥८२॥ यदि पिण्डों से होने वाला शरीर (पिण्डदानादि के अभाव से) उत्पन्न नहीं होगा तो वायवीय शरीर ही यातना को भोगता है। हे पक्षियों में श्रेष्ठ, जैसे जीव का इस देह में बालकपन से जवानी में जाना और जवानी से वृद्धत्व में जाना होते हैं वैसे ही एक शरीर से दूसरे शरीर में जाना भी होता है, इस बात का तुम निश्चय करो। जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को छोडकर अन्य नवीन वस्त्र लेता है वैसे ही जीव पुराने शरीरों को छोडकर अन्य नवीन शरीर में जाता है॥८३-८४॥ इस (जीवात्मा) को शस्त्र नहीं छेदते हैं, आग नहीं जलाती है, इस को जल

वायवीयां तनुं याति सद्य इत्युक्तमेव ते। प्राप्तिर् विलम्बतो यस्य तं देहं खलु मे शृणु॥८६॥
क्वचिद् विलम्बतो देहं पिण्डजं स समाप्नुयात्। अथो गतो याम्यलोकं स्वीयकर्मानुसारतः॥८७॥
चित्रगुप्तस्य वाक्येन निरयाणि भुनक्ति सः। यातनाः समवाप्याऽथ पशुपक्ष्यादिकीं तनुम्॥८८॥
यां गृह्णाति नरः सा स्यान् मोहेन ममतास्पदम्। शुभाशुभं कर्मफलं भुक्त्वा मुच्येत मानवः॥८९॥

गरुड उवाच

तीर्त्वा दुःखभवाम्भोधिं भवन्तं कथमाप्नुयात्। बहुपातकयुक्तोऽपि तद् वदस्व दयानिधे॥९०॥
भूयो दुःखस्य संसर्गो नरस्य न भवेद् यथा। ब्रूहि शुश्रूषमाणस्य पृच्छतो मे रमापते॥९१॥

श्रीकृष्ण उवाच

स्वेस्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः। स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच् छृणु॥९२॥

भी गीला नहीं करता है और वायु भी नहीं सुखाता है॥८५॥ मरा हुआ पुरुष तत्काल ही वायवीय शरीर में जाता है, यह बात तो तुम को बताई ही गई है। जिस देह की प्राप्ति विलम्ब से होती है उस देह को मुझ से सुनो॥८६॥ कहीं कहीं मृत व्यक्ति पिण्डों से होने वाले शरीर को विलम्ब से प्राप्त करेगा। अपने कर्म के अनुसार यमलोक में गया हुआ जो मनुष्य है वह चित्रगुप्त के वचन से नरकों को भोगता है। नरक में यातना भोगने के बाद मनुष्य पशु-पक्षी इत्यादि का जो शरीर लेता है मोहवश वह शरीर भी ममता का स्थान हो जाता है। मनुष्य कर्म के शुभ अथवा अशुभ फल का भोग करके उस कर्म के परिणाम से मुक्त होता है॥८८-८९॥ **गरुड ने कहा—** हे दया के निधान, बहुत से पातकों से युक्त मनुष्य भी दुःखपूर्ण संसारसागर से पार होकर आप को कैसे पा सकेगा इस बात को बताइए॥९०॥ हे रमापते, मनुष्य का फिर दुःख से सम्पर्क कैसे नहीं होगा इस बात को पूछने वाले और सुनने की इच्छा रखने वाले मुझ को बताइए॥९१॥ **श्रीकृष्ण ने कहा—** अपने-अपने शास्त्रव्यवस्थापित कर्म में रमने वाला मनुष्य मुक्ति को प्राप्त करता है। अपने कर्म में अत्यन्त रमने वाला मनुष्य जैसे मुक्ति

कर्मविभ्रष्टकालुष्यो वासुदेवानुचिन्तया। बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्याऽऽत्मानं नियम्य च॥९३॥
शब्दादीन् विषयांस् त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य चं। विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः॥९४॥
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः। अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्॥९५॥
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते। अतः परं नृणां कृत्यं नास्ति कश्यपनन्दन॥९६॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे
श्राद्धस्य तृप्तिदत्वादिनिरूपणं नाम दशमोऽध्यायः॥

को पाता है उस को सुनो॥९२॥ अपने शास्त्रोक्त कर्मों से शरीर-वचन-चित्तों की कलुषता को हटाने वाला मनुष्य वासुदेव (परमात्मा) के चिन्तन से विशुद्ध बुद्धि से युक्त होकर धैर्य से मन को वश में करके इन्द्रियों के शब्द स्पर्श इत्यादि विषयों का त्याग करके राग और द्वेष को हटाकर एकान्त में रहने वाला, लघुभोजन करने वाला; वाणी, शरीर और मन को संयत रखने वाला, ध्यान-योग में लगे रहने वाला और नित्य वैराग्य का अच्छी तरह आश्रय करने वाला मनुष्य अहङ्कार, बल, गर्व, कामनाएं, क्रोध और जनधनादिसङ्ग्रह को छोडकर किसी भी वस्तु में ममता न रखकर शान्त होने पर ब्रह्मभाव में प्राप्त हो सकता है। हें कश्यपपुत्र, इस के बाद मनुष्यों का कोई कर्तव्य नहीं रहता है॥९३-९६॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में
श्राद्ध के तृप्तिदत्वादि का निरूपण करने वाला दसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥१०॥

अथ एकादशोऽध्यायः

गरुड उवाच

मानुषत्वं लभेत् कस्मान् मृत्युमाप्नोति तत् कथम्। म्रियते कः सुरश्रेष्ठ देहमाश्रित्य कुत्रचित्॥१॥
इन्द्रियाणि कुतो यान्ति ह्यस्पृश्यः स कथं भवेत्। क्व कर्माणि कृतानीह कथं भुङ्क्ते प्रसर्पति॥
प्रसादं कुरु मे मोहं छेत्तुमर्हस्यशेषतः। काश्यपोऽहं सुरश्रेष्ठ विनतागर्भसम्भवः॥
यमलोकं कथं यान्ति विष्णुलोकं च मानवाः॥३॥

श्रीकृष्ण उवाच

परस्य योषितं हृत्वा ब्रह्मस्वमपहृत्य च॥४॥

गरुड ने कहा— हे देवताओं में श्रेष्ठ, जीव मनुष्यत्व को किस कारण से प्राप्त करता है? उस लोकप्रसिद्ध मृत्यु को कैसे प्राप्त करता है? देह में आश्रित होकर कहीं भी कौन मरता है?॥१॥ इन्द्रिय कहाँ जाते हैं? वह कैसे अस्पृश्य हो जाता है? इस गतिशील संसार में अपने किए गए कर्मों के फल को जीव कहाँ और कैसे भोगता है? कैसे चलता है?॥२॥ हे देवताओं में श्रेष्ठ, मैं विनता के गर्भ से उत्पन्न कश्यपपुत्र हूँ, मुझे अनुग्रह कीजिए, मेरे अज्ञान को निश्शेष करके दूर कीजिए। मनुष्य कैसे यमलोक में जाते हैं और कैसे विष्णुलोक में जाते हैं?॥३॥ श्रीकृष्ण ने कहा— दूसरे की स्त्री का हरण करके और दूसरे के धन का अपहरण करके भी मनुष्य दूसरे जन्म में वन में निर्जन स्थल में ब्रह्मराक्षस हो जाता है। रत्नों को चुराने

अरण्ये निर्जने देशे जायते ब्रह्मराक्षसः। हीनजातौ प्रजायेत रत्नानामपहारकः॥५॥
यंयं काममभिध्यायेत् स तल्लिङ्गोऽभिजायते। नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः॥६॥
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः। वाक् चक्षुर् नासिका कर्णौ गुदं मूत्रस्य सञ्चरः॥७॥
अण्डजादिकजन्तूनां छिद्राण्येतानि सर्वशः। आनाभेर् मूर्धपर्यन्तमूर्ध्वच्छिद्राणि चाऽष्ट वै॥८॥
सन्तः सुकृतिनो मर्त्या ऊर्ध्वच्छिद्रेण यान्ति वै। मृताहे वार्षिकं यावद् यथोक्तविधिना खग॥९॥
कुर्यात् सर्वाणि कर्माणि निर्धनोऽपि हि मानवः। देहे यत्र वसेज् जन्तुस् तत्र भुङ्क्ते शुभाशुभम्॥१०॥
मनोवाक्कायजान् दोषांस् तथा भुङ्क्ते खगेश्वर। मृतः स सुखमाप्नोति मायापाशैर् न बध्यते।

वाला नीच जाति में जन्म पाता है॥४-५॥ मरण के समय में मनुष्य जिस-जिस वस्तु का ध्यान करता है दूसरे जन्म में उसी-उसी वस्तु के चिह्न से युक्त होकर जन्म लेता है। इस जीवात्मा को शस्त्र नहीं छेदते हैं, अग्नि भी इस को नहीं जलाती है, इस को जल भी गीला नहीं करता है और वायु भी इस को नहीं सुखाता है। मुख, आँखे, नाक, कान, गुदा, मूत्रमार्ग ये अण्डज जरायुज इत्यादि प्राणियों के शरीर में वर्तमान सब छिद्र हैं। नाभि से शिरतक आठ ऊर्ध्वच्छिद्र हैं॥६-८॥ सन्त (परमात्मा को और उस को प्राप्त करने का वर्णाश्रमधर्मपालनादि वैदिक मार्ग के अस्तित्व को स्वीकार करने वाले) और सुकर्म करने वाले जीव मरण के समय में ऊर्ध्वच्छिद्र से शरीर से निकलते हैं। हे पक्षिन्, निर्धन मनुष्य भी वार्षिकतक मृततिथि में शास्त्र में बताए गए विधि से सभी कर्म करे। जीव जिस देह में वास करेगा वहीं अपने कर्मों का शुभ अथवा अशुभ फल भोगेगा॥९-१०॥ हे पक्षियों के स्वामिन्, उसी प्रकार जीव उस शरीर में मन, वचन तथा शरीर में उत्पन्न दोषों का भोग करता है। जो मनुष्य मायापाशों से नहीं बँधा जाता है वह मरने पर सुख पाता है, जो मनुष्य

पाशबद्धो नरो यस्तु विकर्मनिरतो भवेत् ॥११॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे ऊर्ध्वाधोगतिज्ञापकोत्क्रमणद्वारनिरूपणं नामैकादशोऽध्यायः॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

एवं ते कथितस् तार्क्ष्य जीवितस्य विनिर्णयः। मानुषाणां हितार्थाय प्रतत्वविनिवृत्तये ॥१॥

चतुरशीतिलक्षाणि चतुर्भेदाश् च जन्तवः। अण्डजाः स्वेदजाश् चैव उद्भिज्जाश् च जरायुजाः ॥२॥

मायापाशों से बँधा गया है वह तो अशास्त्रीय कर्मों में रमता है (और उस से मरने पर दुःख पाता है) ॥११॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में ऊर्ध्वगति का और अधोगति का ज्ञापन करने वाले उत्क्रमणद्वार का निरूपण करने वाला ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥११॥

श्रीकृष्ण ने कहा— हे गरुड, मनुष्यों के हित के लिए और प्रेतत्व की निवृत्ति के लिए इस प्रकार से जीवन का निर्णय तुम को बताया गया ॥१॥ जन्तु चौरासीलाख प्रकार के और चार श्रेणी के हैं। जन्तु कोई अण्डों से निकलने वाले, कोई पसीने से उत्पन्न होने वाले, कोई भूमि को वेध कर निकलने

एकविंशतिलक्षाणि अण्डजाः परिकीर्तिताः। स्वेदजाश् च तथा प्रोक्ता उद्भिज्जाश् च क्रमेण तु।।३।।
जरायुजास् तथा प्रोक्ता मनुष्याद्यास्तथा परे। सर्वेषामेव जन्तूनां मानुषत्वं हि दुर्लभम्।।४।।
पञ्चेन्द्रियनिधानत्वं महापुण्यैरवाप्यते। ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रास् तत्परजातयः।।५।।
रजकश् चर्मकारश् च नटो वरुड एव च। कैवर्त-मेद-भिल्लाश् च सप्तैते ह्यन्त्यजाः स्मृताः।।६।।
म्लेच्छ-डुम्ब-विभेदेन जातिभेदास्त्वनेकशः। जन्तूनामेव सर्वेषां जातिभेदाः सहस्रशः।।७।।
जन्तूनामेव सर्वेषां भेदाश् चैव सहस्रशः। आहारो मैथुनं निद्रा भयं क्रोधस् तथैव च।।८।।
सर्वेषामेव जन्तूनां विवेको दुर्लभः परः। एकपादादि-रूपेण देहभेदास् त्वनेकशः।।९।।
कृष्णसारो मृगो यत्र धर्मदिशः स उच्यते। ब्रह्माद्या देवताः सर्वास् तत्र तिष्ठन्ति सर्वशः।।१०।।

वाले और कोई जरायु (गर्भ की ऊपर की झिल्ली) से निकलने वाले हैं।।२।। अण्डों से निकलने वाले जन्तु इक्कीस लाख बताए गए हैं। क्रमशः पसीने से निकलने वाले और भूमि को वेध कर निकलने वाले भी उतने ही बताए गए हैं।।३।। मनुष्य इत्यादि जरायु से निकलने वाले अन्य प्राणी भी उतने ही बताए गए हैं। सभी जन्तुओं के लिए मनुष्यत्व दुर्लभ है।।४।। पाँच ज्ञानेन्द्रियों का आश्रयरूप मनुष्यशरीर बडे पुण्यों से पाया जाता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तत्तद्-गुणकर्मों में परायण जातियाँ हैं।।५।। रजक, चर्मकार, नट, वरुड, कैवर्त, मेद और भिल्ल ये सात अन्त्यज समझे गए हैं।।६।। म्लेच्छ, डुम्ब इत्यादि भेदों से मनुष्य-जातिभेद अनेक हैं। सभी जन्तुओं के जाति भेद हजारों हैं।।७।। सभी जन्तुओं के व्यक्तिभेद भी हजारों हैं। आहार, मैथुन, निद्रा, भय और क्रोध सभी जन्तुओं में होता हैं, किन्तु विवेक परम दुर्लभ होता है। एक पैर वाले, दो पैर वाले इत्यादि प्रकार के देहों के भेद अनेक हैं।।८-९।। जिस देश में कृष्णसार मृग होता है वह देश धर्मकृत्य के लिए योग्य देश कहा जाता है। उस देश में ब्रह्मादि सब देवता सर्वांश में वास करते हैं।।१०।।

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां मतिजीविनः। मतिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः॥११॥
मानुष्यं यः समासाद्य स्वर्गमोक्षैकसाधकम्। तयोर् न साधयेदेकं तेनाऽऽत्मा वञ्चितो ध्रुवम्॥१२॥
इच्छति शती सहस्रं सहस्री लक्षमीहते कर्तुम्। लक्षाधिपती राज्यं राजापि सकलां धरां लब्धुम्॥
चक्रधरोऽपि सुरत्वं सुरभावे सकलसुरपतिर् भवितुम्। सुरपतिरूर्ध्वगतित्वं तथापि न निवर्तते तृष्णा॥
तृष्णया चाभिभूतस् तु नरकं प्रतिपद्यते। तृष्णामुक्तास् तु ये केचित् स्वर्गवासं लभन्ति ते॥१५॥
आत्माधीनः पुमाल्ँ लोके सुखी भवति निश्चितम्। शब्दः स्पर्शश् च रूपं च रसो गन्धश् च तद्गुणाः॥
तथा च विषयाधीनो दुःखी भवति निश्चितम्॥१७॥

पदार्थों में प्राणी श्रेष्ठ हैं, प्राणियों में बुद्धिजीवी प्राणी श्रेष्ठ हैं, बुद्धियुक्त प्राणियों में मनुष्य श्रेष्ठ हैं, मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ समझे गए हैं॥११॥ जो प्राणी स्वर्ग का और मोक्ष का एकमात्र साधक मनुष्यत्व को पाकर भी स्वर्ग और मोक्ष में से एक को भी सिद्ध नहीं करेगा उस ने अवश्य ही अपने को वञ्चित किया॥१२॥ सौ निष्क का स्वामी हजार निष्क, हजार निष्क का स्वामी लाख निष्क, लाख निष्क का स्वामी राज्य पाना चाहता है, राजा भी सम्पूर्ण पृथ्वी को पाना चाहता है॥१३॥ सम्पूर्ण पृथ्वी को स्वाधीन करने वाला चक्रवर्ती राजा देवत्व पाना चाहता है, देवत्व प्राप्त होने पर वह सम्पूर्ण देवों का स्वामी (इन्द्र) होना चाहता है, देवों का स्वामी होने पर भी ऊर्ध्वगतित्व में जाना चाहता है, तथापि तृष्णा नहीं निवृत्त होती है॥१४॥ तृष्णा से व्याप्त मनुष्य नरक में जाता है, जो कोई तृष्णा से मुक्त पुरुष हैं वे स्वर्गवास को पाते हैं॥१५॥ स्वाधीन मनुष्य लोक में निश्चित रूप में सुखी होता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध तत्त्वों के गुण हैं, ये ही इन्द्रियों के विषय हैं। जैसे स्वाधीन मनुष्य सुखी होता है वैसे ही विषय का अधीन मनुष्य निश्चित रूप में दुःखी होता है॥१६-१७॥ मृग, हाथी. पतङ्ग, भौंरा, और मत्स्य ये पाँच शब्द,

कुरङ्ग-मातङ्ग-पतङ्ग-भृङ्ग-मीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च।
एकः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च॥१८॥
पितृमातृमयो बाल्ये यौवने दयितामयः। पुत्त्रपौत्त्रमयश् चान्ते मूढो नाऽऽत्ममयः क्वचित्॥१९॥
लोहदारुमयैः पाशैः पुमान् बद्धो विमुच्यते। पुत्त्रदारमयैः पाशैर् नैव बद्धो विमुच्यते॥२०॥
एकः करोति पापानि फलं भुङ्क्ते महाजनः। भोक्तारो विप्रयुज्यन्ते कर्ता दोषेण लिप्यते॥२१॥
कोऽपि मृत्युं न जयति बालो वृद्धो युवापि वा। सुखदुःखाधिको वापि पुनरायाति याति च॥२२॥
सर्वेषां पश्यतामेव मृतः सर्वं परित्यजेत्। एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते॥२३॥
एकोऽपि भुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम्। मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं क्षितौ॥२४॥

स्पर्श इत्यादि पाँच विषयों से ही मारे जाते हैं। अपने स्वर्ग-मोक्षरूप लक्ष्य को भूलने वाला एक ही मनुष्य, जो पाँचों ही ज्ञानेन्द्रियों से शब्दादि पाँचों ही विषयों का सेवन करता है, वह कैसे नहीं मारा जाता है? (मारा ही जाता है)॥१८॥ मनुष्य बालककाल में अपने माता-पिता का ही वार-वार स्मरण करता है, जवानी में वार-वार प्रेयसी का ही स्मरण करता है, वृद्धावस्था में वार-वार पुत्त्र-पौत्त्रों की चिन्ता में डूबा रहता है, अविवेकी मनुष्य कभी भी आत्मचिन्तन में डूबता नहीं॥१९॥ लोहे के और काठ के पाशों (बन्धनों) से बँधा हुआ मनुष्य समय आने पर मुक्त हो जाता है, किन्तु पुत्त्र-पत्नीरूप पाशों से बँधा हुआ मनुष्य कभी मुक्त नहीं होता है॥२०॥ एक मनुष्य पाप करता है उस का फल बडा जनसमुदाय भोगता है। भोग करने वाले लोग पाप से मुक्त होते हैं, पाप करने वाला पापफलरूप दोष से लिप्त होता है॥२१॥ बालक अथवा वृद्ध अथवा युवक अथवा अधिक सुख वाला अथवा अधिक दुःख वाला कोई भी मृत्यु को नहीं जीतता है, वार-वार इस लोक में आता है और जाता है॥२२॥ मरने वाला मनुष्य सब के देखते-देखते ही सब कुछ छोड देता है। प्राणी अकेला ही जन्म लेता है और अकेला ही मरता है॥२३॥ धर्म के फल को भी अकेला ही भोगता है, पाप के फल को भी अकेला ही भोगता है। मृत शरीर

बान्धवा विमुखा यान्ति धर्मस् तमनुगच्छति। गृहेष्वर्था निवर्तन्ते श्मशानान् मित्रबान्धवाः॥२५॥
शरीरं वह्निरादत्ते सुकृतं दुष्कृतं व्रजेत्। शरीरं वह्निना दग्धं पुण्यं पापं सह स्थितम्॥२६॥
शुभं वा यदि वा पापं भुङ्क्ते सर्वत्र मानवः। यदनस्तमिते सूर्ये न दत्तं धनमर्थिनाम्॥२७॥
न जाने तस्य तद् वित्तं प्रातः कस्य भविष्यति। रारटीति धनं तस्य को मे भर्ता भविष्यति॥२८॥
न दत्तं द्विजमुख्येभ्यः परोपकृतये तथा। पूर्वजन्मकृतात् पुण्याद् यल्लब्धं बहु चाऽल्पकम्॥२९॥
तदीदृशं परिज्ञाय धर्मार्थे दीयते धनम्। धनेन धार्यते धर्मः श्रद्धापूतेन चेतसा॥३०॥
श्रद्धाविरहितो धर्मो नेहाऽमुत्र च तत्फलम्। धर्माच् च जायते ह्यर्थो धर्मात् कामोऽपि जायते॥३१॥
धर्म एवाऽपवर्गाय तस्माद् धर्मं समाचरेत्। श्रद्धया साध्यते धर्मो बहुभिर् नार्थराशिभिः॥३२॥

को लकडी और मिट्टी के ढेले की तरह भूमि में छोडकर बान्धवलोग विमुख होकर जाते हैं, धर्म उस का अनुगमन करता है। धन घर में ही निवृत्त हो जाता है, मित्र और बान्धव श्मशान से निवृत्त होते हैं॥२४-२५॥ मृतशरीर को आग ले लेती है, धर्म और पाप साथ में जाते है, शरीर आग से जल गया होता है, पुण्य और पाप जीव के साथ में स्थित होते हैं॥२६॥ अपना शुभ अथवा पाप जो कर्म है मनुष्य उसी का फल सर्वत्र भोगता है। सूर्य का अस्त न होनेतक ही जो धन अर्थपेक्षी जनों को नहीं दिया गया है मैं नहीं जानता हूँ कि उस का वह धन कल किस का होगा। यदि पूर्वजन्म में किए गए पुण्य से प्राप्त थोडा या बहुत जो धन है वह श्रेष्ठ ब्राह्मणों को नहीं दिया गया और परोपकार के लिए भी नहीं लगाया गया तो उस का वह धन 'मेरा मालिक कौन होगा, मेरा मालिक कौन होगा' ऐसा वार-वार चिल्लाता है॥२७-२९॥ ऐसी बात को जानकर धर्म के लिए धन दिया जाता है। श्रद्धा से शुद्ध धन से और श्रद्धा से शुद्ध मन से भी धर्म धारित होता है॥३०॥ जो श्रद्धारहित धर्म है उस का इस लोक में और परलोक में भी सुफल नहीं होता है। धर्म से अर्थ (धन) उत्पन्न होता है, धर्म से ही काम (सुख) भी उत्पन्न होता है, धर्म ही मोक्ष के लिए भी होता है, इस लिए मनुष्य धर्म करे। धर्म श्रद्धा से सिद्ध होता है, केवल बडे

अकिञ्चना हि मुनयः श्रद्धावन्तो दिवं गताः। अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस् तप्तं कृतं च यत्॥
असदित्युच्यते पक्षिन् प्रेत्य चेह न तत्फलम्॥३३॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे मृतस्य धर्ममात्रानुयायित्वनिरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

गरुड उवाच

कर्मणा केन देवेश प्रेतत्वं नैव जायते। पृथिव्यां सर्वजन्तूनां तद् ब्रूहि परमेश्वर॥१॥

धनराशियों से नहीं। धन से रहित होने पर भी उत्कृष्ट श्रद्धा से युक्त मुनि लोग स्वर्ग गए। अश्रद्धा से किए गए होम, दान, तप और अन्य जो कुछ भी कर्म होते हैं वे सब असत् कहे जाते हैं; हे पक्षिन्, उन का इस लोक में और परलोक में भी सुफल नहीं होता है॥३१-३३॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में मृतक का धर्ममात्र से अनुगमन का निरूपण करने वाला बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥१२॥

गरुड ने कहा— हे देवताओं के स्वामिन्, हे परमेश्वर, पृथिवी में सभी प्राणियों का किस कर्म से प्रेतत्व नहीं होता है, वह बताइए॥१॥

श्रीकृष्ण ने कहा— अब सङ्क्षेप में कहूँगा, मोक्ष की कामना करने वाले मनुष्यों को मृत्यु के दिन से लेकर किए जाने वाला और्ध्वदेहिक कृत्य अपने

श्रीकृष्ण उवाच

अथ वक्ष्यामि सङ्क्षेपात् क्षयाहादौर्ध्वदैहिकम्। स्वहस्तेनैव कर्तव्यं मोक्षकामैस्तु मानवैः॥२॥
स्त्रीणामपि विशेषेण पञ्चवर्षाधिके शिशौ। वृषोत्सर्गादिकं कर्म प्रेतत्वविनिवृत्तये॥
वृषोत्सर्गादृते नाऽन्यत् किञ्चिदस्ति महीतले॥३॥
जीवन् वापि मृतो वापि वृषोत्सर्गं करोति यः। प्रेतत्वं न भवेत् तस्य विना दानमखव्रतैः॥४॥

गरुड उवाच

कस्मिन् काले वृषोत्सर्गं जीवन् वापि मृतोऽपि वा। कुर्यात् सुरवरश्रेष्ठ ब्रूहि मे मधुसूदन॥५॥
किं फलं तु भवेदन्ते कृतैः श्राद्धैस्तु षोडशैः॥६॥

ही हाथों से करना चाहिए॥२॥ स्त्रियों का भी, विशेष करके पाँच वर्ष से अधिक के शिशु का भी प्रेतत्व प्राप्ति के परिहार के लिए वृषोत्सर्गादि औध्र्वदेहिक कृत्य करना चाहिए। वृषोत्सर्ग को छोडकर दूसरा पृथिवीतल में प्रेतत्व के परिहार के लिए समुचित कोई कर्म नहीं है॥३॥ जो जीवित व्यक्ति स्वयम् अथवा मृत व्यक्ति प्रतिनिधि द्वारा वृषोत्सर्ग करता है उस का अन्य दानयज्ञों के विना भी प्रेतत्व नहीं होगा॥४॥ गरुड ने कहा— हे मधुदैत्य को मारने वाले उत्तम देवों में श्रेष्ठ, जीवित मनुष्य स्वयम् अथवा मृत व्यक्ति प्रतिनिधि द्वारा किस काल में वृषोत्सर्ग करे, इस बात को मुझ को बताइए॥५॥ जीवित के अन्त में (मृत्यु होने पर) किए गए सोलह श्राद्धों से क्या फल मिलता है?॥६॥

श्रीकृष्ण उवाच

अकृत्वा तु वृषोत्सर्गं कुरुते पिण्डपातनम्। नोपतिष्ठति तच् छ्रेयो दातुः प्रेतस्य निष्फलम्॥७॥
एकादशाहे प्रेतस्य यस्य नोत्सृज्यते वृषः। प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि॥८॥

गरुड उवाच

सर्पाद् धि प्राप्तमृत्यूनामग्निदाहादि न क्रिया। जलेन शृङ्गिणा वापि शस्त्राद्यैर् म्रियते यदि॥९॥
असन्मृत्युमृतानां च कथं शुद्धिर् भवेत् प्रभो। एतन् मे संशयं देव च्छेत्तुमर्हस्यशेषतः॥१०॥

श्रीकृष्ण उवाच

षण्मासैर् ब्राह्मणः शुध्येद् युग्मे सार्धे तु बाहुजः। सार्धमासेन वैश्यस् तु शूद्रो मासेन शुध्यति॥११॥
दत्त्वा दानान्यशेषाणि सुतीर्थे म्रियते यदि। ब्रह्मचारी शुचिर् भूत्वा न स यातीह दुर्गतिम्॥१२॥

श्रीकृष्ण ने कहा— वृषोत्सर्ग किए विना पिण्डदान करता है तो उस का शुभ फल प्राप्त नहीं होता है, दाता के लिए और मृत व्यक्ति के लिए भी वह पिण्डदानकर्म निष्फल होता है॥७॥ मृत्यु के ग्यारहवें दिन में जिस के लिए वृषोत्सर्ग नहीं किया जाता है सैकडों श्राद्ध देने पर भी उस का प्रेतत्व स्थिर रहता है॥८॥ गरुड ने कहा— सर्प से जिन का मृत्यु हुआ है उन का अग्नि से दाह इत्यादि और्ध्वदेहिक कृत्य नहीं होता है, जल से अथवा सींग वाले प्राणी से अथवा शस्त्रादि से यदि कोई मरता है तो हे प्रभो, उन दुर्मृत्युओं से मरने वालों की शुद्धि कैसे होगी; हे देव, मेरे इस संशय को निश्शेष करके हटाइए॥९-१०॥ श्रीकृष्ण ने कहा— दुर्मरण से मरने वाला ब्राह्मण छः महीनों में शुद्ध होगा, क्षत्रिय साढे दो महीनों में, वैश्य साढे एक महीने में और शूद्र एक महीने में शुद्ध होता है॥११॥ सभी आवश्यक दान देकर यदि कोई ब्रह्मचर्य करता हुआ शुद्ध होकर पवित्र तीर्थ में मरता है तो वह इस लोक में दुर्गति में नहीं पडता है॥१२॥

वृषोत्सर्गादिकं कृत्वा यतिधर्मं समाचरेत्। यतित्वे मृत्युमाप्नोति स गच्छेद् ब्रह्म शाश्वतम्॥१३॥
विकर्म कुरुते यस्तु शिष्टाचारविवर्जितः। वृषोत्सर्गादिकं कृत्वा न गच्छेद् यमशासनम्॥१४॥
पुत्त्रो वा सोदरो वापि पौत्त्रो बन्धुजनस्तथा। गोत्रिणश् चार्थभागी च मृते कुर्याद् वृषोत्सवम्॥१५॥
पुत्त्राभावे तु पत्नी स्याद् दौहित्रो दुहितापि वा। पुत्त्रेषु विद्यमानेषु वृषं नान्येन कारयेत्॥१६॥

गरुड उवाच

पुत्त्रा यस्य न विद्यन्ते नरा नार्यः सुरेश्वर। एतन् मे संशयं देव च्छेत्तुमर्हस्यशेषतः॥१७॥

श्रीकृष्ण उवाच

अपुत्त्रस्य गतिर् नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च। तस्मात् केनाप्युपायेन पुत्त्रस्य जननं चरेत्॥१८॥

वर्णाश्रमधर्मी मनुष्य वृषोत्सर्गादि और्ध्वदेहिक कृत्य करके सन्यासी के धर्म का आचरण करेगा और सन्यासी की अवस्था में मृत्यु पाता है तो वह शाश्वत ब्रह्मलोक में जाएगा॥१३॥ जो व्यक्ति शास्त्र में उपदिष्ट अपने आचार से रहित होता है और वर्णाश्रमादिविरुद्ध कर्म करता है वह भी वृषोत्सर्गादि और्ध्वदेहिक कृत्य करने पर यमराज के शासन में नहीं जाएगा॥१४॥ मनुष्य मरने पर उस का पुत्र अथवा सहोदर भाई अथवा पौत्र अथवा बन्धुजन अथवा सगोत्र लोग अथवा मृतव्यक्ति का धन लेने वाला व्यक्ति मृत व्यक्ति के लिए वृषोत्सर्ग करे॥१५॥ पुत्र के अभाव में वृषोत्सर्ग करने में पत्नी अधिकारिणी होगी, अथवा पुत्री का पुत्र अधिकारी होगा, अथवा पुत्री भी अधिकारिणी होगी। पुत्रों के रहने पर दूसरे द्वारा वृषोत्सर्ग नहीं कराना चाहिए॥१६॥ गरुड ने कहा— हे देवताओं के भी मालिक देव, जिन नर-नारियों के पुत्र नहीं हैं उन का क्या होगा? मेरे इस संशय को निश्शेष करके आप दूर कीजिए॥१७॥ श्रीकृष्ण ने कहा— अपुत्र की सुगति नहीं होती है, स्वर्ग तो नहीं ही होता है। इस लिए किसी भी उपाय से पुत्र का जन्म कराना ही चाहिए॥१८॥

यानि कानि च दानानि स्वयं दत्तानि मानवैः। तानितानि च सर्वाणि तूपतिष्ठन्ति चाग्रतः॥१९॥
व्यञ्जनानि विचित्राणि भक्ष्यभोज्यानि यानि च। स्वहस्तेन प्रदत्तानि देहान्ते चाऽक्षयं फलम्॥२०॥
गो-भू-हिरण्य-वासांसि भोजनानि पदानि च। यत्रयत्र वसेज् जन्तुस्तत्रतत्रोपतिष्ठति॥२१॥
यावत् स्वस्थं शरीरं हि तावद् धर्मं समाचरेत्। अस्वस्थः प्रेरितश्चान्यैर् न किञ्चित् कर्तुमर्हति॥२२॥
जीवतोऽपि मृतस्येह न भूतं चौर्ध्वदैहिकम्। वायुभूतः क्षुधाविष्टो भ्रमते च दिवानिशम्॥२३॥
क्रमिः कीटः पतङ्गो वा जायते म्रियते पुनः। असद्गर्भे भवेत् सोऽपि जातः सद्यो विनश्यति॥२४॥

मनुष्यों से स्वयम् जो कोई दान दिए गए होते हैं वे सब परलोक में उन के आगे उपस्थित होते हैं॥१९॥ अपने हाथों से जो व्यञ्जन और नाना प्रकार के भक्ष्य और भोज्य दान में दिए जाते हैं उन सब दानों से मृत्यु के बाद अक्षय फल प्राप्त होता है॥२०॥ गाय, भूमि, स्वर्ण, वस्त्र, भोज्यपदार्थ, पददान के पदार्थ इत्यादि दान में दिए गए पदार्थ दाता मनुष्य दूसरे जन्म में जहाँ जहाँ वास करता है वहाँ वहाँ उपस्थित होते हैं॥२१॥ जबतक शरीर स्वस्थं रहता है उसी समय में मनुष्य धर्मकर्म करे, अस्वस्थ होने पर दूसरों की प्रेरणा से वह कुछ भी नहीं कर सकता है॥२२॥ जीवित काल में अथवा मरण होने पर जिस की इस लोक में और्ध्वदेहिक क्रिया नहीं हुई है वह वायु के रूप में रहकर भूख से पीडित होता हुआ रातदिन इधर-उधर घूमता रहता है॥२३॥ और्ध्वदेहिक क्रिया से रहित मनुष्य दूसरे जन्म में क्षुद्र कीडों के रूप में, बडे कीडों के रूप में, पतङ्गों के रूप में वार-वार जन्म लेता है और मरता है, वह नीच योनि के गर्भ में जाता है, वहाँ भी वह जन्मने पर तत्काल मर जाता है॥२४॥

यावत् स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज् जरा दूरतो यावच् चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान् सन्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः॥२५॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे
वृषोत्सर्गदानधर्मपुत्रादिप्रशंसनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

गरुड उवाच

आर्तेन म्रियमाणेन यद् दत्तं तत्फलं वद। स्वस्थावस्थेन दत्तेन विधिहीनेन वा विभो॥१॥

जब तक यह शरीर स्वस्थ और रोगरहित है, जब तक बूढापा दूर ही है, जब तक इन्द्रियों की शक्ति कुण्ठित नहीं हुई है, जब तक आयु क्षीण नहीं हुआ है तब ही अपने मोक्ष के लिए विचारवान् जन को बडा प्रयास करना चाहिए, स्वास्थ्यरहित और अन्य प्रकार से असमर्थ होने पर प्रयास करने से क्या होगा? घर जल जाने पर आग बुझाने के हेतु पानी के लिए कुआं खोदना कैसा प्रयास है?॥२५॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में
वृषोत्सर्ग की और दान-धर्म-पुत्रादि की प्रशंसा करने वाला तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥१३॥

गरुड ने कहा— हे सर्वव्यापक भगवन्, रोगग्रस्त व्यक्ति से जो दान दिया जाता है उस का, मरते हुए व्यक्ति से जो दान दिया जाता है उस का,

श्रीकृष्ण उवाच

एका गौः स्वस्थचित्तस्य ह्यातुरस्य च गोशतम्। सहस्रं म्रियमाणस्य दत्तं चित्तविवर्जितम्॥२॥
मृतस्यैव पुनर् लक्षं विधिपूतं च तत्समम्। तीर्थपात्रसमायोगादेका गौर् लक्षपुण्यदा॥३॥
पात्रे दत्ते खगश्रेष्ठ अहन्यहनि वर्धते। दातुर् दानमपापाय ज्ञानिनां च प्रतिग्रहः॥४॥
विषशीतापहौ मन्त्रवह्नी किं दोषभाजनम्। दातव्यं प्रत्यहं पात्रे निमित्तेषु विशेषतः॥५॥
नाऽपात्रे विदुषा किञ्चिदात्मनः श्रेय इच्छता। अपात्रे जातु गौर् दत्ता दातारं नरकं नयेत्॥६॥
कुलैकविंशतियुतं ग्रहीतारं च पातयेत्। देहान्तरं परिप्राप्य स्वहस्तेन कृतं च यत्॥७॥

स्वस्थ अवस्था के व्यक्ति से जो दान दिया जाता है उस का और शास्त्र में बताए गए विधि से हीन व्यक्ति से जो दान दिया जाता है उस का भी फल कैसा होता है, बताइए॥१॥ श्रीकृष्ण ने कहा— स्वस्थ चित्त वाले व्यक्ति से दी गई एक गाय, रोगग्रस्त व्यक्ति से दी गईं सौ गाय, मरते हुए व्यक्ति से अचेतन अवस्था में दी गईं हजार गाय, मरे हुए व्यक्ति से प्रतिनिधि द्वारा शास्त्रोक्त विधिपूर्वक दी गईं लाख गाय सब बराबर होती हैं। पुण्य तीर्थ के और सत्पात्र ब्राह्मण के योग से एक ही गाय लाख गायों के पुण्य को देने वाली होती है॥२-३॥ हे पक्षियों में श्रेष्ठ, सत्पात्र में दान देने पर दाता के लिए उस दान का फल प्रतिदिन बढता है, ज्ञानियों के लिए उस दान का स्वीकार करने में कोई पाप भी नहीं होता है॥४॥ विष को हटाने वाला मन्त्र और शीत को हटाने वाला अग्नि क्या दोष के पात्र होते हैं? सत्पात्र को प्रतिदिन दान देना चाहिए, दान देने के प्रायश्चित्तादि विशेष निमित्त उत्पन्न होने पर विशेष दान भी देना चाहिए॥५॥ अपने कल्याण चाहने वाले मनुष्य को अपात्र को कुछ भी नहीं देना चाहिए। कदाचित् अपात्र को दी गई गाय तो देने वाले को नरक में ले जायगी और अपात्र ग्रहीता को भी कुल के इक्कीस पीढियों के साथ नरक में ढकेल देगी। हे पक्षियों के मालिक, मैं कहता हूँ कि अपने हाथ से किया गया

धनं भूमिगतं यद्वत् स्वहस्तेन निवेशितम्। तद्वत् फलमवाप्नोति ह्यहं वच्मि खगेश्वर॥८॥
अपुत्त्रोऽपि विशेषेण क्रियां चैवोर्ध्वदैहिकीम्। प्रकुर्यान् मोक्षकामश् च निर्धनश् च विशेषतः॥९॥
स्वल्पेनाऽपि हि वित्तेन स्वयं हस्तेन यत् कृतम्। अक्षयं याति तत् सर्वं यथाऽऽज्यं च हुताशने॥१०॥
एका चैकस्य दातव्या शय्या कन्या पयस्विनी। सा विक्रीता विभक्ता वा दहत्यासप्तमं कुलम्॥११॥
तस्मात् सर्वं प्रकुर्वीत चञ्चले जीविते सति। गृहीतदानपाथेयः सुखं याति महाध्वनि॥१२॥
अन्यथा क्लिश्यते जन्तुः पाथेयरहितः पथि। एवं ज्ञात्वा खगश्रेष्ठ वृषयज्ञं समाचरेत्॥१३॥
अकृत्वा म्रियते यस्तु अपुत्त्रो नैव मुक्तिभाक्। अपुत्त्रोऽपि हि यः कुर्यात् सुखं याति महापथे॥१४॥
अग्निहोत्रादिभिर् यज्ञैर् दानैश् च विविधैरपि। न तां गतिमवाप्नोति वृषोत्सर्गेण या गतिः॥१५॥

जो दान होता है उस के फल को अपने हाथ से रखे गए भूमिगत धन को मनुष्य जैसे प्राप्त करता है वैसे ही दूसरे जन्म में पहुँचकर प्राप्त करता है॥६-८॥ विशेष रूप में पुत्त्ररहित मनुष्य, मोक्ष चाहने वाला मनुष्य और विशेष रूप में अल्पधन मनुष्य भी अपनी और्ध्वदेहिक क्रिया स्वयम् करे॥९॥ थोडे से धन से भी अपने ही हाथ से जो और्ध्वदेहिक कृत्य किया जाता है वह सब जैसे आग में घी अग्निवर्धक होता है वैसे ही अक्षय फल को बढाने वाला होता है॥१०॥ एक शय्या, एक कन्या और एक गाय एक पुरुष को ही देनी चाहिए, वह शय्यादि बेचे जाने पर और विभाजित किए जाने पर सातवें पींढीतक के कुल को जलाती है॥११॥ इस लिए मनुष्य जीवन को चञ्चल जानकर सभी और्ध्वदेहिक कृत्य स्वयम् करे। दानरूपी सम्बल (मार्गभोज्य) को लेकर मनुष्य यममार्गरूप महापथ में सुख से जाता है, दानरूप मार्गभोज्य नहोने पर जीव मार्ग में बहुत क्लेश पाता है। हे पक्षियों में श्रेष्ठ, इस प्रकार की बात को जानकर मनुष्य वृषयज्ञ (वृषोत्सर्ग) करे। जो पुत्त्ररहित व्यक्ति वृषोत्सर्ग किए विना मरता है वह मुक्तिभागी नहीं हो सकता है। पुत्त्ररहित व्यक्ति भी जो वृषोत्सर्ग करता है वह यममार्ग में सुख से जाता है॥१२-१४॥ वृषोत्सर्ग से जो गति प्राप्त होती है वह गति अग्निहोत्रादि यज्ञों से और विभिन्न दानों से भी मनुष्य नहीं पा सकता है॥१५॥

यज्ञानां चैव सर्वेषां वृषयज्ञस्तथोत्तमः। तस्मात् सर्वप्रयत्नेन वृषयज्ञं समाचरेत्॥१६॥

गरुड उवाच

कथयस्व प्रसादेन क्षयाहं चौर्ध्वदैहिकम्। कस्मिन् काले तिथौ कस्यां विधिना केन तद् भवेत्।१७।
कृत्वा किं फलमाप्नोति एतन् मे वद साम्प्रतम्। त्वत्प्रसादेन गोविन्द मुक्तो भवति मानवः॥१८॥

श्रीकृष्ण उवाच

कार्तिकादिषु मासेषु याम्यायनगते रवौ। शुक्लपक्षे तथा पक्षिन् द्वादश्यादितिथौ शुभे॥१९॥
शुभे लग्ने मुहूर्ते वा शुचौ देशे समाहितः। ब्राह्मणं तु समाहूय विधिज्ञं शुभलक्षणम्॥२०॥
जपहोमैस्तथा दानैः कुर्याद् देहस्य शोधनम्। पुण्येऽभिजित्सुनक्षत्रे ग्रहान् देवान् समर्चयेत्॥२१॥
होमं कुर्याद् यथाशक्ति मन्त्रैश् च विविधैरपि। ग्रहाणां स्थापनं कुर्यात् पूर्वं चैव खगेश्वर॥२२॥

सभी यज्ञों में वृषयज्ञ उत्तम यज्ञ है, इस लिए मनुष्य सम्पूर्ण प्रयत्न से वृषयज्ञ (वृषोत्सर्ग) करे॥१६॥ गरुड ने कहा– अनुग्रह करके मृततिथि के कृत्य को और और्ध्वदेहिक कृत्य को बताइए। किस काल में किस तिथि में किस विधि से वह कृत्य होगा?॥१७॥ इन कृत्यों को सम्पन्न करके मनुष्य क्या फल पाता है इस समय में यह बात मुझ को बताइए। हे गोविन्द, आप के अनुग्रह से ही मनुष्य मुक्त होता है॥१८॥ श्रीकृष्ण ने कहा– हे पक्षिन्, कार्तिकादि महीनों में सूर्य दक्षिणायन में रहने पर शुक्लपक्ष में और द्वादशीप्रभृति शुभ तिथि में शुभ लग्न में अथवा मुहूर्त में शुद्ध देश में एकाग्रचित्त होकर सदाचारादि शुभलक्षणों से युक्त और शास्त्रोक्त विधि को जानने वाले ब्राह्मण को बुलाकर जपों से, होमों से और दानों से भी अपने देह की शुद्धि करे। पुण्य अभिजित् नक्षत्र में ग्रहों का और देवताओं का पूजन करे॥१९-२१॥ विविध मन्त्रों से अपने शक्ति के अनुसार होम करे। हे पक्षियों के मालिक, पहले ग्रहों का स्थापन करे॥२२॥

मातृणां पूजनं कार्यं वसोर् धारां च पातयेत्। वह्निं संस्थाप्य तत्रैव पूर्णं होमं तु कारयेत्॥२३॥
शालग्रामं च संस्थाप्य वैष्णवं श्राद्धमाचरेत्। वृषं सम्पूज्य तत्रैव वस्त्रालङ्कारभूषणैः॥२४॥
चतस्रो वत्सतर्यश् च पूर्वं समधिवासयेत्। प्रदक्षिणं ततः कुर्याद् धोमान्ते च विसर्जनम्॥२५॥
इमं मन्त्रं समुच्चार्य उत्तराभिमुखः स्थितः। धर्म त्वं वृषरूपेण ब्रह्मणा निर्मितः पुरा॥२६॥
तवोत्सर्गप्रभावान् मामुद्धरस्व भवार्णवात्। अभिषिच्य शुभैर् मन्त्रैः पावनैर् विधिपूर्वकम्॥२७॥
तेनक्रीडन्तीमन्त्रेण वृषोत्सर्गं तु कारयेत्। अभिषिञ्चेत् ततो नीलं रुद्रकुम्भोदकेन तु॥२८॥
नाभिमूले समास्थाय तदम्बु मूर्धनि न्यसेत्। आत्मश्राद्धं ततः कुर्याद् दद्याद् दानं द्विजोत्तमे॥२९॥
उदके चैव गन्तव्यं जलं तत्र प्रदापयेत्। यदिष्टं जीवतस्त्वासीत् तच् च दद्यात् स्वशक्तितः॥३०॥

मातृका देवियों का पूजन करना चाहिए, वसोर्धारा (घृतधारा) का पातन भी करना चाहिए। वहीं अग्नि का स्थापन करके पूर्ण होम करवाए॥२३॥ शालग्रामशिला का स्थापन करके वैष्णव श्राद्ध करे। वहीं वस्त्र और अलङ्कारों से विभूषित करके वृषभ को पूजित करे और पहले चार बछियों को अधिवासित करे। तब प्रदक्षिणा करके होम के अन्त में बछियों से सहित वृष का विसर्जन करे॥२४-२५॥ उत्तरदिशा की ओर मुह करके खडे होकर "धर्म त्वं वृषरूपेण.." इस मन्त्र का उच्चारण करके पावन शुभ मन्त्रों से वृष का अभिषेक भी करके "तेन क्रीडन्ती.." इस वाक्यांश से युक्त मन्त्र से (द्रष्टव्य– पारस्करगृह्यसूत्र ३।९।६) वृषोत्सर्ग करवाए। "धर्म त्वं वृषरूपेण" इत्यादि मन्त्र का अर्थ– हे धर्म, आप पुराकाल में ब्रह्माजी से वृष के रूप में स्थापित किए गए हैं, आप के उत्सर्ग के प्रभाव से मुझ को संसाररूपी समुद्र से उद्धार कीजिए। तब रुद्रकुम्भ के जल से नीलवृष का अभिषेक करे, बछियों के मध्य में वृष को रखकर उस अभिषेकजल को वृष के शिर में छिडके। तब आत्मश्राद्ध करे और ब्राह्मण को दान दे॥२८-२९॥ तब नदी वा जलाशय में जाना चाहिए और वहाँ अपने को (मृतक को) जल भी देना चाहिए। जीवित अवस्था में मृतक का जो प्रिय वस्तु था वह भी अपनी शक्ति के अनुसार दान में दे॥३०॥

न्यूनं सम्पूर्णतां याति वृषोत्सर्गे कृते सति। सुतृप्तो दुस्तरे मार्गे मृतो याति न संशयः॥३१॥
यमलोकं न पश्यन्ति सदा दानरता नराः। यावन् न दीयते जन्तोः श्राद्धं चैकादशाहिकम्॥३२॥
स्वदत्तं परदत्तं वा नेहाऽमुत्रोपतिष्ठति। त्रयोदश तथा सप्त पञ्च त्रीणि क्रमेण तु॥३३॥
पददानानि कुर्वीत श्रद्धाभक्तिसमन्वितः। तिलपात्राणि कुर्वीत सप्त पञ्च यथाक्रमम्॥३४॥
ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चादेकां गां च प्रदापयेत्। वृषं हि शन्नोदेवीति वेदोक्तविधिना ततः॥३५॥
चतसृभिर् वत्सतरीभिः परिणयनमाचरेत्। वामे चक्रं प्रदातव्यं त्रिशूलं दक्षिणे तथा॥३६॥
मूल्यं दद्याद् वृषस्याऽपि तं वृषं च विसर्जयेत्। एकोद्दिष्टविधानेन स्वाहाकारेण बुद्धिमान्॥३७॥
कुर्यादेकादशाहं च द्वादशाहं च यत्नतः। सपिण्डीकरणादर्वाक् कुर्याच् छ्राद्धानि षोडश॥३८॥

और्ध्वदेहिक कृत्य में जो कुछ न्यून हो गया होता है वह सब वृषोत्सर्ग करने पर सम्पूर्ण हो जाता है। इस से मृतक अच्छी तरह तृप्त होकर दुर्गम यममार्ग में जाता है, इस में सन्देह नहीं॥३१॥ सदा दान में रमने वाले मनुष्य यमलोक को नहीं देखते हैं। जब तक मनुष्य का मृत्यु के ग्यारहवें दिन का श्राद्ध नहीं दिया जाता है तब तक अपने से दिया गया दान अथवा दूसरे द्वारा दिया गया दान भी इस लोक में अथवा परलोक में भी उपस्थित (प्राप्त) नहीं होता है। श्रद्धा से और भक्ति से युक्त मनुष्य अपनी शक्ति के अनुसार क्रमशः तेरह, सात, पाँच या तीन पददान करे। क्रमानुसार सात अथवा पाँच तिलपात्रों का सम्पादन और दान करे॥३२-३४॥ उस के बाद ब्राह्मणों का भोजन करवाए और एक गाय का दान भी करवाए। तब वेदोक्त विधि से "शन्नो देवीः" इत्यादि मन्त्र से स्नान कराके वृष का चार बछियों के साथ विवाह करदे। वृष के वाम अङ्ग में चक्र का चिह्न और दक्षिण अङ्ग में त्रिशूल का चिह्न देना चाहिए॥३५-३६॥ वृष का (अङ्कन का) मूल्य (अयस्कार को) दे और उस वृष को विसर्जित करे। बुद्धिमान् मनुष्य एकोद्दिष्ट-श्राद्ध के विधान से और स्वाहाकार से भी यत्नपूर्वक एकादशाहकृत्य और द्वादशाहकृत्य करे। सपिण्डीकरण से पहले सोलह श्राद्ध करे॥३७-३८॥

ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु पददानानि दापयेत्। कार्पासोपरि संस्थाप्य ताम्रपात्रे तथाऽच्युतम्॥३९॥
वस्त्रेणाऽऽच्छाद्य तत्रस्थमर्घं दद्याच् छुभैः फलैः। नावमिक्षुमयीं कृत्वा पट्टसूत्रेण वेष्टयेत्॥४०॥
कांस्यपात्रे घृतं स्थाप्य वैतरण्या निमित्ततः। नाव आरोहणं कुर्यात् पूजयेद् गरुडध्वजम्॥४१॥
आत्मवित्तानुसारेण तच्च दानमनन्तकम्। भवसागरमग्नानां शोकतापार्तिदुःखिनाम्॥४२॥
धर्मप्लवविहीनानां तारको हि जनार्दनः। तिला लोहं हिरण्यं च कार्पासं लवणं तथा॥४३॥
सप्तधान्यं क्षितिर् गावो ह्येकैकं पावनं स्मृतम्। तिलपात्राणि कुर्वीत शय्यादानं च दापयेत्॥४४॥
दीनानाथविशिष्टेभ्यो दद्याच् छक्त्या च दक्षिणाम्। एवं यः कुरुते तार्क्ष्य पुत्त्रवानप्यपुत्त्रवान्॥४५॥
स सिद्धिं समवाप्नोति यथा ते ब्रह्मचारिणः। नित्यं नैमित्तिकं कुर्याद् यावज् जीवति मानवः॥४६॥

ब्राह्मणों को भोजन कराकर पददान देवे। वैतरणी का दान करते समय ताँवे के पात्र में कार्पास (के वस्त्र) में विष्णु की प्रतिमा को रखकर उस प्रतिमा को वस्त्र से आच्छादित करके अच्छे फलों से युक्त अर्घ दे। इक्षुकाण्ड से नाव बनाकर उस को पट्टसूत्र से वेष्टित करे। वैतरणीदान के निमित्त से कांसे के पात्र में घी रखकर उक्त नौका में चढने का काम करे और विष्णु का पूजन करे॥३९-४१॥ अपने धन के अनुसार दिया गया वह दान अनन्त फल देने वाला होता है। संसाररूपी समुद्र में मग्न और शोक, ताप और आर्तभाव से दुःखित तथा धर्मरूप नौका से रहित लोगों का जनार्दन (विष्णु) ही तारक (उद्धार करने वाले) हैं। तिल, लोहा, सोना, कार्पास, नमक, सप्तधान्य (जौ, धान, तिल, कँगनी, मूँग, चना, साँवा), भूमि तथा गाय इन में से एक-एक ही पाप से छुटकारा देने वाला है। तिलपात्रों का दान करे, शय्यादान भी दे॥४२-४४॥ दीन-दुःखी, अनाथ और अपने से उत्तम जनों को अपनी शक्ति के अनुसार दक्षिणा भी दे। हे गरुड, पुत्त्रयुक्त अथवा पुत्त्ररहित पुरुष जो कोई भी ऐसा करता है तो जैसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी लोग पुत्र से रहित होने पर भी ब्रह्मलोकप्राप्तिरूप सिद्धि को प्राप्त करते हैं वैसे ही यह पुरुष भी सिद्धि को प्राप्त करता है। आत्मश्राद्ध करने के बाद भी मनुष्य जब तक जीवित रहता है तब तक नित्य और नैमित्तिक धर्मकार्य करता रहे॥४५-४६॥

यः कश्चित् क्रियते धर्मस् तत्फलं चाक्षयं भवेत्। तीर्थयात्राव्रतादीनां श्राद्धं संवत्सरस्य हि॥४७॥
देवतानां गुरूणां च मातापित्रोस्तथैव च। पुण्यं देयं प्रयत्नेन प्रत्यहं वर्धते खग॥४८॥
अस्मिन् यज्ञे हि यः कश्चिद् भूरिदानं प्रयच्छति। तत् तस्य चाऽक्षयं सर्वं वेदिकायां यथा किल॥
यथा पूज्यतमा लोके यतयो ब्रह्मचारिणः। तथैव प्रतिपूज्यन्ते लोके सर्वे च नित्यशः॥५०॥
वरदोऽहं सदा तस्य चतुर्वक्त्रस्तथा हरः। ते यान्ति परमाल्ँ लोकानिति सत्यं वचो मम॥५१॥
उत्सृष्टो वृषभो यत्र पिबत्यपो जलाशये। शृङ्गेणाऽऽलिखते वाऽपि भूमिं नित्यं प्रहर्षितः॥५२॥
पितृणामन्नपानं च प्रभूतमुपतिष्ठति। पौर्णमास्याममायां वा तिलपात्राणि दापयेत्॥५३॥
सङ्क्रान्तीनां सहस्राणि सूर्यपर्वशतानि च। दत्त्वा यत् फलमाप्नोति तद् वै नीलविसर्जने॥५४॥

आत्मश्राद्ध करने के बाद भी तीर्थयात्रा व्रत इत्यादि में से जो कोई भी धर्मकार्य तथा सांवत्सरिक श्राद्ध किया जाता है तो उस का फल अक्षय होता है॥४७॥ हे पक्षिन्, देवताओं को गुरुप्रभृति मान्यजनों को, मां-बाप को भी प्रयत्नपूर्वक पुण्य समर्पित करना चाहिए, ऐसा करने से पुण्य प्रतिदिन बढता रहता है॥४८॥ इस वृषयज्ञ में जो कोई मनुष्य बहुत सा दान देता है तो उस का वह सब दान जैसे वैदिक यज्ञ की वेदी में दिया गया दान अक्षय होता है वैसे ही अक्षय होता है॥४९॥ जैसे लोक में जितेन्द्रिय नैष्ठिक ब्रह्मचारी लोग सब से अधिक पूज्य होते हैं वैसे ही अपुत्त्र होने पर भी वृषयज्ञ करने वाले सब नित्य ही प्रतिपूज्य होते हैं॥५०॥ उस वृषयज्ञ करने वाले का मैं सदा वर देने वाला होता हूँ, ब्रह्मा और महेश्वर भी वर देने वाले होते हैं। वे वृषयज्ञ करने वाले लोग परमलोक (ब्रह्मलोक) में जाते हैं, यह मेरा सत्य वचन है॥५१॥ छोडा गया वृषभ जिस जलाशय में पानी पीता है, जहाँ नित्य प्रहर्षित होकर सींग से भूमि को खोदता है वहाँ पितरों को प्रभूत भोज्य और पेय पदार्थ प्राप्त होते हैं। पूर्णिमा में अथवा अमावस में तिल से पूर्ण पात्रों का दान करना चाहिए॥५२-५३॥ हजारों सङ्क्रान्तियों में और सैकडों सूर्यग्रहणों में दान देने से मनुष्य जो फल पाता है वह फल नीलवृषोत्सर्ग करने पर पाता है॥५४॥

वत्सतर्यः प्रदातव्या ब्राह्मणेभ्यः पदानि च। तिलपात्राणि देयानि शिवभक्तद्विजेषु च॥५५॥
उमामहेश्वरं चैकं परिधाप्य प्रदापयेत्। अतसीपुष्पसङ्काशं पीतवाससमच्युतम्॥५६॥
ये नमस्यन्ति गोविन्दं न तेषां विद्यते भयम्। प्रेतत्वान् मोक्षमिच्छन्तो ये करिष्यन्ति सत्क्रियाम्॥५७॥
यास्यन्ति ते परालँ्लोकानिति सत्यं वचो मम। एतत् ते सर्वमाख्यातं मया चैवोर्ध्वदैहिकम्॥५८॥
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नाऽत्र संशयः। श्रुत्वा माहात्म्यमतुलं गरुडो हर्षमागतः॥
मानुषाणां हितार्थाय पुनः पप्रच्छ केशवम्॥५९॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे गोदानवृषोत्सर्ग-दशदानभूरिदानादिनिरूपणं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥

बछियाँ ब्राह्मणों को देनी चाहिए, पददान भी ब्राह्मणों को देने चाहिए। तिलपात्र तो शिवजी के भक्त द्विजों में देना चाहिए॥५५॥ उमा-महेश्वर की प्रतिमा को भी वस्त्र का परिधान कराकर दान में देना चाहिए। तीसी के फूल के सदृश कान्ति वाले, पीले वस्त्र पहने हुए अपने स्वरूप से कभी भी च्युत नहोने वाले गोविन्द को जो लोग नमस्कार करते हैं उन के लिए कोई भय नहीं होता है। प्रेतत्व से मुक्ति चाहने वाले जो मनुष्य आत्मश्राद्ध-वृषोत्सर्गादि और्ध्वदेहिक क्रियाएँ करते हैं वे परमलोक (ब्रह्मलोक) में जाएंगे, यह मेरा सत्य वचन है। मैं ने यह सब और्ध्वदेहिक कृत्य तुम को बता दिया, जिस को सुनकर मनुष्य सब पापों से छुटकारा पाता है, इस में सन्देह नहीं है। वृषोत्सर्गादि और्ध्वदेहिक कृत्य का अतुलनीय बडा माहात्म्य सुनकर गरुडजी हर्ष को प्राप्त हुए। मनुष्यों के हित के लिए गरुडजी ने फिर श्रीकृष्ण को पूछा॥५६-५९॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में गोदान वृषोत्सर्ग दशदान भूरिदान इत्यादि विषयों का निरूपण करने वाला चौदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।१४।।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

गरुड उवाच

भगवन् ब्रूहि मे सर्वं यमलोकस्य निर्णयम्। जन्तोः प्रयाणमारभ्य माहात्म्यं वर्त्मविस्तरम्॥१॥

श्रीभगवानुवाच

शृणु तार्क्ष्य प्रवक्ष्यामि यममार्गस्य निर्णयम्। प्रयाणकानि सर्वाणि नगराणि च षोडश॥२॥
षडशीतिसहस्राणि योजनानां प्रमाणतः। यमलोकस्य चोर्ध्वं वै अन्तरा मानुषस्य च॥३॥
सुकृतं दुष्कृतं वाऽपि भुक्त्वा लोके यथार्जितम्। कर्मयोगाद् यदा कश्चिद् व्याधिरुत्पद्यते खग॥४॥
निमित्तमात्रं सर्वेषां कृतकर्मानुसारतः। यस्य यो विहितो मृत्युः स तं ध्रुवमवाप्नुयात्॥५॥
कर्मयोगाद् यदा देही मुञ्चत्यत्र निजं वपुः। तदा भूमिगतं कुर्याद् गोमयेनोपलिप्य च॥६॥

गरुड ने कहा– हे भगवन्, यमलोक का सब निर्णय और प्राणी के मरणसमय से लेकर (किए जाने वाले कृत्यों का) माहात्म्य तथा यमलोक पहुँचने तक के मार्ग का विस्तार भी मुझ को बताइए॥१॥ श्रीभगवान् ने कहा– हे गरुड, सुनो, मैं यममार्ग का निर्णय को, यमलोक जाने वालों के मासादिरूप समय-समय के सभी यात्रापरिमाण-विशेषों को और सोलह पुरों को भी बताउँगा॥२॥ यमलोक से ऊपर मनुष्यलोक के बीच में यममार्ग प्रमाण से छियासी हजार योजन है॥३॥ हे पक्षिन्, मनुष्यलोक में अपने पूर्वजन्म के आर्जन के अनुसार धर्म का फल अथवा पाप का फल भोगकर कर्म के प्रभाव से जब कोई बिमार उत्पन्न होता है, अपने से किए गए कर्म के अनुसार निमित्त मात्र के रूप में जिस का जिस प्रकार मृत्यु नियति से निश्चित किया गया है वह उसी प्रकार के मृत्यु को अवश्य पाएगा॥४-५॥ अपने कर्म के प्रभाव से जब मनुष्य इस लोक में अपने शरीर को छोडने को जा रहा होता है

तिलान् दर्भान् विकीर्याथ मुखे स्वर्णं विनिःक्षिपेत्। तुलसीं सन्निधौ कृत्वा शालग्रामशिलां तथा ॥७॥
सेतुसामादिसूक्तैस् तु मरणं मुक्तिदायकम्। शलाकास्वर्णविक्षेपः प्रेतप्राणगृहेषु च ॥८॥
एका वक्त्रे तु दातव्या घ्राणयुग्मे तथा पुनः। अक्ष्णोश् च कर्णयोश् चैव द्वेद्वे देये यथाक्रमम् ॥९॥
अथ लिङ्गे तथा चैका त्वेकां ब्रह्माण्डके क्षिपेत्। करयुग्मे च कण्ठे च तुलसीं च प्रदापयेत् ॥१०॥
वस्त्रयुग्मं च दातव्यं कुङ्कुमैश् चाऽक्षतैर् यजेत्। पुष्पमालायुतं कुर्यादन्यद्वारेण सन्नयेत् ॥११॥
पुत्रस् तु बान्धवैः सार्धं विप्रैस् तु पुरवासिभिः। पितुः प्रेतं स्वयं पुत्रः स्कन्धमारोप्य बान्धवैः ॥१२॥
गत्वा श्मशानदेशे तु प्राङ्मुखश् चोत्तरामुखम्। अदग्धपूर्वा या भूमिश् चितां तत्रैव कारयेत् ॥१३॥

उस समय में भूमि को गोबर से लीपकर भूमि में तिलों का और कुशों का विकरण करके उस को भूमिगत कर देना चाहिए। मरते हुए मनुष्य के मुख में स्वर्णखण्ड रख देना चाहिए। तुलसी को और शालग्रामशिला को समीप में रखकर सेतुसामादि (हाउहाउहाउ सेतूंस्तर इत्यादि) सूक्तों को (द्रष्टव्य-- गौतमपितृमेधसूत्र १।१।८, सामविधानब्राह्मण २।१।६, आरण्यगान २।७।५७, कौथुमसामवेदार्चिकसंहिता आरण्यकाण्ड १।९) सुनते हुए मरना मुक्तिदायक होता है। प्रेत के इन्द्रियों के आयतनों में शलाकारूप स्वर्णखण्डों का स्थापन करना चाहिए। उस में मुख में एक स्वर्णशलाका देनी चाहिए, नासिकापुटों में आँखों में, और कानों में भी क्रम से दोदो स्वर्णशलाकाएँ देनी चाहिए॥६-९॥ तब लिङ्गदेश में एक और ब्रह्मरन्ध्रदेश में एक स्वर्णशलाका रखे। हाथों में और गले में तुलसी देनी चाहिए॥१०॥ मृतक को दो वस्त्र देने चाहिए, कुङ्कुम और अक्षताओं से मृतक की पूजा करे। मृतक को फूल की माला से युक्त करे, बन्धु-बान्धवों के और स्वपुरवासी (स्वग्रामवासी) ब्राह्मणों के सहयोग से पुत्र उस मृतक को मूल द्वार से भिन्न दूसरे द्वार से ले जाए। पिता के शव को स्वयम् पुत्र अपने कन्धे में रखकर बन्धु-बान्धवों से युक्त होकर श्मशानदेश में पहुँचकर पूर्व की ओर मुख करके शव को उत्तर की ओर मुख करके रखे। जिस भूमि में पहले दाह नहीं हुआ है उसी भूमि में श्रीखण्ड, तुलसी की लकडी, पलाश की समिधा इत्यादि से निष्पन्न चिता बनवाए।

श्रीखण्डतुलसीकाष्ठसमित्पालाशसम्भृताम्। विकलेन्द्रियसङ्घाते चैतन्ये जडतां गते॥१४॥
प्रचलन्ति ततः प्राणा याम्यैर् निकटवर्तिभिः। एकीभूतं जगत् पश्येद् दैवी दृष्टिः प्रजायते॥१५॥
बीभत्सं दारुणं रूपं प्राणैः कण्ठं समाश्रितैः। फेनमुद्गिरते कोऽपि मुखं लालाकुलं भवेत्॥१६॥
दुरात्मानश् च ताड्यन्ते किङ्करैः पाशबन्धनैः। सुखेन कृतिनस्तत्र नीयन्ते नाकनायकैः॥१७॥
दुःखेन पापिनो यान्ति यममार्गे च दुर्गमे। यमश् चतुर्भुजो भूत्वा शङ्खचक्रगदादिभृत्॥१८॥
पुण्यकर्मरतान् सम्यक् शुभान् मित्रवदाचरेत्। आहूय पापिनः सर्वान् यमो दण्डेन तर्जयेत्॥१९॥
प्रलयाम्बुदनिर्घोषस् त्वञ्जनाद्रिसमप्रभः। महिषस्थो दुराराध्यो विद्युत्तेजःसमद्युतिः॥२०॥
योजनत्रयविस्तारदेहो रौद्रोऽतिभीषणः। लोहदण्डधरो भीमः पाशपाणिर् दुराकृतिः॥२१॥

मरते समय में इन्द्रियसङ्घात विकल होने पर और चैतन्य भी विषयज्ञान से रहित होकर जडवत् हो जाने पर प्राण हिलने लगते हैं, वह जगत् को समीप में रहने वाले यमदूतों से एकीभूत देखेगा। उस समय में मरते हुए मनुष्य में परलोक को भी देखने वाली दैवी दृष्टि उत्पन्न होती है॥११-१५॥ मरते हुए मनुष्य का रूप गले में अटके हुए प्राणों से घृणास्पद और भयङ्कर होता है। मरता हुआ कोई मनुष्य फेन उगलता है, किसी का मुख लार से पूर्ण हो जाता है॥१६॥ उस समय में यमराज के अनुचरों से पाश से बाँधने के साथसाथ पापी लोग ताडित भी होते हैं। सुकर्म करने वाले लोग स्वर्ग को लेजाने वाले धर्मराज के दूतों से सुखपूर्वक वहाँ ले जाए जाते हैं॥१७॥ पापी लोग दुर्गम यममार्ग में दुःख भोगते हुए जाते हैं। यमराज शङ्ख चक्र गदा इत्यादि को धारण करने वाले और चार भुजाओं से युक्त होकर पुण्य कर्म करने वाले शुभ जीवों के प्रति अच्छी तरह मित्रतुल्य व्यवहार करेंगे, सब पापियों को बुलाकर यमराज दण्ड से धमकाने का काम करेंगे॥१८-१९॥ पापियों के लिए यमराज प्रलयकाल के मेघ की तरह शब्द करने वाले, अञ्जन के पर्वत के तुल्य रूप वाले, महिष में आरूढ, आराधन में कष्टसाध्य, बिजली के तेज की तरह की कान्ति से युक्त, तीन योजन विस्तार से युक्त शरीर वाले,

वक्रनेत्रोऽतिभयदो दर्शनं याति पापिनाम्। अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो हाहा कुर्वन् कलेवरात्॥२२॥
तदैव नीयते दूतैर् याम्यैर् वीक्षन् स्वकं गृहम्। निर्विचेष्टं शरीरं तु प्राणैर् मुक्तं जुगुप्सितम्॥२३॥
अस्पृश्यं जायते तूर्णं दुर्गन्धं सर्वनिन्दितम्। त्रिधाऽवस्था हि देहस्य कृमिविड्भस्मसंज्ञिता॥२४॥
को गर्वः क्रियते तार्क्ष्य क्षणविध्वंसिभिर् नरैः। दानं वित्तादृतं वाचः कीर्तिधर्मौ तथाऽऽयुषः॥२५॥
परोपकरणं कायादसतः सारमुद्धृतम्। तस्यैवं नीयमानस्य दूताः सन्तर्जयन्ति हि॥२६॥
दर्शयन्तो भयं तीव्रं नरकाय पुनःपुनः। शीघ्रं प्रचल दुष्टात्मन् गतोऽसि त्वं यमालये॥२७॥
कुम्भीपाकादिनरकांस् त्वां नेष्यामश् च मा चिरम्। एवं वाचस् तदा शृण्वन् बन्धूनां रुदितं तथा।२८।

रौद्राकृति, अतिभयङ्कर, लोहे के दण्ड को लेने वाले, भयजनक, हाथ में पाश लेने वाले, दुष्ट आकृति वाले, वक्रनेत्रों से युक्त और अति भय देने वाले होकर दृष्टिपथ में आते हैं। इस अवस्था में अँगूठे के तुल्य परिमाण वाला जीव हाहाकार करता हुआ और अपने घर को देखता हुआ शरीर से खींचकर यमदूतों से ले जाया जाता है। प्राणों से मुक्त और चेष्टारहित शरीर तुरत ही घृणा का विषय, अस्पृश्य, दुर्गन्धयुक्त और सब से निन्दित हो जाता है। कीडों के रूप में, विष्ठा के रूप में और राख के रूप में देह की तीन प्रकार की अवस्था परिणाम में होती ही है॥२०-२४॥ हे गरुड, क्षण भर में नष्ट होने वाले मनुष्यों से क्या गर्व किया जाता है?। धन से दान, वचन से सत्य, आयु से कीर्ति तथा धर्म और शरीर से परोपकार सिद्ध करना असत् पदार्थों से सार खींचना है। उक्त प्रकार से नरक के लिए ले जाए जा रहे मृतक को यमदूत तीव्र भय दिखाते हुए वार-वार धमकाते रहते हैं। वे कहते हैं कि हे दुष्ट चित्त वाले जीव, तुम शीघ्रता से चलो, तुम यमराज के घर में जा रहे हो, तुम को हम कुम्भीपाकादि नरकों में ले जाएंगे, विलम्ब न करो। उस समय में ऐसे यमदूतों के वचनों को और बन्धुओं के रोदन को सुनता हुआ और उच्च शब्द से हाहाकार करके विलाप करता हुआ जीव यम के अनुचरों से ले जाया जाता है।

उच्चैर् हाहेति विलपन् नीयते यमकिङ्करैः। स्थाने श्राद्धं प्रकुर्वीत तथा चैकादशेऽहनि॥२९॥
मृतस्योत्क्रान्तिसमयात् षट् पिण्डान् क्रमशो ददेत्। मृतस्थाने तथा द्वारे चत्वरे तार्क्ष्य कारणात्।३०।
विश्रामे काष्ठचयने तथा सञ्चयने च षट्। शृणु तत् कारणं तार्क्ष्य षट्पिण्डपरिकल्पने॥३१॥
मृतस्थाने शवो नाम तेन नाम्ना प्रदीयते। तेन दत्तेन तृप्यन्ति गृहवास्त्वधिदेवताः॥३२॥
तेन भूमिर् भवेत् तुष्टा तदधिष्ठातृदेवता। द्वारे तु पिण्डं देयं च पान्थमित्यभिधाय तु॥३३॥
दत्तेन तेन प्रीणन्ति द्वारस्था गृहदेवताः। चत्वरे खेचरो नाम तमुद्दिश्य प्रदापयेत्॥३४॥
न चोपघातं कुर्वन्ति भूताद्या देवयोनयः। विश्रामे भूतसंज्ञोऽयं तेन तत्र प्रदापयेत्॥३५॥
पिशाचा राक्षसा यक्षा ये चान्ये दिशि वासिनः। तस्य होतव्यदेहस्य नैवाऽयोग्यत्वकारकाः॥३६॥

यथोक्त स्थल में और मृत्यु के ग्यारहवें दिन में भी श्राद्ध करे॥२५-२९॥ प्राण जाने के समय से मृतक के लिए क्रम से छः पिण्ड दे। हे गरुड, कारणविशेष से मृत्युस्थान में, गृहाङ्गन के द्वार में, चत्वर में, मार्ग के विश्रामस्थल में, चिताकाष्ठों के चयन करने की भूमि (चिताभूमि) में और चिता के ऊपर इन छः स्थानों में छः पिण्ड दे। हे गरुड, छः पिण्डों की कल्पना में शास्त्रज्ञसम्मत कारण जो है उस को सुनो॥३०-३१॥ मृत्युस्थान में मृतक शव नाम का होता है, उसी नाम से पिण्ड दिया जाता है। उस पिण्ड के दान से गृहवास्तु की अधिष्ठात्री देवताएँ तृप्त होती हैं॥३२॥ उस से भूमि और उन की अधिष्ठात्री देवता भी प्रसन्न होंगी। द्वारदेश में पान्थ कहकर पिण्ड देना चाहिए॥३३। दिए गए उस पिण्ड से द्वार में रहने वाली घर की देवताएँ प्रसन्न होती हैं। चत्वरदेश में वह मृतक खेचर नाम का हो जाता है, उसी को उद्देश करके पिण्ड दिलवाए॥३४॥ इस से भूत, पिशाच, यक्ष, गुह्यक इत्यादि देवयोनि मृतक का उपघात नहीं करते हैं। विश्रामस्थल में यह मृतक भूत नाम का होता है, उसी नाम से वहाँ पिण्ड दिलवाए॥३५॥ इस से पिशाच, राक्षस, यक्ष और अन्य जो भी दिशाओं में निवास करने वाले होते हैं वे उस अग्नि में होतव्य शव को हवन में अयोग्य नहीं करते हैं॥३६॥

चितापिण्डप्रभृतितः प्रेतत्वमुपजायते। चितायां साधकं नाम वदन्त्येके खगेश्वर॥३७॥
केचित् तं प्रेतमेवाहुर् यथा कल्पविदो बुधाः। तदादि तत्रतत्रापि प्रेतनाम्ना प्रदीयते॥३८॥
इत्येवं पञ्चभिः पिण्डैः शवस्याऽऽहुतियोग्यता। अन्यथा चोपघाताय पूर्वोक्तास् ते भवन्ति हि॥३९॥
उत्क्रामे प्रथमं पिण्डं तथा चाऽर्धपथेऽपि च। चितायां तु तृतीयं स्यात् त्रयः पिण्डाश्च कल्पिताः॥४०॥
विधाता प्रथमे पिण्डे द्वितीये गरुडध्वजः। तृतीये यमदूताश्च प्रयोगः परिकीर्तितः॥४१॥
दत्ते तृतीये पिण्डेऽस्मिन् देहदोषैः प्रमुच्यते। आधारभूतजीवश्च ज्वलनैर् ज्वालयेच् चिताम्॥४२॥
सम्मृज्य चोपलिप्याऽथ उल्लिख्योद्धृत्य वेदिकाम्। अभ्युक्ष्योपसमाधाय वह्निं तत्र विधानतः॥४३॥

चितापिण्ड से आगे प्रेतत्व उत्पन्न हो जाता है। हे पक्षियों के मालिक, कोई विद्वान् चितापिण्ड में मृतक को साधक कहते हैं॥३७॥ जैसे कल्परूप वेदाङ्ग को जानने वाले विद्वान् कहते हैं वैसे ही कोई विद्वान् चितापिण्ड में उस मृतक को प्रेत ही कहते हैं। वहाँ से लेकर जहाँ कहीं भी प्रेत के नाम से ही पिण्डादि दिए जाते हैं॥३८॥ इस प्रकार पाँच पिण्डों से शव की अग्नि में आहुति करने में योग्यता होती है। पाँच पिण्ड नदेने पर वे पूर्वोक्त भूत-पिशाचादि विघ्न करने वाले होते हैं॥३९॥ प्राण जाने के स्थल में प्रथम पिण्ड होगा, तथा आधे मार्ग में दूसरा पिण्ड होगा, चिता में तीसरा पिण्ड होगा, इस प्रकार तीन पिण्ड ही देने का पक्ष भी कल्पशास्त्र में बताया गया है॥४०॥ उन में पहले पिण्ड में ब्रह्मा, दूसरे पिण्ड में विष्णु और तीसरे पिण्ड में यमदूत उद्देश्य होते हैं, इस प्रकार का प्रयोग इस पक्ष में बताया गया है॥४१॥ इस पक्ष में तीसरे पिण्ड दिए जाने पर आधारभूत जीव शरीर के दोषों से मुक्त होता है, तब अग्नियों से चिता को जलाए॥४२॥ उस से पहले चिताभूमि के एकदेश में वेदी को कुशों से बुहारकर गोमय से लीपकर स्रुवमूलादि से वेदी का उल्लेखन करके वहाँ से कुछ मिट्टी को लेकर उत्तर की ओर फेंककर वेदी का कुशजल से अभ्युक्षण करके वहाँ अपने गृह्यसूत्र में बताए गए विधान से अग्नि को जलाकर

पुष्पाक्षतैश् च सम्पूज्य देवं क्रव्यादसंज्ञकम्। त्वं भूतकृज् जगद्योने त्वं लोकपरिपालकः॥४४॥
उपसंहारकस् तस्मादेनं स्वर्गं मृतं नय। इति क्रव्यादमभ्यर्च्य शरीराहुतिमाचरेत्॥४५॥
अर्धदग्धे तथा देहे दद्यादाज्याहुतिं ततः। लोमभ्यः स्वेतिवाक्येन कुर्याद् धोमं यथाविधि॥४६॥
चितामारोप्य तं प्रेतं हुनेदाज्याहुतिं ततः। यमाय चान्तकायेति मृत्यवे ब्रह्मणे तथा॥४७॥
जातवेदोमुखे देया एका प्रेतमुखे तथा। ऊर्ध्वं तु ज्वालयेद् वह्निं पूर्वभागे चितां पुनः॥४८॥
अस्मात् त्वमधिजातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः। असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ज्वलतु पावकः॥४९॥

क्रव्याद नाम के उन अग्निदेव का फूल और अक्षताओं से पूजा करके "त्वं भूतकृज् जगद्योने" इत्यादि मन्त्र से क्रव्याद अग्नि की प्रार्थना भी करके शरीर की (शव की) आहुति करे। "त्वं भूतकृज् जगद्योने" इत्यादि मन्त्र का अर्थ है— जगत् के उत्पत्तिस्थान के रूप में रहे हुए हे अग्निदेव, आप आकाशादि की सृष्टि करने वाले (ब्रह्मा) हैं, आप ही सम्पूर्ण लोक के पालक (विष्णु) भी हैं, आप ही जगत् के उपसंहार (प्रलय) करने वाले (रुद्र) भी हैं, इस लिए आप मरे हुए इस मनुष्य को स्वर्ग पहुँचाएं॥४३-४५॥ शव आधा जल जाने पर घी की आहुति दे और उस के बाद "लोमभ्यः स्वाहा" इत्यादि मन्त्रों से (द्रष्टव्य— माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेद-मन्त्रार्षसंहिता ३९।१०) शास्त्र के विधान के अनुसार होम करे॥४६॥ उस प्रेत को चिता में चढाकर ही यम को, अन्तक को, मत्यु को और ब्रह्मा को भी घी की आहुति होमे॥४७॥ घी की आहुति अग्नि के मुख में देनी चाहिए और एक आहुति प्रेत के मुख में भी देनी चाहिए। इस के बाद चिता के पूर्व भाग में अग्नि को प्रज्वलित करे॥४८॥ "अस्मात् त्वमधिजातोऽसि" इत्यादि मन्त्र से (द्रष्टव्य— मा.वा.शु.य.वे.म.सं.३५।२२) तिलमिश्रित घी की मन्त्रयुक्त आहुति देकर उस के बाद निश्चित रूप में पुत्र द्वारा शव का दाह किया जाना चाहिए। "अस्मात् त्वमधिजातोऽसि" इत्यादि मन्त्र का अर्थ है— इस मृतक से ही आप उत्पन्न हुए हैं, आप से यह मृतक फिर उत्पन्न हो, अमुक नाम का यह मृतक स्वर्ग लोक के लिए सुहुत हो, अग्नि प्रज्वलित हो। *[विशेष— वस्तुतः यह मन्त्र श्रौताग्नि से अथवा गृह्याग्नि से युक्त मृतक के दाह में ही प्रयोज्य है, अग्निरहित मृतक के दाह में इस मन्त्र का प्रयोग सार्थक नहीं होता है। द्रष्टव्य— पारस्करगृह्यसूत्र ३।१०।१२, अत एव चतुर्थीलाल, नित्यानन्दपर्वतीय इत्यादि पण्डितों की*

एवमाज्याहुतिं दत्त्वा तिलमिश्रां समन्त्रकाम्। ततो दाहः प्रकर्तव्यः पुत्त्रेण किल निश्चितम्॥५०॥
रोदितव्यं ततो गाढमेवं तस्य सुखं भवेत्। दाहस्याऽनन्तरं तत्र कृत्वा सञ्चयनक्रियाम्॥५१॥
प्रेतपिण्डं प्रदद्याच्च दाहार्तिशमनं खग। तावद् भूताः प्रतीक्षन्ते तं प्रेतं बान्धवार्थिनम्॥५२॥
दाहस्याऽनन्तरं कार्यं पुत्त्रैः स्नानं सचैलकम्। तिलोदकं ततो दद्यान् नामगोत्रेण तिष्ठतु॥५३॥
ततो जनपदैः सर्वैर् दातव्या करतालिका। विष्णुर् विष्णुरिति ब्रूयाद् गुणैः प्रेतमुदीरयेत्॥५४॥
जनाः सर्वे समास् तस्य गृहमागत्य सर्वशः। द्वारस्य दक्षिणे भागे गोमयं गौरसर्षपान्॥५५॥

अन्त्यकर्मपद्धतियों में इस विषय का प्रतिपादन चिन्त्य है। द्रष्टव्य– माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेद-शाखाध्यायि-निरग्निकद्विज-सदाचारकर्म-संस्कारकर्म-श्राद्धकर्मादि-वैदिक-मन्त्रसङ्ग्रहः (सपरिशिष्टः) २०५२, स्वाद्ध्यायशाला, काठमाण्डु, पृ.५५, टि.१, और गत चतुर्थ अध्याय के ७७ वें श्लोक के अनुवाद में विशेष]॥४९-५०॥ उस के बाद उच्च शब्द से रोना चाहिए, ऐसा करने से उस प्रेत को सुख होगा। हे पक्षिन्, शवदाह के बाद वहाँ अस्थिसञ्चयन कृत्य करके दाह की आर्ति के शमन करने वाला प्रेतपिण्ड भी दे। बान्धवों को चाहने वाले उस प्रेत को उस कालतक भूत प्रतीक्षा करते रहते हैं॥५१-५२॥ शवदाह के बाद मृतक के पुत्त्रों को वस्त्रों के साथ में स्नान करना चाहिए। तब प्रेत के नाम का और गोत्र का उच्चारण करके "उपतिष्ठतु" इत्यादि पद का प्रयोग भी करके प्रेत को तिलसहित उदक (जल) दे॥ *[विशेष– प्रेत को उदक देने के वाक्य वैदिकों के लिए अपने-अपने गृह्यसूत्र-पितृमेधसूत्रादि में विहित हैं। वैदिकों को उन का ही यथार्थ ज्ञान और प्रयोग करना चाहिए।]*॥५३॥ तब शवदाह के स्थल में उपस्थित सभी लोगों से ताली बजाई जानी चाहिए। तब कोई विष्णु विष्णु बोले और प्रेत के सद्गुणों के कथन से प्रेत की प्रशंसा करे॥५४॥ उदासीनता से समभाव रखने वाले प्रेतानुयायी सब लोग उस प्रेत के घर में आकर अङ्गनद्वार के दक्षिण भाग में गोबर और पीले सरसों रखकर, वरुणदेव को अन्तःकरण में रखके अपने घर में नीम के पत्तों को

निधाय वरुणं देवमन्तर्द्धाय स्ववेश्मनि। भक्षयेन् निम्बपत्राणि घृतं प्राश्य गृहं व्रजेत्॥५६॥
केचिद् दुग्धेन सिञ्चन्ति चितास्थानं खगेश्वर। अश्रुपातं न कुर्वीत दद्यादस्मै जलाञ्जलीन्॥५७॥
श्लेष्माश्रु बान्धवैर् मुक्तं प्रेतो भुङ्क्ते यतोऽवशः। अतो न रोदितव्यं हि क्रियाः कार्याः स्वशक्तितः॥५८॥
दुग्धं च मृन्मये पात्रे तोयं दद्याद् दिनत्रयम्। सूर्ये चाऽस्तं गते तार्क्ष्य वलभ्यां चत्वरेऽपि वा॥५९॥
बद्धः सम्मूढहृदयो देहमिच्छन् कृतानुगः। श्मशानं चत्वरं गेहं वीक्षन् याम्यैः स नीयते॥६०॥
गर्ते पिण्डा दशाहं च दातव्याश्च दिनेदिने। जलाञ्जलीः प्रदातव्याः प्रेतमुद्दिश्य नित्यशः॥६१॥
तावद् वृद्धिश् च कर्तव्या यावत् पिण्डं दशाहिकम्। पुत्त्रेण हि क्रिया कार्या भार्यया तदभावतः॥६२॥
तदभावे च शिष्येण तदभावे सहोदरः। श्मशाने चाऽन्यतीर्थे वा जलं पिण्डं च दापयेत्॥६३॥

दाँतों से काटें और घी खाकर घर में प्रवेश करें॥५५-५६॥ हे पक्षियों के ईश्वर, कोई चितास्थान को दूध से सींचते हैं। आँसू नहीं छोडना चाहिए, प्रेत को जल की अञ्जलियाँ दे॥५७॥ चूंकि विवश प्रेत बान्धवों से छोडे गए खखार सिङ्घाण (नकटी) और आँसू को खाता है, इस लिए रोना नहीं चाहिए, अपनी शक्ति के अनुसार और्ध्वदेहिक क्रियाएँ करनी चाहिए॥५८॥ हे गरुड, तीन दिनतक सूर्य अस्तङ्गत होने पर घर की वलभी में अथवा चत्वर में मिट्टी के वर्तन में दूध और जल दे॥५९॥ सम्मूढ हृदयवाला, अपने से किए गए धर्म-अधर्म के अनुसार चलता हुआ, देह की इच्छा करता हुआ और श्मशान, चत्वर और घर को देखता हुआ वह प्रेत यमदूतों से ले जाया जाता है॥६०॥ दश दिन तक प्रतिदिन गर्त (गड्ढे) में पिण्ड देने चाहिए। नित्य ही प्रेत को उद्दिष्ट करके जलाञ्जलि भी देने चाहिए॥६१॥ जब तक दश दिन तक दिया जाने वाला पिण्ड दिया जाता है तब तक जलाञ्जलि में वृद्धि भी करनी चाहिए। प्रेत की और्ध्वदेहिक क्रिया पुत्त्र से की जानी चाहिए, पुत्त्र के अभाव में पत्नी से वह क्रिया की जानी चाहिए॥६२॥ पत्नी के भी अभाव में शिष्य द्वारा वह क्रिया की जानी चाहिए। शिष्य के भी अभाव में सहोदर भाई उस क्रिया को करे। श्मशान में अथवा अन्य तीर्थ में जल और पिण्ड दिलवाए॥६३॥

ओदनामिषसक्तूनां शाकमूलफलादिना। प्रथमेऽहनि यद् दद्यात् तद् दद्यादुत्तरेऽहनि॥६४॥
दिनानि दश पिण्डांश् च कुर्वन्त्यत्र सुतादयः। प्रत्यहं ते विभज्यन्ते चतुर्भागाः खगेश्वर॥६५॥
भागद्वयं तु देहार्थं प्रीतिदं भूतपञ्चके। तृतीयं यमदूतानां चतुर्थं चोपजीव्यति॥६६॥
अहोरात्रैस्तु नवभिः प्रेतो निष्पत्तिमाप्नुयात्। जन्तोर् निष्पन्नदेहस्य दशमे बलवत्क्षुधा॥६७॥
न विधिर् नैव मन्त्रश्च न स्वधावाहनाशिषः। नाम गोत्रं समुच्चार्य यद् दत्तं तद् दशाहिकम्॥६८॥
दग्धे देहे पुनर् देहमेवमुत्पद्यते खग। प्रथमेऽहनि यः पिण्डस् तेन मूर्धा प्रजायते॥६९॥
ग्रीवा स्कन्धौ द्वितीये च तृतीये हृदयं भवेत्। चतुर्थेन भवेत् पृष्ठं पञ्चमे नाभिरेव च॥७०॥

शाक मूल फल इत्यादि से सहित ओदन (चाँवल), मांस, सत्तू में से जो भी प्रथम दिन में दे अगले दिनों में भी वही वस्तु दे॥६४॥ हे पक्षियों के मालिक, पुत्रादि लोग दश दिन तक प्रतिदिन जो पिण्ड देते हैं वे चार भागों में विभक्त होते हैं॥६५॥ उन चार भागों में दो भाग तो देहनिर्माण के लिए आवश्यक पाँच महाभूतों के प्रीतिद होते हैं, तीसरा भाग यमदूतों का प्रीतिदायक होता है, चौथे भाग को प्रेत उपभोग करता है॥६६॥ नौ अहोरात्रों में प्रेतशरीर निष्पन्न हो जाता है, देह बन जाने पर प्राणी को तीव्र भूख लगती है॥६७॥ कोई विधि विधान नहीं, मन्त्र भी नहीं, स्वधाशब्द, आवाहन और आशीःप्रार्थना भी नहीं, प्रेत के नाम का और गोत्र का उच्चारण करके जो पिण्ड दिया जाता है वही दश दिनों का कृत्य है॥६८॥ हे पक्षिन्, पूर्वदेह दग्ध हो जाने पर फिर इस प्रकार देह उत्पन्न होता है— प्रथम दिन में जो पिण्ड दिया जाता है उस से शिर बनता है॥६९॥ दूसरे दिन में दिए गए पिण्ड से ग्रीवा (गला) और दोनों स्कन्ध होंगे, तीसरे दिन में दिए गए पिण्ड से हृदय बनेगा, चतुर्थ पिण्ड से पीठ बनेगा, पञ्चम दिन में दिए गए पिण्ड से नाभि बनेगा, छठे दिन में और सातवें दिन में दिए गए पिण्डों से क्रमशः कटी और गुह्यप्रदेश बनेंगे, अष्टम दिन में दिए गए पिण्ड से पैर के ऊपर

षट्-सप्तमे कटी गुह्यमूरू चाप्यष्टमे तथा। तालू पादौ च नवमे दशमेऽह्नि क्षुधा भवेत्॥७१॥
देहं प्राप्तः क्षुधाविष्टो गृहे द्वारे च तिष्ठति। दशमेऽहनि यः पिण्डस् तं दद्यादामिषेण तु॥७२॥
यतो देहे समुत्पन्ने प्रेतोऽतीव क्षुधान्वितः। अतस् त्वामिषबाह्येन क्षुधा तस्य न नश्यति॥७३॥
एकादशे द्वादशाहे प्रेतो भुङ्क्ते दिनद्वयम्। योषितः पुरुषस्याऽपि प्रेतशब्दं समुच्चरेत्॥७४॥
दीपमन्नं जलं वस्त्रं यत्किञ्चिद् वस्तु दीयते। प्रेतशब्देन तद् देयं मृतस्याऽऽनन्ददायकम्॥७५॥
त्रयोदशेऽह्नि स प्रेतो नीयते च महापथे। पिण्डजं देहमाश्रित्य दिवानक्तं बुभुक्षितः॥७६॥
शीतोष्णशङ्कुक्रव्यादवह्निमार्गस्तु पापिनाम्। क्षुधातृष्णात्मिका चैव सर्वं सौम्यं कृतात्मनाम्॥७७॥

वाले हिस्से बनेंगे, नवम दिन में दिए गए पिण्ड से तालु और पैर बनेंगे, दशम दिन में भूख उत्पन्न होगी॥७०-७१॥ देह में प्रविष्ट और भूख से सताया गया वह प्रेत घर के द्वार पर उपस्थित होता है। दशम दिन में जो पिण्ड दिया जाता है उस पिण्ड को मांस से देना चाहिए, क्योंकि देह उत्पन्न होने पर प्रेत कडी भूख से युक्त होता है, इस लिए उस की भूख मांस को छोडकर दूसरे वस्तु से शान्त नहीं होती है॥७२-७३॥ ग्यारहवें दिन में और बारहवें दिन में दो दिन प्रेत श्राद्ध में दिए गए अन्न-पानादि का भोग करता है। स्त्री के और पुरुष के भी इन कृत्यों में प्रेतशब्द का ही उच्चारण करना चाहिए॥७४॥ दीप, अन्न, जल, वस्त्र इत्यादि जो भी वस्तु इन कृत्यों में दिया जाता है वह प्रेतशब्द से देना चाहिए, प्रेतशब्द से दिया गया वस्तु मृतक के लिए आनन्द देने वाला होता है॥७५॥ तेरहवें दिन में पिण्डों से उत्पन्न देह में आश्रित और रात-दिन भूख से पीडित वह प्रेत यममार्ग में ले जाया जाता है॥७६॥ पापियों का मार्ग ठण्डक, गर्मी, खूंटे, मांसभक्षी हिंस्रकजन्तु और अग्नि से युक्त तथा भूख और प्यास से सताने वाला होता है, जिन्हों ने अपने हृदय को धर्मभावना से सम्पन्न किया है उन के लिए वहाँ सब कुछ सुखशान्तिदायक होता है॥७७॥

मार्गे चैतानि दुःखानि असिपत्रवनान्विते। क्षुत्पिपासार्दितो नित्यं यमदूतैः प्रपीडितः॥७८॥
अहन्यहनि वै प्रेतो योजनानां शतद्वयम्। चत्वारिंशत् तथा सप्त अहोरात्रेण गच्छति॥७९॥
गृहीतो यमपाशैश्च हाहेति रुदिते तु सः। स्वगृहं तु परित्यज्य याम्यं पुरमनुव्रजेत्॥८०॥
क्रमेण याति स प्रेतः पुरं याम्यं शुभाशुभम्। अतीत्य तानितान्येव मार्गे पुरवराणि च॥८१॥

याम्यं सौरिपुरं नगेन्द्रभवनं गन्धर्वशैलागमौ क्रौञ्चं क्रूरपुरं विचित्रभवनं बह्वापदं दुःखदम्॥८२॥

नानाक्रन्दपुरं सुतप्तभवनं रौद्रं पयोवर्षणं घर्माढ्यं बहुशीतभीतिभवनं याम्यं पुरं चाग्रतः॥८३॥

त्रयोदशेऽह्नि स प्रेतो गृहीतो यमकिङ्करैः। तस्मिन् मार्गे व्रजत्येको गृहीत इव मर्कटः॥८४॥

असिपत्रवन से युक्त यममार्ग में ये दुःख होते हैं– प्रेत सदैव भूख और प्यास से आर्त और यमदूतों से अत्यन्त पीडित होता है, प्रत्येक दिन प्रेत एक अहोरात्र में दो सौ सैंतालीस योजन चलता है, यम के पाशों से बँधा हुआ वह प्रेत हाहा करके रोता रहता है, अपने घर को छोडकर वह यमराज के पुर को चलता है॥७८-८०॥ मार्ग में उन-उन नगरों को क्रम से पार करता हुआ वह प्रेत शुभ अथवा अशुभ रूप के यमपुर को जाता है॥८१॥ मार्ग के वे नगर ये हैं– १.याम्यपुर, २.सौरिपुर, ३.नगेन्द्रभवन, ४.गन्धर्वपुर, ५.शैलागमपुर, ६.क्रौञ्चपुर, ७.क्रूरपुर, ८.विचित्रभवन, ९.बह्वापदपुर, १०.दुःखदपुर, ११.नानाक्रन्दपुर, १२.सुतप्तभवन, १३.रौद्रपुर, १४.पयोवर्षणपुर, १५.घर्माढ्यपुर, १६.बहुशीतभीतिभवन। इन के आगे यमराज का मुख्य पुर है *[__विशेष__– पञ्चम अध्याय में (श्लो.९५) आए हुए इन नगरों के क्रम को और षोडश अध्याय में प्रेत के इन नगरों में पहुँचने के क्रमों को भी देखिए]* ॥८२-८३॥ तेरहवें दिन में यम के अनुचरों से पकडा हुआ वह प्रेत पकडे हुए बन्दर की तरह उस मार्ग में अकेला चलता है॥८४॥

तथैव स व्रजन् मार्गे पुत्त्रपुत्त्रेति च ब्रुवन्। हाहेति क्रन्दते नित्यं कीदृशं तु मया कृतम्॥८५॥
मानुष्यं लभ्यते कस्मादिति ब्रूते प्रसर्पति। महता पुण्ययोगेन मानुष्यं जन्म लभ्यते॥८६॥
न तत् प्राप्य प्रदत्तं हि याचकेभ्यः स्वकं धनम्। पराधीनं त्वदभवदिति ब्रूते सगद्गदः॥८७॥
किङ्करैः पीड्यतेऽत्यर्थं स्मरते पूर्वदैहिकम्॥८८॥

सुखस्य दुःखस्य न कोपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
पुरा कृतं कर्म सदैव भुज्यते देहिन् क्वचिन् निस्तर यत् त्वया कृतम्।८९।
मया न दत्तं न हुतं हुताशने तपो न तप्तं हिमशैलगह्वरे।
न सेवितं गाङ्गमहो महाजलं देहिन् क्वचिन् निस्तर यत् त्वया कृतम्।९०।

उसी प्रकार मार्ग में चलता हुआ, सहायता के लिए 'लडके लडके' कहता हुआ नित्य हाहा करके चिल्लाता है और कहता है कि मैं ने कैसा कर्म किया था?॥८५॥ मनुष्यजन्म किस कर्म से पाया जाता है, ऐसा बोलता है और आगे बढता है। बडे पुण्य के योग से मनुष्यजन्म पाया जाता है॥८६॥ उस को पाकर मैं ने अपना धन माँगने वालों को नहीं दिया, अब वह धन दूसरे के अधीन में हुआ,लडखडाती हुई वाणी वाला वह ऐसा बोलता है॥८७॥ वह यमराज के सेवकों से अत्यन्त पीडित किया जाता है और पूर्वदेह से किए गए कर्म का स्मरण करता है॥८८॥ सुख का और दुःख का दाता दूसरा कोई नहीं है, दूसरा मनुष्य सुख अथवा दुःख देता है ऐसा समझना कुबुद्धि है, पहले अपने से किए गए कर्म का फल ही सदाकाल भोगा जाता है, इस लिए हे जीव, तुम ने जो किया था उस का फल भोग कर पार हो जाओ॥८९॥ मैं ने दान नहीं किया, अग्नि में हवन नहीं किया, हिमालय पर्वत की गुफा में तपस्या भी नहीं की, अहो ! गङ्गाजी का महापवित्र जल की सेवा भी नहीं की; हे जीव, तुम ने जो किया था उस का कहीं फलभोग करके पार हो जाओ॥९०॥

न नित्यदानं न गवाह्निकं कृतं न वेददानं न च शास्त्रपुस्तकम्।
पुराणदृष्टो न च सेवितोऽध्वा देहिन् क्वचिन् निस्तर यत् त्वया कृतम्॥
जलाशयो नैव कृतो हि निर्जले मनुष्यहेतोः पशुपक्षिहेतवे।
गोतृप्तिहेतोर् न कृतं हि गोचरं देहिन् क्वचिन् निस्तर यत्त्वया कृतम्।९२।
मया न भुक्तं पतिसङ्गसौख्यं वह्निप्रवेशो न कृतो मृते सति।
तस्मिन् मृते तद्व्रतपालनं वा देहिन् क्वचिन् निस्तर यत् त्वया कृतम्॥
मासोपवासैर् न विशोषितं वपुश् चान्द्रायणैर् वा नियमैश् च संहतैः।
नारीशरीरं बहुदुःखभाजनं लब्धं मया पूर्वकृतैर् विकर्मभिः॥९४॥

मैं ने नित्यदान नहीं किया, गाय को एक दिन के लिए पर्याप्त घास का दान भी नहीं किया, वेद का अध्यापनरूप दान भी नहीं किया, शिक्षा-कल्प-व्याकरण-निरुक्त-छन्द-ज्योतिष इन छः वेदाङ्गशास्त्रों के पुस्तक का दान भी नहीं किया, पुराणशास्त्र से ज्ञात सन्मार्ग का सेवन भी नहीं किया; हे जीव, तुम ने जो किया था उस का कहीं फलभोग करके पार हो जाओ॥९१॥ मैं ने जल से रहित देश में मनुष्यों के लिए अथवा पशु-पक्षियों के लिए भी जलाशय नहीं बनाया, गायों की तृप्ति के लिए चरागाह (गायों के चरने का स्थान) भी नहीं बनाया; हे जीव, तुम ने जो किया था उस का कहीं फलभोग करके पार हो जाओ॥९२॥ कोई स्त्रीजीव यममार्ग में चलती हुई कहती है कि— मैं ने पति के सङ्ग में सुख का अनुभव करके पति को प्रसन्न नहीं किया, पति के मरने पर पति की चिता के अग्नि में प्रवेश भी नहीं किया, पति मरने पर पति के व्रतों का पालन भी नहीं किया; हे जीव, तुम ने जो किया था उस का कहीं फलभोग करके पार हो जाओ॥९३॥ मैं ने महीनेतक किए जाने वाले उपवास से अथवा चान्द्रायणकृच्छ्र से अथवा अन्य संयुक्त व्रतों से शरीर को नहीं सुखाया, पूर्वजन्मों में किए गए

उक्तानि वाच्यानि मया नराणामतः शृणुष्वाऽवहितोऽपि पक्षिन्।
स्त्रीणां शरीरं प्रतिलभ्य देही ब्रवीति कर्माणि कृतानि पूर्वम्॥९५॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे यमलोकविस्तार-तन्माहात्म्य-तद्यानननिरूपणं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥

अथ षोडशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

एवं विलपतस्तस्य प्रेतस्यैवं खगेश्वर। क्रन्दमानस्य नितरां पीडितस्य च किङ्करैः॥१॥

शास्त्रविपरीत कर्मों से मैं ने बहुत दुःखों को भोगने वाला स्त्रीशरीर पाया॥९४॥ हे पक्षिन्, यममार्ग में चलते हुए मनुष्यों से पश्चात्ताप से कही जाने वाली बातें मैं ने बता दीं, तुम सावधान होकर सुनो। जीव स्त्रियों का शरीर पाकर पहले अपने से किए गए कर्मों को कहता है॥९५॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में यमलोक का विस्तार उस का माहात्म्य और यमलोक को जाने के काम का निरूपण करने वाला पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥१५॥

श्रीभगवान् ने कहा— हे पक्षियों के मालिक, इस प्रकार विलाप करने वाले और यमराज के सेवककों से अत्यन्त पीडित और इस प्रकार क्रन्दन करने वाले उस प्रेत का कहना कुछ सुने विना ही वह प्रेत अनादरपूर्वक सत्रह दिन तक अकेला ही वायुमार्ग में यमदूतों से खींचा जाता है।

सप्तदश दिनान्येको वायुमार्गे विकृष्यते। अष्टादशे त्वहोरात्रे पूर्वं याम्यपुरं व्रजेत्॥२॥
तस्मिन् पुरवरे रम्ये प्रेतानां च गणो महान्। पुष्पभद्रा नदी तत्र न्यग्रोधः प्रियदर्शनः॥३॥
पुरे स तत्र विश्रामं प्राप्यते यमकिङ्करैः। जायापुत्त्रादिकं सौख्यं स्मरेत् तत्र सुदुःखितः॥४॥
रुदते करुणैर् वाक्यैस् तृषार्तः श्रमपीडितः। स्वधनं स्वकलत्राणि गृहं पुत्त्राः सुखानि च॥५॥
भृत्यमित्राणि चाऽन्यच् च सर्वं शोचति वै तदा। क्षुधार्तस्य पुरे तस्मिन् किङ्करैस्तस्य चोच्यते॥६॥

किङ्करा ऊचुः

क्व धनं क्व सुता जाया क्व गृहं क्व त्वमीदृशः। स्वकर्मोपार्जितं भुङ्क्ष्व चिरं गच्छ महापथे॥७॥

जानासि शम्बलवशं बलमध्वगानां नो शम्बलः प्रयत ते परलोकपान्थ।
गन्तव्यमस्ति तव निश्चितमेव तेन मार्गेण यत्र भवतः क्रयविक्रयौ न॥८॥

अठारहवें अहोरात्र में वह पहले याम्यपुर में पहुँचेगा॥१-२॥ उस रमणीय श्रेष्ठ पुर में प्रेतों का बडा समूह रहता है, वहाँ पुष्पभद्रा नाम की नदी और आँखों को लुभाने वाला वटवृक्ष भी है॥३॥ उस पुर में वह प्रेत यमराज के सेवकों द्वारा विश्राम कराया जाता है, वहाँ वह प्रेत बहुत दुःखी होकर पत्नी-पुत्रादि का और मनुष्यलोक के सुख का स्मरण करता है॥४॥ प्यास से और थकान से पीडित वह प्रेत दीनतायुक्त वाक्यों के साथ रोता है। उस समय में अपने धन, अपनी पत्नियां, घर, पुत्त्र, मनुष्यलोक का सुख, सेवक, मित्र और अन्य सब बातों की चिन्ता करता है। उस पुर में भूख से सताए गए उस के लिए यमदूतों से ऐसा कहा जाता है—॥५-६॥ पत्नी कहाँ है? घर कहाँ है? इस प्रकार का तुम कहाँ हो? अपने कर्मों से उपार्जित फल का बहुत समय तक भोग करो और यममार्ग में चलो॥७॥ तुम जानते हो कि पथिकों का बल मार्ग में भोज्य पदार्थों में आधृत है, हे परलोक के राही, परलोक जाने वाले तुम्हारा कोई मार्गभोज्य पदार्थ नहीं है। तुम को निश्चित रूप से उसी मार्ग से जाना है जहाँ कीनना और बेचना नहीं होते हैं॥८॥

यमदूतोदितं वाक्यं पक्षिन् नैवं त्वया श्रुतम्। एवमुक्तस् ततः सर्वैर् हन्यमानः स मुद्गरैः॥९॥
अत्र दत्तं सुतैः पात्रे स्नेहाद् वा कृपयाऽथवा। मासिकं पिण्डमश्नाति ततः सौरिपुरं व्रजेत्॥१०॥
तत्र नाम्ना तु राजा वै जङ्गमः कालरूपधृक्। तं दृष्ट्वा भयभीतस्तु विश्रामे कुरुते मतिम्॥११॥
उदकं चाऽन्नसंयुक्तं भुङ्क्ते तस्मिन् पुरे गतः। त्रैपक्षिके तु यद् दत्तं तत् पुरं स व्यतिक्रमेत्॥१२॥
नगेन्द्रनगरे रम्ये प्रेतो याति दिवानिशम्। गच्छन् वनानि रौद्राणि दृष्ट्वा क्रन्दति तत्र सः॥१३॥
भीषणैः क्लिश्यमानस् तु रुदते च पुनःपुनः। मासद्वयावसाने तु तत् पुरं सोऽतिगच्छति॥१४॥
भुक्त्वा चाऽन्नं जलं पीत्वा यद् दत्तं बान्धवैरिह। क्लिश्यमानस् ततः पाशैर् नीयते यमकिङ्करैः॥१५॥
तृतीये मासि सम्प्राप्ते गन्धर्वनगरं शुभम्। तृतीयं मासिकं भुक्त्वा तत्र गच्छत्यसौ पुरः॥१६॥

हे पक्षिन्, यमदूतों से कहे गए ऐसे वाक्य को तुम ने तो नहीं सुना है। सभी यमदूतों से ऐसी तरह भर्त्सित और मुंगरियों से ताडित होता हुआ वह प्रेत पुत्रों से प्रेत के प्रति स्नेह से अथवा दया से सत्पात्र में दिए गए मासिक श्राद्ध का पिण्ड खाता है और वहाँ से सौरिपुर के लिए चलता है॥९-१०॥ उस पुर में नाम से जङ्गम और काल का रूप धारण करने वाला राजा है। उस को देखकर भयभीत वह प्रेत विश्राम करना चाहता है॥११॥ उस पुर में पहुँचा हुआ वह प्रेत त्रैपक्षिक श्राद्ध में जो दिया गया है उस अन्न सहित जल को खाता है और उस पुर को लांघता है॥१२॥ रात-दिन चलता हुआ वह प्रेत सुहावने नगेन्द्रनगर को जाता है और वहाँ भयङ्कर वनों को देखकर वह चिल्लाता है॥१३॥ भयङ्कर यमदूतों से क्लेशित होता हुआ वह वारवार रोता है। दो मासों के अन्त में वह जो बान्धवों से दिया गया है उस अन्न को खाकर और जल को पीकर उस पुर को लांघता है। तब यमदूतों से पाशों से क्लेशित होता हुआ वह प्रेत तीसरे मास प्राप्त होने पर सुहावने गन्धर्वनगर को ले जाया जाता है। वह वहाँ तीसरे मास के श्राद्ध में दिए गए अन्नपान का भोग करके आगे बढता है॥१४-१६॥

शैलागमं चतुर्थे स मासे प्राप्नोति वै पुरम्। पाषाणास्तत्र वर्षन्ति प्रेतस्योपरि संस्थिताः॥१७॥
चतुर्थमासिकं श्राद्धं भुङ्क्ते तत्र सुखी भवेत्। ततो याति पुरं प्रेतः क्रौञ्चं मासे तु पञ्चमे॥१८॥
इह दत्तं सुतैर् भुङ्क्ते प्रेतो वै तत्पुरे स्थितः। षष्ठे मासि ततः प्रेतो याति क्रूराभिधं पुरम्॥१९॥
तत्र दत्तेन पिण्डेन श्राद्धेनाऽऽप्यायितः पुरे। मुहूर्तार्धं तु विश्रम्य कम्पमानः सुदुःखितः॥२०॥
तत् पुरं स व्यतिक्रम्य तर्जितो यमकिङ्करैः। प्रयाति चित्रनगरं विचित्रो यत्र पार्थिवः॥२१॥
यमस्यैवाऽनुजः सौरिर् यत्र राज्यं प्रशास्ति हि। मासैस् तु पञ्चभिः सार्धैरूनषाण्मासिकं भवेत्॥२२॥
ऊनषाण्मासिकं तत्र भुङ्क्ते याम्यसमाहतः। मार्गे पुनःपुनस्तस्य बुभुक्षा पीडयत्यलम्॥२३॥
सन्तिष्ठते मृते कोऽपि मदीयः सुतबान्धवः। सौख्यं यो मे जनयति पततः शोकसागरे॥२४॥

वह चौथे महीने में शैलागम पुर में पहुँचता है। वहाँ संस्थित पत्थल प्रेत के ऊपर बरसते हैं॥१७॥ वहाँ चौथे महीने के श्राद्ध में दिए गए अन्नपान का भोग करता है, और सुखी होता है। तब प्रेत क्रौञ्चपुर को जाता है, पाँचवे महीने में इस लोक में पुत्रों से दिए गए अन्नपान का उस पुर में रहकर प्रेत भोग करता है। छठे महीने में प्रेत वहाँ से क्रूरनामक पुर में जाता है॥१८-१९॥ छठे महीने में दिए गए श्राद्ध से और पिण्ड से उस पुर में सन्तृप्त होकर आधा मुहूर्त विश्राम करके अत्यन्त दुःखित और कांपता हुआ वह प्रेत उस पुरको लांघकर यमदूतों से तर्जित होता हुआ विचित्रनगर को जाता है, जहाँ विचित्र नाम का यमराज का ही छोटा भाई सूर्यपुत्र राजा राज्यशासन करता है। साढे पाँच महीनों में ऊनषाण्मासिक श्राद्ध होगा॥२०-२२॥ उस पुर में यमदूतों से ताडित होता हुआ प्रेत ऊनषाण्मासिक श्राद्ध में दिए गए अन्नपान का भोग करता है। यममार्ग में उस की भूख उस को वारवार अत्यन्त पीडित करती है॥२३॥ मरने पर मेरा कोई पुत्र वा बान्धव खडा है क्या, जो शोक के सागर में पडते हुए मुझ को सुख देता है॥२४॥

एवं मार्गे विलपति वार्यमाणश् च किङ्करैः। आयान्ति सम्मुखास् तत्र कैवर्तास्तु सहस्रशः॥२५॥
वयं ते तर्तुकामाय महावैतरणीं नदीम्। शतयोजनविस्तीर्णां पूयशोणितसङ्कुलाम्॥२६॥
नानाझषसमाकीर्णां नानापक्षिगणैर् वृताम्। वयं त्वां तारयिष्यामः सुखेनेति वदन्ति ते॥२७॥
अन्तरं देहि भोः पान्थ बहुला चेद् रुचिस् तव। येन तत्र प्रदत्ता गौस् तया नावा प्रसर्पति।
मनुजानां हितं दानमन्ते वैतरणी स्मृता॥२८॥
परा पापं दहेत् सर्वं विष्णुलोकं च सा नयेत्। न दत्ता चेत् खगश्रेष्ठ तां समेत्य स मज्जति॥२९॥
स्वस्थावस्थे शरीरेऽत्र वैतरण्या व्रतं चरेत्। देया च विदुषे धेनुस् तां नदीं तर्तुमिच्छता॥३०॥
अददन् मज्जमानस् तु निन्दत्यात्मानमात्मना। पाथेयार्थं मया किञ्चिन् न प्रदत्तं द्विजाय च॥३१॥

यमदूतों से रोका जाता हुआ भी वह प्रेत मार्ग में ऐसा विलाप करता है। वहाँ हजारों केवट उस के आगे आते हैं॥२५॥ वे कहते हैं कि महावैतरणी नदी को पार करने की इच्छा रखने वाले तुम्हारे लिए हम उपस्थित हैं; सौ योजन विस्तृत, पीब और लहू से पूर्ण, नाना प्रकार के ग्राहादि जलचरों से व्याप्त तथा विविध प्रकार के पक्षियों के झुण्डों से ढकी हुई इस नदी को तुम को हम सुखपूर्वक तारेंगे, यदि तुम्हारी इस में पर्याप्त रुचि है तो, हे पथिक, हम को काम करने का अवसर दो। उस लोक में जिस से गाय दान में दी गई है उस नाव के साथ में वह गाय चलती है। मनुष्यों के अन्तकाल में दान में दी गई वैतरणी गौ परम हितकारिणी समझी गई है। वह सभी पापों को भस्म करेगी और दाता को विष्णुलोक में ले जाएगी। हे पक्षियों में श्रेष्ठ, यदि वैतरणी गौ नहीं दी गई है तो वह मनुष्य वैतरणी नदी में पहुँचकर डूब जाता है॥२६-२९॥ शरीर स्वस्थावस्था में रहते ही इस लोक में वैतरणी का व्रत करना चाहिए। उस वैतरणी नदी को पार करना चाहने वाले को विद्वान् ब्राह्मण को वैतरणी धेनु देनी चाहिए॥३०॥ वैतरणीदान नदेने वाला मनुष्य वैतरणी नदी में डूबता हुआ स्वयम् अपनी निन्दा करता है। वह कहता है— मार्गभोज्य के लिए मैं ने ब्राह्मण को कुछ भी नहीं दिया, और

न दत्तं न हुतं जप्तं न स्नातं न कृतं स्तुतम्। यादृशं कर्म चरितं मूढ भुङ्क्ष्वेति तादृशम्॥३२॥
तदैवं हृदि सम्मूढस् ताडितो भाषते भटैः। वैतरण्याः परतटे भुङ्क्ते दत्तं घटादिकम्॥३३॥
तत्र षाण्मासिकश्राद्धं भुक्त्वा गच्छति चाऽग्रतः। तार्क्ष्य तत्र विशेषेण भोजयीत द्विजाञ् छुभान्॥३४॥
चत्वारिंशत् तथा सप्त योजनानि शतद्वयम्। प्रयाति प्रत्यहं तार्क्ष्य अहोरात्रेण कर्षितः॥३५॥
सप्तमे मासि सम्प्राप्ते पुरं बह्वापदं व्रजेत्। तत्र भुक्त्वा प्रदत्तं यच् छ्राद्धं सप्तममासिकम्॥३६॥
अष्टमे मासि सम्प्राप्ते नानाक्रन्दपुरं व्रजेत्। नानाक्रन्दगणान् दृष्ट्वा क्रन्दमानान् सुदारुणम्॥३७॥
स्वयं च शून्यहृदयः समाक्रन्दति दुःखितः। तन्मासिकं च यच् छ्राद्धं भुक्त्वा तत्र सुखी भवेत्॥३८॥

दान भी नहीं किया, होम भी नहीं किया, जप भी नहीं किया, तीर्थस्नानादि स्नान भी नहीं किया, अन्य लोकप्रशंसित सुकृतकर्म भी नहीं किया। हे मूर्ख, जैसा कर्म किया उसी प्रकार का यह फल भोगो॥३१-३२॥ यमराज के पुरुषों से हृदयदेश में ताडित वह मूढ प्रेत उस समय में ऐसा बोलता है। वैतरणी नदी के दूसरे तट में जाकर इस लोक में पुत्रादि से दिए गए घटजल और अन्न को खाता है॥३३॥ वहाँ षाण्मासिक श्राद्ध में दिए गए अन्नपान का भोग करके वह आगे बढता है। हे गरुड, षाण्मासिक श्राद्ध में विशेष रूप से सत्पात्र ब्राह्मणों को भोजन कराए॥३४॥ *[विशेष— यहाँ इस प्रसङ्ग में जीवानन्दसंस्करण में दोनों स्थलों में (६।२१,३०) षण्मास का उल्लेख है, वङ्गवासिसंस्करण में दोनों स्थलों में (१७।२३,३४) ऊनषण्मास का उल्लेख है; वेङ्कटेश्वरसंस्करण में भी (१६।२२-२३,३४) ऐसी ही बात है। गत पञ्चम अध्याय के क्रम को (श्लो. ११७, १२०) भी देखकर इन उल्लेखों का विचार और संशोधन उचित दिखाई देता है]*। हे गरुड, कृशीभूत वह प्रेत प्रतिदिन एक अहोरात्र में दो सौ सैंतालीस योजन चलता है॥३५॥ सातवाँ महीना प्राप्त होने पर वह बह्वापद नाम के पुर में पहुँचेगा। सप्तममासिक श्राद्ध जो दिया जाता है उस का वहाँ भोग करके आठवाँ महीना प्राप्त होने पर वह नानाक्रन्दपुर में पहुँचेगा। अत्यन्त दारुण रूप में क्रन्दन करते हुए नानाक्रन्दगणों को देखकर स्वयम् भी शून्यहृदय वाला और दुःखित होकर प्रेत बहुत जोर से क्रन्दन करता है। उस महीने में दिया गया जो श्राद्ध होता है उस का भोग करके वह वहाँ सुखी होता है॥३६-३८॥

विहाय तत् पुरं प्रेतो याति तप्तपुरं प्रति। सुतप्तनगरं प्राप्य नवमे मासि सोऽश्नुते।
द्विजभोज्यं पिण्डदानं कृतं श्राद्धं सुतेन यत्॥३९॥
मासि वै दशमे प्रासे रौद्रं स्थानं स गच्छति। दशमे मासि यद् दत्तं तद् भुक्त्वा च प्रयाति सः॥४०॥
दशैकमासिकं भुक्त्वा पयोवर्षणमृच्छति। मेघास्तत्र प्रवर्षन्ति प्रेतानां दुःखदायकाः॥४१॥
ततः प्रचलितो प्रेतो बहुधर्मे तृषार्दितः। द्वादशे मासि यच् छ्राद्धं तत्र भुङ्क्ते सुदुःखितः॥४२॥
किञ्चिन्न्यूने ततो वर्षे सार्धे चैकादशेऽथवा। याति शीतपुरं तत्र शीतं यत्राऽतिदुःखदम्॥४३॥
शीतार्तः क्षुधितः सोऽथ वीक्षते हि दिशो दश। तिष्ठेत् तु बान्धवः कोऽपि यो मे दुःखं व्यपोहति॥४४॥
किङ्करास् तं वदन्त्येवं क्व ते पुण्यं हि तादृशम्। श्रुत्वा तेषां तु तद् वाक्यं हा दैव इति भाषते॥४५॥

प्रेत उस पुर को छोडकर तप्तपुर की ओर चलता है। सुतप्तपुर में पहुँचकर नवें मास में पुत्रादि ने ब्राह्मणभोजन और पिण्डदान करके जो श्राद्ध किया होता है उस का भोग करता है॥३९॥ दशवाँ महीना प्राप्त होने पर वह रौद्रपुर को जाता है। दशवें महीने में पुत्रादि से जो श्राद्ध दिया जाता है उस का भोग करके वह वहाँ से चलता है॥४०॥ ग्यारहवें मासिक में दिए गए श्राद्ध का भोग करके वह पयोवर्षणपुर को पहुँचता है। उस पुर में प्रेतों को दुःख देने वाले मेघ भारी वर्षा करते हैं॥४१॥ वहाँ से चला हुआ प्रेत बहुधर्मपुर में प्यास से पीडित होता हुआ बारहवें महीने में जो श्राद्ध दिया गया होता है उस का वहाँ भोग करता है॥४२॥ वर्षपूर्ति में थोडी न्यूनता रहने पर अथवा साढे ग्यारह महीने बीतने पर उस मार्ग में वह प्रेत शीतपुर में पहुँचता है, जहाँ ठण्डक अत्यन्त दुःख देने वाली होती है॥४३॥ *[विशेष— यहाँ बहुधर्मपुर (घर्माढ्यपुर) का और शीतपुर का क्रम विशेष परिचिन्तनीय है। इस को देखने से याम्यं सौरिपुरम् इत्यादि पद्य के पुरों के क्रम में विचार करना आवश्यक दिखाई देता है]*। ठण्डक से आर्त और भूख से पीडित वह प्रेत दशों दिशाओं को इस विचार से देखता है कि मेरा कोई बान्धव जो मेरे दुःख को हटा सकता है यहाँ कहीं है क्या?॥४४॥ यमराज के पुरुष तुम्हारा वैसा पुण्य कहाँ है ऐसा कहते हैं। उन के इस वाक्य को सुनकर प्रेत 'हाय दैव' ऐसा बोलता है॥४५॥

दैवं हि पूर्वसुकृतं तन् मया नैव सञ्चितम्। एवं सञ्चिन्त्य बहुशो धैर्यमालम्बते पुनः॥४६॥
चत्वारिंशद् योजनानि चतुर्युक्तानि वै ततः। धर्मराजपुरं रम्यं गन्धर्वाप्सरआकुलम्॥४७॥
चतुरशीतिलक्षैश् च मूर्तामूर्तैरधिष्ठितम्। त्रयोदश प्रतीहारा धर्मराजपुरे स्थिताः॥४८॥
शुभाऽशुभं तु यत् कर्म ते विचार्य पुनःपुनः। श्रवणा ब्रह्मणः पुत्रा मनुष्याणां च चेष्टितम्।
कथयन्ति तदा लोके पूजिताऽपूजिताः स्वयम्॥४९॥
नरैस् तुष्टैश् च पुष्टैश् च यत् प्रोक्तं च कृतं च यत्। सर्वमावेदयन्ति स्म चित्रगुप्ते यमे च तत्॥५०॥
दूराच्छ्रवणविज्ञाना दूराद्दर्शनगोचराः। एवंचेष्टास्तु ते ह्यष्टौ स्वर्-भू-पाताल-चारिणः॥५१॥
तेषां पत्न्यस्तथैवोग्राः श्रवण्यः पृथगाह्वयाः। एवं तेषां शक्तिरस्ति मर्त्ये मर्त्याधिकारिणः॥५२॥

पहले किया गया सुकर्म ही दैव है, वह तो मैं ने सञ्चित नहीं किया है। वारवार ऐसा विचार करके वह फिर धैर्य का अवलम्बन करता है॥४६॥ उस शीतपुर से चौवालीस योजन दूर में गन्धर्व और अप्सराओं से पूर्ण, सुहावना और मूर्त तथा अमूर्त चौरासी लाख तत्त्वों से अधिष्ठित धर्मराजपुर है। धर्मराज के पुर में तेरह द्वारपाल मनुष्यों के जो शुभ और अशुभ कर्म होते हैं उन का वारवार विचार करके अवस्थित होते हैं। वे ब्रह्माजी के पुत्र श्रवण हैं, लोक में पूजित अथवा अपूजित होने पर भी वे प्रेत धर्मराजपुर में पहुँच जाने पर मनुष्यों के कर्मों को स्वयम् बताते हैं॥४७-४९॥ मनुष्यलोक में तुष्ट और पुष्ट मनुष्यों से जो कहा गया अथवा किया गया होता है वह सब वे चित्रगुप्त में और यमराज में भी आवेदित (ज्ञापित) करते हैं॥५०॥ दूर से ही सुनने की और जानने की शक्ति से और दूर से ही देखने की शक्ति से युक्त तथा उसी अनुसार चेष्टा करने वाले और स्वर्गलोक मर्त्यलोक तथा पाताललोक में घूमने वाले वे आठ हैं॥५१॥ उन श्रवणों की पत्नियाँ भी उसी प्रकार की तीव्र शक्ति से युक्त तथा अलग-अलग नाम वाली श्रवणियाँ हैं। उन श्रवणों की इस प्रकार की शक्ति है, वे मर्त्यलोक में मनुष्यों के चरित्र को देखने सुनने के लिए स्थापित हैं॥५२॥

व्रतैर् दानैः स्तवैर् यश् च पूजयेदिह मानवः। जायन्ते तस्य ते सौम्याः सुखमृत्युप्रदायिनः॥५३॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे प्रेतयात्रादिनिरूपणं नाम षोडशोऽध्यायः॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

गरुड उवाच

एको मे संशयो देव हृदयं सम्प्रबाधते। श्रवणाः कस्य पुत्त्राश्च कथं यमपुरे स्थिताः॥१॥

मानुषैश् च कृतं कर्म कस्माज् जानन्ति ते प्रभो। कथं शृण्वन्ति ते सर्वे कस्माज् ज्ञानं समागतम्॥२॥

इस लोक में जो मनुष्य व्रतों से, दानों से और स्तुतियों से उन श्रवणों की पूजा करेगा उस के लिए वे सौम्य और सुखमृत्यु देने वाले होते हैं॥५३॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में प्रेत की यमलोकयात्रा इत्यादि का निरूपण करने वाला सोलहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥१६॥

गरुड ने कहा— हे देव, एक सन्देह मेरे हृदय को अत्यन्त बाधित करता है, श्रवण किस के पुत्त्र हैं? कैसे यमपुर में रहे हैं?॥१॥ हे प्रभु, वे मनुष्यों से किए गए कर्मों को किस कारण से जानसकते हैं? वे सब कैसे सुनते हैं, कहाँ से उन का ज्ञान आया है?॥२॥ हे देवों के स्वामिन्,

कुत्र भुञ्जन्ति देवेश कथयस्व प्रसादतः। पक्षिराजवचः श्रुत्वा भगवान् वाक्यमब्रवीत् ॥३॥

श्रीकृष्ण उवाच

शृणुष्व वचनं सत्यं सर्वेषां सौख्यदायकम्। तदहं कथयिष्यामि श्रवणानां विचेष्टितम् ॥४॥
एकीभूतं यदा सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम्। क्षीरोदसागरे पूर्वं मयि सुप्ते जगत्पतौ ॥५॥
नाभिस्थोऽजस् तपस् तेपे वर्षाणि सुबहून्यपि। एकीभूतं जगत् सृष्टं भूतग्रामचतुर्विधम् ॥६॥
ब्रह्मणा निर्मितं पूर्वं विष्णुना पालितं तदा। रुद्रः संहारमूर्तिश् च निर्मितो ब्रह्मणा ततः ॥७॥
वायुः सर्वगतः सृष्टः सूर्यस् तेजोभिवृद्धिमान्। धर्मराजस् ततः सृष्टश् चित्रगुप्तेन संयुतः ॥८॥
सृष्ट्वैतदादिकं सर्वं तपस् तेपे तु पद्मजः। गतानि बहुवर्षाणि ब्रह्मणो नाभिपङ्कजे ॥९॥

वे कहाँ खाते हैं, कृपा करके बताइए। पक्षियों के राजा के वचन को सुनकर भगवान् ने अपने वाक्य को बोला॥३॥ श्रीकृष्ण ने कहा— सभी लोगों को सुख देने वाले सत्य वचन को सुनो। मैं श्रवणों के उस चरित्र को बताउँगा॥४॥ जिस समय में स्थावर और जङ्गम सम्पूर्ण जगत् एकीभूत हुआ था, जगत् का पति मैं पहले क्षीरोदसागर में जब सोया था, उस सयम में मेरे नाभिकमल में स्थित ब्रह्मा ने बहुत वर्षों तक तपस्या की। ब्रह्माजी ने एकीभूत जगत् को चार प्रकार के प्राणियों से युक्त बनाकर उत्पन्न किया॥५-६॥ जगत् को पहले ब्रह्माजी ने बनाया और विष्णु ने पालित किया। तब संहारमूर्ति रुद्र ब्रह्माजी से बनाए गए॥७॥ ब्रह्माजी से सर्वगत वायु और तेज की अभिवृद्धि से युक्त सूर्य भी उत्पादित हुए। उस के बाद ब्रह्माजी से चित्रगुप्त से युक्त धर्मराज भी उत्पादित हुए॥८॥ इन तत्त्वों से सहित अन्य सब वस्तुओं की सृष्टि करके ब्रह्माजी तपस्या करने लगे। नारायण के नाभिकमल में बैठतेबैठते ब्रह्माजी के बहुत वर्ष बीत गए॥९॥

योयो हि निर्मितः पूर्वं तत्तत्कर्म समाचरेत्। कस्मिंश्चित् समये तत्र ब्रह्मा लोकसमन्वितः॥१०॥
रुद्रो विष्णुस्तथा धर्मः शासयन्ति वसुन्धराम्। न जानीमो वयं किञ्चिल्लोककृत्यमिहोच्यताम्॥११॥
इति चिन्तापराः सर्वे देवा विममृशुस्तदा। सञ्चिन्त्य ब्रह्मणो मन्त्रं विबुधैः प्रेरितस्तदा॥१२॥
गृहीत्वा पुष्पपत्राणि सोऽसृजद् द्वादशाऽऽत्मजान्। तेजोराशीन् विशालाक्षान् ब्रह्मणो वचनात्तु ते।१३।
योऽयं वदति लोकेऽस्मिन् छुभं वा यदि वाऽशुभम्। प्रापयन्ति ततः शीघ्रं ब्रह्मणः कर्णगोचरम्॥१४॥
दूराच् छ्रवणविज्ञानं दूराद् दर्शनगोचरम्। सर्वे शृण्वन्ति यत् पक्षिंस् तेनैव श्रवणा मताः॥१५॥
स्थित्वा चैव तथाऽऽकाशे जन्तूनां चेष्टितं च यत्। तज् ज्ञात्वा धर्मराजाग्रे मृत्युकाले वदन्ति च।१६।
धर्मं चार्थं च कामं च मोक्षं च कथयन्ति ते। एको हि धर्ममार्गश् च द्वितीयश् चाऽर्थमार्गकः॥१७॥

जोजो पहले बनाया गया था वह उसउस कर्म को करेगा। किसी समय में वहाँ लोकों से युक्त ब्रह्माजी, रुद्र, विष्णु और धर्मराज पृथिवी में प्रशासन चलाते थे। हम नहीं जानते हैं, कुछ लोककृत्य यहाँ बताया जाय ऐसी चिन्ता में लगे हुए सब देवताओं ने विमर्श किया, ब्रह्माजी के मन्त्र का चिन्तन करके उस समय में देवताओं से प्रेरित ब्रह्माजी ने पुष्प और पत्र लेकर तेज के राशि के रूप के और बडेबडे नेत्रों से युक्त बारह पुत्रों की सृष्टि की। ब्रह्माजी के वचन से वे ब्रह्मपुत्र मर्त्यलोक में जो कोई शुभ अथवा अशुभ जो कुछ बोलता है उस को वहाँ से शीघ्र ही ब्रह्माजी के कान में पहुँचाते हैं॥१०-१४॥ हे पक्षिन्, सुनकर जानने के योग्य विषयों को दूर से ही जानते हैं, देखकर जानने के योग्य विषयों को दूर से ही देखते हैं। चूंकि सभी सुनते हैं इसी लिए वे श्रवण नाम के माने जाते हैं॥१५॥ प्राणियों की जो चेष्टाएँ होतीं हैं उन को आकाश में रहकर ही जानकर प्राणियों के मृत्यु के समय में धर्मराज के समक्ष बताते हैं॥१६॥ वे प्राणियों के धर्मकृत्यों को, अर्थकृत्यों को, कामकृत्यों को और मोक्षकृत्यों को भी बताते हैं। धर्मराज के यहाँ जाने के लिए एक धर्ममार्ग है, दूसरा अर्थमार्ग है, तीसरा काममार्ग है और चौथा मोक्षमार्ग है। हे विनतापुत्र, धार्मिक उत्तम मनुष्य धर्ममार्ग से

अपरः काममार्गश् च मोक्षमार्गश् चतुर्थकः। उत्तमा धर्ममार्गेण वैनतेय प्रयान्ति हि॥१८॥
अर्थदाता विमानैस्तु अश्वैः कामप्रदायकः। हंसयुक्तविमानैश्च मोक्षाकाङ्क्षी विसर्पति॥१९॥
इतरः पादचारेण त्वसिपत्रवनानि च। पाषाणैः कण्टकैः क्लिष्टः पाशबद्धोऽथ याति वै॥२०॥
यः कश्चिन् मानुषे लोके श्रवणान् पूजयेदिह। वर्धन्या जलपात्रेण पक्वान्नपरिपूर्णया॥२१॥
श्रवणान् पूजयेत् तत्र मया सह खगेश्वर। तस्याऽहं तत् प्रदास्यामि यत् सुरैरपि दुर्लभम्॥२२॥
सम्भोज्य ब्राह्मणान् भक्त्या त्वेकादश शुभाञ् छुचीन्। द्वादशं सकलत्रं च मम प्रीत्यै प्रपूजयेत्॥२१॥
देवैः सर्वैश् च सम्पूज्याः स्वर्गं यान्ति सुखेप्सया। तैः पूजितैरहं तुष्टश् चित्रगुप्तेन धर्मराट्॥२४॥
तैस् तुष्टैर् मत्पुरं यान्ति लोका धर्मपरायणाः। श्रवणानां च माहात्म्यमुत्पत्तिं चेष्टितं शुभम्॥२५॥

धर्मराज के यहाँ जाते हैं, धन का दान करने वाला मनुष्य विमानों से जाता है, कामोपकरण का देने वाला मनुष्य घोडे में सबार होकर जाता है, और मोक्ष की आकाङ्क्षा रखकर साधना करने वाला मनुष्य हंसयुक्त विमान से धर्मराज के यहाँ जाने के लिए आगे बढता है॥१७-१९॥ उक्त कृत्यों में से एक को भी सम्पन्न न करने वाला नीच मनुष्य असिपत्रवनों को पार करता हुआ, पत्थर और कांटों से दुःखित होता हुआ और यमदूतों के पाशों से बँधा हुआ पैदल ही धर्मराज के यहाँ जाता है॥२०॥ यहाँ मनुष्यलोक में जो कोई मनुष्य जलपात्र से और पक्वान्न से परिपूर्ण तस्तरी से श्रवणों की पूजा गरेगा; हे पक्षियों के मालिक, वहाँ श्रवणों की पूजा करते समय जो मनुष्य मेरी भी पूजा करेगा उस को मैं वह वस्तु दूंगा जो देवताओं के लिए भी दुर्लभ है॥२१-२२॥ श्रवणों की पूजा में भक्तिपूर्वक शुद्ध सत्पात्र ग्यारह ब्राह्मणों को भोजन कराकर मेरी प्रीति के लिए पत्नी से सहित बारहवें ब्राह्मण का भी पूजा करे॥२३॥ मेरे साथ में श्रवणों की पूजा करने वाले मनुष्य सभी देवताओं के भी पूज्य होकर सुखभोग करने के लिए स्वर्ग में जाते हैं। श्रवण पूजित होने से मैं और चित्रगुप्त से युक्त धर्मराज सब सन्तुष्ट होते हैं॥२४॥ उन लोगों की सन्तुष्टि से धर्मपरायण लोग मेरे लोक (विष्णुलोक) को जाते हैं। हे पक्षियों में श्रेष्ठ, जो

शृणोति पक्षिशार्दूल स च पापैर् न लिप्यते। इह लोके सुखं भुक्त्वा स्वर्गलोके महीयते॥२६॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशें धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे श्रवणमाहात्म्यनिरूपणं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥

अथ अष्टादशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

श्रवणानां वचः श्रुत्वा क्षणं ध्यात्वा पुनस् ततः। यत् कृतं तु मनुष्यैश् च पुण्यं पापमहर्निशम्॥१॥
तत् सर्वं च परिज्ञाय चित्रगुप्तो निवेदयेत्। चित्रगुप्तस् ततः सर्वं कर्म तस्मै वदत्यथ॥२॥

मनुष्य श्रवणों के माहात्म्य को तथा उत्पत्ति और शुभ चेष्टाओं को सुनता है वह पाप से लिप्त नहीं होता है, वह इस लोक में सुखभोग करके स्वर्गलोक में भी सत्कृत होता है॥२५-२६॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में श्रवणों के माहात्म्य का निरूपण करने वाला सत्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥१७॥

श्रीकृष्ण ने कहा— श्रवणों के वचनों को सुनकर फिर उस के बाद क्षणभर विचार भी करके मनुष्यों से रात-दिन जो पाप अथवा पुण्य किया गया होता है वह सब जानकर चित्रगुप्त धर्मराज को निवेदित करते हैं। उस के बाद चित्रगुप्त सभी उस के कर्मों को प्रेत को भी बताते हैं और कहते हैं कि—

वाचैव यत् कृतं कर्म कृतं चैव तु कायिकम्। मानसं च तथा कर्म कृतं भुङ्क्ते शुभाशुभम्॥३॥
एवं ते कथितस् तार्क्ष्य प्रेतमार्गस्य निर्णयः। विश्रान्तिदानि सर्वाणि स्थानानि कथितानि ते॥४॥
तमुद्दिश्य ददात्यन्नं सुखं याति महाऽध्वनि। दिवा रात्रौ तमुद्दिश्य स्थाने दीपप्रदो भवेत्॥५॥
अन्धकारे महाघोरे श्वपूर्णे लक्ष्यवर्जिते। दीप्तेऽध्वनि च ते यान्ति दीपो दत्तश्च यैर् नरैः॥६॥
कार्तिके च चतुर्दश्यां दीपदानं सुखाय वै। अथ वक्ष्यामि सङ्क्षेपाद् यममार्गस्य निष्कृतिम्॥७॥
वृषोत्सर्गस्य पुण्येन पितृलोकं स गच्छति। एकादशाहपिण्डेन शुद्धदेहो भवेत् ततः॥८॥
उदकुम्भप्रदानेन किङ्करास् तृप्तिमाप्नुयुः॥९॥
शय्यादानाद् विमानस्थो याति स्वर्गेषु मानवः। तदह्नि दीयते सर्वं द्वादशाहे विशेषतः॥१०॥

वचन से जो कर्म किया गया है, शरीर से जो कर्म किया गया है तथा मन से जो कर्म किया गया है मनुष्य उसी का शुभ अथवा अशुभ फल भोगता है॥१-३॥ हे गरुड, इस प्रकार तुम को प्रेतमार्ग का निर्णय बताया गया, विश्राम देने वाले सभी स्थान भी तुम को बता दिए गए॥४॥ उस प्रेत को उद्देश्य करके यदि पुत्रादि अन्नदान करता है तो प्रेत यममार्ग में सुखपूर्वक यात्रा करता है। उस प्रेत को उद्देश्य करके दिन में और रात में भी मृतस्थान में दीपदान करे॥५॥ जिन मनुष्यों ने दीपदान किया है वे महाघोर अन्धकार में कुत्तों से व्याप्त और लक्ष्यदर्शन से रहित मार्ग प्राप्त होने पर भी दीप से प्रकाशित मार्ग में चलने का अवसर पाते हैं॥६॥ कार्तिक मास की (कृष्ण)चतुर्दशी में दीपदान करना भी सुखप्राप्ति के लिए होता है। अब मैं सङ्क्षेप से यममार्ग से पार होने का उपाय बताउँगा॥७॥ वृषोत्सर्ग के पुण्य से मनुष्य पितृलोक को जाता है। ग्यारहवें दिन के पिण्ड से प्रेत शुद्धदेह वाला बनेगा॥८॥ जल के घटों के दान से यमराज के दूत तृप्त होंगे॥९॥ शय्या के दान से मनुष्य विमान में बैठकर नाना प्रकार के स्वर्गों में जाता है। ग्यारहवें दिन में सब वस्तु दिए जाते हैं, विशेष करके बारहवें दिन में सब वस्तु दिए जाते हैं॥१०॥

पदानि सर्ववस्तूनि वरिष्ठानि त्रयोदश। यो ददाति मृतस्येह जीवन्नप्यात्महेतवे ॥११॥
तदाश्रितो महामार्गे वैनतेय स गच्छति। एक एवाऽस्ति सर्वत्र व्यवहारः खगाधिप ॥१२॥
उत्तमाधममध्यानां तत्तदावर्जनं भवेत्। यावद् भाग्यं भवेद् यस्य तावन् मार्गेऽतिरिच्यते ॥१३॥
स्वयं स्वस्थेन यद् दत्तं तत् तत्राधिकरोति तम्। मृते यद् बान्धवैर् दत्तं तदाश्रित्य सुखी भवेत् ॥१४॥

गरुड उवाच

कस्मात् पदानि देयानि किंविधानि त्रयोदश। दीयते कस्य देवेश तद् वदस्व यथातथम् ॥१५॥

श्रीभगवानुवाच

छत्रोपानहवस्त्राणि मुद्रिका च कमण्डलुः। आसनं भाजनं चैव पदं सप्तविधं स्मृतम् ॥१६॥
आतपस् तत्र यो रौद्रो दह्यते येन मानवः। छत्रदानेन सुच्छाया जायते प्रेततुष्टिदा ॥१७॥

हे विनता के पुत्र, पददान के श्रेष्ठ सभी तेरह वस्तु मृत पित्रादि के लिए और जीवित अवस्था में अपने ही लिए भी जो दान में देता है वह उस दान में आश्रित होकर यममार्ग में जाता है। हे पक्षियों के स्वामिन्, सभी स्थानों में व्यवहार एक प्रकार का ही है॥११-१२॥ उत्तम, अधम और मध्यम लोगों को उन के उचित साधनों का ही लाभ होगा। जिस का जितना पूर्वकर्म है वह यममार्ग में उतना ही विशिष्ट होगा॥१३॥ स्वस्थ अवस्था में अपने से ही जो दिया गया होता है वह वहाँ उस को प्राप्त होता है। मरने पर जो बान्धवों से दिया गया होता है उस का आश्रय लेकर प्रेत सुखी होगा॥१४॥ गरुड ने कहा— पददान के पदार्थ किस कारण से दिए जाने चाहिए? पददान किस को दिया जाता है? हे देवताओं के स्वामिन्, वह यथार्थरूप में बताइए॥१५॥ श्रीभगवान् ने कहा— छत्र, जूते, वस्त्र, अँगूठी, कमण्डलु, आसन और पात्र ये सात प्रकार का पद है॥१६॥ यममार्ग में जो कडा धूप है, जिस से मनुष्य जलता है, छत्र के दान से वहाँ

असिपत्रवनं घोरं सोऽतिक्रामति वै ध्रुवम्। अश्वारूढाश् च गच्छन्ति ददते य उपानहौ॥१८॥
आसने भाजने चैव दत्ते तस्मै द्विजातये। सुखेन भुङ्क्ते स प्रेतः पथि गच्छञ् छनैःशनैः॥१९॥
बहुघर्मसमाकीर्णे निर्वाते तोयवर्जिते। कमण्डलुप्रदानेन सुखी भवति निश्चितम्॥२०॥
मृतोद्देशेन यो दद्यादुदपात्रं तु ताम्रजम्। प्रपादानसहस्रस्य तत्फलं सोऽश्नुते ध्रुवम्॥२१॥
यमदूता महारौद्राः करालाः कृष्णपिङ्गलाः। न पीडयन्ति दाक्षिण्याद् वस्त्राभरणदानतः॥२२॥
सायुधा धावमानाश् च न मार्गे दृष्टिगोचराः। प्रयान्ति यमदूतास् ते मुद्रिकायाः प्रदानतः॥२३॥
भाजनासनदानेन आमान्नभोजनेन च। आज्ययज्ञोपवीताभ्यां पदं सम्पूर्णतां व्रजेत्॥२४॥
एवं मार्गे गच्छमानस् तृषार्तः श्रमपीडितः। महिषीदुग्धदानाच् च सुखी भवति निश्चितम्॥२५॥

प्रेत को सन्तुष्टि देने वाली अच्छी छाया उत्पन्न होती है, और वह भयङ्कर असिपत्रवन को अवश्य सुख से ही लांघता है। जो मनुष्य जूतों का दान करते हैं वे यममार्ग को घोडे में सबार होकर पार करते हैं॥१७-१८॥ उस प्रेत के लिए आसन और पात्र ब्राह्मण को दिए जाने पर वह प्रेत यममार्ग में धीरेधीरे चलता हुआ सुख से भोजन करता है॥१९॥ कमण्डलु के दान से बडे कडे धूप से व्याप्त, शीतल वायु से रहित और जलहीन यममार्ग में निश्चित रूप में सुखी होता है॥२०॥ मृत व्यक्ति के उद्देश्य से जो ताँबे का जलपात्र देगा वह हजारों पौसरों के दान का जो फल होता है उस फल को अवश्य पाता है॥२१॥ वस्त्रों के और आभूषण के दान से अत्यन्त क्रोधी, भयङ्कर और काले और भूरे वर्ण वाले यमदूत प्रेत के प्रति मिलनसार होने से प्रेत को पीडित नहीं करते हैं॥२२॥ अँगूठी के दान से यममार्ग में शस्त्राऽस्त्रों से युक्त और दौडते हुए यमदूत प्रेत के दृष्टि में नहीं आते हैं॥२३॥ पात्र के तथा आसन के दान से तथा कच्चा अन्न, भोजन (पक्व अन्न), घी और जनेऊ से पद सम्पूर्ण होता है॥२४॥ इस प्रकार से यममार्ग में जाता हुआ प्यास से आर्त और थकान से पीडित प्रेत भैंस के दूध के दान से निश्चित रूप में सुखी होता है॥२५॥

गरुड उवाच

मृतोद्देशेन यत् किञ्चिद् दीयते स्वगृहे विभो। स गच्छति महामार्गे तद् दत्तं केन गृह्यते॥२६॥

श्रीभगवानुवाच

गृह्णाति वरुणो दानं मम हस्ते प्रयच्छति। अहं च भास्करे देवे भास्करात् सोऽश्नुते सुखम्॥२७॥
विकर्मणः प्रभावेण वंशच्छेदे क्षिताविह। सर्वे ते नरकं यान्ति यावत् पापस्य सङ्क्षयः॥२८॥
कस्मिंश्चित् समये पूर्णे महिषासनसंस्थितः। नरकान् वीक्ष्य धर्मात्मा नानाक्रन्दसमाकुलान्॥२९॥
चतुरशीतिलक्षाणां नरकाणां स ईश्वरः। तेषां मध्ये श्रेष्ठतमा घोरा या एकविंशतिः॥३०॥
तामिस्रं लोहशङ्कुश् च महारौरव-शाल्मली। रौरवं कुड्मलं कालसूत्रकं पूतिमृत्तिका॥३१॥

गरुड ने कहा— हे सर्वव्यापक भगवन्, मृत व्यक्ति के उद्देश्य से अपने घर में कोई वस्तु जो दिया जाता है, प्रेत तो यममार्ग में जा रहा होता है, वह दिया गया वस्तु किस से लिया जाता है?॥२६॥ श्रीभगवान् ने कहा— वरुणदेव दान लेते हैं, वे मेरे हाथ में देते हैं, मैं सूर्यदेव में देता हूँ, सूर्यदेव से वह प्रेत सुख पाता है॥२७॥ शास्त्रविरूद्ध कर्म के प्रभाव से इस भूमि में वंश का उच्छेद होने पर जब तक पापों के फल का भोग से पापों का पूर्ण क्षय नहीं होता है तब तक वे वंशोच्छेद वाले सब मनुष्य नरक में रहते हैं॥२८॥ कुछ समय पूर्ण होने पर भैंसे के वाहन में सबार धर्मात्मा यमराज नाना प्रकार के क्रन्दन से पूर्ण नरकों को देखकर (चिरकाल तक नरक में रहे हुए कुछ लोगों को अपने दूतों में मिलाते हैं) ॥२९॥ वह धर्मराज चौरासी लाख नरकों के स्वामी हैं। उन चौरासी लाख नरकों में मुख्य और भयङ्कर जो इक्कीस नरक हैं वे ये हैं— १. तामिस्र, २. लोहशङ्कु, ३. महारौरव, ४. शाल्मली, ५. रौरव, ६. कुड्मल, ७. कालसूत्र, ८. पूतिमृत्तिका,

सङ्घातं लोहतोदं च सविषं सम्प्रतापनम्। महानरक-कालोलः सजीवन-महापथः॥३२॥
अवीचिरन्धतामिस्रः कुम्भीपाकस्तथैव च। असिपत्रवनं चैव पतनश्चैकविंशतिः॥३३॥
येषां तु नरके घोरे बह्वब्दानि गतानि वै। सन्ततिर् नैव विद्येत दूतत्वं ते तु यान्ति हि॥३४॥
यमेन प्रेषितास् ते वै मनुष्यस्य मृतस्य तु। दिनेदिने प्रगृह्णन्ति दत्तमन्नघटादिकम्॥३५॥
प्रेतस्यैव विलुण्ठन्ति मध्ये मार्गे बुभुक्षिताः। मासान्ते भोजनं पिण्डमेके यच्छन्ति तत्र वै॥३६॥
तृप्तिं प्रयान्ति ते सर्वे प्रत्यहं चैव वत्सरम्। एवमादिकृतैः पुण्यैः क्रमात् सौरिपुरं व्रजेत्॥३७॥
ततः संवत्सरस्याऽन्ते प्रत्यासन्ने यमालये। बहुभीतिकरे प्रेतो हस्तमात्रं समुत्सृजेत्॥३८॥
दिवसैर् दशभिर् जातं तं देहं दशपिण्डजम्। जामदग्न्यस्येव रामं दृष्ट्वा तेजः प्रसर्पति॥३९॥

९. सङ्घात, १०. लोहतोद, ११. सविष, १२. सम्प्रतापन, १३. महानरक, १४. काकोल, १५. सजीवन, १६. महापथ, १७. अवीचि, १८. अन्धतामिस्र, १९. कुम्भीपाक, २०. असिपत्रवन, २१. पतन ये इक्कीस हैं॥३०-३३॥ *[विशेष— मनुस्मृति के (४।८७-९०) २१ नरकों में, याज्ञवल्क्यस्मृति के (३।२२२-२२५) २१ नरकों में तथा भागवत के (५।२६।७) २१ नरकों में और इन २१ नरकों में कुछ अन्तर है; द्रष्टव्य— ३।२-५५]*। जिन प्रेतों का घोर नरक में बहुत वर्ष बीते हैं और मनुष्यलोक में नरक से उद्धार करने वाली सन्तति नहीं है वे प्रेत यमदूतत्व प्राप्त करते हैं॥३४॥ यमराज से प्रेषित वे दूत मनुष्य के लिए दिए गए अन्न और जलघट को छीन लेते हैं॥३५॥ यममार्ग के बीच में भूख से युक्त ये यमदूत प्रेत के भाग को ही लूट लेते है। कोई महीने के अन्त में भोजन और पिण्ड देते हैं, इस से यममार्ग में वे प्रेत तथा यमदूत सब ही वर्षपर्यन्त प्रतिदिन तृप्ति प्राप्त करते हैं। इस प्रकार से किए गए पुण्यों से प्रेत क्रम से यमराज के पुर में जाता है॥३६-३७॥ तब वर्ष के अन्त में अत्यन्त भयकारक यमराज का नगर समीप में प्राप्त होने पर प्रेत दश दिनों में दश पिण्ड से उत्पन्न एक हाथ परिमाण के उस देह को छोडेगा। राम को देखने पर परशुराम का तेज जैसे परशुराम से राम में सङ्क्रमित हुआ था उसी प्रकार से एक हाथ परिमाण के देह से प्रेतजीव कर्मज देह में सङ्क्रमित होता है॥३८-३९॥

कर्मजं देहमाश्रित्य पूर्वदेहं समुत्सृजेत्। अङ्गुष्ठमात्रो वायुश् च शमीपत्रं समारुहेत्॥४०॥
व्रजंस् तिष्ठन् पदैकेन यथैवैकेन गच्छति। यथा तृणजलौकेव देही कर्मानुगोऽवशः॥४१॥
वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥४२॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे वृषोत्सर्ग-नानादानफल-यमलोकगमन-कर्मजदेहप्राप्ति-निरूपणं नामाऽष्टादशोऽध्यायः॥

कर्म से उत्पन्न देह में आश्रित होकर जीव पूर्व देह को छोडेगा। अँगूठे के परिमाण का वायवीय शरीर शमीपत्रतुल्य कर्मज देह में चढेगा॥४०॥ जैसे चलता हुआ मनुष्य एक पैर से ठहरता हुआ एक पैर से आगे बढता है, जैसे तृणों में चलने वाली जोंक एक छोर से स्थिर होकर दूसरे छोर से आगे बढती है वैसे ही जीव भी अपने कर्म का अनुसरण करता हुआ और स्वाधीन न होकर कर्म के अधीन में रहता हुआ एक देह से दूसरे देह में जाता है॥४१॥ जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को छोडकर अन्य नए वस्त्रों का ग्रहण करता है, वैसे ही जीव भी पुराने शरीरों को छोडकर अन्य नए शरीरों में जाता है॥४२॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में वृषोत्सर्ग, नाना दानों का फल, यमलोक में गमन और कर्मज देह की प्राप्ति का वर्णन करने वाला अठारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥१८॥

अथ एकोनविंशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

वायुभूतः क्षुधाऽऽविष्टः कर्मजं देहमाश्रितः। तं देहं स समासाद्य यमेन सह गच्छति॥१॥
चित्रगुप्तपुरं तत्र योजनानां तु विंशतिः। कायस्थास् तत्र पश्यन्ति पापपुण्यानि सर्वशः॥२॥
महादानेषु दत्तेषु गतस्तत्र सुखी भवेत्। योजनानां चतुर्विंशत् पुरं वैवस्वतं शुभम्॥३॥
लोहं लवण-कार्पासं तिलपात्रं च यैर् नरैः। दत्तं तेनैव तृप्यन्ति यमस्य पुरचारिणः॥४॥
गत्वा च तत्र ते सर्वे प्रतीहारं वदन्ति हि। धर्मध्वजप्रतीहारस् तत्र तिष्ठति सर्वदा॥५॥
सप्तधान्यस्य दानेन प्रीतो धर्मध्वजो भवेत्। तत्र गत्वा प्रतीहारो ब्रूते तस्य शुभाऽशुभम्॥६॥
धर्मराजस्य यद् रूपं सन्तः सुकृतिनो जनाः। पश्यन्ति च दुरात्मानो यमरूपं सुभीषणम्॥७॥

श्रीभगवान् ने कहा— वायुरूप में प्राप्त, भूख से सताया गया और कर्म से उत्पन्न देह में आश्रित वह प्रेत उस देह को पाकर यमराज के पास में जाता है॥१॥ वहाँ चित्रगुप्त का पुर बीस योजन विस्तृत है, वहाँ चित्रगुप्त के लेखकगणकादि कर्मचारी लोग मनुष्यों के पापों और पुण्यों को सर्वांश में देखते हैं॥२॥ महादान दिए जाने पर यमपुरी में गया हुआ मनुष्य सुखी होगा। यमराज का सुहावना नगर चौबीस योजन विस्तीर्ण है॥३॥ जिन मनुष्यों ने लोहा, नमक, कपास और तिलपात्र का दान दिया है उस से यमराज के पुर में विचरण करने वाले यमदूत तृप्त होते हैं॥४॥ वहाँ जाकर वे सब प्रतीहार (द्वारपाल) को कहते हैं। वहाँ पर धर्मध्वज नाम का प्रतीहार सदा खडा रहता है॥५॥ सप्तधान्य (जौ, धान, तिल, कँगनी, मूँग, चना तथा साँवा) के दान से धर्मध्वज प्रसन्न होता है। वहाँ जाकर प्रतीहार प्रेत का शुभ अथवा अशुभ कर्म को बताता है॥६॥ सुकर्म करने वाले लोग धर्मराज का जो मुख्य सौम्य

तं दृष्ट्वा भयभीतस्तु हाहेति वदते जनः। कृतं दानं च यैर् मर्त्यैस् तेषां नास्ति भयं क्वचित्॥८॥
प्राप्तं सुकृतिनं दृष्ट्वा स्थानाच् चलति सूर्यजः। एष मे मण्डलं भित्त्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति॥९॥
दानेन सुलभो धर्मो यममार्गः सुखावहः। एष मार्गो विशालोऽत्र न केनाप्यनुगम्यते।
दानपुण्यं विना वत्स न गच्छेद् धर्ममन्दिरम्॥१०॥
तस्मिन् मार्गे तु रौद्रे वै भीषणा यमकिङ्कराः। एकैकस्य पुरस्याऽग्रे तिष्ठत्येकसहस्रकम्॥११॥
पचन्ति पापिनं प्राप्य उदके यातनाकराः। गृह्णन्ति मासमासान्ते पादशेषं तु तद् भवेत्॥१२॥
और्ध्वदैहिकदानानि यैर् न दत्तानि काश्यप। महाकष्टेन ते यान्ति तस्माद् देयानि शक्तितः।
अदत्त्वा पशुवद् यान्ति गृहीता वधबन्धनैः॥१३॥

रूप है उस को देखते हैं, दुष्ट हृदय वाले पापी लोग अत्यन्त भयङ्कर यमरूप को देखते हैं॥७॥ उन भयङ्कर रूप वाले यमराज को देखकर भयभीत पापी मनुष्य हाय हाय कहता है। जिन मनुष्यों ने दान किया है उन को कहीं भी भय नहीं होता है॥८॥ वहाँ पहुँचे हुए धर्मात्मा पुरुष को देखकर सूर्यपुत्र धर्मराज अपने आसन से उठकर उस की ओर चलते हैं। वे कहते हैं कि यह धर्मात्मा पुरुष मेरे मण्डल को भेदन करके ब्रह्मलोक को जाएगा॥९॥ दानद्वारा धर्म सुख से प्राप्त किया जा सकता है। उस से यममार्ग भी सुखदायक होता है। यह यममार्ग बहुत बडा है। यहाँ मनुष्य का किसी द्वारा भी अनुगमन (सहयोग) नहीं किया जाता है॥१०॥ हे वत्स, दान-पुण्य के विना धर्मराज के घर को नहीं जाना चाहिए। उस भयङ्कर यममार्ग में डरावने यमदूत होते हैं॥११॥ याम्यपुर सौरिपुर इत्यादि एकएक पुर के आगे एकऐक हजार यमदूत रहते हैं। वे पापियों को पाकर उन को पकाते हैं, यातना देने वाले वे पापियों को पकडते हैं और पानी में रखते हैं॥१२॥ इस प्रकार मास-मास के अन्त में पापी का शरीर घटकर चौथाई शेष रहता है। हे कश्यपपुत्र, जिन्हों से और्ध्वदेहिक दान नहीं दिए गए हैं वे यममार्ग में महाकष्ट से यात्रा करते हैं, इस लिए अपनी शक्ति के अनुसार और्ध्वदेहिक दान दिए जाने चाहिए। न देने पर यममार्ग में यमदूतों से पकडे गए वे लोग पिटाई से और बन्धन से कष्ट भोगते हुए पशु की तरह यात्रा करते हैं॥१३॥

एवं कृतेन सम्पश्येत् स नरो भूतकर्मणा। दैविकीं पैतृकीं योनिं मानुषीं वाऽथ नारकीम्॥१४॥
धर्मराजस्य वचनान् मुक्तिर् भवति वा ततः। मानुष्यं तत्त्वतः प्राप्य सपुत्त्र-पुत्त्रतां व्रजेत्॥१५॥
यथायथा कृतं कर्म तांतां योनिं व्रजेन् नरः। तत् तथैव च भुञ्जानो विचरेत् सर्वलोकगः॥१६॥
अशाश्वतं परिज्ञाय सर्वलोकोत्तरं सुखम्। यदा भवति मानुष्यं तदा धर्मं समाचरेत्॥१७॥
कृमयो भस्म विष्ठा वा देहानां प्रकृतिः सदा। अन्धकूपे महारौद्रे दीपहस्तः पतेत् तु वै॥१८॥
महापुण्यप्रभावेण मानुष्यं जन्म लभ्यते। यस् तत् प्राप्य चरेद् धर्मं स गच्छेत् परमां गतिम्॥१९॥
अविजानन् वृथा धर्मं दुःखमायाति याति च॥२०॥

इस प्रकार अपने से किए गए पूर्व कर्म से मनुष्य यममार्ग को देखेगा। धर्मराज के वचन से मनुष्य देवतायोनि को अथवा पितृयोनि को अथवा मनुष्ययोनि को अथवा नरकनिवासी प्रेतयोनि को पाएगा अथवा नरक से छुट्कारा होगा। वास्तव में मनुष्यत्व पाकर वह सपुत्त्रता जिस के भाग्य में है उस का पुत्त्र होगा॥१४-१५॥ मनुष्य ने जैसा-जैसा कर्म किया है वैसी-वैसी ही योनि में जाएगा और उस-उस कर्म के फलों को उसी-उसी कर्म के अनुसार भोग करता हुआ मनुष्य सभी लोक में जाने वाला होगा॥१६॥ सभी प्रकार के लोकों में मिलने वाले उत्तम सुखों को भी अनित्य ही जानकर प्राणी को जब मनुष्यजन्म मिलता है तब प्राणी धर्म का आचरण करे॥१७॥ कीडों के रूप में परिणत होना अथवा भस्म के रूप में परिणत होना अथवा विष्ठा के रूप में परिणत होना यही देहों का स्वभाव है। मनुष्यजन्म पाकर भी धर्म न करना हाथ में दीपक रहने पर भी असावधानी से महाभयङ्कर अन्धकारमय इनारे में गिरना जैसा ही है॥१८॥ बडे पुण्य के प्रभाव से मनुष्यजन्म पाया जाता है, जो मनुष्यजन्म पाकर धर्म करेगा वह परम गति में (ब्रह्मलोक में) जाएगा॥१९॥ धर्म को न जानता हुआ मनुष्य यदि मनुष्यजन्म को धर्माचरण के विना व्यर्थ गँवाता है तो वह संसार में दुःखपूर्ण रूप से आता और जाता ही रहता है॥२०॥

जातीशतेन लभते किल मानुषत्वं तत्रापि दुर्लभतरं खग भो द्विजत्वम्।
यस् तत्र पालयति लालयति व्रतानि तस्याऽमृतं भवति हस्तगतं प्रसादात्॥२१॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे यममन्दिरप्रवेशतदाज्ञालब्ध-मनुष्यादिदेहान्तरप्राप्तिनिरूपणं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥

अथ विंशोऽध्यायः

गरुड उवाच

ये केचित् प्रेतरूपेण कुत्र वासं लभन्ति ते। प्रेतलोकाद् विनिर्मुक्ताः कथं कुत्र व्रजन्ति ते॥१॥

हे पक्षिन्, प्राणी सैकडों जन्मों में मनुष्यजन्म पाता है, उस में भी द्विजजन्म (ब्राह्मणजन्म) तो अत्यन्त दुर्लभ है। जो प्राणी द्विजजन्म (ब्राह्मणजन्म) में व्रतों का पालन और श्रद्धापूर्वक वारवार सेवन करता है उस को चित्त की प्रसन्नता (निर्मलता) से अमृतत्व (मोक्ष) हस्तगत (प्राप्त) होता है॥२१॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में यममन्दिर में प्रवेश, यम की आज्ञा से लभ्य मनुष्यादिदेहप्राप्ति का निरूपण करने वाला उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥१९॥

गरुड ने कहा— जो कोई जीव प्रेत के रूप में रहते हैं वे कहाँ वास पाते हैं? प्रेतलोक से छुटकारा पाने पर वे कैसे कहाँ जाते हैं?॥१॥

चतुर्युक्ताशीतिलक्षैर् नरकैः पर्युपासिताः। यमेन रक्षितास् तत्र भूतैश् चैव सहस्रशः॥२॥
विचरन्ति कथं लोके नरकाच्च विनिर्गताः। गरुडोदीरितं श्रुत्वा लक्ष्मीनाथोऽब्रवीदिदम्॥३॥

श्रीकृष्ण उवाच

पक्षिराज शृणुष्व त्वं यत्र प्रेताश् चरन्ति वै। परार्थदारग्रहणाच् छलाद् द्रोहान् निशाचराः॥४॥
तथैव सर्वपापिष्ठाः स्वात्मजान्वेषणे रताः। विचरन्त्यशरीरास् ते क्षुत्पिपासार्दिता भृशम्॥५॥
बन्दीगृहविनिर्मुक्ता येभ्यो नश्यन्ति जन्तवः। ते व्यवस्यन्ति च प्रेता वधोपायं च बन्धुषु॥६॥
पितृद्वाराणि रुन्धन्ति तन्मार्गोच्छेदकास् तथा। पितृभागान् विगृह्णन्ति पान्थेभ्यस् तस्करा इव॥७॥
स्वं वेश्म पुनरागत्य मित्रस्थाने विशन्ति ते। तत्र स्थिता निरीक्षन्ते रोगशोकादिबन्धनाः॥८॥
पीडयन्ति ज्वरीभूय एकान्तरमिषेण तु। तृतीयकज्वरा भूत्वा शीतवातादिपीडया॥९॥

चौरासी लाख नरकों से सेवित यमराज से और हजारों भूतों से भी रक्षित वे प्रेत नरक से निकलकर लोक में कैसे विचरण करते हैं? गरुड का कहना सुनकर लक्ष्मी के नाथ कृष्ण ने यह कहा॥२-३॥ **श्रीकृष्ण ने कहा—** हे पक्षियों के राजन्, प्रेत जहाँ विचरण करते हैं उस को तुम सुनो। दूसरों के धन का और पत्नी का ग्रहण करने से, छल करने से, और प्राणियों का द्रोह करने से निशाचर (प्रेत) रूप में प्राप्त प्राणी उसी प्रकार अत्यन्त पापिष्ठ होकर अपने पुत्रों के अन्वेषण में रमते हैं। दृश्य ग्राह्य शरीर से रहित बन्धनगृह से मुक्त वे प्रेत भूख और प्यास से अत्यन्त पीडित होकर इधर-उधर घूमते रहते हैं, जिस से प्राणियों का नाश होता है। वे प्रेत अपने बन्धुओं में पीडा पहुँचाने के उपाय का निश्चय करते रहते हैं॥४-६॥ पितरों के द्वारों का निरोध करते हैं, पितरों के मार्गों का उच्छेद करने वाले वे प्रेतलोग राहगीरों से लुटेरे की तरह पितरों से उन के भागों को छीनते हैं॥७॥ फिर अपने घर में आकर वे मित्र के स्थान में प्रविष्ट होते हैं, वहाँ बैठकर रोग और शोक इत्यादि बन्धनों से लोगों को बाँधने वाले वे प्रेतलोग देखते रहते हैं॥८॥ वे बीच में एक-एक दिन छोडकर आने

अन्यांश्च विविधान् रोगाञ्छिरोऽर्तिं च विषूचिकाम्। चिन्तयन्ति सदा तेषामुच्छिष्टादिस्थलस्थिताः॥१०॥
आत्मजानां छलाल्लोका भूतसङ्घैश् च रक्षिताः। पिबन्ति ते च पानीयं भोजनोच्छिष्टयोजितम्॥११॥
एवं प्रेताः प्रवर्तन्ते नानादोषैर् विकर्मिणः॥१२॥

गरुड उवाच

कथं कुर्वन्ति ते प्रेताः केन रूपेण कस्य किम्। ज्ञायते केन विधिना जल्पन्ति न वदन्ति वा॥१३॥
एनं छिन्धि मनोमोहं मम चेदिच्छसि प्रियम्। कलिकाले हृषीकेश प्रेतत्वं जायते बहु॥१४॥

श्रीविष्णुरुवाच

स्वकुलं पीडयेत् प्रेतः परच्छिद्रेण पीडयेत्। जीवन् स दृश्यते स्नेही मृतो दुष्टत्वमाप्नुयात्॥१५॥

वाले एकान्तरज्वर के छल से ज्वर का रूप लेकर अपने पुत्रादि को पीडित करते हैं, तीसरे दिन में आने वाला ज्वर होकर ठण्डक और वात इत्यादि की पीडा से भी पुत्रादि को पीडित करते हैं॥९॥ जूठन के स्थान इत्यादि अपवित्र स्थानों में रहते हुए और भूतों के झुण्डों से रक्षित वे प्रेत लोग सदाकाल ही शिर की पीडा, हैजा इत्यादि अन्य विविध रोगों से छलपूर्वक अपने पुत्रादि को पीडित करने की सोच में रहते हैं। वे भोजन के उच्छिष्ट से युक्त पानी पीते हैं। विकर्मी प्रेत लोग इस प्रकार नाना प्रकार के दोषों से युक्त होकर व्यवहार करते हैं॥१०-१२॥ गरुड ने कहा— वे प्रेत किस रूप से किस का क्या कैसे करते हैं? किस विधि से प्रेत का काम जाना जाता है? प्रेत बोलते हैं अथवा नहीं बोलते हैं?॥१३॥ आप यदि मेरा प्रिय कार्य करना चाहते हैं तो, हे इन्द्रियों के स्वामिन्, मेरे मन के इस मोह को दूर करें, क्योंकि कलिकाल में प्रेतत्व बहुत उत्पन्न होता है॥१४॥ श्रीविष्णु ने कहा— प्रेत अपने कुल को पीडित करता है, किन्तु वह छिद्र पाकर ही पीडित करता है। जीवनकाल में वह स्नेहयुक्त होता है, किन्तु मरने पर वह दुष्ट हो जाता है॥१५॥

रुद्रजापी धर्मरतो देवतातिथिपूजकः। सत्यवाक् प्रियवादी च न प्रेतैः स हि पीड्यते ॥१६॥
सर्वक्रियापरिभ्रष्टो नास्तिको धर्मनिन्दकः। असत्यवादनिरतो नरः प्रेतैः स पीड्यते।
कलौ प्रेतत्वमाप्नोति ताक्ष्याऽशुद्धक्रियापरः॥१७॥
कृतादौ द्वापरान्ते च न प्रेतो नैव पीडनम्। बहूनामेकजातानामेकः सौख्यं समश्नुते ॥१८॥
एको दुष्कृतकर्मा च एकः सन्ततिमान् जनः। एकः सम्पीड्यते प्रेतैरेकः सुतधनान्वितः॥१९॥
एकस्य पुत्रनाशः स्यादेको दुहितृमान् भवेत्। विरोधो बन्धुभिः सार्धं प्रेतदोषेण काश्यप ॥२०॥
सन्ततिर् दृश्यते नैव समुत्पन्ना विनश्यति। पशुद्रव्यविनाशश् च सा पीडा प्रेतसम्भवा॥२१॥
प्रकृतेः परिवर्तः स्याद् विद्वेषः सह बन्धुभिः। अकस्माद् व्यसनप्राप्तिः सा पीडा प्रेतसम्भवा॥२२॥

जो रुद्राध्याय का पाठ करने वाला है, धर्म में रमने वाला है, देवता की और अतिथि की पूजा करने वाला है, सत्य बोलने वाला है, प्रिय बोलने वाला है वह प्रेतों से पीडित नहीं किया जाता है॥१६॥ जो नित्य-नैमित्तिकादि श्रौत-स्मार्त-पौराण सभी धर्मक्रियाओं में विश्वास न करने वाला नास्तिक है, धर्म की निन्दा करने वाला है और असत्य बोलने में रमने वाला है वह प्रेतों से पीडित होता है। हे गरुड, कलिकाल में शास्त्रविधि से हीन अशुद्ध कर्मों में लगने से मनुष्य प्रेतयोनि में प्राप्त होता है॥१७॥ सत्ययुग से लेकर द्वापरयुग के अन्त तक न तो प्रेत होता है न तो प्रेतों से लोगों का पीडन होता है। एक ही मातापिताओं से जन्मे हुए मनुष्यों में एक सुखभोग करता है, एक पापकर्म करने से दुःखभोग करने वाला है, एक सन्ततियों से युक्त है, एक प्रेतों से पीडित होता है, एक पुत्र और धन से युक्त है, एक का पुत्र का नाश हो जाता है, एक केवल पुत्रियों से ही युक्त होता है। हे कश्यपपुत्र, प्रेत के दोष से मनुष्य का अपने बन्धुओं से विरोध हो जाता है॥१८-२०॥ सन्तान का दर्शन नहीं होता है, उत्पन्न सन्तान भी नष्ट हो जाता है, पशुओं का और धन का विनाश भी होता है, वह पीडा प्रेतों से उत्पन्न पीडा है॥२१॥ स्वभाव में एकाएक परिवर्तन होगा, बन्धुओं से विद्वेष होगा, एकाएक विपत्ति आएगी. वह पीडा प्रेतों से उत्पन्न पीडा है॥२२॥

नास्तिक्यं वृत्तिलोपश् च महालोभस् तथैव च। स्याद् धन्त कलहो नित्यं सा पीडा प्रेतसम्भवा॥२३॥
पितृमातृनिहन्ता च देवब्राह्मणनिन्दकः। हत्यादोषमवाप्नोति सा पीडा प्रेतसम्भवा॥२४॥
नित्यकर्मविनिर्मुक्तो जपहोमविवर्जितः। परद्रव्याणां च हर्ता सा पीडा प्रेतसम्भवा॥२५॥
सुवृष्टौ कृषिनाशश् च व्यवहारो विनश्यति। लोके कलहकारी च सा पीडा प्रेतसम्भवा॥२६॥
मार्गे जङ्गम्यमानं तं पीडयेद् वातमण्डली। प्रेतपीडा तु सा ज्ञेया सत्यंसत्यं खगेश्वर॥२७॥
हीनजात्या च सम्बन्धो हीनकर्म करोति यः। अधर्मे रमते नित्यं सा पीडा प्रेतसम्भवा॥२८॥
व्यसनैर् द्रव्यनाशः स्यादुपक्रान्तं विनश्यति। चौराग्निराजभिर् हानिः सा पीडा प्रेतसम्भवा॥२९॥

नास्तिकभाव आएगा, जीवनवृत्ति का लोप होगा, महान् लोभ उत्पन्न होगा, बेचारे के यहाँ नित्य कलह होगा, वह पीडा प्रेतों से उत्पन्न पीडा है॥२३॥ पिता-माता को मारने वाला हो जाता है, देवताओं का और ब्राह्मणों का निन्दक हो जाता है, मनुष्यहत्या का दोष लग जाता है, वह पीडा प्रेतों से उत्पन्न पीडा है॥२४॥ स्नान-सन्ध्योपासनादि नित्य कर्मों से रहित होता है, वेदाध्ययन, मन्त्रजप और होम से वर्जित होता है, दूसरे के द्रव्यों को चुराने वाला होता है, वह पीडा प्रेतों से उत्पन्न पीडा है॥२५॥ अच्छी वर्षा होने पर भी खेतीबारी का काम नष्ट हो जाता है, रुपये पैसे का लेन-देन का काम बिगड जाता है, लोक में कलहकारी हो जाता है, वह पीडा प्रेतों से उत्पन्न पीडा है॥२६॥ हे पक्षियों के ईश्वर, मार्ग में बारबार चलते हुए मनुष्य को बबण्डर पीडित करेगा तो वह पीडा प्रेतों से की गई पीडा है यह बात सत्य है,सत्य है॥२७॥ नीच जाति से विवाहादि-सम्बन्ध हो जाता है, जो नीच जाति का कर्म करता है, सदाकाल पाप में रमता है, वह पीडा प्रेतों से उत्पन्न पीडा है॥२८॥ विपत्तियों से धन का नाश होगा, आरम्भ किया गया कार्य बिगड जाता है; चोर, अग्नि और राजा से धनादि की हानि हो जाती है, वह पीडा प्रेतों से उत्पन्न पीडा है॥२९॥

महारोगोपलब्धिश् च बालकानां च पीडनम्। जाया सम्पीड्यते यच्च सा पीडा प्रेतसम्भवा॥३०॥
श्रुति-स्मृति-पुराणेषु धर्मशास्त्र-समुद्भवे। अभावो जायते धर्मे सा पीडा प्रेतसम्भवा॥३१॥
देव-तीर्थ-द्विजानां तु निन्दां यः कुरुते नरः। प्रत्यक्षं वा परोक्षं वा सा पीडा प्रेतसम्भवा॥३२॥
स्ववृत्तिहरणं यच् च स्वप्रतिष्ठाहतिस् तथा। वंशच्छेदो न दृश्येत प्रेतदोषाद् विनाऽन्यथा॥३३॥
स्त्रीणां गर्भविनाशः स्यान् न पुष्पं दृश्यते तथा। बालानां मरणं यत्र सा पीडा प्रेतसम्भवा॥३४॥
भावशुद्ध्या न कुरुते श्राद्धं सांवत्सरादिकम्। स्वयमेव न कुर्वीत सा पीडा प्रेतसम्भवा॥३५॥
तीर्थे गत्वा पराऽऽसक्तः स्वकृत्यं च परित्यजेत्। धर्मकार्ये न सम्पत्तिः सा पीडा प्रेतसम्भवा॥३६॥
दम्पत्योः कलहश् चैव भोजने कोपसंयुतः। परद्रोहे मतिश् चैव सा पीडा प्रेतसम्भवा॥३७॥

शरीर में महारोग लग जाता है, बालकों का कष्ट होता है, जो पत्नी पीडित हो जाती है, वह पीडा प्रेतों से उत्पन्न पीडा है॥३०॥ वेद में, स्मृतिशास्त्र में, पुराण में और धर्मशास्त्रमूलक अन्य ग्रन्थों में बताए गए धर्म में कल्याणकारित्व के सर्वथा अभाव की बुद्धि जो उत्पन्न होती है वह पीडा प्रेतों से उत्पन्न पीडा है॥३१॥ जो प्रत्यक्ष रूप में और परोक्ष रूप में देवताओं की, तीर्थों की और ब्राह्मणों की निन्दा करता है, वह पीडा प्रेतों से उत्पन्न पीडा है॥३२॥ जो अपनी जीवनवृत्ति का हरण होता है, जो अपनी प्रतिष्ठा की हानि होती है, तथा जो वंश का उच्छेद होता है वह प्रेतों के दोष के विना नहीं देखा जा सकता है॥३३॥ स्त्रियों के गर्भ का विनाश होगा, युवती स्त्रियों में भी पुष्प (रज) नहीं देखा जाता है, बालकों का मरण होता है, वह पीडा प्रेतों से उत्पन्न पीडा है॥३४॥ सांवत्सरिकश्राद्ध (क्षयाहश्राद्ध) इत्यादि श्राद्धों को शुद्ध भाव से सम्पन्न नहीं करता है अथवा श्राद्ध दूसरे द्वारा करता है स्वयम् नहीं करता है, वह पीडा प्रेतों से उत्पन्न पीडा है॥३५॥ तीर्थ में जाकर अन्य जनों में आसक्त होता हुआ अपने कृत्य को छोड देगा, धर्मकार्य के लिए सम्पत्ति का अभाव होगा, वह पीडा प्रेतों से उत्पन्न पीडा है॥३६॥ भोजन के समय में हंसी मजाक के रूप में नहीं, क्रोध से युक्त रूप में ही पति-पत्नियों का जो कलह होता है, दूसरे लोगों के प्रति द्रोह में जो बुद्धि लगती है, वह पीडा प्रेतों से उत्पन्न पीडा है॥३७॥

पुष्पं यत्र न दृश्येत न दृश्येत फलं तथा। विरहो भार्यया यत्र सा पीडा प्रेतसम्भवा॥३८॥
येषां वै जायते चिह्नं सदोच्चाटपरं नृणाम्। स्वक्षेत्रे निष्फलं तेजः सा पीडा प्रेतसम्भवा॥३९॥
स्वगोत्रघातकश् चैव हन्ति शत्रुमिवात्मजम्। न प्रीतिर् नापि सौख्यं च सा पीडा प्रेतसम्भवा॥४०॥
पितृवाक्यं न कुरुते स्वपत्नीं च न सेवते। सदा क्रूरमतिर् व्यग्रः सा पीडा प्रेतसम्भवा॥४१॥
विकर्मा जायते प्रेतो ह्यविधिक्रियया तथा। तत्कालदुष्टसंसर्गाद् वृषोत्सर्गादृते तथा॥४२॥
दुष्टमृत्युवशाद् वापि अदग्धवपुषस्तथा। प्रेतत्वं जायते तार्क्ष्य पीड्यन्ते येन जन्तवः॥४३॥
एवं ज्ञात्वा खगश्रेष्ठ प्रेतमुक्तिं समाचरेत्। यो वै न मन्यते प्रेतान् मृतः प्रेतत्वमाप्नुयात्॥४४॥

जहाँ स्त्रियों में फूल और फल (रज और सन्तान) भी नहीं देखा जाएगा, पत्नी से वियोग होगा, वह पीडा प्रेतों से उत्पन्न पीडा है॥३८॥ जिन मनुष्यों का सदाकाल उच्चाटनपरक चिह्न उत्पन्न होता है, अपने क्षेत्र में तेज निष्फल हो जाता है, वह पीडा प्रेतों से उत्पन्न पीडा है॥३९॥ अपने ही गोत्र का घातक हो जाता है, अपने पुत्र को शत्रु की तरह मार डालता है, कहीं प्रीति भी नहीं होती है सुख भी नहीं मिलता है, वह पीडा प्रेतों से उत्पन्न पीडा है॥४०॥ पिता की आज्ञा का पालन नहीं करता है, अपनी पत्नी के साथ सहवास भी नहीं करता है, सदाकाल क्रूरबुद्धि होता है, घबडाया हुआ रहता है, वह पीडा प्रेतों से उत्पन्न पीडा है॥४१॥ शास्त्रविरुद्ध कर्म करने वाला मनुष्य प्रेत होता है, शास्त्रविधानविरुद्ध और्ध्वदेहिक क्रिया करने पर भी मनुष्य प्रेत होता है, तत्काल में पतित पापियों से संसर्ग होने पर भी वृषोत्सर्ग न किए जाने से भी मनुष्य प्रेत होता है॥४२॥ हे गरुड, दुर्मृत्यु के कारण से अथवा शव का विधिपूर्वक दाह न होने से भी प्रेतत्व प्राप्त होता है, जिस से प्राणी पीडित होते हैं॥४३॥ हे पक्षियों में श्रेष्ठ, ऐसी बात को जानकर मनुष्य को प्रेत के प्रेतभाव से मुक्ति के लिए कर्म करना चाहिए। जो मनुष्य प्रेतों को नहीं मानता है (और प्रेतमुक्ति के लिए आवश्यक कर्म नहीं करता है) वह मरकर प्रेतभाव में प्राप्त होता है॥४४॥

प्रेतदोषः कुले यस्य सुखं तस्य न विद्यते। मतिः प्रीती रतिर् बुद्धिर् लक्ष्मीः पञ्चविनाशनम्॥४५॥
तृतीये पञ्चमे पुंसि वंशच्छेदो हि जायते। दरिद्रो निर्धनश् चैव पापकर्मा भवेभवे॥४६॥

ये केचित् प्रेतरूपा विकृतमुखदृशो रौद्ररूपाः कराला
मन्यन्ते नैव गोत्रं सुतदुहितृपितॄन् भ्रातृजायां वधूं वा।
कृत्वा काम्यं च रूपं सुखगतिरहिता भाषमाणा यथेष्टं
हा कष्टं भोक्तुकामा विधिवशपतिताः संस्मरन्ति स्वपापम्॥४७॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे
प्रेतावास-तद्बाधाप्रकारनिरूपणं नाम विंशोऽध्यायः॥

जिस के कुल में प्रेतदोष होता है उस को सुख नहीं मिलता है; मनन करने की शक्ति, प्रीति, रति, समझ सकने की शक्ति, और लक्ष्मी इन पाँचों का विनाश होता है; तीसरी अथवा पाँचवीं पीढीं में वंश का उच्छेद हो जाता है; जन्मजन्म में दुर्गतियुक्त, निर्धन और पापकर्म करने वाला भी होता है॥४५-४६॥ विकृत मुख और नेत्रों से युक्त, क्रूर रूप वाले, भयङ्कर प्रेत के रूप में वर्तमान होकर जो कोई भी अपना गोत्र, पुत्र, पुत्री, पिता, भौजाई, अथवा वधू को नहीं मानते हैं, इन सब को पीडित करते हैं, सुखगति से रहित होकर अपनी इच्छानुसार विविध रूप को धारण करते हुए इच्छानुसार बोलते हुए भोग करने में इच्छुक होते हैं, किन्तु विधि के विधान में पडे हुए ये प्रेत अपने पाप का स्मरण करते रहते हैं; हाय! यह कष्टकर बात है॥४७॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में प्रेतवासस्थान और
प्रेतबाधा का निरूपण करने वाला बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥२०॥

अथ एकविंशोऽध्यायः

गरुड उवाच

मुक्तिं यान्ति कथं प्रेतास् तदहं प्रष्टुमुत्सुकः। यन्मुक्तौ च मनुष्याणां न पीडा जायते पुनः॥१॥
एतैश् च लक्षणैर् देव पीडोक्ता प्रेतजा त्वया। तेषां कदा भवेन् मुक्तिः प्रेतत्वं न कथं भवेत्॥२॥
प्रेतत्वे हि प्रमाणं च कति वर्षाणि सङ्ख्यया। चिरं प्रेतत्वमापन्नः कथं मुक्तिमवाप्नुयात्॥३॥

श्रीकृष्ण उवाच

मुक्तिं प्रयान्ति ते प्रेतास् तदहं कथयामि ते। यदैव मनुजोऽवैति मम पीडा कृता त्वियम्॥४॥
पृच्छार्थं हितमन्विच्छन् दैवज्ञे विनिवेदयेत्। स्वप्ने दृष्टः शुभो वृक्षः फलितश् चूतचम्पकः॥५॥
विप्रो वा वृषभो देवो भ्रमते तीर्थगो यदि। एवं दृष्टो यदा स्वप्नो मृतः कोऽपि स्वगोत्रजः॥६॥

गरुड ने कहा— प्रेत कैसे प्रेतभाव से मुक्ति पाते हैं? वह मैं पूछना चाहता हूँ। जिन की मुक्ति होने पर फिर मनुष्यों की पीडा नहीं उत्पन्न होती है॥१॥ हे देव, आप ने इन लक्षणों से प्रेत से उत्पन्न पीडा को बताया। उन प्रेतों की मुक्ति कब होगी? कैसे प्रेतत्व नहीं होगा?॥२॥ गिनने पर कितने वर्षों का प्रेतत्व के काल का परिमाण होगा? लम्बे समयतक प्रेतत्व में प्राप्त जीव कैसे प्रेतत्व से छुटकारा पाएगा?॥३॥ **श्रीकृष्ण ने कहा—** जैसे वे प्रेत प्रेतत्व से छुटकारा पाते हैं उस बात को मैं तुम को बताता हूँ। जिस समय में मनुष्य मेरी यह पीडा किसी से की गई है ऐसा जानता है तब अपना हित करना चाहता हुआ वह मनुष्य पूछने के लिए ज्योतिषी को अपनी बात ज्ञापित करे। स्वप्न में फलों से युक्त कोई आम, चम्पक इत्यादि शुभ वृक्ष देखा गया; ब्राह्मण अथवा वृषभ अथवा कोई देवतीर्थ में भ्रमण करता हुआ देखा गया, इसी प्रकार से अपने गोत्र में जन्मा हुआ कोई मृत व्यक्ति स्वप्न में देखा गया तो वह

स्वप्ने सत्यं परिज्ञाय दृष्टं प्रेतप्रभावतः। अद्भुतानि प्रदृश्यन्ते प्रेतदोषाद् विनिश्चितम्॥७॥
तीर्थस्नाने मतिर् यावच् चित्तं धर्मपरायणम्। धर्मोपायं प्रकुरुते प्रेतपीडा तदा व्रजेत्॥८॥
तदा तत्र विनाशाय चित्तभङ्गं करोति सा। श्रेयांसि बहुविघ्नानि सम्भवन्ति पदेपदे॥९॥
अश्रेयसि प्रवृत्तिं च प्रेरयन्ति पुनःपुनः। उच्चाटनं च क्रूरत्वं सर्वं प्रेतकृतं खग॥१०॥
सर्वविघ्नानि सन्त्यज्य मुक्त्युपायं करोति यः। तस्य कर्मफलं साधु प्रेततृप्तिश् च शाश्वती॥११॥
स भवेत् तेन मुक्तस्तु दत्तं श्रेयस्करं परम्। स्वयं तृप्यति भोः पक्षिन् यस्योद्देशेन दीयते॥१२॥
शृणु सत्यमिदं तार्क्ष्य यद् ददाति भुनक्ति सः। आत्मानं श्रेयसा युञ्ज्यात् प्रेतस्तृप्तिं चिरं व्रजेत्॥१३॥
ते तृप्ताः शुभमिच्छन्ति निजबन्धुषु सर्वदा। अज्ञातयस्तु ये दुष्टाः पीडयन्ति स्ववंशजान्॥१४॥

स्वप्न प्रेत के प्रभाव से देखा गया जानकर, और अद्भुत दृश्य निश्चित रूप में प्रेतदोष से देखे जाते हैं, ऐसा भी जानकर जब तीर्थस्नान करने में बुद्धि होती है और चित्त धर्माचरण में प्रवण होता है तथा प्रेतत्व के नाश के लिए धर्माचरणरूप उपाय करता है तब प्रेतपीडा जाती है॥४-८॥ किन्तु धर्माचरणरूप उपाय करने के समय में प्रेतपीडा चित्तभङ्ग कर देती है। कल्याणकारी कार्य पग-पग में बहुत विघ्नों से युक्त होते हैं॥९॥ अकल्याणकारी कार्य में होने वाली प्रवृत्ति को प्रेत वारवार प्रेरणा देते हैं। हे पक्षिन्, उच्चाटनकार्य और क्रूरत्व सब ही प्रेतों से किया गया होता है॥१०॥ सब विघ्नों को हटाकर जो प्रेतमुक्ति का उपाय करता है, उसको अच्छी तरह से अपने कर्म का फल प्राप्त होता है और प्रेत की शाश्वत तृप्ति भी होती है॥११॥ वह प्रेत उस कार्य से प्रेतत्व से मुक्त होगा। प्रेत के लिए दिया गया दान देने वाले के लिए भी परम कल्याणकारी होता है। हे पक्षिन्, जिस को उद्देश्य करके दिया जाता है वह भी स्वयम् तृप्त होता है॥१२॥ हे गरुड, इस सत्य बात को सुनो, मनुष्य जो देता है उस का वही भोग करता है, देने वाला अपने को भी कल्याण से युक्त करेगा, प्रेत भी चिरकालतक तृप्त होगा॥१३॥ तृप्त प्रेत सदाकाल अपने बन्धुओं का शुभ चाहते हैं। असम्बन्धी जो दुष्ट प्रेत अपने वंशजों को पीडित

निवारयन्ति तृप्तास्ते जायमानानुकम्पकाः। पश्चात् ते मुक्तिमायान्ति काले प्राप्ते स्वपुत्त्रतः॥
सदा बन्धुषु यच्छन्ति वृद्धिमृद्धिं खगाधिप॥१५॥
दर्शनाद् भाषणाद् यस्तु चेष्टातः पीडनाद् गतिम्। न प्रापयति मूढात्मा प्रेतशापैः स लिप्यते॥१६॥
अपुत्त्रकोऽपशुश् चैव दरिद्रो व्याधितस् तथा। वृत्तिहीनश् च हीनश् च भवेज् जन्मनिजन्मनि॥१७॥
एवं ब्रुवन्ति ते प्रेताः पुनर् याम्यं समाश्रिताः। तत्रस्थानां भवेन् मुक्तिः स्वकाले कर्मसङ्क्षये॥१८॥

गरुड उवाच

नाम गोत्रं न दृश्येत प्रतीतिर् नैव जायते। केचिद् वदन्ति दैवज्ञाः पीडां प्रेतसमुद्भवाम्॥१९॥
न स्वप्नचेष्टितं नैव दर्शनं न कदाचन। किं कर्तव्यं सुरश्रेष्ठ तत्र मे ब्रूहि निश्चितम्॥२०॥

करते हैं तृप्त प्रेत अपने वंश में जायमान पुत्त्र-पौत्त्रादि में दया करते हुए उन का निवारण करते हैं। पीछे समय आने पर वे तृप्त प्रेत अपने पुत्त्रों से मुक्ति पाते हैं। हे पक्षियों के स्वामिन्, तृप्त प्रेत सदाकाल अपने बन्धुओं में वृद्धि और ऐश्वर्य देते हैं॥१४-१५॥ जो मूढ बुद्धि वाला मनुष्य स्वप्नादि में प्रेतचिह्न देखने से, ब्राह्मण-दैवज्ञादि के कथन से प्रेतों की चेष्टाओं से और पीडाओं से भी प्रेतों को जानकर उन को सुगति में प्राप्त नहीं कराता है वह प्रेत के शापों से लिप्त होता है॥१६॥ वह मनुष्य जन्म-जन्म में पुत्त्रहीन, पशुहीन, दरिद्र, रोगी, जीवनवृत्तिहीन और नीच भी होगा॥१७॥ अपने वंशजों से मुक्ति का उपाय न किए जाने पर फिर यमपुरी का ही आश्रय लेने वाले वे प्रेत ऐसा कहते हैं। यमपुरी में रहने वाले प्रेतों की मुक्ति अपने समय में पापकर्म का फलभोग से क्षय होने पर होगी॥१८॥ गरुड ने कहा— किसी प्रेत का नाम और गोत्र कुछ नहीं ज्ञात होता है, उस के विषय में विश्वास भी नहीं होता है, कोई दैवज्ञ अनुभूयमान पीडा को प्रेत से उत्पन्न बताते हैं, किन्तु स्वप्न में कोई चेष्टा भी नहीं, दर्शन भी कदापि नहीं; ऐसी स्थिति में, हे देवताओं में श्रेष्ठ, क्या करना चाहिए? निश्चित रूप में मुझ को बताइए॥१९-२०॥

श्रीभगवानुवाच

सत्यं वाऽप्यनृतं वाऽपि वदन्ति क्षितिदेवताः। तदा सञ्चिन्त्य हृदये सत्यमेतद् द्विजेरितम्॥२१॥
भावभक्तिं पुरस्कृत्य पितृभक्तिपरायणः। कुर्यात् कृष्णबलिं चैव पुरश्चरणपूर्वकम्॥२२॥
जपहोमैस् तथा दानैः प्रकुर्याद् देहशोधनम्। कृतेन तेन विघ्नानि विनश्यन्ति खगेश्वर॥२३॥
भूतप्रेतपिशाचैर् वा स चेदन्यैः प्रपीड्यते। पित्रुद्देशेन वै कुर्यान् नारायणबलिं तदा॥२४॥
विमुक्तः सर्वपीडाभ्य इति सत्यं वचो मम। पितृपीडा भवेद् यत्र कृत्यैरन्यैर् न मुच्यते॥२५॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन पितृभक्तिपरो भवेत्। नवमे दशमे वर्षे पित्रुद्देशेन वै पुमान्॥२६॥
गायत्रीमयुतं जप्त्वा दशांशेन च होमयेत्। कृत्वा कृष्णबलिं पूर्वं वृषोत्सर्गादिकाः क्रियाः॥२७॥
सर्वोपद्रवहीनस् तु सर्वसौख्यमवाप्नुयात्। उत्तमं लोकमाप्नोति ज्ञातिप्राधान्यमेव च॥२८॥

श्रीभगवान् ने कहा— भूमिदेव ब्राह्मण सत्य अथवा असत्य जो कुछ भी बताते हैं तब भी ब्राह्मण से बताई गई यह बात सत्य है ऐसा हृदय में रखकर भावभक्ति को आगे रखकर पितृभक्ति से पूर्ण होकर पुरश्चरण करके कृष्णबलि (नारायणबलि) करें॥२१-२२॥ जपों से होमों से तथा दानों से देहशुद्धि करे। हे पक्षियों के मालिक, उस देहशुद्धिकार्य से विघ्न नष्ट होते हैं॥२३॥ वह मनुष्य भूत, प्रेत और पिशाचों से अथवा अन्य तत्त्वों से पीडित होता है तो उस समय में पितरों के उद्देश्य से नारायणबलि करे॥२४॥ इस से मनुष्य सभी पीडाओं से मुक्त होता है, यह मेरा वचन सत्य है, जहाँ पितरों से पीडा होगा वहाँ अन्य कृत्यों से मुक्त नहीं होता है॥२५॥ इस हेतु से मनुष्य सभी प्रयत्न से पितृभक्तिपरायण होवे। नौवें अथवा दशवें वर्ष में मनुष्य पितरों के उद्देश्य से दश हजार गायत्रीजप करके उस का दशमांश हवन करे। पहले नारायणबलि करके वृषोत्सर्ग इत्यादि क्रिया करे। तब सभी उपद्रवों से रहित होकर मनुष्य सभी प्रकार का सुख प्राप्त करेगा और दूसरे जन्म में उत्तम लोक पाता है, इस लोक में बन्धुओं में प्रधानता भी पाता है॥२६-२८॥

पितृमातृसमं लोके नास्त्यन्यद् दैवतं परम्। तस्मात् सर्वप्रयत्नेन पूजयेत् पितरौ सदा॥२९॥
हितानामुपदेष्टा हि प्रत्यक्षं दैवतं पिता। अन्या या देवता लोके न देहप्रभवा हि ताः॥३०॥
शरीरमेव जन्तूनां स्वर्गमोक्षैकसाधनम्। देहो दत्तो हि येनैवं कोऽन्यः पूज्यतमस्ततः॥३१॥
इति सञ्चिन्त्य हृदये पक्षिन् यद्यत् प्रयच्छति। तत् सर्वमात्मना भुङ्क्ते दानं वेदविदो विदुः॥३२॥
पुन्-नामनरकाद् यस्मात् पितरं त्रायते सुतः। तस्मात् पुत्त्र इति प्रोक्त इह चाऽपि परत्र च॥३३॥

लोक में पिता-माता के तुल्य परम देवता और नहीं है। इस लिए सदाकाल सम्पूर्ण प्रयत्नों से पिता-माता की सेवा करे॥२९॥ हितों का उपदेश करने वाला पिता प्रत्यक्ष देवता है। लोक में अन्य देवताएँ जो हैं वे देह की उत्पत्ति के मूल नहीं हैं, पिता ही देह की उत्पत्ति का मूल हैं॥३०॥ प्राणियों का शरीर ही स्वर्ग का और मोक्ष का एक मात्र साधन है। इस स्थिति में जिस ने देह ही दिया उस से अधिक पूज्य और कौन हो सकता है?॥३१॥ हे पक्षिन्, इस प्रकार हृदय में विचार करके जो जो दान देता है उस सब दान का फल दाता स्वयम् ही भोग करता है, ऐसा वेद जानने वाले विद्वान् जानते हैं॥३२॥ चूंकि बेटा अपने बाप को 'पुत्' नाम के नरक में पडने से बचाता है, इस लिए इस लोक में और परलोक में भी बेटा पुत्त्र (पुत्-त्र) कहा गया है। *[__विशेष__— यद्यपि माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेद को छोडकर अन्य लिखित और मुद्रित संस्कृतग्रन्थों में 'पुत्र' ऐसा रूप ही प्रायः पाया जाता है, तथापि निरुक्त के "पुत् नरकं ततस् त्रायते इति वा" (आनन्दाश्रमसंस्करण में दुर्गव्याख्या २।३।११) इस व्युत्पत्ति को देखने से, मनुस्मृति में (९।१३८) तथा अन्य ग्रन्थों में भी (गोपथब्राह्मण १।१।२) तदनुकूल वचन देखे जाने से, हरिवंश में "नरकं पुदिति ख्यातम्" "पुदस्त्राणात् ततः पुत्त्रमिहेच्छति परत्र च" (३।७३।२९-३०) ऐसे प्रयोग पाए जाने से और वाचस्पत्यम् नाम के बडे संस्कृत-शब्दकोश में भी पुंत्र शब्द में "पुतो नरकभेदात् त्रायते" इत्यादि व्याख्या देखे जाने से इस शब्द का मूल रूप द्वितकारक "पुत्त्र" ही मानना युक्तियुक्त दिखाई देता है। गरुडपुराण के वेङ्कटेश्वरसंस्करण में और बङ्गवासिसंस्करण में भी इस श्लोक में "पुत्त्र" ही छपा है, इन संस्करणों में अन्यत्र भी "पुत्त्र" ऐसा प्रयोग पाया जाता है]*॥३३॥ हे पक्षिन्, यदि किसी के पिता-माता दुर्मरण से मरे हैं तो मृत्यु से लेकर एक तिथिबद्ध

अपमृत्युमृतौ स्यातां पितरौ कस्यचित् खग। व्रततीर्थविवाहादिश्राद्धं संवत्सरं त्यजेत्॥३४॥
स्वप्नाध्यायमिमं यस्तु प्रेतलिङ्गनिदर्शकम्। यः पठेच् छृणुयाद् वापि प्रेतचिह्नं न पश्यति॥३५॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे स्वप्नाध्यायो नामैकविंशोऽध्यायः॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

गरुड उवाच

सम्भवन्ति कथं प्रेताः केन तेषां गतिर् भवेत्। कीदृक् तेषां भवेद् रूपं भोजनं किं भवेत् प्रभो॥१॥
सुप्रीतास् ते कथं प्रेताः क्व तिष्ठन्ति सुरेश्वर। प्रसन्नः कृपया देव प्रश्नमेनं वदस्व मे॥२॥

चान्द्रवर्षतक व्रत के अङ्ग के रूप में, तीर्थ के अङ्ग के रूप में और विवाहादि संस्कार के अङ्ग के रूप में भी श्राद्ध (आभ्युदयिकश्राद्ध) नहीं करे॥३४॥ प्रेत के चिह्नों का वर्णन करने वाले इस स्वप्नाध्याय को जो मनुष्य पढेगा अथवा सुनेगा वह प्रेतचिह्न देखने से आने वाले कष्ट से मुक्त होगा॥३५॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में स्वप्नाध्याय नाम का इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥२१॥

गरुड ने कहा— हे प्रभो, प्रेत कैसे उत्पन्न होते हैं? किस कर्म से उन की सुगति होती है? उन का रूप कैसा होगा? उन का भोजन क्या होगा?॥१॥ वे प्रेत कैसे प्रसन्न होते हैं? हे देवों के ईश्वर, प्रेत कहाँ रहते हैं? हे देव, प्रसन्न होकर मेरे इस प्रश्न का उत्तर बताइए॥२॥

श्रीभगवानुवाच

पापकर्मरता ये वै पूर्वकर्मवशानुगाः। जायन्ते ते मृताः प्रेतास् ताञ् छृणुष्व वदाम्यहम्॥३॥
वापीकूपतडागांश् च आरामं सुरमन्दिरम्। प्रपां सद्म सुवृक्षांश् च तथा भोजनशालिकाः॥४॥
पितृपैतामहं धर्मं विक्रीणाति स पापभाक्। मृतः प्रेतत्वमाप्नोति यावदाभूतसम्प्लवम्॥५॥
गोचरं ग्रामसीमां च तडागारामगह्वरम्। कर्षयन्ति च ये लोभात् प्रेतास्ते वै भवन्ति हि॥६॥
चण्डालादुदकात् सर्पाद् ब्राह्मणाद् वैद्युताग्नितः। दंष्ट्रिभ्यश् च पशुभ्यश् च मरणं पापकर्मिणाम्॥७॥
उद्बन्धनमृता ये च विषशस्त्रहताश् च ये। आत्मोपघातिनो ये च विषूच्यादिहतास्तथा॥८॥
महारोगैर् मृता ये च पापरोगैश् च दस्युभिः। असंस्कृतप्रमीता ये विहिताऽऽचारवर्जिताः॥९॥

श्रीभगवान् ने कहा– पूर्व कर्मों के वश में पडे हुए मनुष्य जिनजिन पापकर्मों में रत होकर मरने पर प्रेत होते हैं उन को मैं बताता हूँ, सुनो॥३॥ जो मनुष्य बावली, कुआं, तालाव, देवालय, पौसल, घर, उत्तम वृक्ष और ब्राह्मण-दरिद्रादि-भोजनगृह इत्यादि बाप-दादों के धर्मकार्य का विक्रय करता है वह पापभागी होता है और मरने पर महाप्रलय (महाकल्पान्त) न होनेतक प्रेतयोनि में पडा रहता है॥४-५॥ जो मनुष्य लोभ से गायों के चरागाह, गाँव की सीमा के रूप में रही भूमि, तालाव, उपवन और गुफा को जोत लेते हैं वे अवश्य प्रेत होते हैं॥६॥ पापकर्म करने वालों का चण्डाल से, जल से, साँप से, ब्राह्मण से, विजली गिरने से जले अग्नि से, दाढ वाले हिंस्रक जन्तु से और पशुओं से भी मरण होता है॥७॥ फाँसी लगाने से जो मरे हैं, जो विष से और शस्त्र से मरे हैं, जो आत्महत्या करने वाले हैं, जो विषूचिकादि रोगों से मरे हैं, जो यक्ष्मा, कुष्ठ इत्यादि महारोग से और पापजन्य रोग से मरे हैं, जो डांकुओं से मरे हैं, जो असंस्कृत अवस्था में मरे हैं, जो शास्त्रविहित अपने अपने वर्ण आश्रम इत्यादि के आचार से रहित होकर मरे हैं, जिन का वृषोत्सर्गादि कृत्य लुप्त हुए हैं, जिन का मासिक पिण्ड लुप्त हुए हैं, जिस के शव के दाह में शूद्र

वृषोत्सर्गादिलुप्ताश्च लुप्तमासिकपिण्डकाः। यस्याऽऽनयति शूद्रोऽग्निं तृणकाष्ठहवींषि सः॥१०॥
पतनात् पर्वतानां च भित्तिपातेन ये मृताः। रजस्वलादिदोषैश्च न च भूमौ मृताश् च ये॥११॥
अन्तरिक्षे मृता ये च विष्णुस्मरणवर्जिताः। सूतकैः श्वादिसम्पर्कैः प्रेतभावा इह क्षितौ॥१२॥
एवमादिभिरन्यैश् च कुमृत्युवशगाश् च ये। ते सर्वे प्रेतयोनिस्था विचरन्ति मरुस्थले॥१३॥
मातरं भगिनीं भार्यां स्नुषां दुहितरं तथा। अदृष्टदोषां त्यजति स प्रेतो जायते ध्रुवम्॥१४॥
भ्रातृध्रुग् ब्रह्महा गोघ्नः सुरापो गुरुतल्पगः। हेमक्षौमहरस् तार्क्ष्य स वै प्रेतत्वमाप्नुयात्॥१५॥
न्यासापहर्ता मित्रध्रुक् परदाररतस् तथा। विश्वासघाती क्रूरस् तु स प्रेतो जायते ध्रुवम्॥१६॥
कुलमार्गाश् च सन्त्यज्य परधर्मरतस् तथा। विद्यावृत्तिविहीनश् च स प्रेतो जायते ध्रुवम्॥१७॥

अग्नि, तृण, काष्ठ और घी लाता है, जो पर्वत के भागों के पतन से, दिवाल के ढहने से मरे हैं, जो रजस्वलादिदोष से मरे हैं, जो भूमिस्पर्श नहोने की अवस्था में मरे हैं, जो अन्तरिक्ष में (घर के ऊपर के भाग में अथवा पलङ में) मरे हैं, जो विष्णु के स्मरण से रहित होकर मरे हैं, इस भूमि में सूतकी मनुष्यों के अथवा कुक्कुर इत्यादि अस्पृश्य प्राणी के सम्पर्क में आने के समय में जिस का प्रेतभाव (मरण) हुआ है, इसी प्रकार के अन्य कारणों से भी जो दुर्मरण के वश में पडे हैं, वे सब प्रेतयोनि में रहकर मरुभूमि में इधर-उधर घूमते रहते हैं॥८-१३॥ जो मनुष्य जिन का कोई दोष नहीं देखा गया है वैसी माँ को, बहन को, पत्नी को, पुत्रवधू को और पुत्री को त्याग देता है वह अवश्य प्रेत हो जाता है॥१४॥ भाई का द्रोही, ब्रह्मघाती, गोघाती, द्विजाति होकर सुरा पीने वाला, गुरुपत्नी से सहवास करने वाला, सोने का और क्षौपवस्त्र का चुराने वाला जो है, हे गरुड, वह प्रेतयोनि में प्राप्त होता॥१५॥ जो न्यास (धरोहर) को हडपने वाला, मित्र का द्रोही, दूसरे की पत्नी से सहवास करने वाला, विश्वासघात करने वाला और क्रूर है वह अवश्य प्रेत होता है॥१६॥ जो अपने कुल से अवलम्बित आचारमार्गों को छोडकर अन्य वर्णाश्रमादि के धर्म में रमने वाला है, नीचविद्यासेवी है और नीचवृत्तिसेवी है वह मनुष्य प्रेत हो जाता है॥१७॥

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्। युधिष्ठिरस्य संवादं भीष्मेण सह सुव्रत।
तदहं कथयिष्यामि यच् छ्रुत्वा सौख्यमाप्नुयात्॥१८॥

युधिष्ठिर उवाच

केन कर्मविपाकेन प्रेतत्वमुपजायते। केन वा मुच्यते तस्मात् तन् मे ब्रूहि पितामह।
यच् छ्रुत्वा न पुनर् मोहमेवं यास्यामि सुव्रत॥१९॥

भीष्म उवाच

येनैव जायते प्रेतो येनैव स विमुच्यते। प्राप्नोति नरकं घोरं दुस्तरं दैवतैरपि॥२०॥
सततं श्रवणाद् यस्य पुण्यश्रवणकीर्तनात्। मानवा विप्रमुच्यन्ते आपन्नाः प्रेतयोनिषु॥२१॥
श्रूयते हि पुरा वत्स ब्राह्मणः शंसितव्रतः। नाम्ना सन्तप्तकः ख्यातस् तपोऽर्थे वनमाश्रितः॥२२॥

हे सुव्रत, इसी विषय में युधिष्ठिर का भीष्म के साथ हुए संवाद के रूप में रहे हुए इस पुराने इतिहास को मुनिलोग कहते हैं। उस इतिहास को मैं बताउँगा जिस को सुनकर सुनने वाला सुख पाएगा॥१८॥ युधिष्ठिर ने कहा– हे सुव्रत पितामह, किस कर्म के परिणाम से प्रेतत्व होता है, किस उपाय से उस से जीव मुक्त होता है, वह मुझ को बताइए, जिस को सुनकर मैं फिर ऐसे अज्ञान में नहीं पडूंगा॥१९॥ भीष्म ने कहा– जिस कर्म से मनुष्य प्रेत होता है, जिस कर्म से प्रेतयोनि से मुक्त होता है, जिस कर्म से देवताओं से भी दुःख से ही पार किए जा सकने वाले घोर नरक में जाता है, जिस के निरन्तर सुनने से, जिस पुण्यश्रवण के कीर्तन से प्रेतयोनि में पडे हुए मानव प्रेतयोनि से मुक्त होते हैं उन कर्म को और उस आख्यान को मैं बताउँगा॥२०-२१॥ हे वत्स, यह आख्यान सुना जाता है कि– पुराकाल में प्रकाशित-सङ्कल्पित व्रत वाले और प्रसिद्ध, सन्तप्तक नाम के कोई ब्राह्मण तपस्या के लिए वन में आश्रित थे॥२२॥

स्वाध्याययुक्तो होमेन यागयुक्तो दयान्वितः। यजन् स सकलान् यज्ञान् युक्त्या कालञ्च विक्षिपन्॥
ब्रह्मचर्यसमायुक्तो युक्तस् तपसि मार्दवें। परलोकभयोपेतः सत्यशौचैश् च निर्मलः॥२४॥
युक्तो हि गुरुवाक्येन युक्तश् चाऽतिथिपूजने। आत्मयोगे सदोद्युक्तः सर्वद्वन्द्वविवर्जितः॥२५॥
योगाभ्यासे सदा युक्तः संसारविजिगीषया। एवंवृत्तः सदाचारो मोक्षकाङ्क्षी जितेन्द्रियः॥२६॥
बहून्यब्दानि विजने वने तस्य गतानि वै। तस्य बुद्धिस्ततो जाता तीर्थानुगमनं प्रति॥२७॥
पुण्यैस् तीर्थजलैरेव शोषयिष्ये कलेवरम्। स तीर्थे त्वरितं स्नात्वा तपस्वी भास्करोदये॥
कृतजाप्यनमस्कारो ह्यध्वानं प्रत्यपद्यत॥२८॥

एकस्मिन् दिवसे विप्रो मार्गभ्रष्टो महातपाः। ददर्शाऽध्वनि गच्छन् स पञ्च प्रेतान् सुदारुणान्॥२९॥
अरण्ये निर्जने देशे सङ्कटे वृक्षवर्जिते। पञ्चैतान् विकृताकारान् दृष्ट्वा वै घोरदर्शनान्।

वे अपने शाखा के वेद के अध्ययन से युक्त, होमरूप यज्ञ से युक्त, दया से पूर्ण थे। वे सभी यज्ञों को करते रहने वाले और युक्ति से काल का यापन करते रहने वाले, ब्रह्मचर्य से सहित, तपस्या में और कोमलभाव में रहने वाले, परलोक के भय से युक्त, सत्यरूपी शौचों से निर्मल, गुरुवाक्य से युक्त, अतिथियों के पूजन में संलग्न, जीवात्मा कोपरमात्मा से मिलाने में सदाकाल उद्योग करने वाले, सभी प्रकार के द्वन्द्वों से रहित, संसार के चक्कर को जितने की इच्छा से सदाकाल योगाभ्यास में संलग्न, इस प्रकार के चरित्र से युक्त, सदाचारी, मोक्ष को चाहने वाले और जितेन्द्रिय थे॥२३-२६॥ मनुष्यों से रहित वन में उन के बहुत वर्ष बीत गए। तब उन की तीर्थभ्रमण करने की बुद्धि हुई॥२७॥ उन्हों ने विचार किया कि पवित्र तीर्थों के जलों से शरीर को सुखाउँगा। वे तपस्वी तीर्थ में शीघ्रता से स्नान करके सूर्य का उदय होने पर जप और नमस्कार करके मार्ग में चलने लगे॥२८॥ एक दिन महातपस्वी वे विप्रवर मार्ग से भटक गए। मार्ग में जाते हुए उन्हों ने वन में मनुष्यों से रहित और वृक्षों से भी रहित संकरे स्थल में भयङ्कर पाँच प्रेतों को देखा॥२९॥ विकृत आकार वाले और डरावने दृश्य वाले इन पाँच

ईषत्सन्त्रस्तहृदयोऽतिष्ठदुन्मील्य लोचने॥३०॥
अवलम्ब्य ततो धैर्यं भयमुत्सृज्य दूरतः। पप्रच्छ मधुराभाषी के यूयं विकृताननाः॥३१॥
किञ्चाऽशुभं कृतं कर्म येन प्राप्ताः स्थ वैकृतम्। कथं वा चैकतः कर्म प्रस्थिताः कुत्र निश्चितम्॥३२॥

प्रेतराज उवाच

स्वैःस्वैस्तु कर्मभिः प्राप्तं प्रेतत्वं हि द्विजोत्तम। परद्रोहरताः सर्वे पापमृत्युवशं गताः॥३३॥
क्षुत्पिपासार्दिता नित्यं प्रेतत्वं समुपागताः। हतवाक्या हतश्रीका हतसंज्ञा विचेतसः॥३४॥
न जानीमो दिशं तात विदिशं चाऽतिदुःखिताः। क्व नु गच्छामहे मूढाः पिशाचाः कर्मजा वयम्॥३५॥
न माता न पिताऽस्माकं प्रेतत्वं कर्मभिः स्वकैः। प्राप्ताः स्म सहसा जातदुःखोद्वेगसमाकुलम्॥३६॥
दर्शनेन च ते ब्रह्मन् मुदिताः प्यायिता वयम्। मुहूर्तं तिष्ठ वक्ष्यामि वृत्तान्तं सर्वमादितः॥३७॥

प्रेतों को देखकर कुछ सन्त्रस्तहृदय वाले वे ब्राह्मण आँखों को खोलकर खडे रह गए॥३०॥ तब धैर्यधारण करके भय को छोडकर उन्हों ने दूर से ही मधुर वाणी से पूछा कि विकृतमुख वाले आप लोग कौन हैं? क्या अशुभ कर्म किया था? जिस से इस प्रकार के विकृत रूप को प्राप्त हुए हैं, कैसे एक सा कर्म हुआ? निश्चित रूप से कहाँ जाने के लिए चले हैं?॥३१-३२॥ प्रेतराज ने कहा— हे ब्राह्मणश्रेष्ठ, हम लोगों ने अपनेअपने कर्मों से प्रेतत्व प्राप्त किया है। हम सब परद्रोह में रत थे और दुर्मरण में पडे हुए थे॥३३॥ नित्य भूख से और पिपासा से आर्त हम लोग प्रेतत्व में प्राप्त हुए हैं; हम वाक्यहीन, कान्तिहीन, चेतनाहीन और मनोहीन हैं, अतिदुःखित हम लोग कौन दिशा है कौन विदिशा है नहीं जानते हैं, अपने कर्मों से हुए हम पिशाच मूढ हैं, हम कहाँ जाएंगे॥३४-३५॥ हम लोगों की माता नहीं है पिता भी नहीं है, उत्पन्न दुःखों से हुए उद्वेग से आकुल इस प्रेतत्व में हम अपने ही कर्मों से एकाएक प्राप्त हुए हैं॥३६॥ हे ब्राह्मणदेव, आप के दर्शन से हम प्रसन्न और तृप्त हुए हैं। आप मुहूर्तभर रुकें, प्रारम्भ से सभी वृत्तान्त बताउँगा॥३७॥

अहं पर्युषितो नाम एष सूचीमुखस्तथा। शीघ्रगो रोधकश्चैव पञ्चमो लेखकः स्मृतः॥३८॥
एवं नाम्ना च सर्वे वै सम्प्राप्ताः प्रेततां वयम्।

ब्राह्मण उवाच

प्रेतानां कर्मजातानां कथं वै नामसम्भवः। किञ्चित् कारणमुद्दिश्य येन ब्रूयाः स्वनामकान्॥३९॥

प्रेतराज उवाच

मया स्वादु सदा भुक्तं दत्तं पर्युषितं द्विजे॥४०॥ एतत्कारणमुद्दिश्य नाम पर्युषितं मम॥४१॥
शीघ्रं गच्छति विप्रेण याचितः क्षुधितेन वै। एतत्कारणमुद्दिश्य शीघ्रगोऽयं द्विजोत्तम॥४२॥
सूचिता बहवोऽनेन विप्रा अन्नादिकाङ्क्षया। एतत्कारणमुद्दिश्य एष सूचीमुखः स्मृतः॥४३॥

मैं पर्युषित नाम से परिचित हूँ, यह सूचीमुख है, यह शीघ्रग है, यह रोधक है और यह पाँचवाँ लेखक समझा गया है॥३८॥ प्रेतत्व में प्राप्त हम सब ऐसे नामों से परिचित हैं। ब्राह्मण ने कहा— कर्म से हुए प्रेतों के नामों की उत्पत्ति कैसे हुई? यह नामों की उत्पत्ति किसी कारण को लेकर हुई होगी, जिस कारण को लेकर इन नामों की उत्पत्ति हुई उस को लेकर अपने नामों का प्रतिपादन करो॥३९॥ प्रेतराज ने कहा— मैं ने सदाकाल स्वादिष्ट भोजन किया और ब्राह्मण को पर्युषित (बासी) भोजन दिया॥४०॥ इसी कारण को लेकर मेरा नाम पर्युषित हुआ॥४१॥ हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ, भूखे ब्राह्मण से माँगे जाने पर ब्राह्मण को पीछे छोडकर यह शीघ्रता से आगे बढता था, इसी कारण को लेकर यह शीघ्रग नाम का हुआ॥४२॥ शासक से अन्नादि की प्राप्ति की इच्छा से इस ने बहुत से ब्राह्मणों के विरुद्ध शासक में सूचना दी, इसी कारण को लेकर यह सूचीमुख नाम का समझा गया है॥४३॥ द्वार के अवरोध से अतिथि ब्राह्मणों का अभाव बनाकर पोष्य बाल-वृद्धादि को भी छोडकर अकेला ही सदाकाल

एकाकी मिष्टमश्नाति पोष्यवर्गमृते सदा। ब्राह्मणानामभावेन रोधकस्तेन चोच्यते॥४४॥
पुराऽयं मौनमास्थाय याचितो विलिखेद् भुवम्। तेन कर्मविपाकेन लेखको नाम चोच्यते॥४५॥
प्रेतत्वं कर्मभावेन प्राप्तं नामानि च द्विज। मेषाननो लेखकोऽयं रोधकः पर्वताननः॥४६॥
शीघ्रगः पशुवक्त्रश्च सूचकः सूचिवक्त्रवान्। दुःखिता नितरां स्वामिन् पश्य रूपविपर्ययम्॥४७॥
कृत्वा मायामयं रूपं विचरामो महीतले। सर्वे च विकृताकारा लम्बोष्ठा विकृताननाः॥४८॥
बृहच्छरीरिणो रौद्रा जाताः स्वेनैव कर्मणा। एतत् ते सर्वमाख्यातं प्रेतत्वे कारणं मया॥४९॥
ज्ञानिनोऽपि वयं सर्वे जाताः स्म तव दर्शनात्। यत्र ते श्रवणे श्रद्धा तत् पृच्छ कथयामि ते॥५०॥

ब्राह्मण उवाच

ये जीवा भुवि जीवन्ति सर्वेऽप्याहारमूलकाः। युष्माकमपि चाऽऽहारं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥५१॥

स्वादिष्ट भोजन करता था, उसी कर्म से यह रोधक कहा जाता है॥४४॥ पुराकाल में माँगे जाने पर यह मौनधारण करके भूमि को कुरेदने लगता था, उसी कर्म के परिणाम से यह लेखक नाम से पुकारा जाता है॥४५॥ हे ब्राह्मण, कर्म के प्रभाव से हम लोगों ने प्रेतत्व पाया और नाम भी पाए। यह लेखक भेडे के मुख की तरह के मुख वाला है, रोधक पर्वत जैसे मुख वाला है, शीघ्रग पशु के मुख की तरह के मुख वाला है और सूचक सुई जैसे मुख वाला है। हे स्वामिन्, हम अत्यन्त दुःखित हैं, हमारे रूपों का उलट फेर देखिए॥४६-४७॥ हम लोग मायामय रूप बनाकर पृथ्वीतल में इधर-उधर घूमते हैं। हम सभी अपने ही कर्मों से विकृत आकार वाले, लम्बे होंठ वाले, विकृत मुख वाले, बडे शरीर वाले और भयानक हुए हैं। मैं ने यह सब प्रेतत्व के कारण आप को बताया॥४८-४९॥ आप के दर्शन से हम सब ज्ञानी भी हो गए हैं। जिस विषय के श्रवण में आप की श्रद्धा है उस विषय को पूछिए, मैं आप को बताता हूँ॥५०॥ ब्राह्मण ने कहा— जो भी जीव पृथिवीतल में जीवित हैं वे सब आहारमूलक हैं। आप लोगों का भी जो आहार है उस को मैं यथार्थ रूप में सुनना चाहता हूँ॥५१॥

प्रेता ऊचुः

यदि ते श्रवणे श्रद्धा आहाराणां द्विजोत्तम। अस्माकं तु महाभाग शृणु त्वं सुसमाहितः॥५२॥

ब्राह्मण उवाच

कथयन्तु महाप्रेता आहारं च पृथक्पृथक्। इत्युक्ता ब्राह्मणेनेममूचुः प्रेताः पृथक्पृथक्॥५३॥

प्रेता ऊचुः

शृणु चाऽऽहारमस्माकं सर्वसत्त्वविगर्हितम्। यच् छ्रुत्वा गर्हसे ब्रह्मन् भूयोभूयश् च गर्हितम्॥५४॥
श्लेष्ममूत्रपुरीषोत्थं शरीराणां मलैः सह। उच्छिष्टैश् चैव चाऽन्यैश् च प्रेतानां भोजनं भवेत्॥५५॥
गृहाणि चाऽप्यशौचानि प्रकीर्णोपस्कराणि च। मलिनानि प्रसूतानि प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै॥५६॥

प्रेतों ने कहा— हे महान् प्रभाव वाले ब्राह्मणश्रेष्ठ, यदि आप की हमारे आहारों को सुनने में श्रद्धा है तो आप सावधान होकर सुनिए॥५२॥ **ब्राह्मण ने कहा—** हे महाप्रेत लोग, आप लोग अलग-अलग आहार को बताएँ। ब्राह्मण से ऐसा कहे गए प्रेत लोग अलग-अलग उन ब्राह्मण को कहने लगे॥५३॥ **प्रेतों ने कहा—** हमारे सभी प्राणियों से निन्दित आहार को सुनिए; हे ब्राह्मण जिस गर्हित आहार को सुनकर आप भी बारबार निन्दा करेंगे॥५४॥ खखार, शिङ्घाण, मूत्र, और विष्ठा से और अन्य शरीरमलों से तथा अन्य जूठे पदार्थों से बना हुआ वस्तु ही प्रेतों का भोजन होगा॥५५॥ जो घर अशुद्ध हैं, जिन घरों में घरेलू उपकरण इधर-उधर बिखरे रहते हैं, जो घर मलयुक्त हैं, प्रसव के मल से दूषित हैं वहाँ प्रेत भोजन करते हैं॥५६॥

नास्ति सत्यं गृहे यत्र न शौचं न च संयमः। पतितैर् दस्युभिः सङ्गः प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै॥५७॥
बलिमन्त्रविहीनानि होमहीनानि यानि च। स्वाध्यायव्रतहीनानि प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै॥५८॥
न लज्जा न च मर्यादा यदाऽत्र स्त्रीजितो गृही। गुरवो यत्र पूज्या न प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै॥५९॥
यत्र लोभस्तथा क्रोधो निद्रा शोको भयं मदः। आलस्यं कलहो नित्यं प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै॥६०॥
भर्तृहीना च या नारी परवीर्यं निषेवते। बीजं मूत्रसमायुक्तं प्रेता भुञ्जन्ति तत् तु वै॥६१॥
लज्जा मे जायते तात वदतो भोजनं स्वकम्। यत् स्त्रीरजो योनिगतं प्रेता भुञ्जन्ति तत् तु वै।६२।
निर्विण्णः प्रेतभावेन पृच्छामि त्वां दृढव्रत। यथा न भविता प्रेतस् तन् मे वद तपोधन।
नित्यं मृत्युर् वरं जन्तोः प्रेतत्वं मा भवेत् क्वचित्॥६३॥

जिस घर में सत्य नहीं, शौच नहीं, संयम नहीं, पतितों से और डांकुओं से सङ्गत है उस घर में प्रेत भोजन करते हैं॥५७॥ जो घर भूतबलि (भूतयज्ञ) से और मन्त्रप्रयोग से रहित हैं, होम (देवयज्ञ) से रहित हैं, स्वाध्यायव्रत (नित्य ब्रह्मयज्ञ) से भी रहित हैं, उन घरों में प्रेत भोजन करते हैं॥५८॥ जिस घर में लोकलज्जा नहीं है, कर्तव्य-अकर्तव्यों की सीमा नहीं है, गृहपति स्त्रीजित (स्त्री के वशीभूत, जोरू का गुलाम) है, जिस घर में ब्राह्मण, गुरु, पुरोहित, पिता, माता, बडे भाई इत्यादि मान्यजन पूज्य नहीं माने जाते हैं, उस घर में प्रेत भोजन करते हैं॥५९॥ जिस घर में नित्य ही लोभ, क्रोध, निद्रा, शोक, भय, मद, आलस्य और कलह प्रभावी (हावी) रहते हैं उस घर में प्रेत भोजन करते हैं॥६०॥ जिस घर में पति से रहित (विधवा) स्त्री परपुरुष के वीर्य का ग्रहण करती है वहाँ प्रेत उस मूत्रमिश्रित वीर्य को खाते हैं॥६१॥ हे पूज्यवर, अपने भोजन को बताते हुए मुझ को लज्जा होती है, स्त्री के जननेन्द्रिय में रहे हुए रज को प्रेत लोग खाते हैं॥६२॥ हे व्रत में दृढ रहने वाले विप्रवर, प्रेतभाव से खिन्न मैं आप को पूछता हूँ; हे तपोधन, जिस काम से मनुष्य प्रेतयोनि में प्राप्त होने से बचता है उस काम को बताइए। प्राणी का प्रतिदिन मृत्यु होना भी कुछ अच्छी बात मानी जा सकती है, किन्तु कहीं भी प्राणी का प्रेतत्व न हो॥६३॥

ब्राह्मण उवाच

उपवासपरो नित्यं कृच्छ्रचान्द्रायणे रतः। व्रतैश् च विविधैः पूतो न प्रेतो जायते नरः॥६४॥
एकादश्यां व्रतं कुर्वञ् जागरेण समन्वितम्। अपरैः सुकृतैः पूतो न प्रेतो जायते नरः॥६५॥
इष्ट्वा चैवाऽश्वमेधादीन् दद्याद् दानानि यो नरः। आरामोद्यानवाप्यादेः प्रपायाश् चैव कारकः॥६६॥
कुमारीं ब्राह्मणानां तु विवाहयति शक्तितः। विद्यादोऽभयदश् चैव न प्रेतो जायते नरः॥६७॥
शूद्रान्नेन तु भुक्तेन जठरस्थेन यो मृतः। दुर्मृत्युना मृतो यश् च स प्रेतो जायते नरः॥६८॥
अयाज्ययाजकश्चैव याज्यानां च विवर्जकः। कुत्सितैश् च रतो नित्यं स प्रेतो जायते नरः॥६९॥
कृत्वा मद्यपसम्पर्कं मद्यपस्त्रीनिषेवणम्। अज्ञानाद् भक्षयन् मांसं स प्रेतो जायते नरः॥७०॥

ब्राह्मण ने कहा— उपवास के लिए विहित दिनों में नित्य उपवास करने वाला, चान्द्रायण कृच्छ्र करने में रमने वाला, विभिन्न प्राजापत्य कृच्छ्रादि व्रतों से शुद्ध हुआ मनुष्य प्रेत नहीं होता है॥६४॥ एकादशी में रात्री में किए गए जागरण से भी युक्त व्रत करने वाला और अन्य सुकर्मों से भी शुद्ध हुआ मनुष्य प्रेत नहीं होता है॥६५॥ जो मनुष्य अश्वमेधादि यज्ञ करके विविध दान देता है वह;विश्राम-क्रीडादिस्थल उपवन, बाबली, प्याऊ इत्यादि परोपकारी कार्यों का करने वाला, अपनी धनशक्ति के अनुसार निर्धन ब्राह्मणों की कुमारियों का विवाह कराने वाला, सत्पात्र में विद्यादान करने वाला, सभी प्राणियों को अभयदान देने वाला मनुष्य भी प्रेत नहीं होता है॥६६-६७॥ खाया गया शूद्रान्न पेट में रहने पर ही जो द्विजाति मरा है और दुर्मरण से जो मनुष्य मरा है वह प्रेत होता है॥६८॥ याजन करने में अयोग्य व्यक्ति का याजन करने वाला, याजन करने में योग्य व्यक्ति का वर्जन करने वाला, सदाकाल निन्दित जनों के साथ में रमने वाला मनुष्य प्रेत हो जाता है॥६९॥ मदिरा पीने वाले से सम्पर्क करने से और मदिरा पीने वाली स्त्री के साथ सहवास करने से तथा मांसभक्षण के विधिनिषेध के ज्ञान से रहित होकर

देवद्रव्यं च ब्रह्मस्वं गुरुद्रव्यं हरेत् तु यः। कन्यां ददाति शुल्केन स प्रेतो जायते नरः॥७१॥
मातरं भगिनीं भार्यां स्नुषां दुहितरं तथा। अदृष्टदोषास् त्यजति स प्रेतो जायते नरः॥७२॥
न्यासापहर्ता मित्रध्रुक् परदाररतः सदा। विश्वासघाती कूटश्च स प्रेतो जायते नरः॥७३॥
भ्रातृध्रुग् ब्रह्महा गोघ्नः सुरापो गुरुतल्पगः। कुलमार्गं परित्यज्य ह्यनृतोक्तौ सदा रतः।
हर्ता हेम्नश्च भूमेश्च स प्रेतो जायते नरः॥७४॥

भीष्म उवाच

एवं ब्रुवति वै विप्रे आकाशे दुन्दुभिस्वनः। अपतत् पुष्पवर्षं च देवैर् मुक्तं द्विजोपरि॥७५॥

मांस खाने वाला जो (द्विजोत्तम) मनुष्य है, वह प्रेत हो जाएगा॥७०॥ जो मनुष्य देवता के धन का, ब्राह्मण के धन का और गुरु के धन का हरण करता है, शुल्क लेकर कन्या देता है वह मनुष्य प्रेत हो जाता है॥७१॥ जिन का कोई दोष नहीं देखा गया है वैसी माँ का, बहन का, पत्नी का, पुत्रवधू का और पुत्री का जो त्याग करता है वह प्रेत हो जाता है॥७२॥ जो मनुष्य अपने घर में रखे गए धरोहर को हडपने वाला, मित्र का द्रोह करने वाला, सदा दूसरे की पत्नी में रमने वाला, विश्वासघात करने वाला और कपटपूर्ण व्यवहार करने वाला है वह प्रेत हो जाता है॥७३॥ भाई का द्रोह करने वाला, ब्रह्महत्या करने वाला, गोहत्या करने वाला, द्विजाति होकर सुरापान करने वाला, गुरुपत्नी में गमन करने वाला, अपने कुल के मार्ग को छोडकर सदाकाल झूठ बोलने में रमने वाला, सोना चुराने वाला और दूसरे की भूमि को हडपने वाला मनुष्य प्रेत हो जाता है॥७४॥ भीष्म ने कहा– जिस समय में ब्राह्मण ऐसा बोल रहे थे उसी समय में आकाश में नगाडे का शब्द उत्पन्न हुआ और ब्राह्मण के ऊपर देवताओं से छोडी गई पुष्पवृष्टि पड गई॥७५॥

पञ्च देवविमानानि प्रेतानामागतानि वै। स्वर्गं गता विमानैस्ते दिव्यैः सम्पृच्छ्य तं मुनिम्॥७६॥
ज्ञानं विप्रस्य सम्भाषात् पुण्यसङ्कीर्तनेन च। नरः पापविनिर्मुक्तः परं पदमवाप्नुयात्॥७७॥

सूत उवाच

इदमाख्यानकं श्रुत्वा कम्पितोऽश्वत्थपत्रवत्। मानुषाणां हितार्थाय गरुडः पृष्टवान् पुनः॥७८॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे भीष्म-युधिष्ठिरसंवादे प्रेतत्वोत्पत्ति-तन्मुक्ति-पञ्चप्रेतोपाख्याननिरूपणं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥

प्रेतों के लिए पाँच दिव्य विमान आ गए, वे प्रेत उन मुनि से बिदा लेकर दिव्य विमानों से स्वर्ग गए॥७६॥ ब्राह्मण के साथ सम्भाषण करने से ज्ञान पाकर और पुण्य चरित्र का सङ्कीर्तन करके भी मनुष्य पापों से मुक्त होकर परम पद (ब्रह्मलोक) पा सकता है *[विशेष— यह श्लोकार्ध-पाठ बङ्गवासिसंस्करण में है]*॥७७॥ सूत ने कहा— इस आख्यान को सुनकर पवन से हिलाए गए पीपल के पात की तरह कम्पित गरुड ने मनुष्यों के हित के लिए फिर पूछा॥७८॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में भीष्म और युधिष्ठिर के संवाद में प्रेतत्व की उत्पत्ति, प्रेतत्व से मुक्ति और पञ्चप्रेतोपाख्यान का वर्णन करने वाला बाइसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥२२॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

गरुड उवाच

किंकिं कुर्वन्ति वै प्रेताः पिशाचत्वे व्यवस्थिताः। वदन्ति वा कदाचित् किं तद् वदस्व सुरेश्वर॥१॥

श्रीभगवानुवाच

तेषां स्वरूपं वक्ष्यामि चिह्नं स्वप्नं यथातथम्। क्षुत्पिपासार्दितास्ते वै प्रविशेयुः स्ववेश्मनि॥२॥
प्रतिष्ठा वायुदेहेषु शयानाँस् तु स्ववंशजान्। तत्र यच्छन्ति लिङ्गानि दर्शयन्ति खगेश्वर॥३॥
स्वपुत्रस्वकलत्राणिं स्वबन्धुं तत्र गच्छति। हयो गजो वृषो मर्त्यो दृश्यते विकृताननः॥४॥
शयानं विपरीतं तु आत्मानं च विपर्ययम्। उत्थितः पश्यति यस्तु तद् विद्यात् प्रेतनिर्मितम्॥५॥

गरुड ने कहा– हे देवताओं के भी ईश्वर, पिशाचत्व में पहुँचे हुए प्रेत क्या क्या करते हैं, किसी समय में क्या कुछ बोलते भी हैं? इस बात को बताइए॥१॥ **श्रीभगवान् ने कहा–** उन का स्वरूप, चिह्न और स्वप्न को जैसे का तैसा बताउँगा। भूख और प्यास से पीडित वे पिशाच अपने घर में घूस जाएंगे॥२॥ उन की स्थिति वायवीय शरीर में होती है। हे पक्षियों के ईश्वर, वहाँ सो रहे अपने वंशजों को चिह्न देते हैं और स्वप्न दिखाते हैं॥३॥ वहाँ अपने पुत्र, पत्नी और बन्धु के पास में जाता है। स्वप्न में विकृत मुख वाला घोडा अथवा हाथी अथवा बैल अथवा मनुष्य दिखाई देता है॥४॥ स्वप्न में अपने को विपरीत रूप में और जागा होने पर उस के उलटे रूप में जो देखता है उस को प्रेतकृत जाने॥५॥

स्वप्ने नरो हि निगडैर् बध्यते बहुधा यदि। अन्नं च याचते स्वप्ने कुवेषः पूर्वजो मृतः॥६॥
स्वप्ने यो भुज्यमानस्य गृहीत्वाऽन्नं पलायते। आत्मनस्तु परो वाऽपि तृषार्तस्तु जलं पिबेत्॥७॥
वृषभारोहणं स्वप्ने वृषभैः सह गच्छति। उत्पत्य गगनं याति तीर्थे याति क्षुधाऽऽतुरः॥८॥
स्ववाचा वदते यस्तु गोवृषद्विजवाजिषु। लिङ्गे गजे तथा देवे भूते प्रेते निशाचरे॥९॥
स्वप्नमध्ये तु पक्षीन्द्र प्रेतलिङ्गान्यनेकधा। स्वकलत्रं स्वबन्धुं वा स्वसुतं स्वपतिं विभुम्।
विद्यमानं मृतं पश्येत् प्रेतदोषेण निश्चितम्॥१०॥
याचते यः परं स्वप्ने क्षुत्तृड्भ्यं च परिप्लुतः। तीर्थे गत्वा ददेत् पिण्डान् प्रेतदोषैर् न संशयः॥११॥
निर्गच्छेद् वा गृहाद् वाऽपि स्वप्ने पुत्त्रस् तथा पशुः। पिता भ्राता कलत्रं च प्रेतदोषैस् तु पश्यति॥१२॥

यदि मनुष्य स्वप्न में अनेक प्रकार से सिकडियों से बाँधा जाता है, यदि स्वप्न में बूरे पहनावा से युक्त मरा हुआ कोई पूर्वज अन्न माँगता है, यदि स्वप्न में भोजन करते हुए मनुष्य के अन्न को लेकर कोई भागता है, यदि स्वप्न में अपना अथवा पराया कोई प्यास से आर्त होकर पानी पीता है, यदि कोई स्वप्न में बैल में सबार होता है अथवा बैलों के साथ में चलता है, अथवा उछलकर आकाश में जाता है अथवा भूख से पीडित होकर तीर्थ में जाता है, यदि कोई स्वप्न में गाय, बैल, पक्षी, घोडा, शिवलिङ्ग, हाथी, देवता, भूत, प्रेत, और निशाचर इन से अपनी बोली में बोलता है तो इन सब को प्रेतलिङ्ग जाने॥६-९॥ हे पक्षियों में श्रेष्ठ, स्वप्न में विविध प्रकार से प्रेत के चिह्न देखे जाते हैं। मनुष्य प्रेत के दोष से ही जीवित अपनी पत्नी को, अपने बन्धु को अथवा अपने पुत्र को, अपने में छाये हुए अपने पति को भी मरा हुआ देखेगा॥१०॥ स्वप्न में यदि कोई भूख और प्यास से पीडित होकर दूसरे से माँगता है अथवा तीर्थ में जाकर पिण्ड देता है तो इस को भी प्रेतदोष से ही हुआ जाने, इस में सन्देह नहीं है॥११॥ स्वप्न में घर से पुत्र अथवा पशु अथवा पिता अथवा भाई अथवा

चिह्नान्येतानि पक्षीन्द्र प्रायश्चित्तं निवेदयेत्। कृत्वा स्नानं गृहे तीर्थे श्रीवृक्षे तर्पणं जलैः॥१३॥
कृष्णधान्यानि पूजां च प्रदद्याद् वेदपारगे। होमं कुर्याद् यथाशक्ति सम्पूर्णं वाचयेत् सुधीः॥१४॥
एतद् धि श्रद्धया यस् तु प्रेतलिङ्गनिदर्शनम्। पठते श‍ृणुते वाऽपि प्रेतचिह्नं विनश्यति॥१५॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे
प्रेतकृति-तदुक्ति-तच्चिह्न-तद्विमुक्त्युपायनिरूपणं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥

पत्नी कोई निकलेगा, ऐसा स्वप्न भी मनुष्य प्रेत के दोषों से ही देखता है॥१२॥ हे पक्षियों के स्वामिन्, इन प्रेतदोष के चिह्नों को देखकर मनुष्य प्रायश्चित्त के लिए विद्वान् ब्राह्मण को निवेदित करे। ब्राह्मण के उपदेश से घर में अथवा तीर्थ में स्नान करके बेल के वृक्ष में जल से तर्पण करे॥१३॥ वेद में पारङ्गत ब्राह्मण को तिलप्रभृति काले धान्यों का दान दे औ पूजासत्कार भी दे। अपनी शक्ति के अनुसार होम करे और विचारशील मनुष्य ब्राह्मणों से "कृतं कर्म परिपूर्णमस्तु" इत्यादि रूप में अपने कर्म की सम्पूर्णता का वाचन कराए॥१४॥ जो मनुष्य श्रद्धा से इस प्रेतचिह्न का वर्णन करने वाले अध्याय को पढता है अथवा सुनता है उस का प्रेतचिह्नों से सूचित प्रेतदोष नष्ट हो जाता है॥१५॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में प्रेतों के कार्य तथा उक्ति,
प्रेतों का चिह्न, प्रेतचिह्नों से छुट्कारा पाने के उपाय इन विषयों का निरूपण करने वाला तेईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥२३॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

गरुड उवाच

नाऽकाले म्रियते कश्चिदिति वेदानुशासनम्। कस्मान् मृत्युमवाप्नोति राजा वा श्रोत्रियोऽपि वा॥१॥
यदुक्तं ब्रह्मणा पूर्वमनृतं तद् धि दृश्यते। वेदैरुक्तं तु यद् वाक्यं शतं जीवति मानुषः॥२॥
जीवन्ति मानुषे लोके सर्वे वर्णा द्विजातयः। अन्त्यजा म्लेच्छजाश् चैव खण्डे भारतसञ्ज्ञके॥३॥
न दृश्यते कलौ तच् च कस्माद् देव समादिश। आधानान् मृत्युमाप्नोति बालो वा स्थविरो युवा॥४॥
सधनो निर्धनो वाऽपि सुकुमारः कुरूपवान्। अविद्वांश् चैव विद्वांश् च ब्राह्मणस्त्वितरो जनः॥५॥
तपोरतो योगशीलो महाज्ञानी च यो नरः। सर्वदानरतः श्रीमान् धर्मात्माऽतुलविक्रमः॥६॥
सर्वमेतदशेषेण जायते वसुधातले। कस्मान् मृत्युमवाप्नोति राजा वा श्रोत्रियोऽपि वा॥७॥

गरुड ने कहा— कोई भी अकाल में नहीं मरता है, यह वेद का वस्तुतत्त्वप्रकाशन है। राजा अथवा वेद पढने वाला ब्राह्मण किस कारण से (अकाल में) मृत्यु में प्राप्त होते हैं?॥१॥ पहले ब्रह्माजी ने जो कहा था वह तो झूठा दिखाई देता है। वेदों से यह वाक्य कहा गया है कि मनुष्य सौ वर्ष तक जीवित रहता है॥२॥ मनुष्यलोक में भारतनाम के खण्ड में ब्राह्मण और अन्य सभी वर्ण, अन्त्यज (प्रतिलोमज सङ्कर) और म्लेच्छज मनुष्य भी जीवनयात्रा चलाते हैं॥३॥ हे देव, कलियुग में सौ वर्ष तक मनुष्य जीवित रहने की बात क्यों नहीं दिखाई देती है? बताइए। गर्भाधान के काल से ही बालक अथवा वृद्ध अथवा युवक, धनवान् अथवा निर्धन, सुकुमार सुरूप व्यक्ति, कुरूप व्यक्ति, अविद्वान्, विद्वान्, ब्राह्मण, चण्डाल, तपस्वी, योगाभ्यासी, जो महाज्ञानी मनुष्य है वह, सभी दानों में रमने वाला धनी, धर्मात्मा, अद्वितीय पराक्रम वाला इत्यादि जो कोई भी मृत्यु की ओर जाता ही है॥४-६॥ यह सब पृथिवीतल में होता रहता है। राजा अथवा वेद पढने वाला ब्राह्मण भी किस कारण से मृत्यु को प्राप्त होते हैं?॥७॥

श्रीभगवानुवाच

साधुसाधु महाप्राज्ञ यस् त्वं भक्तोऽसि मे प्रियः। श्रूयतां वचनं गुह्यं नानादेशविनाशनम्॥८॥
विधातृविहितो मृत्युः शीघ्रमादाय गच्छति। ततो वक्ष्यामि पक्षीन्द्र काश्यपेय महाद्युते॥९॥
मानुषः शतजीवीति पुरा वेदेन भाषितम्। विकर्मणः प्रभावेण शीघ्रं चाऽपि विनश्यति॥१०॥
वेदानभ्यसते नैव कुलाचारं न सेवते। आलस्यात् कर्मणां त्यागो निषिद्धेऽप्यादरः सदा॥११॥
यत्र तत्र गृहेऽश्नाति परक्षेत्ररतस्तथा। एतैरन्यैर् महादोषैर् जायते चायुषः क्षयः॥१२॥
अश्रद्दधानमशुचिं नास्तिकं त्यक्तमङ्गलम्। परद्रोहाऽनृतकरं ब्राह्मणं यममन्दिरम्॥१३॥
अरक्षितारं राजानं नित्यं धर्मविवर्जितम्। क्रूरं व्यसनिनं मूर्खं वेदवादबहिष्कृतम्।

श्रीभगवान् ने कहा— ठीक है ठीक है, हे महाप्रज्ञायुक्त गरुड, क्योंकि तुम मेरा प्रिय भक्त हो इस लिए तुम से नाना कथनों की शङ्काओं का विनाश करने वाला मेरा गुह्य वचन सुना जाय॥८॥ ब्रह्माजी से विहित मृत्यु प्राणियों को शीघ्र ही ले जाता है। इस लिए हे कश्यपपुत्र महातेजस्वी पक्षिश्रेष्ठ, मैं इस विषय में बताऊँगा॥९॥ पुराकाल में ही वेद ने मनुष्य सौ वर्ष तक जीने वाला है ऐसा कहा है, किन्तु किए गए शास्त्रविरुद्ध कर्म के प्रभाव से मनुष्य सौ वर्ष से पहले भी मर जाता है॥१०॥ वेदों का अभ्यास नहीं करता है, अपने कुल के आचार का सेवन नहीं करता है, आलस्य से कर्मों का त्याग किया जाता है, जिस किसी घर में भोजन करता है, दूसरे की पत्नी में रमता है, इन महादोषों से और अन्य इसी प्रकार के महादोषों से भी ब्राह्मण का आयु का क्षय होता है॥११-१२॥ वेद के प्रति विश्वास से रहित, शौचाचार से विहीन, वेदोक्त पुनर्जन्मादि में आस्था न रखने वाले नास्तिक, मङ्गलाचार से रहित, दूसरे का द्रोह और असत्य बोली-व्यवहार करने वाले ब्राह्मण को यमदूत शीघ्र ही यममन्दिर में पहुँचाते हैं॥१३॥ प्रजा के शरीर धन धर्म विद्या कला इत्यादि की और राष्ट्र की रक्षा न करने वाले, सदा धर्मकार्य से वर्जित, क्रूर, द्यूत-स्त्रीप्रसङ्ग-मद्यपानादि दुष्कार्य में आसक्त, मूर्ख और वेद में प्रतिपादित वर्णाश्रमधर्म और

प्रजापीडनकर्तारं राजानं यमशासनम्॥१४॥
प्रापयन्ति वशं मृत्योस् ततो याति च यातनाम्। स्वकर्माणि परित्यज्य मुख्यवृत्तानि यानि च॥१५॥
परकर्मरतो नित्यं यमलोकं स गच्छति। शूद्रः करोति यत्किञ्चिद् द्विजशुश्रूषणं विना॥१६॥
उत्तमाधममध्ये वा यमलोके स पच्यते। स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायो देवतार्चनम्॥१७॥
यस्मिन् दिने न सेव्यन्ते स वृथा दिवसो नृणाम्। अनित्यमध्रुवं देहमनाधारं रसोद्भवम्॥१८॥
अन्नोदकमये देहे गुणानेतान् वदाम्यहम्। यत् प्रातः संस्कृतं सायं नूनमन्नं विनश्यति॥१९॥
तदीयरससम्पुष्टकाये का बत नित्यता। गतं ज्ञात्वा तु पक्षीन्द्र वपुरर्धं स्वकर्मभिः॥२०॥

धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष-विचार से बहिर्भूत तथा प्रजाओं को करभार, वृत्ति-रोध-विनाश और निष्ठुर वध-बन्धनादि से पीडा देने वाले राजा को भी यमदूत शीघ्र ही यमराज के शासन में पहुँचाते हैं, तब वह मृत्यु के वश में प्राप्त होता है और यातना पाता है। जो मनुष्य अपने-अपने वर्ण-आश्रमादि के कर्मों को और अपने-अपने मुख्य कार्यों को भी छोडकर सदाकाल दूसरे वर्ण और आश्रमादि के कर्मों में रमता है वह यमलोक (नरक) में जाता है। ब्राह्मण की सेवा से सर्वथा विमुख होकर शूद्र जो कुछ भी करता है उस से वह अपने कर्मों के अनुसार कडे मझले और हल्के नरकाग्नियों में पकाया जाता है। जिस दिन में स्नान, दान, जप, होम, स्वशाखावेदादि-वेदाध्ययन, देवताओं का पूजन नहीं किए जाते हैं मनुष्यों का वह दिन व्यर्थ ही बीता हुआ माना जाता है। रस-रक्तादि से उत्पन्न यह मनुष्य का देह अनित्य अस्थिर और निराधार है॥१४-१८॥ अन्न और उदक से बने इस देह में इन गुणों को मैं बताता हूँ। जो सुबह पकाया गया अन्न साम को अवश्य विकृत होता है तो उसी अन्न के रस से पुष्ट देह में क्या नित्यता होगी, हे पक्षियों में श्रेष्ठ, अपने कर्मों से आधा शरीर गलित जानकर मनुष्य पापों के नाश के लिए आगे औषध करे। देह क्या अन्नदाता का है, अथवा वीर्य देने वाले

नरः पापविनाशाय कुर्वीत परमौषधम्। देहः किमन्नदातुः स्विन् निषेक्तुर् मातुरेव वा॥२१॥
उभयोर् वा प्रभोर् वापि बलिनोऽग्नेः शुनोऽपि वा। कस्तत्र परमो यज्ञः कृमिविड्भस्मसञ्ज्ञके॥२२॥
कर्तव्यः परमो यत्नः पातकस्य विनाशने। अनेकभवसम्भूतं पातकं तु त्रिधा कृतम्॥२३॥
यदा प्राप्नोति मानुष्यं तदा सर्वं तरत्यपि। सर्वजन्मानि संस्मृत्य विषादी कृतचेतनः॥२४॥
अवेक्ष्य गर्भवासांश्च कर्मजा गतयस् तथा। मानुषोदरवासी चेत् तदा भवति पातकी॥२५॥
अण्डजादिषु भूतेषु यत्रयत्र प्रसर्पति। आधयो व्याधयः क्लेशा जरा रूपविपर्ययः॥२६॥
गर्भवासाद् विनिर्मुक्तस् त्वज्ञानतिमिरावृतः। न जानाति खगश्रेष्ठ बालभावं समाश्रितः॥२७॥
यौवने तिमिरान्धश्च यः पश्यति स मुक्तिभाक्। आधानान् मृत्युमाप्नोति बालो वा स्थविरो युवा॥२८॥

पिता का है अथवा माँ का है अथवा दोनों का है अथवा स्वामी का है अथवा बलवान् का है अथवा अग्नि का है अथवा कुत्ते का है। कीडों के रूप में अथवा विष्ठा के रूप में अथवा भस्म के रूप में संज्ञा पाने को जा रहे शरीर में परम यज्ञ क्या है?॥१९-२२॥ पाप के विनाश के लिए मनुष्य को महान् प्रयास करना चाहिए। अनेक जन्मों में सञ्चित और मन-वचन-शरीर से तीन प्रकार से किया गया जो पाप है, जब प्राणी मनुष्यजन्म पाता है तब उस को पार कर सकता है। सब जन्मों का स्मरण करके चेतना पाकर विषादी होकर गर्भवासों को तथा प्राणियों के कर्मों से होने वाली गतियों को देखकर भी मनुष्य मुक्त होने की चेष्टा न करके फिर मनुष्य के गर्भ में बैठने वाला होता है तो वह पातकी है॥२३-२५॥ अण्डजादि प्राणियों में जीव जहाँ जहाँ जाता है वहाँ वहाँ मानसिक शोक-विषादादि रोग, ज्वरादि शारीर रोग, अनेक दुःख, वार्धक्य, रोग-वार्धक्यादिकृत रूपपरिवर्तन ये सब होते ही हैं॥२६॥ हे पक्षियों में श्रेष्ठ, गर्भवास से निकला और बालकपन में रहा हुआ मनुष्य अज्ञानरूपी अन्धकार से ढके जाने से कुछ भी नहीं जानता है॥२७॥ यौवन में भी मनुष्य तिमिर से अन्ध होता है। ऐसे मनुष्यजीवन में जो मनुष्य वस्तुतत्त्व को देख सकता है वही मुक्तिभागी हो सकता है। गर्भाधान के काल से ही बालक अथवा वृद्ध अथवा युवक,

सधनो निर्धनश् चैव सुकुमारः कुरूपवान्। अविद्वांश् चैव विद्वांश् च ब्राह्मणस्त्वितरो जनः॥२९॥
तपोरतो योगशीलो महाज्ञानी च यो नरः। महादानरतः श्रीमान् धर्मात्माऽतुलविक्रमः।
विना मानुषदेहं तु सुखं दुःखं न विन्दति॥३०॥
प्राकृतैः कर्मपाशैस्तु मृत्युमाप्नोति मानवः। आधानात् पञ्च वर्षाणि स्वल्पपापैर् विपच्यते॥३१॥
पञ्चवर्षाधिको भूत्वा महापापैर् विपच्यते। योनिं पूरयते यस्मान् मृतोऽप्यायाति याति च॥३२॥
मृतो दानप्रभावेण जीवन् मर्त्यश् चिरं भुवि।

सूत उवाच

इति कृष्णवचः श्रुत्वा गरुडो वाक्यमब्रवीत्॥३३॥

धनवान् अथवा निर्धन, सुकुमार सुन्दर व्यक्ति, कुरूप व्यक्ति, अविद्वान्, विद्वान्, ब्राह्मण, चण्डाल, तपस्वी, योगाभ्यासी, जो महाज्ञानी मनुष्य है वह, महादानों को देने में रमने वाला धनी मनुष्य, धर्मात्मा मनुष्य, अद्वितीय पराक्रम से युक्त इत्यादि जो कोई भी मृत्यु की ओर जाता ही है। मनुष्यदेह पाए विना प्राणी सुख का और दुःख का स्पष्ट अनुभव नहीं करता है॥२८-३०॥ मनुष्य प्रकृति से प्राप्त कर्म के पाशों से मृत्यु में प्राप्त होता है। गर्भवास से लेकर पाँच वर्ष तक मनुष्य पापकर्म करने पर भी पापों से स्वल्प मात्रा में ही पीडित होता है॥३१॥ पाँच वर्षों से अधिक अवस्था का होने पर मनुष्य पापकर्म करने पर किए गए महापापादि सभी पापों से पीडित होता है। क्योंकि अज्ञ मनुष्य वारवार योनिपूरण करता है इस लिए मृत मनुष्य फिर इस लोक में आता है और जाता रहता भी है॥३२॥ मृत मनुष्य भी दानों के प्रभाव से इस पृथ्वीलोक में चिरकाल तक जीवित रहता है। सूत ने कहा— कृष्ण के इस प्रकार के वचन को सुनकर गरुड ने वाक्य बोला॥३३॥

गरुड उवाच

मृते बाले कथं कुर्यात् पिण्डदानादिकाः क्रियाः। गर्भेषु च विपन्नानामाचूडाकरणाच् छिशोः॥३४॥
कथं किं केन दातव्यं मृतान्ते को विधिः स्मृतः। गरुडोक्तमिति श्रुत्वा विष्णुर् वाक्यमथाऽब्रवीत्॥३५॥

श्रीविष्णुरुवाच

यदि गर्भो विपद्येत स्रवते वाऽपि योषितः। यावन्मासं स्थितो गर्भस्तावद्दिनमशौचकम्॥३६॥
तस्य किञ्चिन् न कर्तव्यमात्मनः श्रेय इच्छता। ततो जाते विपन्ने तु आ चूडाकरणाच् छिशोः॥३७॥
दुग्धं भोज्यं यथाशक्ति बालानां च प्रदीयते। आ चूडात् पञ्चवर्षे तु देहदाहो विधीयते॥३८॥
दुग्धं तस्य प्रदेयं स्याद् बालानां भोजनं शुभम्। पञ्चवर्षाधिके प्रेते स्वजातिविहितानि च॥३९॥

गरुड ने कहा— बालक मरने पर पिण्डदानादि क्रिया कैसे करें। गर्भ में ही मरने वालों का और चूडाकर्मसंस्कार से पहले मरने वाले शिशु का कैसे किस से क्या दिया जाना चाहिए? मृत्यु के बाद में कौन विधि कर्तव्य समझा गया है? गरुड से किए गए ऐसे प्रश्नों को सुनकर तब विष्णु ने वाक्य कहा॥३४-३५॥ **श्रीविष्णु ने कहा—** यदि स्त्री का गर्भ गिर जाता है अथवा वहता है तो जितने मास तक गर्भ स्त्री में रहा उतने दिन तक आशौच रहता है॥३६॥ उस गिरे और वहे गर्भ के लिए अपने श्रेय चाहने वाले मनुष्य को कुछ भी नहीं करना चाहिए। तब जन्मे हुए शिशु का चूडाकरण होने से पहले मरण होने पर तो अपनी शक्ति के अनुसार दूध और भोज्य पदार्थ बालकों को दिया जाता है। चूडाकर्म से ऊपर पाँच वर्ष तक का बालक मरने पर तो शरीर का दाह (शवदाह) किया जाता है॥३७-३८॥ उस मृतक के लिए बालकों को दूध और मीठा भोजन दिया जाना चाहिए। पाँच वर्ष से अधिक अवस्था का बालक मरने पर अपनी जाति के लिए शास्त्र में विहित सभी औध्र्वदेहिक कर्म करे। हे पक्षियों में श्रेष्ठ,

कुर्यात् कर्माणि सर्वाणि चोदकुम्भादि पायसम्। दातव्यं तु खगश्रेष्ठ ऋणसम्बन्धकस्तु सः॥४०॥
जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर् ध्रुवं जन्म मृतस्य च। कर्तव्यं पक्षिशार्दूल पुनर् देहक्षयाय वै॥४१॥
तस्मै यद् रोचते देयमदत्त्वा निर्धने कुले। स्वल्पायुर् निर्धनो भूत्वा रतिभक्तिविवर्जितः॥४२॥
पुनर्जन्माऽऽप्नुयान् मर्त्यस् तस्माद् देयं मृते शिशोः। पुराणे गीयते गाथा सर्वथा प्रतिभाति मे॥४३॥
मिष्टान्नं भोजनं देयं दाने शक्तिस्तु दुर्लभा। भोज्ये भोजनशक्तिश् च रतिशक्तिर् वरस्त्रियः॥४४॥
विभवे दानशक्तिश् च नाऽल्पस्य तपसः फलम्। दानाद् भोगानवाप्नोति सौख्यं तीर्थस्य सेवनात्।
सुभाषणान् मृतो यस् तु स विद्वान् धर्मवित्तमः॥४५॥

उस के लिए जलकुम्भादि और खीर भी देना चाहिए। वह ऋण से सम्बन्ध रखने वाला है, वह पूर्वजन्म का ऋणदाता (उधार देने वाला) है॥३९-४०॥ जन्मे हुए प्राणी का मृत्यु निश्चित है, मरे हुए प्राणी का पुनर्जन्म भी निश्चित है। हे पक्षियों में श्रेष्ठ, मनुष्य को फिर देह प्राप्त कराने वाले कर्म के क्षय के लिए प्रयत्न करना चाहिए॥४१॥ मृत व्यक्ति को जो प्रिय वस्तु था उस वस्तु का दान देना चाहिए; न देने से मनुष्य धनरहित कुल में छोटा आयु लेकर निर्धन होकर प्रीति और भक्ति से वर्जित बनकर फिर जन्म पाएगा, इस लिए मरने पर शिशु के लिए दान देना चाहिए। पुराण में एक गाथा गाई जाती है, वह मुझे सर्वथा सत्य प्रतीत होती है॥४२-४३॥ मिष्टान्न भोजन का दान देना चाहिए, दान देने की शक्ति दुर्लभ है। भोज्य पदार्थ प्राप्त होने पर भोजन की शक्ति, उत्तम स्त्री वाले के लिए स्त्रीसहवास में शक्ति और धन होने पर दान देने की शक्ति भी थोडी तपस्या का फल नहीं है, अर्थात् ये तीन शक्तियाँ बडी तपस्या से ही मिलती हैं। दान देने से मनुष्य उत्तम भोज्य पदार्थ श्रेष्ठ स्त्री इत्यादि उत्तम भोग्य पदार्थों को पाता है, तीर्थ के सेवन से सुख पाता है, सुभाषण करने वाला होकर जो मरता है वह दूसरे जन्म में धर्म को अच्छी तरह जानने वाला विद्वान् होता है॥४४-४५॥

अदत्तदानाच्च भवेद् दरिद्रो दरिद्रभावाच्च करोति पापम्।
पापप्रभावान् नरकं प्रयाति पुनर् दरिद्रः पुनरेव पापी ॥४६॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादेऽल्पायुर्मरणहेतु-बालान्त्येष्ट्योर्निरूपणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

श्रीविष्णुरुवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि पुरुषस्त्रीविनिर्णयम्। जीवन् वाऽपि मृतो वाऽपि पञ्चवर्षाऽधिकोऽपि वा॥१॥

सम्पत्ति होने पर भी नहीं दिए गए दान से मनुष्य दूसरे जन्म में दरिद्र होगा, दरिद्र होने से पाप करता है, पाप के प्रभाव से नरक में जाता है, फिर दरिद्र होता है फिर भी पापी होता है॥४६॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में अल्पायु में मरने के कारणों का और बालकों की अन्त्येष्टि का निरूपण करने वाला चौबीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥२४॥

श्रीविष्णु ने कहा— इस से ऊपर मैं पुरुष और स्त्री का निर्णय बताऊँगा। जीवित अथवा मरा हुआ जो भी हो पाँच वर्षों से अधिक अवस्था वाला जीव पुरुष अथवा स्त्री की चेतना से युक्त होता है। पाँचवाँ वर्ष पूर्ण होने पर पुरुष अपने रूप में प्रतिष्ठित होता है और सभी

पूर्णे तु पञ्चमे वर्षे पुमांश् चैव प्रतिष्ठितः। सर्वेन्द्रियाणि जानाति रूपाऽरूपविपर्ययौ॥२॥
पूर्वकर्मविपाकेन प्राणिनां वधबन्धनम्। विप्रादीनन्त्यजान् सर्वान् पापं मारयति ध्रुवम्॥३॥
गर्भे नष्टे क्रिया नास्ति दुग्धं देयं मृते शिशौ। परं च पायसं क्षीरं दद्याद् बालविपत्तितः॥४॥
एकादश-द्वादशाहं वृषोत्सर्गविधिं विना। महादानविहीनं च कुमारे कृत्यमादिशेत्॥५॥
कुमाराणां च बालानां भोजनं वस्त्रवेष्टनम्। बाले वा तरुणे वृद्धे घटो भवति वै मृते॥६॥
भूमौ विनिःक्षिपेद् बालं द्विमासोनं द्विवार्षिकम्। ततः परं खगश्रेष्ठ देहदाहो विधीयते॥७॥
शिशुरा दन्तजननाद् बालः स्याद् यावदाशिखम्। कथ्यते सर्वशास्त्रेषु कुमारो मौञ्जिबन्धनात्॥८॥

इन्द्रियों के ज्ञान से युक्त होता है; रूप, अरूप, और उन का विपर्यय सब जानता है॥१-२॥ पूर्वजन्म के कर्म के परिणाम से प्राणियों का वध और बन्धन होता है। ब्राह्मण से लेकर अन्त्यज तक सभी को अवश्य पाप ही मार डालता है॥३॥ गर्भ नष्ट होने पर कोई और्ध्वदेहिक क्रिया नहीं होती है, अन्नप्राशन से पहले शिशु मरने पर दूध का दान करना चाहिए, उस के बाद चूडाकर्म से रहित बालक के मरण होने पर खीर और दूध का दान करे॥४॥ चूडाकर्म से युक्त किन्तु उपनयन से रहित कुमार मरने पर व्यवस्थादायक विद्वान् ग्यारहवें दिन के कृत्य, बारहवें दिन के कृत्य और वृषोत्सर्गविधि को छोडकर महादानविधि से रहित अन्य और्ध्वदेहिक कृत्य करने का आदेश दे॥५॥ मृत कुमारों और बालों के लिए भोज्य पदार्थ और वस्त्रवेष्टन का दान दिया जाता है। बालक अथवा तरुण अथवा वृद्ध मरने पर जलघट का दान होता है॥६॥ दो महीनों से न्यून दो वर्ष के बालक को मरने पर भूमि में गड्ढा खोदकर रख दे और मिट्टी और पत्थर से ढक दे। हे पक्षियों में श्रेष्ठ, उस के बाद (अधिक अवस्था वाले बालक का) शवदाह किया जाता है॥७॥ जब तक दाँत नहीं निकलते हैं तब तक जातक शिशु कहा जाता है, उस के बाद जब तक शिखा (चोटी) नहीं रखी जाती है तब तक बाल कहा जाता है, उस के बाद उपनयन (जनेऊ) न होने तक सभी शास्त्रों में कुमार कहा जाता है॥८॥

शूद्रादीनां कथं कुर्यात् संशयो मौञ्जिवर्जनात्। गर्भाच् च नवमं हित्वा शिशुरामासषोडशम्॥९॥
बालश् चाऽतः परं ज्ञेय आमास सप्तविंशति। आ पञ्चवर्षात् कौमारः पौगण्डो नवहायनः॥१०॥
किशोरः षोडशाब्दः स्यात् ततो यौवनमादिशेत्। मृतोऽपि पञ्चमे वर्षे अव्रतः सव्रतोऽपि वा॥११॥
पूर्वोक्तमेव कर्तव्यमीहते दशपिण्डकम्। स्वल्पकर्मप्रसङ्गाच्च स्वल्पाद् विषयबन्धनात्॥१२॥
स्वल्पे वपुषि वासाच् च क्रियां स्वल्पामपीच्छति। यावदुपचयो जन्तुर् यावद्विषयवेष्टितः॥१३॥
यद्यद् यस्योपजीव्यं स्यात् तत्तद् देयमिहेच्छति। ब्रह्मबीजोद्भवाः पुत्रा देवर्षीणां च वल्लभाः॥१४॥
यमेन यमदूतैश् च मन्यन्ते निश्चितं खग। बालो वृद्धो युवा वाऽपि घटमिच्छन्ति देहिनः॥१५॥
सुखं दुःखं सदा वेत्ति देही वै सर्वगस्त्विह। परित्यज्य तदात्मानं जीर्णां त्वचमिवोरगः॥१६॥

शूद्रादि की कैसी व्यवस्था करनी चाहिए? क्योंकि शूद्रादि में जनेऊ न होने से सन्देह होता है। शूद्रादि में गर्भाधान से नौ महीनों को छोडकर अर्थात् जन्म से सोलह महीनों तक जातक शिशु कहा जाता है, उस के बाद सत्ताईस महीनों तक बाल जानना चाहिए, पाँच वर्ष तक कुमार जानना चाहिए, उस के बाद नौ वर्ष तक पौगण्ड जानना चाहिए, उस के बाद सोलह वर्ष तक किशोर जानना चाहिए, उस के बाद यौवन (युवक) बता देना चाहिए। पञ्चम वर्ष में मरने पर व्रतबन्ध वाला हो अथवा अव्रतबन्ध वाला हो उस के लिए पूर्वोक्त और्ध्वदेहिक कर्म ही करना चाहिए, वह दश पिण्ड ही चाहता है। स्वल्प कर्मों के प्रसङ्ग से, स्वल्प विषयबन्धन होने से और स्वल्पप्रमाणक शरीर में वास करने से भी क्रिया को भी स्वल्प रूप में ही इच्छा करता है। जितना उस का उपचय होता है, जितने विषयों से वह वेष्टित होता है, जो जो वस्तु जिस जिस का उपजीव्य होता है उसी उसी का दान वह इस लोक में चाहता है। ब्राह्मण के बीज से उत्पन्न पुत्र देवर्षियों के भी प्रिय होते हैं, हे पक्षिन्, वे यम से और यमदूतों से भी अवश्य ही सम्मानित होते हैं। बालक हों अथवा वृद्ध हों अथवा युवक हों परलोक में सभी जीव जलघट की इच्छा करते हैं॥९-१५॥ इस लोक में सर्वत्र जाने वाला जीव जिस प्रकार साँप अपनी पुरानी केचुल का परित्याग करता है उसी प्रकार अपने शरीर का परित्याग करके अँगूठे के तुल्य परिमाण वाला और वायुरूप होकर भूख से पीडित होता हुआ

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो वायुभूतः क्षुधान्वितः। तस्माद् देयानि दानानि मृते बाले सुनिश्चितम्॥१७॥
जन्मतः पञ्च वर्षाणि भुङ्क्ते दत्तमसंस्कृतम्। पञ्चवर्षाधिके बाले विपत्तिर् यदि जायते॥१८॥
वृषोत्सर्गादिकं कर्म सपिण्डीकरणं विना। द्वादशेऽहनि सम्प्राप्ते कुर्याच् छ्राद्धानि षोडश॥१९॥
पायसेन गुडेनाऽपि पिण्डान् दद्याद् यथाक्रमम्। उदकुम्भप्रदानं च पददानानि यानि च॥२०॥
भोजनानि द्विजे दद्यान् महादानानि शक्तितः। दीपदानादि यत् किञ्चित् पञ्चवर्षाधिके सदा॥२१॥
कर्तव्यं च खगश्रेष्ठ व्रतात् प्राक् प्रेततृप्तये। यदा न क्रियते सर्वं मुद्गलत्वं स गच्छति॥२२॥
व्रतात् प्रागेव देयं तु ततः पितृगणस्य च। स्वाहाकारेण वै कुर्यादेकोद्दिष्टानि षोडश॥२३॥
ऋजुदर्भैस् तिलैः शुक्लैः प्राचीनावीति निश्चितम्। अपसव्यं च कर्तव्यं कृते याति परां गतिम्॥२४॥

सुख-दुःखों का सदाकाल अनुभव करता रहता है। इस लिए बालक मरने पर भी दान अवश्य देने चाहिए॥१६-१७॥ जन्म से पाँच वर्ष तक की अवस्था में मरा हुआ प्राणी असंस्कृत रूप में दिए गए अन्न का भोग करता है। पाँच वर्ष से अधिक अवस्था वाले बालक का यदि मरण हो जाता है तो सपिण्डीकरण को छोडकर वृषोत्सर्ग इत्यादि सभी कर्म करने चाहिए। बारहवें दिन प्राप्त होने पर सोलह श्राद्ध करने चाहिए॥१८-१९॥ खीर से अथवा गुड से प्रथम-मासिकश्राद्ध ऊनमासिकश्राद्ध इत्यादि यथोक्त क्रम से पिण्ड दे। जलघट का दान और जो पददान हैं उन का दान भी करे॥२०॥ ब्राह्मण को भोजन दे। अपनी शक्ति के अनुसार महादान भी दे। हे पक्षियों में श्रेष्ठ, दीपदान इत्यादि जो कुछ भी प्रेतकृत्य हैं वे सब पाँच वर्ष से अधिक अवस्था में और व्रतबन्ध से पहले मरे हुए प्रेत की तृप्ति के लिए करने चाहिए, यदि वह सब प्रेतकृत्य नहीं किया जाता है तो वह जीव पिशाच हो जाता है। व्रतबन्ध से पहले ही मरने वाले जीव को भी श्राद्ध देना ही चाहिए, उस के बाद ही अन्य पितृगण का श्राद्ध हो सकता है। स्वाहाकार मन्त्र से युक्त सोलह एकोद्दिष्ट श्राद्ध, ऋजु कुशों से, धौले तिलों से, प्राचीनावीती ही होकर पिण्डादि दाईं ओर गिराते हुए करने चाहिए। इस प्रकार सोलह श्राद्ध करने पर प्रेत परमगति में प्राप्त होता है॥२१-२४॥

पुनश् चिरायुषो भूत्वा जायते स्वकुले ध्रुवम्। सर्वसौख्यप्रदः पुत्त्रः पित्रोः प्रीतिविवर्धनः॥२५॥
आकाशमेकं हि यथा चन्द्रादित्यौ यथैकतः। घटादिषु पृथक् सर्वं पश्य रूपं च तत्समम्॥२६॥
आत्मा तथैव सर्वेषु पुत्त्रेषु विचरेत् सदा। या यस्य प्रकृतिः पूर्वं शुक्रशोणितसङ्गमे॥२७॥
तेन ते भावयोगेन पुत्त्रास् तत्कर्मकारिणः। पितृरूपं समादाय कस्यचिज् जायते सुतः॥२८॥
पितृतः कोऽपि रूपाढ्यो गुणज्ञो दानतत्परः। सदृशः कोऽपि लोकेऽस्मिन् न भूतो न भविष्यति॥२९॥
अन्धादन्धो न भवति मूकान् मूको न जायते। बधिराद् बधिरो नैव विद्यावान् विदुषो न हि।
अनुरूपा न दृश्यन्ते मदीयं वचनं शृणु॥३०॥

इस प्रकार औधर्वदेहिक कृत्य करने से बालक काल में मरे हुए जीव लम्बे आयु लेकर अपने कुल में फिर अवश्य जन्म लेते हैं। पुत्र पिता-माताओं को सभी सौख्य देने वाला और सन्तुष्टि को बढाने वाला होता है॥२५॥ जैसे आकाश एक ही है और जैसे चन्द्र और सूर्य भी एक एक ही हैं, तथापि घटादियों में आकाश पृथक्-पृथक् प्रतीत होता है और जलादि प्रतिबिम्बस्थलों में चन्द्र-सूर्य भी बिम्ब से तुल्य रूप में पृथक् पृथक् देखे जाते हैं॥२६॥ उसी प्रकार से आत्मा भी सदाकाल सभी पुत्त्रों में विचरण करेगा। पहले पुरुष के वीर्य और स्त्री के शोणित (डिम्ब) के सङ्गम के अवसर में जिस की जो प्रकृति (भाव) होती है उसी भाव का जन्मने वाला पुत्त्रों में योग होने से पुत्र उसी भाव के अनुकूल काम करने वाले होते हैं। किसी का पुत्र पिता के रूप को लेकर उत्पन्न होता है॥२७-२८॥ कोई पुत्र पिता से अधिक रूपवान्, गुणज्ञ और दान करने में तत्पर होता है। पूर्णतया पिता से तुल्य तो इस लोक में न कोई हुआ है, न कोई होगा॥२९॥ अन्ध पिता से अन्ध पुत्र नहीं होता है, गूंगे पिता से गूंगा पुत्र नहीं होता है, बहरे पिता से बहरा पुत्र नहीं होता है और विद्वान् पिता से विद्यावान् ही पुत्र भी नहीं होता है। पुत्र पिता के अनुरूप नहीं होते हैं, मेरे वचन को सुनो॥३०॥

गरुड उवाच

औरसक्षेत्रजाद्याश्च पुत्त्रा दशविधाः स्मृताः। सङ्गृहीतासुतो यस् तु दासीपुत्त्रश्च तेन किम्॥३१॥
कांकां गतिमवाप्नोति जातो मृत्युवशं गतः। भवेन् न दुहिता यस्य न दौहित्रो न वा सुतः॥३२॥
श्राद्धं तस्य कथं कार्यं विधिना केन तद् भवेत्।

श्रीभगवानुवाच

मुखं दृष्ट्वा तु पुत्त्रस्य मुच्यते पैतृकादृणात्॥३३॥
पौत्त्रस्य दर्शनाज् जन्तुर् मुच्यते च ऋणत्रयात्। लोकानन्त्यं दिवः प्राप्तिः पुत्त्रपौत्त्रप्रपौत्त्रकैः॥३४॥
अन्ये क्षेत्रोद्भवाद्या ये भुक्तिमात्रप्रदाः सुताः। कुर्वीत पार्वणं श्राद्धमौरसो विधिवत् सुतः॥३५॥

गरुड ने कहा— औरस और क्षेत्रज इत्यादि पुत्त्र दश प्रकार के समझे गए हैं। विवाहविधि के विना सङ्गृहीता स्त्री में जन्मा हुआ पुत्त्र, दासी के रूप में रही स्त्री में जन्मा हुआ पुत्त्र जो होते हैं उस से क्या होगा?॥३१॥ जन्मा हुआ व्यक्ति मरने पर किस किस गति को प्राप्त करता है? जिस की पुत्री भी नहीं है पुत्री का पुत्त्र भी नहीं है, और पुत्त्र भी नहीं है उस का श्राद्ध कैसे करना चाहिए, वह श्राद्ध किस विधि से होगा। **श्रीभगवान् ने कहा—** पुत्त्र का मुह देखकर पितृऋण से मुक्त हो जाता है॥३३॥ पुत्त्र के पुत्त्र को देखकर प्राणी ऋषिऋण-देवऋण-पितृऋण तीनों ऋणों से मुक्त होता है। पुत्त्र, पुत्त्र के पुत्त्र, पुत्त्र के पुत्त्र के पुत्त्र इत्यादि को देखने से मनुष्य को अनन्त शुभ लोकों की प्राप्ति और स्वर्ग की प्राप्ति होती है॥३२-३४॥ अपनी पत्नी में दूसरे द्वारा उत्पादित पुत्त्र इत्यादि अन्य पुत्त्र केवल भोग मात्र देने वाले होते हैं। औरस (विधिवत् विवाहित पत्नी में विधिवत् अपने से उत्पादित) पुत्त्र शास्त्रोक्त विधि से पार्वणश्राद्ध (पितृ-पितामह-प्रपितामहों को पिण्ड दिए जाने वाला श्राद्ध) करे॥३५॥

कुर्वन्त्यन्ये सुताः श्राद्धमेकोद्दिष्टं न पार्वणम्। ब्राह्मोढाजस्तून्नयति सङ्गृहीतस् त्वधो नयेत्।
श्राद्धं सांवत्सरं कुर्वन् जायते नरकाय वै॥३६॥
सर्वदानानि देयानि ह्यन्नदानादृते खग। सङ्गृहीतासुतः कुर्यादेकोद्दिष्टं न पार्वणम्॥३७॥
प्रत्यब्दं पितृमातृभ्यां श्राद्धं दत्त्वा न लिप्यते। एकोद्दिष्टं परित्यज्य पार्वणं कुरुते यदि॥३८॥
आत्मानं च पितृंश् चैव स नयेद् यममन्दिरम्। सङ्गृहीतासु ये केचिद् दासीपुत्त्रादयश् च ये॥३९॥
तीर्थे कुर्युः पितृश्राद्धं दानं दद्युर् द्विजन्मने। सङ्गृहीतासुतो भूत्वा पाकं वा यः प्रयच्छति॥४०॥
वृथा श्राद्धं विजानीयाच् छूद्रान्नेन यथा द्विजः। न प्रीणयति तच् छ्राद्धं पितामहमुखान् पितॄन्।
एवं ज्ञात्वा खगश्रेष्ठ हीनजातीन् सुतांस् त्यजेत्॥४१॥

अन्य प्रकार के पुत्त्र एकोद्दिष्टश्राद्ध करते हैं, पार्वणश्राद्ध नहीं करते हैं। ब्राह्म-विवाह से विवाहिता पत्नी में उत्पन्न पुत्त्र पितरों को ऊपर उठाता है, सङ्गृहीता स्त्री में जन्मा हुआ पुत्त्र नीचे गिराता है। सांवत्सरिकश्राद्ध करने वाला सङ्गृहीता स्त्री में जन्मा हुआ पुत्त्र नरक लेजाने के लिए होता है॥३६॥ सङ्गृहीता स्त्री में जन्मे हुए पुत्त्र को पितरों के लिए ओदनादि पक्वान्न को छोडकर अन्य दान ब्राह्मणों को देना चाहिए। सङ्गृहीता स्त्री में जन्मा हुआ पुत्त्र एकोद्दिष्टश्राद्ध करे, पार्वणश्राद्ध न करे॥३७॥ सङ्गृहीता स्त्री में उत्पन्न पुत्त्र प्रतिवर्ष पिता-माता को श्राद्ध देने से पाप से लिप्त नहीं होता है। वह यदि एकोद्दिष्टश्राद्ध को छोडकर पार्वणश्राद्ध करता है तो अपने को और पितरों को भी यमराज के घर में पहुँचाता है। सङ्गृहीता स्त्रियों में जन्मे हुए जो पुत्त्र हैं और दासीपुत्त्रादि जो पुत्त्र हैं वे तीर्थ में पितरों का श्राद्ध करें और ब्राह्मण को दान दें। सङ्गृहीता स्त्री में जन्मा हुआ पुत्त्र होकर भी जो मनुष्य श्राद्ध में ब्राह्मण को ओदनादि पक्वान्न देता है वह श्राद्ध शूद्र के पक्वान्न खाने से ब्राह्मण जैसे व्यर्थ (ब्राह्मणकार्य में अयोग्य) हो जाता है वैसे ही व्यर्थ हो जाता है। वह श्राद्ध पितामहादि पितरों को तृप्त नहीं करता है। हे पक्षियों में श्रेष्ठ, ऐसी वस्तुस्थिति को जानकर मनुष्य अपनी जाति से नीच जाति के पुत्त्रों का उत्पादन न करे॥३८-४१॥

ब्राह्मण्यां ब्राह्मणाज् जातश् चाण्डालादधमः स्मृतः। यस्तु प्रव्रजिताज् जातो ब्राह्मण्यां शूद्रतश्च यः।४२।
द्वावेतौ विद्धि चाण्डालौ सगोत्राद् यस् तु जायते। स्वर् याति विहितान् पुत्त्रान् समुत्पाद्य खगेश्वर॥
तैः सुवृत्तैः सुखं प्राप्य कुवृत्तैर् नरकं व्रजेत्। हीनजातिसमुद्भूतैः सुवृत्तैः सुखमेधते॥४४॥
कलिकलुषविमुक्तः पूजितः सिद्धसङ्घैरमरचमरमालावीज्यमानोऽप्सरोभिः।
पितृशतमपि बन्धून् पुत्त्रपौत्त्रप्रपौत्त्रानपि नरकनिमग्नानुद्धरेदेक एव॥४५॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे मृतबालान्त्येष्टिभिन्नाऽभिन्नजातिसुतकृतान्त्येष्ट्योर् वर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥

ब्राह्मण से सङ्गृहीता ब्राह्मणी में जन्मा हुआ मनुष्य चण्डाल से भी नीच समझा गया है। जो मनुष्य सन्न्यासी से जन्मा है, और शूद्र से ब्राह्मणी में जन्मा है इन दोनों को चण्डाल जानो। स्त्री के पिता के सगोत्र पुरुष से उस स्त्री में जो मनुष्य जन्मा है वह भी चण्डाल ही होता है। हे पक्षियों के मालिक, शास्त्र में विहित पुत्त्रों का उत्पादन करके मनुष्य स्वर्ग जाता है॥४२-४३॥ अच्छे चरित्र से युक्त शास्त्रविहित पुत्त्रों से सुख पाता है, किन्तु दुश्चरित्र उन पुत्त्रों से नरक में जाएगा। हीनज़ाति की स्त्री में उत्पन्न होने पर भी अच्छे चरित्र से युक्त पुत्त्रों से तो पिता सुखपूर्वक समृद्धि को पाता है॥४४॥ कलि के दोषों से सर्वथा मुक्त एक ही पुरुष भी सिद्धों के समूह से पूजित और अप्सराओं से डुलाए गए देवभोग्य चमरों की पङ्क्ति से वीजित होता हुआ नरक में पडे हुए सौ पीढियों के पूर्वज पितरों का और पुत्त्र, पौत्त्र और प्रपौत्त्र इत्यादि बन्धुओं का भी उद्धार कर सकता है॥४५॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में मृत बालक की अन्त्येष्टि का और भिन्न जाति के तथा अभिन्न जाति के पुत्त्रों से किए जाने वाले अन्त्येष्टियों का वर्णन करने वाला पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥२५॥

अथ षड्विंशोऽध्यायः

गरुड उवाच

सत्यं ब्रूहि सुरश्रेष्ठ कृपां कृत्वा मयि प्रभो। मृतानां चैव जन्तूनां कदा कुर्यात् सपिण्डनम्॥१॥
सपिण्डत्वे कुतो यान्ति असपिण्डे कुतो गतिः। केनैव सहपिण्डत्वं स्त्रीपुंसोर् वक्तुमर्हसि॥२॥
स्त्रीपुमांसौ सहैकत्वं प्राप्नुतः कथमुत्तमम्। जीवद्भर्तरि नारीणां सपिण्डीकरणं कुतः॥३॥
भर्तृलोकं कथं यान्ति स्वर्गलोकं सुरेश्वर। अग्न्यारोहे कथं श्राद्धं वृषोत्सर्गः कथं भवेत्॥४॥
घटदानं कथं कार्यं सपिण्डीकरणे कृते। कथयस्व प्रसादेन हिताय जगतां प्रभो॥५॥

श्रीभगवानुवाच

यथावत् कथयिष्यामि सपिण्डीकरणं खग। वर्षं यावत् खगश्रेष्ठ यदाचरति मानवः॥६॥

गरुड ने कहा— हे देवताओं में श्रेष्ठ प्रभो, मुझ में कृपा करके सत्य बताइए, मरे हुए प्राणियों का सपिण्डीकरण कब करे?॥१॥ सपिण्डीकरण होने पर मरे हुए प्राणी कहाँ जाते हैं और सपिण्डीकरण न होने पर किधर गति होती है? स्त्री का और पुरुष का किस के साथ सपिण्डीकरण करना चाहिए, यह बताने में आप ही योग्य हैं॥२॥ स्त्री और पुरुष किस प्रकार साथ में उत्तम एकत्व प्राप्त करते हैं? पति जीवित रहने पर स्त्रियों का सपिण्डीकरण किस के साथ होगा?॥३॥ हे देवताओं के मालिक, स्त्रियाँ पति से प्राप्त लोक को कैसे जाती हैं? कैसे स्वर्गलोक को जाती हैं? स्त्रियों से चिता के अग्नि में आरोहण करने पर श्राद्ध कैसे होगा? वृषोत्सर्ग कैसे होगा?॥४॥ सपिण्डीकरण होने पर जलघटों का दान कैसे करना चाहिए? हे प्रभो, मुझ से प्रसन्न होकर जगत् के हित के लिए बताइए॥५॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे पक्षिन्, सपिण्डीकरण को यथार्थ रूप में बताउँगा। हे पक्षियों में श्रेष्ठ, वर्षपर्यन्त मनुष्य जो और्ध्वदेहिक कर्म करता है

सपिण्डने ततो वृत्ते पितृलोकं स गच्छति। तस्मात् पुत्त्रेण कर्तव्यं सपिण्डीकरणं पितुः॥७॥
संवत्सरे तु सम्पूर्णे कुर्यात् पिण्डप्रवेशनम्। पिण्डप्रवेशविधिना तस्य नित्यं मृताह्निकम्॥८॥
निश्चितं पक्षिशार्दूल वर्षान्ते पिण्डमेलनम्। सहपिण्डे कृते प्रेतस् ततो याति परां गतिम्।
तन्नाम सम्परित्यज्य ततः पितृगणो भवेत्॥९॥
त्रिपक्षे वाऽपि षण्मासे मेलयेत् प्रपितामहैः। ज्ञात्वा वृद्धिविवाहादिस्वगोत्रविहितानि च॥१०॥
विवाहं नैव कुर्वीत मृते च गृहमेधिनि। भिक्षुर् भिक्षां न गृह्णाति यावत् कुर्यात् सपिण्डनम्।॥११॥
स्वगोत्रेऽप्यशुचिस् तावद् यावत् पिण्डं न मेलयेत्। मेलनात् प्रेतशब्दस्तु निवर्तेत खगेश्वर॥१२॥
आनन्त्यात् कुलधर्माणां पुंसां चैवाऽऽयुषः क्षयात्। अस्थिरत्वाच् छरीरस्य द्वादशाहः प्रशस्यते॥१३॥

उस के बाद सपिण्डीकरण होने पर वह मृत जीव पितृलोक में जाता है। इस लिए पिता का सपिण्डीकरण पुत्र को करना चाहिए॥६-७॥ वैदिक तिथिबद्ध चान्द्रसंवत्सर पूर्ण होने पर प्रेतपिण्ड का पितृपिण्डों में प्रवेशन (सपिण्डन) करे। जिस का पिण्ड प्रवेशन हुआ है उस का मृताहश्राद्ध (क्षयतिथिश्राद्ध) सदाकाल पिण्डप्रवेशन के विधि से (पार्वणश्राद्धविधि) से करे॥८॥ हे पक्षियों में श्रेष्ठ, वर्ष के अन्त में निश्चित रूप में पिण्ड का मेलन (सपिण्डीकरण) करे। सपिण्डीकरण करने पर प्रेत परम गति में जाता है॥९॥ उस प्रेत नाम को छोडकर उस के बाद पितृगण हो जाता है॥९॥ अपने कुल में विहित कर्तव्य वृद्धिकार्य विवाहादि को जानकर तीन पक्षों में अथवा छः महीनों में भी पितामहादि से प्रेत का सपिण्डीकरण करे॥१०॥ गृहपति मरने पर (उस घर में) (सपिण्डीकरण न होने तक) विवाह न करे। जब तक सपिण्डीकरण नहीं करेगा तब तक (उस घर में) सन्यासी भिक्षा भी नहीं लेता है॥११॥ जब तक पिण्ड नहीं मिलाएगा तब तक अपने कुल में भी अशुद्ध ही रहता है। हे पक्षियों के मालिक, पिण्ड के मेलन से प्रेतशब्द हट जाएगा॥१२॥ कुलधर्मों के प्रकार अनन्त होने से, (कलियुग में) मनुष्यों के आयु घट जाने से और सदा ही मनुष्य का शरीर जलबुद्बुदवत् अस्थिर (क्षणभङ्गुर) होने से सपिण्डीकरण के लिए बारहवाँ दिन विज्ञों से प्रशंसित है॥१३॥

निरग्निकः साग्निको वा द्वादशाहे सपिण्डयेत्॥१४॥
द्वादशाहे त्रिपक्षे वा षण्मासे वत्सरेऽपि वा। सपिण्डीकरणं प्रोक्तमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥१५॥
सपुत्त्रस्य न कर्तव्यमेकोद्दिष्टं कदाचन। सपिण्डीकरणादूर्ध्वं यत्रयत्र प्रदीयते॥१६॥
तत्रतत्र त्रयं कार्यम् [वर्जयित्वा क्षयेऽहनि। पिता पितामहश् चैव तथैव प्रपितामहः॥
एकोद्दिष्टं त्रयाणां स्याद्] अन्यथा पितृघातकः। त्रिभिः कुर्यादशक्तश् च पार्वणं मुनिनोदितम्॥१७॥
तद्दिनेतद्दिने कुर्यात् पितामहमुखान्यतः। अज्ञानाद् दिनमासानां तस्मात् पार्वणमिष्यते॥१८॥
अनुत्पन्नशरीरस्य न दानं पितृभिः सह। एतैः षोडशभिः श्राद्धैः प्रेतो मुक्तस् तु जायते॥१९॥

कर्ता श्रौत अथवा गृह्य अग्नि से रहित हो अथवा सहित हो बारहवें दिन में सपिण्डीकरण करे॥१४॥ तत्त्वदर्शी ऋषियों ने बारहवें दिन में अथवा तीन पक्षों में अथवा छः महीनों में सपिण्डीकरण बताया है॥१५॥ पुत्र से युक्त मनुष्य का एकोद्दिष्टश्राद्ध कभी भी नहीं करना चाहिए। सपिण्डीकरण के बाद (क्षयाह को छोडकर) अन्यत्र जहाँजहाँ श्राद्ध दिया जाता है वहाँ वहाँ तीन पिण्ड ही करने चाहिए, (पिता, पितामह और प्रपितामह इन तीनों के क्षयाहों में एकोद्दिष्टश्राद्ध करना चाहिए), इन के क्षयाहों में एकोद्दिष्टश्राद्ध न करने से कर्ता पितृघातक हो जाएगा। *[<u>विशेष</u>– यहाँ जीवानन्दसंस्करण का (१६।१६,१७) पाठ समुचिततर है]*। पिता, पितामह और प्रपितामह का क्षयतिथियों में पृथक्पृथक् एकोद्दिष्टश्राद्ध करने में अशक्त मनुष्य मुनियों से बताए गए पार्वणश्राद्ध को तीन पिण्डों से सम्पन्न करे॥१६-१७॥ इस लिए सम्भव होने पर पितामहादि का श्राद्ध भी उन उन के क्षयाह में करे। पितामहादि के मृत्यु की तिथि का और मास का अज्ञान होने से पिता के ही क्षयाह में उन को भी पिण्ड देने के लिए पिता के क्षयाह में पार्वणश्राद्ध इष्ट होता है॥१८॥ जिस का पितृशरीर उत्पन्न नहीं हुआ है उस को पितरों के साथ में पिण्ड नहीं दिया जा सकता है। उक्त सोलह श्राद्धों से प्रेत प्रेतत्व से मुक्त होता है (और पितरों से मिलने के लिए योग्य होता है)॥१९॥

अपुत्रस्य सपिण्डत्वं नैव कुर्यात् स्त्रियोऽपि वा। यावज्जीवं च सद्भर्त्र्या न कुर्यात् सहपिण्डताम्॥२०॥
ब्राह्मादिषु विवाहेषु या वधूरिह संस्कृता। भर्तृगोत्रेण कर्तव्यास् तस्याः पिण्डोदकक्रियाः॥२१॥
आसुरादिविवाहेषु या व्यूढा कन्यका भवेत्। तस्यास् तु पितृगोत्रेण कुर्यात् पिण्डोदकक्रियाः॥२२॥
पितुः पुत्रेण कर्तव्यं सपिण्डीकरणं सदा। पुत्राभावे तु पत्नी स्यात् पत्न्यभावे सहोदरः॥२३॥
भ्राता वा भ्रातृपुत्रो वा सपिण्डः शिष्य एव वा। सपिण्डनक्रियां कृत्वा कुर्यान् नान्दीमुखं ततः॥२४॥
ज्येष्ठस्यैव कनिष्ठेन भ्रातृपुत्रेण भार्यया। सपिण्डीकरणं कार्यं पुत्रहीने नरे खग॥२५॥
भ्रातृणामेकजातानामेकश् चेत् पुत्रवान् भवेत्। सर्वे ते तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत्॥२६॥
सर्वेषां पुत्रहीनानां पत्नी कुर्यात् सपिण्डनम्। ऋत्विजा कारयेद् वाऽपि पुरोहितमथापि वा॥२७॥

पुत्ररहित पुरुष का और स्त्री का भी सपिण्डीकरण नहीं करे। पतियुक्त स्त्री का भी पति जीवित रहने तक सपिण्डीकरण न करे॥२०॥ जो पत्नी ब्राह्मविवाहादि विवाहों से विवाहित है उस का पिण्ड-पानी का काम पति के गोत्र से करना चाहिए॥२१॥ जो कन्या आसुरविवाहादि विवाहों से विवाहित है उस का पिण्ड-पानी का काम तो उस के पिता के गोत्र से ही करे॥२२॥ पिता का सपिण्डीकरण सदा ही पुत्र को करना चाहिए। पुत्र बालक तथा असंस्कृत होने से सपिण्डन कार्य में अधिकारी पुत्र न होने पर सपिण्डन करने वाली पत्नी होगी, पत्नी भी न होने पर सहोदर भाई सपिण्डन करने वाला होगा॥२३॥ भाई अथवा भाई का पुत्र अथवा कोई सपिण्ड अथवा शिष्य सपिण्डीकरणक्रिया करके नान्दीमुखश्राद्ध करे॥२४॥ हे पक्षिन्, सपिण्डीकरण करने योग्य पुत्र से रहित मनुष्य मरने पर सपिण्डीकरण ज्येष्ठ भाई का कनिष्ठ भाई से अथवा भाई के पुत्र से अथवा पत्नी से किया जाना चाहिए॥२५॥ एक पिता से जन्मे हुए भाइयों में यदि एक पुत्रयुक्त होगा तो उस पुत्र से वे सब पुत्रयुक्त होते हैं, यह बात मनु ने कही है॥२६॥ सपिण्डीकरण में समर्थ अधिकारी पुत्र से रहित सभी मनुष्यों का सपिण्डीकरण पत्नी करे, अथवा पत्नी स्वयम् न करके ऋत्विक् से करवाए अथवा पुरोहित को करवाए॥२७॥

कृतचूडोऽनुपेतश् च पितुः श्राद्धं समाचरेत्। उच्चारयेत् स्वधाकारं न तु वेदाक्षराण्यसौ॥२८॥
भर्त्रादिभिस् त्रिभिः कार्यं सपिण्डीकरणं स्त्रियाः। पितृव्यभ्रातृपुत्त्रेण सोदरेण कनीयसा॥२९॥
अर्वाक् संवत्सरात् सन्धौ पूर्णे संवत्सरेऽपि वा। ये सपिण्डीकृताः प्रेतास्तेषां न स्यात् पृथक् क्रिया॥३०॥
सपिण्डने कृते वत्स पृथक्त्वं तु विगर्हितम्। यस्तु कुर्यात् पृथक् पिण्डं पितृहा सोऽभिजायते॥३१॥
सपिण्डीकरणे वृत्ते पृथक्त्वं नोपपद्यते। पृथक् पिण्डे कृते पश्चात् पुनः कुर्यात् सपिण्डनम्॥३२॥
सपिण्डीकरणं कृत्वा एकोद्दिष्टं करोति यः। आत्मानं च तथा प्रेतं स नयेद् यमशासनम्॥३३॥
वर्षं यावत् क्रिया कार्या नामगोत्रेण धीमता। घटादि भोजनं नित्यं दीपदानानि यानि च।
सपिण्डीकरणे वृत्ते एकस्यैव तु दापयेत्॥३४॥

जिस का चूडाकरण हुआ है ऐसा पुत्र उपनयन से रहित होने पर भी पिता का श्राद्ध करे, किन्तु वह स्वधाशब्द का ही उच्चारण करे, वेद के अक्षरों का (मन्त्र का) उच्चारण न करे॥२८॥ पितृव्यपुत्र से अथवा भ्रातृपुत्र से अथवा कनिष्ठ सहोदर भाई से स्त्री का सपिण्डीकरण पतिप्रभृति तीन पितरों से किया जाना चाहिए॥२९॥ संवत्सर पूर्ण होने से पहले, अथवा प्रथम और द्वितीय संवत्सर के सन्धि में अथवा संवत्सर पूर्ण होने पर भी जो सपिण्डीकृत प्रेत हैं उन का सपिण्डीकरण के बाद पृथक् क्रिया नहीं होगी॥३०॥ सपिण्डीकरण हो जाने पर जो फिर पृथक् पिण्ड करेगा वह पितृघाती हो जाता है॥३१॥ सपिण्डीकरण हो चुकने पर फिर पृथक्त्व उपपन्न नहीं होता है। फिर पृथक् पिण्ड दिए जाने पर पुनः सपिण्डीकरण करे॥३२॥ जो मनुष्य सपिण्डीकरण करके फिर एकोद्दिष्ट करता है वह अपने को और प्रेत को भी यम से शासनीय बनाता है॥३३॥ वर्षपर्यन्त ही बुद्धिमान् मनुष्य को नाम और गोत्र से ही क्रिया करनी चाहिए। संवत्सर से पहले सपिण्डीकरण होने पर भी वर्षपर्यन्त जो जलघट और भोज्य अन्न तथा दीपदान दिए जाते हैं वे तो अकेले प्रेत को ही दिए जाने चाहिए॥३४॥

अन्नं पानीयसहितं सङ्ख्यां कृत्वाऽऽब्दिकस्य च। दातव्यं ब्राह्मणे पक्षिन् जलपूर्णघटादिकम्॥३५॥
पिण्डान्ते तस्य सकला वर्षवृत्तिः स्वशक्तितः। दिव्यदेहो विमानस्थः सुखं याति यमालयम्॥३६॥
जीवमाने च पितरि न हि पुत्रे सपिण्डता। स्त्रीणां सपिण्डनं नास्ति तथा भर्तरि जीवति॥३७॥
हुताशं या समारूढा चतुर्थेऽह्नि पतिव्रता। तस्या भर्तृदिने कार्यं वृषोत्सर्गादिकं च यत्॥३८॥
पुत्रिका पतिगोत्रा स्यादधस्तात् पुत्रजन्मनः। पुत्रोत्पत्तेः परस्तात् सा पितृगोत्रं व्रजेत् पुनः॥३९॥
पतिपत्न्योः सदैकत्वं हुताशं याऽधिरोहति। पुत्रेणैव पृथक् श्राद्धं क्षयाख्ये तस्य वासरे॥४०॥
अपुत्रौ चेन् मृतौ स्यातामेकचित्यां समेऽहनि। पृथक् श्राद्धानि कुर्वीत सापिण्ड्यं पतिना सह॥४१॥

हे पक्षिन्, वैदिक तिथिबद्ध चान्द्र संवत्सर के दिनों के सङ्ख्या के अनुसार गिनकर पानी से युक्त अन्न और जल से भरे हुए घडे इत्यादि अपनी शक्ति के अनुसार वर्षपर्यन्त के भोज्यादि सम्पूर्ण पदार्थ प्रेतपिण्डों के प्रदान के बाद में (ग्यारहवें अथवा बारहवें दिन में) उस प्रेत के उद्देश्य से ब्राह्मण को देना चाहिए। इस से प्रेत दिव्य देह वाला होकर विमान में बैठकर सुखपूर्वक यमराज के घर में जाता है॥३५-३६॥ पिता जीवित रहने पर यदि पुत्र मरता है तो उस पुत्र का सपिण्डीकरण नहीं होता है, उसी प्रकार पति जीवित रहने पर मरी हुई स्त्रियों का सपिण्डीकरण नहीं होता है॥३७॥ पति के मरण के चौथे दिन में भी जो पतिव्रता स्त्री चिता के अग्नि में चढी है उस का वृषोत्सर्गादि जो कर्म है उस को पति के वृषोत्सर्गादि के दिन में ही करना चाहिए॥३८॥ इस कन्या से उत्पन्न प्रथम पुत्र मातामह का पुत्र होगा, ऐसा मानकर जिस कन्या का विवाह होता है वह कन्या विवाह होने पर पुत्र का जन्म होने से पहले पति के गोत्र से युक्त होती है, पुत्र का जन्म होने के बाद में वह कन्या फिर पितृगोत्र वाली हो जाती है॥३९॥ यदि स्त्री पति मरने पर पति के चिता के अग्नि में चढती है तो वहाँ पति और पत्नी का सदाकाल एकत्व होता है (साथसाथ में और्ध्वदेहिक क्रियाएँ होतीं हैं), उन के क्षयाह में (मृत्यु की एक ही तिथि में) पुत्र से दोनों के लिए अलग अलग श्राद्ध किया जाना चाहिए॥४०॥ यदि पति और पत्नी पुत्ररहित अवस्था में एक ही दिन में मरे हैं और एक ही चिता में जलाए जाते हैं तो उन का श्राद्ध अलगअलग करे और स्त्री का सपिण्डीकरण पति के साथ में करे॥४१॥

पृथक्पृथक् च पिण्डेन दम्पती पतिना सह। न लिप्यते महादोषैरेतत् सत्यं वचो मम॥४२॥
एकचित्यां समारूढौ दम्पती निधनं गतौ। एकपाकं प्रकुर्वीत पिण्डान् दद्यात् पृथक्पृथक्॥४३॥
एकादशे वृषोत्सर्गं प्रेतश्राद्धानि षोडश। घटादिपददानानि महादानानि यानि च।
वर्षं यावत् पृथक् कुर्यात् प्रेतस् तृप्तिं व्रजेच् चिरम्॥४४॥
एकगोत्रे मृतानां तु स्त्रिया वा पुरुषस्य वा। स्थण्डिलं चैकतः कुर्याद् धोमं कुर्यात् पृथक्पृथक्॥४५॥
एकादशेऽह्नि यच् छ्राद्धं पृथक् पिण्डाश्च भोजनम्। पाकैकेन पतिस्त्रीणामन्येषां च विगर्हितम्॥४६॥
एकेनैव तु पाकेन श्राद्धानि कुरुते सुतः। एकं तु विकिरं कुर्यात् पिण्डान् दद्याद् बहूनपि।
तीर्थे चाऽपरपक्षे वा चन्द्रसूर्यग्रहेऽपि वा॥४७॥

पति और पत्नी को अलगअलग पिण्डदान देकर पत्नी को पति के साथ सपिण्डीकरण करने से कर्ता महादोषों से लिप्त नहीं होता है, यह मेरा सत्य वचन है॥४२॥ मरे हुए पति और पत्नी यदि एक ही चिता में चढे हैं तो पिण्डद्रव्य का पाक एक ही करे और अलग अलग पिण्ड दे॥४३॥ ग्यारहवें दिन में वृषोत्सर्ग, सोलह मासिकादि प्रेतश्राद्ध, घटादिदान, पददान और महादान भी वर्षदिनपर्यन्त अलग ही करे, ऐसा करने से चिरकाल तक प्रेत तृप्ति प्राप्त करेगा॥४४॥ साथ साथ मरे हुए एक ही गोत्र के स्त्रियों के अथवा पुरुषों के कृत्य में स्थण्डिल एक ही ओर बनाए और होम अलग अलग करे॥४६॥ ग्यारहवें दिन में जो श्राद्ध होता है उस में पति और पत्नी के लिए एक ही पाक से पृथक् पृथक् पिण्डदान और ब्राह्मणभोजन कराना उचित है, अन्य लोग के लिए तो ऐसा एकपाक निन्दित है॥४६॥ यदि पुत्र एक ही पाक से अनेक श्राद्ध करता है तो विकर एक ही करे पिण्ड तो अनेक भी दे; तीर्थ में अथवा अपरपक्ष में अथवा चन्द्रग्रहण में अथवा सूर्यग्रहण में भी ऐसा करे॥४७॥

नारी भर्तारमासाद्य कुणपं दहते यदा। अग्निर् दहति गात्राणि आत्मानं नैव पीडयेत्॥४८॥
दह्यते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलम्। तथा नारी दहेद् देहं हुताशे ह्यमृतोपमे॥४९॥
दिव्यादौ दिव्यदेहस् तु शुद्धो भवति पूरुषः। तप्ततैलेन लोहेन वह्निना नैव दह्यते॥५०॥
तथा सा पतिसंयुक्ता दह्यते न कदाचन। अन्तरात्मा मृते तस्मिन् मृतोऽप्येकत्वमागतः॥५१॥
भर्तृसङ्गं परित्यज्य अन्यत्र म्रियते यदि। भर्तृलोकं न सा याति यावदाभूतसम्प्लवम्॥५२॥
लक्ष्मीयुतान् परित्यज्य मातरं पितरं तथा। मृतं पतिमनुव्रज्य सा चिरं सुखमेधते॥५३॥
दिव्यवर्षप्रमाणेन तिस्रः कोट्योऽर्धकोटयः। तावत्कालं वसेत् स्वर्गे नक्षत्रैः सह सर्वदा॥५४॥
तदन्ते चरते लोके कुले भवति भोगिनाम्। सा हि लब्धमहाप्रीतिर् भर्त्रा सह पतिव्रता॥५५॥

स्त्री मृत पति को प्राप्त करके अपने शव (शरीर) को जब जलाती है तब अग्नि केवल अङ्गों को जलाता है, आत्मा को पीडित नहीं करता है॥४८॥ जिस प्रकार अग्नि में जलाए जा रहे धातुओं का केवल मल ही जलता है धातु नहीं, उसी प्रकार स्त्री भी अमृततुल्य पति-चिताग्नि में अपने शरीर को ही जलाती है॥४९॥ दिव्यपरीक्षा के आदि में दोषरहित शुद्ध पुरुष दिव्यदेह से युक्त हो जाता है, अत एव गरम तेल से गरम लोहे से और आग से भी वह नहीं जलाया जाता है॥५०॥ पति से संयुक्त वह स्त्री तो कभी भी नहीं जलती है। मृत होने पर भी स्त्री का अन्तरात्मा मृत पति के आत्मा में एकत्व में प्राप्त होता है॥५१॥ यदि स्त्री पति का साथ छोडकर अन्यत्र मरती है तो वह स्त्री महाप्रलयपर्यन्त भर्तृलोक में नहीं जाती है॥५२॥ धन से युक्त माता को, तथा पिता को छोडकर पति का अनुगमन करके स्त्री चिरकाल तक सुख में बढती है॥५३॥ दिव्य वर्षों के प्रमाण से तीन कोटि और आधा कोटी (साढे तीन कोटि) वर्षों का जितना काल होता है उतने काल तक स्वर्ग में नक्षत्रों के साथ सदा रहती है॥५४॥ उस काल के अन्त में फिर मनुष्यलोक में आती है और भोगियों के कुल में जन्म लेती है, और पतिव्रता वह स्त्री पति के साथ महाप्रीति पाकर रहती है॥५५॥

एवं न कुरुते नारी धर्मोढा पतिसङ्गमम्। जन्मजन्मनि दुःखार्ता दुःशीलाऽप्रियवादिनी ॥५६॥
वल्गुली गृहगोधा वा गोधा वा द्विमुखी भवेत्। स्वभर्तारं परित्यज्य परपुंसोऽनुवर्तिनी ॥५७॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन स्वपतिं स्त्री निषेवते। मनसा कर्मणा वाचा मृतं जीवन्तमेव वा ॥५८॥
जीवमाने मृते वाऽपि किल्बिषं कुरुते तु या। सा च वैधव्यमाप्नोति जन्मजन्मनि दुर्भगा ॥५९॥
यद् देवेभ्यो यत् पितृभ्यः श्रद्धयैव प्रदीयते। तत्फलं भर्तृपूजातः कुर्याद् भर्त्रर्चनं ततः ॥६०॥
एवं कृते खगश्रेष्ठ भर्तृलोके चिरं वसेत्। यावदादित्यचन्द्रौ च तावद् देवसमा दिवि ॥६१॥
पुनश् चिरायुषौ भूत्वा जायेते विपुले कुले। पतिव्रता तु सा नारी भर्तृदुःखं न विन्दति ॥६२॥
सर्वमेतद् धि कथितं मया तव खगेश्वर। विशेषं कथयिष्यामि मृतस्यैव सुखप्रदम् ॥६३॥

यदि धर्मविवाह में विवाहित स्त्री इस प्रकार पतिसङ्गम नहीं करती है तो वह जन्म-जन्मान्तरों में दुःख से आर्त व्यभिचारिणी और अप्रियवादिनी होती है॥५६॥ अपने पति को छोडकर परपुरुष की अनुगामिनी होने वाली स्त्री जन्मान्तरों में गीदडी, छिपकली, गोहनी, और द्विमुखी सर्पिणी होगी॥५७॥ इस लिए स्त्री जीवित अथवा मृत अपने पति का मन-वचन-कर्म से सभी प्रयत्नों से सेवन करती है॥५८॥ पति जीवित रहने पर अथवा मरने पर भी जो स्त्री पति के प्रति पाप करती है, वह जन्म-जन्मान्तर पर्यन्त पति की अप्रिय होती है और विधवा होती है॥५९॥ जो देवताओं को श्रद्धापूर्वक दिया जाता है और जो पितरों को श्रद्धापूर्वक दिया जाता है उस का जैसा जितना फल होता है वैसा और उतना फल स्त्री को पति की सेवा से ही प्राप्त होता है, इस लिए स्त्री पति की सेवा करे॥६०॥ हे पक्षियों में श्रेष्ठ, ऐसा करने पर स्त्री चिरकाल तक पतिलोक में रहेगी और जब तक सूर्य और चन्द्र रहते हैं तब तक देवतातुल्य होकर स्वर्ग में रहेगी॥६१॥ फिर पति-पत्नी दोनों ही चिरायु होकर महान् कुल में जन्म लेते हैं, पतिव्रता वह स्त्री कभी भी पतिवियोग नहीं पाती है (द्रष्टव्य–जीवानन्दसंस्करण १६।६१,६२)॥६२॥ हे पक्षियों के मालिक, यह सब मैं ने तुम को बताया, मृत व्यक्ति के लिए सुखदायी विशेष कार्य बताउँगा॥६३॥

द्वादशाहे कृतं सर्वं वर्षं यावत् सपिण्डनम्। पुनः कुर्यात् सदा नित्यं घटान्नं प्रतिमासिकम्॥६४॥
कृतस्य करणं नास्ति प्रेतकार्यादृते खग। यः करोति नरः कश्चित् कृतं पूर्वं विनश्यति॥६५॥
मृतस्यैव पुनः कुर्यात् प्रेतोऽक्षय्यमवाप्नुयात्। प्रतिमासं घटा देया सोदना जलपूरिताः॥६६॥
अर्वाक् च वृद्धेः करणाच् च तार्क्ष्य सपिण्डनं यः कुरुते हि पुत्रः।
तथापि मासं प्रति पिण्डमेकमन्नं च कुम्भं सजलं च दद्यात्॥६७॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे सपिण्डननिरूपणं नाम षड्विंशोऽध्यायः॥

बारहवें दिन में ही वर्षपर्यन्त कर्तव्य सभी कर्म करके सपिण्डीकरण किए जाने पर भी फिर भी प्रतिदिन और प्रतिमास जलघटदान और अन्नदान सदा करे॥६४॥ हे पक्षिन्, प्रेतकार्य को छोडकर अन्य कार्य एक वार किए जाने पर फिर नहीं किए जाते हैं, जो कोई एक वार किए गए कार्य को फिर करता है तो उस का पहले किया गया वह कार्य नष्ट होता है॥६५॥ मृतक के लिए तो एक वार किया गया कार्य भी फिर करे, उस से प्रेत अक्षय फल पाता है। इस लिए प्रतिमास ओदन से युक्त जलपूर्ण घट फिर भी देने ही चाहिए॥६६॥ हे गरुड, विवाहादि वृद्धिकार्य के कारण से संवत्सर पूर्ण होने से पहले ही जो पुत्र सपिण्डन करता है, उस अवस्था में भी वह प्रत्येक मास में एक पिण्ड और अन्न तथा जलसहित घट भी दे॥६७॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में सपिण्डीकरण का निरूपण करने वाला छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥२६॥

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

तार्क्ष्य उवाच

कथं प्रेता वसन्त्यत्र कीदृग्रूपा भवन्ति ते। महाप्रेताः पिशाचाश् च कैःकैः कर्मफलैर् विभो।
सर्वेषामनुकम्पार्थं ब्रूहि मे मधुसूदन॥१॥
प्रेतत्वान् मुच्यते येन दानेन च शुभेन च। तन् मे कथय देवेश मम चेदिच्छसि प्रियम्॥२॥

श्रीकृष्ण उवाच

साधु पृष्टं त्वया तार्क्ष्य मानुषाणां हिताय वै। शृणु चाऽवहितो भूत्वा यद् वच्मि प्रेतलक्षणम्॥३॥
गुह्याद् गुह्यतरं ह्येतन् नाऽऽख्येयं यस्यकस्यचित्। भक्तस् त्वं हि महाबाहो तेन ते कथयाम्यहम्॥४॥
पुरा त्रेतायुगे तात राजाऽऽसीद् बभ्रुवाहनः। महोदयपुरे रम्ये धर्मनिष्ठो महाबलः॥५॥

गरुड ने कहा— इस लोक में प्रेत कैसे बास करते हैं? वे कैसे रूप वाले होते हैं? हे व्यापक भगवन्, कैसे कैसे कर्मों के फल से महाप्रेत और पिशाच होते हैं? हे मधुदैत्य को नाश करने वाले, सभी प्राणियों के प्रति अनुकम्पा करके यह बात मुझ को बताइए॥१॥ हे देवों के मालिक, आप यदि मेरा प्रिय चाहते हैं तो जिस दान से अथवा शुभ कर्म से प्रेतत्व से प्राणी मुक्त होता है उस को मुझे बताइए॥२॥ श्रीकृष्ण ने कहा— हे गरुड, तुम ने मनुष्यों के हित के लिए ठीक पूछा है, मैं जो प्रेतलक्षण बताता हूँ उस को तुम सावधान होकर सुनो॥३॥ यह गोप्य वस्तु से भी अधिक गोप्य है, यह जिस किसी को सुनाने में योग्य नहीं है, हे महाबाहु वाले गरुड, तुम मेरे भक्त हो, इस लिए मैं तुम को बताता हूँ॥४॥ हे वत्स, पुराकाल में त्रेतायुग में रमणीय कान्यकुब्जनगर में धर्मपरायण और अत्यन्त बलवान्, यज्ञ करने वाला, दानों का कर्ता, धनवान्, वेद का और ब्राह्मण का

यज्वा दानपतिः श्रीमान् ब्रह्मण्यः साधुसम्मतः। शीलाचारगुणोपेतो दयादाक्षिण्यसंयुतः॥६॥
प्रजाः पालयते नित्यं पुत्त्रानिव महाबलः। क्षत्रधर्मरतो नित्यं स दण्ड्यान् दण्डयन् नृपः॥७॥
स कदाचिन् महाबाहुः ससैन्यो मृगयां गतः। वनं विवेश गहनं नानावृक्षसमन्वितम्॥८॥
शार्दूलशतसञ्जुष्टं नानापक्षिनिनादितम्। वनमध्ये तदा राजा मृगं दूरादपश्यत॥९॥
तेन विद्धो मृगोऽतीव बाणेन सुदृढेन च। बाणमादाय तं तस्य स वनेऽदर्शनं ययौ॥१०॥
कक्षे तच्छोणितस्रावात् स राजाऽनुजगाम तम्। ततो मृगप्रसङ्गेन वनमन्यद् विवेश सः॥११॥
क्षुत्क्षामकण्ठो नृपतिः श्रमसन्तापमूर्च्छितः। जलस्थानं समासाद्य साऽश्व एवाऽवगाहत॥१२॥
पीत्वा तदुदकं शीतं पद्मगन्धाधिवासितम्। तत उत्तीर्य सलिलाद् विमलाद् बभ्रुवाहनः॥१३॥

हितकारी, साधु पुरुषों का सम्मत; शील, आचार तथा अन्य गुणों से युक्त; दया और मिलनसारपन से सहित बभ्रुवाहन नाम का राजा था॥५-६॥ बडी सेना से युक्त, क्षत्रिय के धर्म का पालन करने में नित्य रमने वाला वह राजा दण्ड देने योग्य जन को दण्ड देता हुआ सदाकाल प्रजा का पुत्त्रों की तरह पालन करता था॥७॥ बडे बडे भुजाओं से युक्त वह राजा किसी समय में सेना से युक्त होकर सिकार करने के लिए गया था। उस समय में वह अनेक वृक्षों से युक्त, सैकडों बाघों से सेवित, अनेक पक्षियों के शब्दों से पूर्ण गहन वन में प्रविष्ट हुआ। तब राजा ने वन में एक मृग को दूर से देखा॥८-९॥ उस ने अत्यन्त दृढ बाण से उस मृग को विद्ध किया। उस के बाण को लेकर ही वह मृग वन में भागकर अदृश्य हो गया॥१०॥ उस राजा ने झाडी में वहे हुए उस मृग के रक्त के चिह्न से उस मृग का अनुगमन किया। तब वह राजा मृग का अनुसरण करता हुआ दूसरे वन में घूसा॥११॥ भूख से क्षीणं हुए कण्ठ से युक्त और थकान तथा सन्ताप से मूर्छित वह राजा वहाँ एक जलाशय में पहुँचकर घोडे के साथ ही जल में प्रविष्ट हुआ॥१२॥ कमल के सुगन्ध से वासित उस जलाशय का जल पीकर उस विमल जल से निकलकर राजा बभ्रुवाहन एक शीतल छाया से युक्त रमणीय वटवृक्ष

न्यग्रोधवृक्षमासाद्य शीतच्छायं मनोहरम्। महाविटपिनं हृद्यं पक्षिसङ्घातनादितम्॥१४॥
वनस्य तस्य सर्वस्य केतुभूतमिवोच्छ्रितम्। तं महातरुमासाद्य निषसाद महीपतिः॥१५॥
अथ प्रेतं ददर्शाऽसौ क्षुत्तृषाव्याकुलेन्द्रियम्। उत्कचं मलिनं रूक्षं निर्मांसं भीमदर्शनम्॥१६॥
स्नायुबद्धास्थिचरणं धावमानमितस्ततः। अन्यैश् च बहुभिः प्रेतैः समन्तात् परिवारितम्॥१७॥
तं दृष्ट्वा विकृतं घोरं विस्मितो बभ्रुवाहनः। प्रेतोऽपि दृष्ट्वा तां घोरामटवीमागतं नृपम्॥१८॥
तदा हृष्टमना भूत्वा तस्याऽन्तिकमुपागतः। अब्रवीत् स तदा तार्क्ष्य प्रेतराजो नृपं वचः॥१९॥
प्रेतभावो मया त्यक्तः प्राप्तोऽस्मि परमां गतिम्। त्वत्संयोगान् महाबाहो नास्ति धन्यतरो मम॥२०॥

नृपतिरुवाच

कृष्णवर्णः करालास्यस् त्वं प्रेत इव लक्ष्यसे। कथयस्व मम प्रीत्या यथैवं चाऽसि तत्त्वतः॥२१॥

की ओर जाकर उस बडी बडी शाखाओं से युक्त, हृदयप्रिय पक्षियों के शब्दों से पूर्ण, उस सम्पूर्ण वन के ध्वज जैसे खडे उस महावृक्ष के मूल में पहुँचकर बैठा॥१३-१५॥ तब उस राजा ने भूख और प्यास से व्याकुल इन्द्रियों से युक्त, खडे केशों से सहित, मलिन, रूखे, मांसपेशियों से रहित, डरावने दृश्य वाले, स्नायुओं से बंधे हुए हड्डियों के पैरों से युक्त, इधर-उधर दौड रहे, और अन्य अनेक प्रेतों से सभी ओर से घिरे हुए प्रेत को देखा॥१६-१७॥ उस विकृत भयङ्कर प्रेत को देखकर बभ्रुवाहन चकित हो गया। प्रेत भी उस भयङ्कर वन में आए हुए राजा को देखकर प्रसन्नमना होकर उस राजा के समीप में आया। हे गरुड, उस समय में उस प्रेतों के राजा ने राजा बभ्रुवाहन को यह वचन कहा॥१८-१९॥ हे बडी बडी भुजाओं से युक्त महाराज, आप के साथ हुए इस संयोग से मैं ने प्रेतभाव छोडदिया, मैं परमगति में प्राप्त हुआ, मुझ से अधिक धन्य कोई नहीं है॥२०॥ राजा ने कहा— काले वर्ण से युक्त, ऊँचे-ऊँचे दाँतों से युक्त मुख वाला तुम प्रेत जैसा लगते हो। मेरे प्रेम से वस्तुतः तुम जैसे हो वैसा कहो॥२१॥

तथा पृष्टः स वै राज्ञा प्रोवाच सकलं स्वकम्॥२२॥

प्रेत उवाच

कथयामि नृपश्रेष्ठ सर्वमेवाऽऽदितस्तव। प्रेतत्वे कारणं श्रुत्वा दयां कर्तुं ममाऽर्हसि॥२३॥
वैदिशं नाम नगरं सर्वसम्पत्समन्वितम्। नानाजनपदाकीर्णं नानारत्नसमाकुलम्।
नानापुण्यसमायुक्तं नानावृक्षसमाकुलम्॥२४॥
तत्राऽहं न्यवसं भूयो देवार्चनरतः सदा। वैश्यो जात्या सुदेवोऽहं नाम्ना विदितमस्तु ते॥२५॥
हव्येन तर्पिता देवाः कव्येन पितरस् तथा। विविधैर् दानयोगैश् च विप्राः सन्तर्पिता मया॥२६॥
आवाहाश् च विवाहाश् च मया वै सुनिवेशिताः। दीनानाथविशिष्टेभ्यो मया दत्तमनेकधा॥२७॥
तत् सर्वं विफलं तात मम दैवादुपागतम्। यथा मे निष्फलं जातं सुकृतं तद् वदामि ते॥२८॥

राजा से वैसा पूछे गए उस प्रेत ने अपना सभी वृत्तान्त बताया॥२२॥ प्रेत ने कहा— हे राजाओं में श्रेष्ठ, प्रारम्भ से सभी बातें आप को बताता हूँ। प्रेतत्व के प्राप्ति में कारण को सुनकर मेरे ऊपर आप दया करने में योग्य हैं॥२३॥ सभी सम्पत्तियों से युक्त, अनेक पुण्य कर्मों से युक्त तथा अनेक वृक्षों से परिपूर्ण वैदिश नाम से प्रसिद्ध नगर है॥२४॥ मैं उस नगर में सदाकाल बार बार देवताओं की पूजा में रमता हुआ निवास करता था। मैं जाति का वैश्य और नाम से सुदेव हूँ, यह आप को विदित हो॥२५॥ मुझ से हवियों से देवता, पिण्डादि से पितर तथा विभिन्न प्रकार के दानों के संयोजनों से ब्राह्मण तृप्त किए गए थे॥२६॥ मुझ से (विद्या-व्रतस्नातक अकिञ्चन कन्यार्थी ब्राह्मण वरों का) पाणिग्रहण और (गुणशीलवती वरार्थिनी अकिञ्चन ब्राह्मण-कन्याओं का) विवाह कराकर घरद्वार जमा दिया गया था। मुझ से दीन, अनाथ और विद्यागुणशीलों से विशिष्ट जनों को अनेक प्रकार के दान भी दिए गए थे॥२७॥ हे मान्यवर, मेरा वह सब धर्मकार्य दैवगति से विफल हुआ। मेरा वह सब धर्म जैसे निष्फल हुआ वह सब मैं आप को बताता हूँ॥२८॥

न मेऽस्ति सन्ततिस् तात न सुहृन् न च बान्धवः। न च मित्रं हि मे तादृग् यः कुर्यादौर्ध्वदेहिकम्।२९।
प्रेतत्वं सुस्थिरं तेन मम जातं नृपोत्तम। एकादशं त्रिपक्षं च षाण्मासिकमथाब्दिकम्।
प्रतिमास्यानि चाऽन्यानि एवं श्राद्धानि षोडश॥३०॥
यस्यैतानि न दीयन्ते प्रेतश्राद्धानि भूपते। प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि॥३१॥
एवं ज्ञात्वा महाराज प्रेतत्वादुद्धरस्व माम्। वर्णानां चाऽपि सर्वेषां राजा बन्धुरिहोच्यते॥३२॥
तन् मां तारय राजेन्द्र मणिरत्नं ददामि ते। यथा मम शुभाऽवाप्तिर् भवेन् नृपवरोत्तम॥३३॥
तथा कार्यं महाबाहो कृपा यदि ममोपरि। आत्मनश् च कुरु क्षिप्रं सर्वमेवौर्ध्वदेहिकम्॥३४॥

नृपतिरुवाच

कथं प्रेता भवन्तीह कृतैरप्यौर्ध्वदेहिकैः। पिशाचाश् च भवन्तीह कर्मभिः कैश् च तद् वद॥३५॥

हे मान्यवर, मेरी सन्तति नहीं है, हितैषी भी नहीं है, कोई बान्धव भी नहीं है। मेरा वैसा कोई मित्र भी नहीं है जो मेरे लिए और्ध्वदेहिक कर्म करे॥२९॥ हे राजाओं में उत्तम, उस कारण से मेरा प्रेतत्व सुस्थिर हुआ। एकादशाहश्राद्ध, त्रिपक्षश्राद्ध, ऊनषाण्मासिकश्राद्ध, ऊनाब्दिकश्राद्ध और अन्य बारह महीनों के मासिकश्राद्ध, इस प्रकार सोलह श्राद्ध होते हैं॥३०॥ हे राजन्, जिस के लिए ये प्रेतश्राद्ध नहीं दिए जाते हैं अन्य सैकडों श्राद्ध देने पर भी उस का प्रेतत्व स्थिर होता है॥३१॥ हे महाराज, ऐसी बात को जानकर आप मुझ को प्रेतत्व से उद्धृत करें। राजा इस लोक में सभी वर्णों का बन्धु कहा जाता है॥३२॥ हे राजाओं में श्रेष्ठ, इस कारण से आप मुझ को तारिए, मैं आप को उत्तम मणि देता हूँ। हे बडी बडी भुजाओं से युक्त श्रेष्ठ राजाओं से भी श्रेष्ठ, यदि मेरे ऊपर कृपा करना है तो जैसे मुझ को शुभफल प्राप्त होता है वैसा कार्य आप को करना चाहिए। आप अपना भी सम्पूर्ण और्ध्वदेहिक कृत्य (प्रेतकृत्य) शीघ्र ही कीजिए॥३३-३४॥ राजा ने कहा— और्ध्वदेहिक कर्म करने पर भी इस लोक में प्राणी कैसे प्रेत होते हैं? किन कर्मों से प्राणी इस लोक में पिशाच होते हैं? उस बात को बताओ॥३५॥

प्रेत उवाच

देवद्रव्यं च ब्रह्मस्वं स्त्रीबालधनसञ्चयम्। ये हरन्ति नृपश्रेष्ठ प्रेतयोनिं व्रजन्ति ते॥३६॥
तापसीं च सगोत्रां च अगम्यां ये भजन्ति हि। भवन्ति ते महाप्रेता अम्बुजानि हरन्ति ये॥३७॥
प्रवालवज्रहर्तारो ये च वस्त्राऽपहारकाः। तथा हिरण्यहर्तारः संयुगेऽसन्मुखागताः॥३८॥
कृतघ्ना नास्तिका रौद्रास् तथा साहसिका नराः। पञ्चयज्ञविनिर्मुक्ता महादानरताश्च ये॥३९॥
स्वामिद्रोहकरा मित्रब्रह्मद्रोहकराश् च ये। तीर्थपापकरा राजन् जायन्ते प्रेतयोनयः।
एवमाद्या महाराज जायन्ते प्रेतयोनयः॥४०॥

राजोवाच

कथं मुक्ता भवन्तीह प्रेतत्वात् त्वं च तेऽपि च। कथं चाऽपि मया कार्यमौर्ध्वदैहिकमात्मनः।

प्रेत ने कहा— हे राजाओं में श्रेष्ठ, देवता के द्रव्य का, ब्राह्मण के द्रव्य का, स्त्रियों के और अनाथ बालकों के धन के सञ्चय का जो लोग हरण करते हैं वे लोग प्रेतयोनि में जाते हैं॥३६॥ वानप्रस्थाश्रम में स्थित तपस्विनी स्त्री में, सगोत्रा स्त्री में और अन्य अगम्या स्त्री में जो गमन करते हैं वे महाप्रेत होते हैं; हे राजन्, जो शङ्खों का हरण करते हैं, जो मूँगे का और हीरे का हरण करते हैं, जो वस्त्रों का अपहरण करने वाले और सोने का हरण करने वाले हैं, जो युद्ध में पराङ्मुख होकर भाग जाते हैं, जो किए गए उपकार को भूलकर उस का विरुद्ध व्यवहार करने वाले, वेद को और वेदोक्त पारलौकिक फल को न मानने वाले, क्रोधी, दुष्कार्य में साहस करने वाले मनुष्य हैं, जो ब्रह्मयज्ञ-देवयज्ञ-भूतयज्ञ-पितृयज्ञ-मनुष्ययज्ञों से रहित, सुवर्णतुलादानादि महादानों के द्रव्यों का प्रतिग्रह करने में रमने वाले हैं, जो स्वामी का द्रोह करने वाले हैं, जो मित्र और ब्राह्मण का द्रोह करने वाले हैं, जो तीर्थों में पाप करने वाले हैं वे प्रेतयोनि में जाने वाले होते हैं। हे महाराज, ऐसे ही प्रकार के लोग प्रेतयोनि में जाने वाले होते हैं॥३७-४०॥ राजा ने कहा— तुम और उक्त प्रकार के अन्य प्रेत भी प्रेतयोनि

विधिना केन तत् कार्यं सर्वमेतद् वदस्व मे॥४१॥

प्रेत उवाच

शृणु राजेन्द्र सङ्क्षेपाद् विधिं नारायणात्मकम्। सच्छास्त्रश्रवणं विष्णोः पूजा सज्जनसङ्गतिः॥४२॥
प्रेतयोनिविनाशाय भवन्तीति मया श्रुतम्। अतो वक्ष्यामि ते विष्णुपूजां प्रेतत्वनाशिनीम्॥४३॥
सुवर्णद्वयमाहृत्य मूर्तिं भूप प्रकल्पयेत्। नारायणस्य देवस्य सर्वाभरणभूषिताम्॥४४॥
पीतवस्त्रयुगाच्छन्नां चन्दनागुरुचर्चिताम्। स्नापयेद् विविधैस् तोयैरधिवास्य यजेत् ततः॥४५॥
पूर्वे तु श्रीधरं देवं दक्षिणे मधुसूदनम्। पश्चिमे वामनं देवमुत्तरे च गदाधरम्॥४६॥
मध्ये पितामहं पूज्य तथा देवं महेश्वरम्। पूजयेच् च विधानेन गन्धपुष्पादिभिः पृथक्॥४७॥

से कैसे मुक्त होते हैं? मुझ को अपना और्ध्वदेहिक कार्य कैसे करना चाहिए? उस कार्य को कैसे सम्पन्न करना चाहिए? यह सब मुझ को बताओ॥४१॥ प्रेत ने कहा— हे राजाओं में श्रेष्ठ, सङ्क्षेप से नारायणबलि के विधि को सुनिए। वेदादि उत्तम शास्त्रों के ग्रन्थों का श्रवण, विष्णु की पूजा, सज्जनों का सङ्गत, ये कार्य प्रेतयोनि के निराकरण के लिए समर्थ होते हैं, यह बात मैं ने मुनियों से सुनी है। इस लिए मैं आप को प्रेतत्व का नाश करने वाली विष्णुपूजा का विधि बताउँगा॥४२-४३॥ हे राजन्, सोलह मासे के बराबर तौल वाले दो सुवर्णों को लेकर नारायणदेव की सम्पूर्ण आभूषणों से भूषित मूर्ति बनाए॥४४॥ उस मूर्ति को दो पीले वस्त्रों को पहनाकर श्रीखण्डचन्दन और अगरु से अनुलिप्त करके विभिन्न प्रकार के जलों से स्नान कराकर अधिवास कराके उस के बाद यजन करे॥४५॥ पूर्व दिशा में श्रीधर देव की, दक्षिण दिशा में मधुसूदन की, पश्चिम दिशा में वामन देव की, उत्तर दिशा में गदाधर की और मध्य में ब्रह्माजी की पूजा करके महेश्वर देव का भी शास्त्रविधान के अनुसार चन्दन और फूल इत्यादि से अलग अलग पूजा करे॥४६-४७॥

ततः प्रदक्षिणीकृत्य अग्नौ सन्तर्प्य देवताः। घृतेन दध्ना क्षीरेण विश्वान् देवांस् तथा नृप॥४८॥
ततः स्नातो विनीतात्मा यजमानः समाहितः। नारायणाऽग्रे विधिवत् स्वक्रियामौर्ध्वदैहिकीम्॥४९॥
आरभेत विनीतात्मा क्रोधलोभविवर्जितः। श्राद्धानि कुर्यात् सर्वाणि वृषस्योत्सर्जनं तथा॥५०॥
त्रयोदशानां विप्राणां वस्त्रच्छत्राण्युपानहौ। अङ्गुलीयकयुक्तानि भाजनासनभोजनैः॥५१॥
सान्नाश् च सोदका देया घटाः प्रेतहिताय वै। शय्यादानमथो दत्त्वा घटं प्रेतस्य निर्वपेत्॥५२॥
नारायणेति सन्नाम सम्पुटस्थं समर्चयेत्। एवं कृत्वाऽथ विधिवत् सदा शुभफलं लभेत्॥५३॥

राजोवाच

कथं प्रेतघटं कुर्याद् दद्यात् केन विधानतः। ब्रूहि सर्वानुकम्पार्थं घटं प्रेतविमुक्तिदम्॥५४॥

हे राजन्, तब प्रदक्षिणा करके अग्नि में देवताओं को तृप्त भी करके घी, दही और दूध से विश्वेदेवों को भी सन्तृप्त करे॥४८॥ उस के बाद नहाया हुआ, दान्त इन्द्रियों से युक्त तथा एकाग्रचित्त वाला यजमान नारायण के आगे शास्त्रोक्त विधि से अपनी औध्र्वदेहिक क्रिया का आरम्भ करे। शान्त मन से युक्त और क्रोध से तथा लोभ से रहित होकर सभी श्राद्धों को और वृषोत्सर्गकर्म को सम्पन्न करे॥४९-५०॥ तेरह ब्राह्मणों को अँगूठी से युक्त तथा भाजन, आसन और भोजन से सहित वस्त्र, छत्र और जूता दे॥५१॥ प्रेत के हित के लिए अन्न से युक्त जलपूर्ण घडे भी देने चाहिए। उस के बाद शय्यादान देकर प्रेतघट का दान भी दे॥५२॥ नारायण इस सत् नाम का सम्पुट में रखकर अच्छी तरह पूजा करे। शास्त्रोक्त विधि से इस प्रकार पूजा करके सदैव शुभ फल प्राप्त होगा॥५३॥ राजा ने कहा– प्रेतघट कैसे बनाए? और विधान से किस प्रकार से दे? सभी लोगों के प्रति करुणा से प्रेत को प्रेतयोनि से मुक्ति देने वाले प्रेतघट को बताओ॥५४॥

प्रेत उवाच

साधु पृष्टं महाराज कथयामि निबोध ते। प्रेतत्वं न भवेद् येन दानेन सुदृढेन च ॥५५॥
दानं प्रेतघटं नाम सर्वाऽशुभविनाशनम्। दुर्लभं सर्वलोकानां दुर्गतिक्षयकारकम् ॥५६॥
सन्तप्तहाटकमयं तु घटं विधाय ब्रह्मेशकेशवयुतं सह लोकपालैः।
क्षीराज्यपूर्णविवरं प्रणिपत्य भक्त्या विप्राय देहि तव दानशतैः किमन्यैः ॥५७॥
ब्रह्मा मध्ये तथा विष्णुः शङ्करः शङ्करोऽव्ययः। प्राच्यादिषु च तत्कण्ठे लोकपालान् क्रमेण तु ॥५८॥
सम्पूज्य विधिवद् राजन् धूपैः कुसुमचन्दनैः। ततो दुग्धाज्यसहितं घटं देयं हिरण्मयम् ॥५९॥
सर्वदानाधिकं चैतन् महापातकनाशनम्। कर्तव्यं श्रद्धया राजन् प्रेतत्वविनिवृत्तये ॥६०॥

श्रीभगवानुवाच

एवं सञ्जल्पतस् तस्य प्रेतेन नियतात्मनः। सेनाऽऽजगामाऽनुपदं हस्त्यश्वरथसङ्कुला ॥६१॥

प्रेत ने कहा— हे महाराज, आप ने ठीक पूछा, आप को बताता हूँ, समझिए; जिस सुदृढ दान से प्रेतत्व नहीं होगा वह प्रेतघटदान नाम का दान सम्पूर्ण अशुभों को नाश करने वाला है॥५५-५६॥ वारंवार तपाने से निर्मल और शुद्ध हुए चमकने वाले सोने से घडा बनाकर, उस में लोकपालों के साथ ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर को आवाहित करके दूध और घी से भरकर भक्तिपूर्वक दण्डवत् प्रणाम करके ब्राह्मण को दीजिए, तब आप को अन्य सैकडों दान देने का कोई प्रयोजन नहीं रहेगा॥५७॥ बीच में ब्रह्माजी, विष्णु और कल्याणकारी अव्यय शङ्कर पूजे जाने चाहिए। हे राजन्, उस घट के कण्ठ देश में पूर्वादि दिशा में क्रम से लोकपालों का शास्त्रोक्त विधि से धूप, फूल और चन्दन से पूजा करके दूध और घी से युक्त स्वर्णघट देना चाहिए॥५८-५९॥ हे राजन्, सब दानों से श्रेष्ठ और ब्रह्महत्यादि महापातकों को भी नष्ट करने वाला यह दान प्रेतत्व के निवारण के लिए श्रद्धा से करना चाहिए॥६०॥ श्रीभगवान् ने कहा— जिस समय में राजा प्रेत के साथ

ततो बले समायाते दत्त्वा राज्ञे महामणिम्। नमस्कृत्य पुनः प्रार्थ्य प्रेतोऽदर्शनमीयिवान्॥६२॥
तस्माद् वनाद् विनिष्क्रम्य राजाऽपि स्वपुरं ययौ। स्वपुरं स समासाद्य सर्वं तत् प्रेतभाषितम्॥६३॥
चकार विधिवत् पक्षिन्नौर्ध्वदेहादिकं विधिम्। तस्य पुण्यप्रदानेन प्रेतो मुक्तो दिवं ययौ॥६४॥
श्राद्धेन परदत्तेन गतः प्रेतोऽपि सद्गतिम्। किं पुनः पुत्त्रदत्तेन पिता यातीति चाऽद्भुतम्॥६५॥
इतिहासमिमं पुण्यं शृणोति श्रावयेच्च च यः। न तौ प्रेतत्वमायातः पापाचारयुतावपि॥६६॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे बभ्रुवाहन-प्रेतसंवादे प्रेतत्वहेतु-तन्निवृत्त्युपायनिरूपणं नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥

इस प्रकार बात कर रहा था उसी समय में जितेन्द्रिय उस राजा की हाथी, घोडे और रथों से पूर्ण सेना पीछे पीछे चलती हुई आ गई॥६१॥ तब सेना आने पर राजा को महामणि देकर नमस्कार करके फिर भी अपने तारण के लिए काम कर देने की प्रार्थना करके प्रेत अदृश्य हो गया॥६२॥ हे पक्षिन्, उस वन से निकलकर राजा भी अपने नगर में गया। उस ने अपने नगर में पहुँचकर प्रेत से बताए गए उस सम्पूर्ण और्ध्वदेहिक कर्मादि के विधि को शास्त्रोक्त पद्धति से सम्पन्न किया। उस राजा से उक्त कर्मों के पुण्य को प्रेत को दिए जाने से प्रेतयोनि से मुक्त वह प्रेत स्वर्गलोक को गया॥६३-६४॥ दूसरे पुरुष से दिए गए श्राद्ध से प्रेत भी सद्गति में गया, पुत्त्र से दिए गए श्राद्ध से पिता का सद्गति में जाने में आश्चर्य की कौन सी बात है?॥६५॥ जो भी पुरुष इस इतिहास को सुनेगा और जो भी सुनाएगा वे दोनों पुरुष पापाचार से युक्त होने पर भी प्रेतयोनि में नहीं जाते हैं॥६६॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में तथा बभ्रुवाहन और प्रेत के संवाद में प्रेतत्व का हेतु और प्रेतत्वनिवारण के उपाय का निरूपण करने वाला सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥२७॥

अथ अष्टाविंशोऽध्यायः

गरुड उवाच

सर्वेषामनुकम्पार्थं ब्रूहि मे मधुसूदन। प्रेतत्वान् मुच्यते येन दानेन सुकृतेन वा॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु दानं प्रवक्ष्यामि सर्वाऽशुभविनाशनम्।

सन्तप्तहाटकमयं घटकं विधाय ब्रह्मेशकेशवयुतं सह लोकपालैः।

क्षीराज्यपूर्णविवरं प्रणिपत्य भक्त्या विप्राय देहि तव दानशतैः किमन्यैः॥२॥

गरुड उवाच

किमेतत् कथितं देव विस्तरेण वदस्व मे। आमुष्मिकीं क्रियां देव उत्क्रान्तिसमयादनु॥३॥

गरुड ने कहा— हे मधुदैत्य के विनाशक, जिस दान से अथवा सुकर्म से प्राणी प्रेतभाव से मुक्त होता है उस दान को अथवा सुकर्म को सभी प्राणियों के प्रति दया करके मुझ को बताइए॥१॥ श्रीकृष्ण ने कहा— सभी पापों का विनाश करने वाले दान को बताऊँगा सुनो। वारंवार तपाने से निर्मल और शुद्ध हुए चमकने वाले सोने से घडा बनाकर, उस में लोकपालों के साथ ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर को आवाहित करके दूध और घी से भरकर भक्तिपूर्वक दण्डवत् प्रणाम करके ब्राह्मण को दे दो, तब तुम को अन्य सैकडों दान देने का कोई प्रयोजन नहीं रहेगा॥२॥ गरुड ने कहा— हे देव, आप ने यह क्या कहा, प्राण जाने के समय से लेकर किए जाने वाले पारलौकिक कर्म को आप मुझ को विस्तार से बताइए॥३॥

संसारे साधु मे नाथ ब्रूहि कृत्यं जनार्दन। यथा कार्या नरैः सम्यक् क्रिया चैवौर्ध्वदैहिकी ॥४॥
कथं प्रेता महाकाया रौद्ररूपा भयानकाः। सम्भवन्ति सुरश्रेष्ठ कर्मभिः कैः शुभाऽशुभैः ॥५॥
पिशाचाः सम्भवन्तीह कस्येदं कर्मणः फलम्। तन् मे कथय देवेश अहमिच्छामि वेदितुम् ॥६॥
भूम्यां प्रक्षिप्यते कस्मात् पञ्चरत्नं कुतो मुखे। अधस्ताच्च तिला दर्भाः पादौ याम्यां व्यवस्थितौ ॥७॥
किमर्थं मण्डलं भूमौ गोमयेनोपलिप्यते। किमर्थं स्मर्यते विष्णुः विष्णुसूक्तं च पठ्यते ॥८॥
किमर्थं पुत्त्रपौत्त्राश् च तस्य तिष्ठन्ति चाऽग्रतः। किमर्थं दीपदानं च किमर्थं विष्णुपूजनम् ॥९॥
किमर्थमातुरो दानं ददाति द्विजपुङ्गवे। बन्धून् मित्राण्यमित्रांश् च क्षमापयति तत् कथम् ॥१०॥
तिला लोहं हिरण्यं च कार्पासं लवणं तथा। सप्तधान्यं क्षितिर् गावो दीयन्ते केन हेतुना ॥११॥

हे नाथ, हे जनार्दन, संसार में करने योग्य कर्म को मुझ को अच्छी तरह बताइए, मनुष्यों को औध्वदेहिक क्रिया अच्छी तरह जैसे करनी चाहिए वह भी बताइए॥४॥ हे देवताओं में श्रेष्ठ, बडे शरीर वाले क्रूररूप वाले और भयङ्कर प्रेत कैसे और शुभ अथवा अशुभ किन कर्मों से हो जाते हैं?॥५॥ इस संसार में पिशाच भी होते हैं। यह किस कर्म का फल है? हे देवों के मालिक, वह मुझ को बताइए, मैं जानना चाहता हूँ॥६॥ अन्तकाल में मनुष्य भूमि में क्यों रखा जाता है? मुख में पञ्चरत्न (सोना, चाँदी, मोती, राजावर्त [लाजवर्द] और मूँगा) क्यों रखे जाते हैं? नीचे तिल और कुश क्यों रखे जाते हैं? पैर क्यों दक्षिण दिशा में किए जाते हैं?॥७॥ मण्डल क्यों बनाया जाता है? भूमि में गोबर से उपलेपन क्यों किया जाता है? विष्णु का स्मरण क्यों किया जाता है? विष्णुसूक्त का पाठ क्यों किया जाता है?॥८॥ मरते हुए मनुष्य के आगे पुत्र और पौत्र क्यों बैठते हैं? दीपदान किस लिए किया जाता है? विष्णु की पूजा किस लिए की जाती है? मरता हुआ रोगी श्रेष्ठ ब्राह्मण को दान क्यों देता है? बन्धुओं को मित्रों को और शत्रुओं को भी क्षमा करने के लिए प्रार्थना करता है, वह कैसे?॥९-१०॥ तिल, लोहा, सोना, कार्पास (रुई), नमक, सप्तधान्य (जौ, धान, तिल, कँगनी, मूँग, चना और साँवा), भूमि, गाय किस कारण से दिए जाते हैं?॥११॥

कथं च म्रियते जन्तुर् मृतस्य च कुतो गतिः। अतिवाहशरीरं च कथं हि श्रयते तदा॥१२॥
शवं स्कन्धे वहेत् पुत्त्रो वह्निदाता च पौत्त्रकः। किमर्थं देवदेवेश आज्येनाऽभ्यञ्जनं कुतः॥१३॥
यमसूक्तं किमर्थं च उदीचीं दिशमाहरेत्। पानीयमेकवस्त्रेण सूर्यबिम्बनिरीक्षणम्॥१४॥
यवसर्षपदूर्वाश् च पाषाणे निम्बचर्वणम्। वस्त्रं नरश्च नारी च विदध्यादधरोत्तरम्॥१५॥
अन्नाद्यं गृहमागत्य भोक्तव्यं गोत्रिभिः सह। नवकानि च पिण्डानि किमर्थं वितरेत् सुतः॥१६॥
किमर्थं चत्वरे दुग्धं पात्रेऽपक्वे च मृन्मये। काष्ठत्रयं गुणे बद्ध्वा कृत्वा रात्रौ चतुष्पथे॥१७॥
निशायां दीयते दीपो यावदब्दं दिनेदिने। दाहोदकं किमर्थं च संवादः स्वजनैः सह॥१८॥
भगवन्नतिवाहस्य नवपिण्डैस् तु किं भवेत्। कथं देयं पितृभ्यश् च वाहस्याऽऽवाहनं कथम्।

प्राणी कैसे मरता है? मरने वाले की गति किधर होती है? उस समय में अतिवाह शरीर में कैसे आश्रय लेता है?॥१२॥ शव को पुत्त्र ही कन्धे में क्यों ढोए? शवदाह के लिए अग्नि निष्पन्न करके देने वाला पौत्त्र ही क्यों हो? हे देवताओं के भी देवताओं के मालिक, शव का घी से लेपन किस लिए और कैसे करे?॥१३॥ यमसूक्त का जप क्यों किया जाता है? शव को उत्तर दिशा की ओर ले जाना क्यों? जलाञ्जलिदान एकवस्त्र होकर क्यों दिया जाता है? सूर्यबिम्ब का निरीक्षण क्यों किया जाता है?॥१४॥ जौ, सरसों और दूव का स्पर्श क्यों? पत्थर पर पग क्यों? नीम की पत्ती को दाँतों से काटना क्यों? जलाञ्जलिदान के समय में स्त्री और पुरुष दोनों एक अधोवस्त्र को ही उत्तरवस्त्र के रूप में भी क्यों प्रयुक्त करते हैं?॥१५॥ घर में आकर गोत्रियों के साथ में ही भोजन करना क्यों? पुत्त्र नव पिण्डों को क्यों दे?॥१६॥ चत्वर में मिट्टी के कच्चे पात्र में दूध क्यों दिया जाता है। रस्सी से तीन काष्ठों को बाँधकर उन को खडा करके उन के ऊपर रखकर रात में चौराहे पर प्रतिदिन वर्षपर्यन्त दीपक क्यों दिया जाता है? दाहोदक क्यों और बन्धुजनों के साथ में संवाद क्यों?॥१७-१८॥ हे भगवन्, नवपिण्डों से अतिवाह शरीर को क्या होगा? पितरों को कैसे देना चाहिए? पितरों को वहन करके लाने वालों का

इदं च क्रियते देव कस्मात् पिण्डं प्रदापयेत्॥१९॥
किं तत् प्रदीयते तस्य पिण्डदानादनंन्तरम्। अस्थिसञ्चयनं चैव शय्यादानं किमर्थकम्॥२०॥
द्वितीयेऽह्नि कुतः स्नानं चतुर्थे साग्निके द्विजे। दशमे किं मलस्नानं कार्यं सर्वजनैः सह॥२१॥
कस्मात् तैलोद्वर्तनं च स्कन्धवाहान् गृहं नयेत्। तैलमुद्वर्तनं चाऽपि दद्युः स्थूलजलाश्रये॥२२॥
दशमेऽहनि यः पिण्डस् तं दद्यादामिषेण तु। पिण्डं चैकादशे कस्माद् वृषोत्सर्गः कथं भवेत्॥२३॥
श्राद्धानि षोडशैतानि अब्दं यावत् कुतो वद। अन्नादि चोदकेनैव षष्ट्यधिकशतत्रयम्॥२४॥
दिनेदिने च दातव्यं घटान्नं प्रेततृप्तये। प्राप्ते काले च म्रियते अनित्यो मानवः प्रभो॥२५॥
छिद्रं तु नैव पश्यामि कुतो जीवः स निर्गतः। कुतो गच्छन्ति भूतानि पृथिव्यापो मनस् तथा॥२६॥

आवाहन कैसे करना चाहिए? हे देव, यह नवक पिण्डदान किया जाता है तो फिर और पिण्ड भी क्यों दिए जायं? ॥१९॥ पिण्डदानादि देने के बाद प्रेत को दिए जाने वाले पदार्थ क्या हैं? अस्थिसञ्चयन कृत्य और शय्यादान किस लिए किया जाता है? ॥२०॥ द्वितीय दिन में स्नान क्यों? श्रौताग्नि से युक्त द्विज के मृत्यु में चतुर्थ दिन में स्नान क्यों? दशम दिन में सभी बन्धुओं के साथ मलप्रक्षालन के लिए स्नान क्यों किया जाता है? ॥२१॥ कन्धे पर शव को ले जाने वालों के घर में दशम दिन में तेल और उबटन क्यों पहुँचाया जाता है? स्थलों में और जलाशयों में भी तैल और उबटन क्यों दे? ॥२२॥ दशम दिन में जो पिण्ड होता है वह और एकादशाह में दिए जाने वाले पिण्ड भी आमिष (मांस) से क्यों दिया जाता है? वृषोत्सर्ग कैसे होगा? ॥२३॥ वर्षपर्यन्त ये सोलह श्राद्ध किस कारण से किए जाते हैं? बताइए। जल के साथ अन्नादि भी तीन सौ साठ गिनकर क्यों दिए जाते हैं? ॥२४॥ प्रेत की तृप्ति के लिए प्रतिदिन जलघट और अन्न कैसे दिया जाना चाहिए? हे प्रभो, समय आने पर अनित्य मनुष्य मरता है, किन्तु मैं कोई छिद्र नहीं देखता हूँ, वह जीव कहाँ से

तेजो वदस्व मे नाथ वायुराकाशमेव च। वायवश् चैव पञ्चैते कथं गच्छन्ति चात्ययम्॥२७॥
लोभमोहादयः पञ्च शरीरे चैव तस्कराः। तृष्णा कामोऽप्यहङ्कारः कुतो यान्ति जनार्दन॥२८॥
पुण्यं वाऽप्यथ वाऽपुण्यं यत्किञ्चित् सुकृतं तथा। नष्टे देहे कुतो यान्ति दानानि विविधानि च॥२९॥
सपिण्डनं किमर्थं च पूर्णे संवत्सरेऽपि वा। प्रेतस्य मेलनं सार्धं कैः समं तत्र को विधिः॥३०॥
ये दग्धा ये त्वदग्धाश्च पतिता ये नरा भुवि। यानि चान्यानि भूतानि तेषामन्ते भवेच्च किम्॥३१॥
पापिनो ये दुराचारा मुद्गलत्वं च ये गताः। आत्मघाती ब्रह्महा च स्तेयी विश्वासघातकः॥३२॥
कपिलां यः पिबेच् छूद्रो यः पठेद् वैदिकाक्षरम्। धारयेद् वा ब्रह्मसूत्रं का गतिस् तस्य माधव॥३३॥
विप्रस्य ब्राह्मणी भार्या सङ्गृहीता यदा भवेत्। तस्मात् पापाच् च भीतोऽहं तन् मे वद जगत्पते।

निकल गया? मनुष्यशरीर के आकाशादि महाभूत कहाँ जाते हैं? पृथिवी, जल, मन, तेज, वायु और आकाश किधर जाते हैं? हे नाथ, मुझ को बताइए। प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान ये पाँच वायु कैसे विनाश को प्राप्त होते हैं?॥२५-२७॥ हे जनार्दन, शरीर में रहने वाले चोर लोभ, मोह, तृष्णा, काम और अहङ्कार ये पाँच किधर जाते हैं?॥२८॥ पुण्य अथवा पाप तथा जो कोई सुकर्म तथा नाना प्रकार के दान भी शरीर नष्ट होने पर किधर जाते हैं?॥२९॥ वर्ष पूर्ण होने पर सपिण्डीकरण किस लिए किया जाता है? प्रेत का मेलन किन किन के साथ होता है? उस में पद्धति क्या है?॥३०॥ जो पतित मनुष्य इस लोक में मर जाता है और कोई दाहसंस्कार पाता है और कोई नहीं, उन का अन्त में परिणाम क्या होगा?॥३१॥ जो दुराचारी पापी हैं और जो पिशाचत्व में प्राप्त हुए हैं वे, आत्महत्या करने वाले, ब्रह्महत्या करने वाले, चोरीरूपी महापाप करने वाले, विश्वासघाती, जो शूद्र कपिला गाय का दूध पिए, जो शूद्र वेद का अक्षर पढे और जो शूद्र ब्रह्मसूत्र (जनेऊ) पहने वह, हे माधव, इन सब लोगों की क्या गति होगी?॥३२-३३॥ जिस समय में अपने गृह्यसूत्र में बताए गए विधि से किए गए विवाह के विना सङ्गृहीता ब्राह्मणी ब्राह्मण की गृहिणी होगी उस पाप से मैं डरा हुआ हूँ, उस पाप का फल क्या होगा?

सर्वमेतन् मया पृष्टो वद लोकहिताय वै॥३४॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे और्ध्वदेहिककर्मकाल-क्रियमाणनानादानादिफल-प्रश्ननिरूपणं नामाऽष्टाविंशोऽध्यायः॥

अथ ऊनत्रिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

साधु पृष्टं त्वया भद्र मानुषाणां हिताय वै। शृणुष्वाऽवहितो भूत्वा सर्वमेवौर्ध्वदैहिकम्॥१॥
सम्यग् विभेदरहितं श्रुति-स्मृति-समुद्धृतम्। यन् न दृष्टं सुरैः सेन्द्रैर् योगिभिर् योगचिन्तकैः॥२॥

हे जगत् के पालक, उस बात को मुझे बताइए। मुझ से पूछे गए इन सब बातों को लोक के हित के लिए बताइए॥३४॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में और्ध्वदेहिककर्म के काल के और किए जा रहे दानादि के नाना प्रकार के फल के विषय के प्रश्नों का निरूपण करने वाला अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥२८॥

श्रीकृष्ण ने कहा– हे कल्याणकामिन्, तुम ने मनुष्यों के हित के लिए अच्छा पूछा, सावधान होकर सभी और्ध्वदेहिक कृत्यों को सुनो॥१॥ हे वत्स, हे महाभाग्ययुक्त विनतापुत्र, तुम मेरे भक्त हो, इस लिए विभेद से रहित, वेद और स्मृतियों से समुद्धृत, जिस को इन्द्रसहित योगियों ने और

गुह्याद् गुह्यतरं वत्स नाऽऽख्यातं कस्यचित् क्वचित्। भक्तस् त्वं हि महाभाग सर्वं ते कथयाम्यहम्॥३॥
अपुत्रस्य गतिर् नास्ति स्वर्गो नैव च नैवं च। येन केनाऽप्युपायेन कार्यं जन्म सुतस्य च॥४॥
तारयेन् नरकात् पुत्रो यदि मोक्षो न विद्यते। दाहः पुत्रेण कर्तव्यो देयः पौत्रेण पावकः॥५॥
तिलैर् दर्भैश् च भूम्यां वै कुटी ऋतुमती भवेत्। पञ्च रत्नानि वक्त्रे तु येन जीवः प्ररोहति॥६॥
लिप्यात् तु गोमयैर् भूमिं तिलान् दर्भांश् च निःक्षिपेत्। तस्यामेवातुरो मुक्तः सर्वं दहति पातकम्॥७॥
दर्भतूली नयेत् स्वर्गं संस्थितं नाऽत्र संशयः। दर्भास् तत्र क्षिपेद् भूम्यां तिलयुक्तान् न संशयः॥८॥
सर्वत्र वसुधा पूता यत्र लेपो न विद्यते। यत्र लेपः स्थितस् तत्र पुनर्लेपेन शुध्यति॥९॥

योगचिन्तकों ने भी नहीं देखा है, जिस को अन्य किसी को भी नहीं बताया गया है ऐसा गुह्य से भी गुह्य उस सम्पूर्ण और्ध्वदेहिक विधि को मैं तुम को अच्छी तरह बताता हूँ॥२-३॥ पुत्रहीन मनुष्य की सद्गति नहीं, स्वर्ग भी नहीं नहीं, इस हेतु जिस किसी भी उपाय से पुत्र का जन्म कराना चाहिए॥४॥ यदि पुत्र से मोक्ष न भी हो सकता है तो भी पुत्र नरक से उत्तारण तो करेगा, मृत व्यक्ति का दाह पुत्र से किया जाना चाहिए, और शवदाह के लिए आवश्यक अग्नि को निष्पन्न करके दाह करने वाले को देने का काम पौत्र से होना चाहिए॥५॥ मरते हुए मनुष्य की शयनभूमि में तिल और कुश बिछाने से भूमि मृतपुरुष के अतिवाहशरीर के उत्पादन के लिए ऋतुमती होगी। मरते हुए मनुष्य के मुख में पञ्चरत्न रखे जाते हैं, जिस से जीव का प्ररोहण होता है॥६॥ भूमि गोबर से लिपनी चाहिए, उस भूमि में तिल और कुश रखना चाहिए, उस भूमि में रखा गया आतुर सब पाप को जला देता है॥७॥ कुश का बिछौना उस में रहे हुए आतुर को स्वर्ग ले जाएगा, इस में सन्देह नहीं है। इस लिए वहाँ तिलों से युक्त कुशों को रखना ही चाहिए, इस में सन्देह नहीं॥८॥ जहाँ लेप नहीं है वहाँ सर्वत्र भूमि शुद्ध होती है, जहाँ लेप है वहाँ फिर लेप करने से भूमि शुद्ध हो जाती है॥९॥

यातुधानाः पिशाचाश् च राक्षसाः क्रूरकर्मिणः। अलिप्ते आतुरं मुक्तं विशन्त्येते न संशयः॥१०॥
नित्यहोमं तथा श्राद्धं विप्राणां पादशोधनम्। मण्डलेन विना भूम्यां कुर्वन्त्येतच् च निष्फलम्॥११॥
आतुरो मुच्यते नैव मण्डलेन विना भुवि। ब्रह्मा रुद्रश् च विष्णुश् च श्रीर् हुताशन एव च।
मण्डले चोपतिष्ठन्ति तस्मात् कुर्वीत मण्डलम्॥१२॥
अन्यथा म्रियते यस्तु बालो वृद्धो युवाऽपि वा। योन्यन्तरं न वै गच्छेत् क्रीडेत वायुना सह॥१३॥
मिश्रितं लोहताम्रं तु तथैव जन्म जायते। तस्यैवं वायुभूतस्य न श्राद्धं नोदककक्रिया॥१४॥
मम स्वेदसमुद्भूतास् तिलास् तार्क्ष्य पवित्रकाः। असुरा दानवा दैत्या नश्यन्ति तिलदानतः॥१५॥
तिलाः श्वेतास् तिलाः कृष्णास् तिला गोमूत्रसन्निभाः। ते मे दहन्तु पापानि शरीरेण कृतानि च॥१६॥

लेप से रहित भूमि में छोडे गए आतुर में यातुधान (यक्ष), पिशाच और राक्षस इत्यादि क्रूर कर्म करने वाले भूत घूस जाते हैं, इस में सन्देह नहीं॥१०॥ मण्डल (जल-भस्मादि से बनाए गए घेरे) के विना भूमि में नित्य होम, श्राद्ध, ब्राह्मणों का पादप्रक्षालन करते हैं तो यह सब निष्फल हो जाता है॥११॥ आतुर भी मण्डल के विना भूमि में नहीं छोडा जाता है। ब्रह्माजी, महेश्वर, विष्णु, श्री और अग्नि भी मण्डल में उपस्थित होते हैं, इस लिए मण्डल बनाए॥१२॥ यदि कोई बालक अथवा वृद्ध अथवा युवक भी इस रीति को छोडकर मरता है तो वह दूसरी योनि में नहीं जाएगा, वायु के साथ में ही भटकता रहेगा॥१३॥ जैसा मिश्रित लोहा और ताँवा होता है वैसा ही जन्म होता है, इस प्रकार वायु रूप में प्राप्त उस मृतक की न तो श्राद्ध सफल होगा, न तो उदकदानादि क्रिया ही सफल होगी॥१४॥ हे गरुड, मेरे पसीने से उत्पन्न तिल पवित्र हैं, इस लिए असुर, दानव और दैत्य तिल देने से भागते हैं (द्रष्टव्य– जीवानन्दसंस्करण १९।१५)॥१५॥ तिल सफेद भी होते हैं, तिल काले भी होते हैं, तिल गोमूत्रवर्ण के भी होते हैं, वे तिल मेरे शरीर से किए गए पापों का दहन करे॥१६॥

एक एव तिलद्रोणो हेमद्रोणतिलैः समः। तर्पणे दानहोमे च दत्तो भवति चाऽक्षयः॥१७॥
दर्भा मल्लोमसम्भूतास् तिलाः स्वेदसमुद्भवाः। तृप्ताः स्युर् देवता दानैः श्राद्धेन पितरस्तथा।
प्रयोगविधिना ब्रह्मा विश्वं चाऽप्युपजीवनात्॥१८॥
सव्ययज्ञोपवीतेन ब्रह्माद्यास् तृप्तिमाप्नुयुः। अपसव्येन तृप्यन्ति पितरो देव-देवताः॥१९॥
दर्भस्य त्वादितो ब्रह्मा दर्भमध्ये तु केशवः। दर्भाग्रे शङ्करं विद्यात् त्रयो देवाः कुशे स्थिताः॥२०॥
विप्रा मन्त्राः कुशा वह्निस्तुलसी च खगेश्वर। नैते निर्माल्यतां यान्ति क्रियमाणाः पुनःपुनः॥२१॥
कुशाः पिण्डेषु निर्माल्या ब्राह्मणाः प्रेतभोजने। मन्त्राः शूद्रेषु पतिताश् चितायाश् च हुताशनः॥२२॥
तुलसी ब्राह्मणा गावो विष्णुरेकादशी खग। पञ्च प्रवहणान्येव भवाब्धौ मज्जतां सताम्॥२३॥

तिल का एक ही द्रोण (बत्तीस सेर) सोने के कणों के अनेक द्रोणों से तुल्य है। तर्पण में, दानों में और होम में भी लगाया गया तिल अक्षय होता है॥१७॥ कुश मेरे (विष्णु के) रोमों से उत्पन्न हुए हैं और तिल मेरे पसीने से उत्पन्न हुए हैं। उन के दानों से देवता और श्राद्ध से पितर लोग तृप्त होते हैं। और्ध्वदेहिकादिकृत्यों के शुद्ध प्रयोगविधि से ब्रह्माजी तृप्त होते हैं, इन कृत्यों का विविध रूप से उपजीवन करने से सम्पूर्ण विश्व ही तृप्त होता है॥१८॥ सव्य यज्ञोपवीतादि से ब्रह्मादि देवता तृप्ति पाएंगे, अपसव्य से देवताओं के भी देवता पितर लोग तृप्त होते हैं (द्रष्टव्य– जीवानन्दसंस्करण १९।१८) ॥१९॥ दर्भ के आदि (मूल) में ब्रह्माजी, दर्भ के मध्य में विष्णु रहते हैं, दर्भ के अग्रभाग में तो शङ्कर को रहने वाला माने, ये तीन देव कुश में रहे हुए हैं॥२०॥ हे पक्षियों के मालिक ब्राह्मण, मन्त्र, कुश, अग्नि और तुलसी ये वारंवार प्रयोग में लाने पर भी बासी नहीं होते हैं॥२१॥ पिण्ड में प्रयुक्त होने पर कुश बासी हो जाते हैं, प्रेतश्राद्ध में भोजन करने से ब्राह्मण बासी हो जाते हैं, शूद्रों में पडे हुए मन्त्र बासी हो जाते हैं और चिता का अग्नि बासी हो जाता है॥२२॥ हे पक्षिन् तुलसी, ब्राह्मण, गाय, विष्णु और एकादशी ये पाँच संसारसागर में डूबते हुए लोगों के लिए नौकाएँ हैं॥२३॥

विष्णुरेकादशी गीता तुलसीविप्रधेनवः। अपारे दुर्गसंसारे षट्पदी मुक्तिदायिनी ॥२४॥
तिलाः पवित्रास् त्रिविधा दर्भाश्च तुलसीदलम्। निवारयन्ति चैतानि दुर्गतिं यान्तमातुरम् ॥२५॥
हस्ताभ्यामुद्धृतैर् दर्भैस् तोयेन प्रोक्षयेद् भुवम्। मृत्युकाले क्षिपेद् दर्भानातुरस्य करद्वये ॥२६॥
दर्भेषु क्षिप्यते योऽसौ दर्भैस् तु परिवेष्टितः। विष्णुलोकं स वै याति मन्त्रहीनोऽपि मानवः ॥२७॥
दर्भतूलीगतो भूमौ दर्भपाणिस्तु यो मृतः। प्रायश्चित्तविशुद्धोऽसौ संसारेऽपारसागरे ॥२८॥
गोमयेनोपलिप्ते तु दर्भस्याऽऽस्तरणे स्थितः। तत्र दत्तेन दानेन सर्वं पापं व्यपोहति ॥२९॥
लवणं तद् रसं दिव्यं सर्वकामप्रदं नृणाम्। यस्मादन्नरसाः सर्वे नोत्कटा लवणं विना ॥३०॥
पितृणां च प्रियं भव्यं तस्मात् स्वर्गप्रदं भवेत्। विष्णुदेहसमुद्भूतो यतोऽयं लवणो रसः ॥३१॥
विशेषाल् लवणं दानं तेन शंसन्ति योगिनः। ब्राह्मणक्षत्रियविशां स्त्रीणां शूद्रजनस्य च ॥३२॥

इस असार दुष्पार संसार में विष्णु, एकादशी, गीता, तुलसी, ब्राह्मण और गाय इन छः वस्तुओं का समुदाय मुक्तिदायक है॥२४॥ तीन प्रकार के तिल पवित्र हैं, कुश और तुलसीपत्र भी पवित्र हैं, ये दुर्गति में जा रहे आतुर को दुर्गति में जाने से रोकते हैं॥२५॥ हाथों से लिए गए कुशों के द्वारा जल से भूमि का प्रोक्षण करे, मृत्यु के समय में आतुर के दोनों हाथों में कुश रख दे॥२६॥ जो कुशों में रखा जाता है और जो कुशों से घिरा जाता है वह मनुष्य मन्त्रहीन होने पर भी विष्णुलोक को जाता है॥२७॥ भूमि में कुश के बिछौने में रहकर और हाथों में कुशों को लेकर जो मरा है वह इस असार-संसार में प्रायश्चित्तों से शुद्ध हो गया होता है॥२८॥ गोबर से लिपे गए स्थल में कुश के बिछौने में अवस्थित मनुष्य वहाँ दिए गए दान से सभी पापों को दूर करता है॥२९॥ क्योंकि लवण (नमक) के अभाव में अन्न के सभी रस स्वादिष्ट रूप में अभिव्यक्त नहीं हो सकते हैं इसलिए वह दिव्य लवणरस दान में देने से मनुष्यों को सभी कामनाओं की पूर्ति करने वाला होता है॥३०॥ क्योंकि यह लवणरस विष्णु के देह से उत्पन्न हुआ है और पितरों का भी प्रिय और हितकारी है, इस लिए यह दान में देने से स्वर्ग देने वाला होता है॥३१॥ इस लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय,

आतुराणां यदा प्राणाः न यान्ति वसुधातले। लवणं तु तदा देयं द्वारस्योद्घाटनं दिवः॥३३॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे और्ध्वदेहिककर्मणि पुत्त्र-दर्भ-तिल-तुलसी-गो-भूलेप-ताम्रपात्र-दानादीनामावश्यकत्वस्य निरूपणं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु तार्क्ष्य परं गुह्यं दानानां दानमुत्तमम्। परमं सर्वदानानां परं गोप्यं दिवौकसाम्॥१॥
देयमेकं महादानं कार्पासं चोत्तमोत्तमम्। येन दत्तेन प्रीयन्ते भूर् भुवः स्वरिति क्रमात्॥२॥

वैश्य, द्विजातिसङ्गृहीत स्त्री और शूद्र जनों के लिए भी लवणरसयुक्त दान की प्रशंसा तत्त्वदर्शी लोग करते हैं॥३२॥ जिस समय में इस भूतल में मरते हुए आतुरों के प्राण सुख से नहीं निकलते हैं उस समय में स्वर्ग के द्वार को खोलने वाले लवण का दान देना चाहिए॥३३॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में और्ध्वदेहिककर्म में पुत्त्र, कुश, तिल, तुलसी, गाय, भूलेपन, ताम्रपात्रदानादि की आवश्यकता को दिखाने वाला उनतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥२९॥

श्रीकृष्ण ने कहा— हे गरुड, अत्यन्त गुह्य, दानों में उत्तम दान, देवताओं के लिए भी परम गोप्य, सभी दानों से परम श्रेष्ठ दान को सुनो॥१॥ कार्पास (रुई) का एक उत्तम से भी उत्तम महादान देना चाहिए, जिस दान के देने से भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक (में रहने वाले सभी देवगण) तृप्त होते हैं॥२॥

ब्रह्माद्या देवताः सर्वाः कार्याच् च प्रीतिमाप्नुयुः। देयमेतन् महादानं प्रेतोद्धरणहेतवे॥३॥
चिरं वसेद् रुद्रलोके ततो राजा भवेदिह। रूपवान् सुभगो वाग्मी श्रीमानतुलविक्रमः।
यमलोकं विनिर्जित्य स्वर्गं तार्क्ष्य स गच्छति॥४॥
गां तिलांश् च क्षितिं हेम यो ददाति द्विजन्मने। तस्य जन्मार्जितं पापं तत्क्षणादेव नश्यति॥५॥
तिला गावो महादानं महापातकनाशनम्। तद्द्वयं दीयते विप्रे नाऽन्यवर्णे कदाचन॥६॥
कल्पितं दीयते दानं तिला गावश् च मेदिनी। अन्येषु नैव वर्णेषु पोष्यवर्गे कदाचन॥७॥
पोष्यवर्गे तथा स्त्रीषु दानं देयमकल्पितम्। आतुरे चोपरागे च द्वयं दानं विशिष्यते।
आतुरे दीयते दानं तत्काले चोपतिष्ठति॥८॥

इस दानकार्य से ब्रह्मादि सभी देवता भी प्रसन्न होंगे। यह महादान प्रेत के उद्धार के लिए दिया जाना चाहिए॥३॥ इस दान से मनुष्य रुद्रलोक में चिरकाल तक बास करेगा और उस के बाद इस लोक में रूप से युक्त, अच्छा बोलने वाला, धनी और दूसरों से तुलना करने में अयोग्य महापराक्रम से युक्त राजा होगा। हे गरुड, वह यमलोक को जीतकर स्वर्ग जाता है॥४॥ जो मनुष्य ब्राह्मण को गाय, तिल भूमि और सुवर्ण देता है उस का जन्मों से आर्जित पाप तत्काल नष्ट हो जाता है॥५॥ तिलदान और गोदान महादान है और ब्रह्महत्यादि महापापों का भी नाश करने वाला है। ये दोनों दान ब्राह्मण को दिए जाते हैं॥६॥ तिलदान गोदान और भूमिदान सङ्कल्प करके दिए जाते हैं, ये दान क्षत्रियादि अन्य वर्णों को और अपने से अवश्य पोषणीय जनों को नहीं दिए जाते हैं॥७॥ अपने पोष्यजनों को और स्त्रियों को भी असङ्कल्पित दान देने चाहिए। आतुर अवस्था में दिया गया दान और चन्द्र-सूर्य-ग्रहण के समय में दिया गया दान ये दो दान अतिविशिष्ट होते हैं। आतुर अवस्था में जो दान दिया जाता है वह दान यमपुरी के मार्ग में आवश्यक होने पर तत्काल भोग्य रूप में उपस्थित होता है॥८॥ जीवनकाल में स्वस्थावस्था में दिया गया दान

जीवतस् तु पुनर् दत्तमुपतिष्ठत्यसंस्कृतम्। सत्यंसत्यं पुनः सत्यं यद् दत्तं विकलेन्द्रिये॥९॥
यच् चाऽनुमोदते पुत्त्रस् तत्र दानमनन्तकम्। अतो दद्यात् स पुत्त्रो वा यावज् जीवत्यसौ चिरम्।
अतिवाहस्तथा प्रेतो भोगांश् च लभते यतः॥१०॥
अस्वस्थातुरकाले तु देहपाते क्षितिस्थिते। देहे तथाऽतिवाहस्य परतः प्रीणनं भवेत्॥११॥
पङ्गावन्धे च काणे च ह्यर्धोन्मीलितलोचने। तिलेषु दर्भान् संस्तीर्य दानमुक्तं तदक्षयम्॥१२॥
तिला लौहं हिरण्यं च कार्पासं लवणं तथा। सप्तधान्यं क्षितिर् गाव एकैकं पावनं स्मृतम्॥१३॥
लोहदानाद् यमस् तुष्येद् धर्मराजस् तिलार्पणात्। लवणे दीयमाने तु न भयं विद्यते यमात्॥१४॥
कार्पासस्य तु दानेन न भूतेभ्यो भयं भवेत्। तारयन्ति नरं गावस् त्रिविधाच् चैव पातकात्॥१५॥

असंस्कृत रूप में कालान्तर में भोग्य रूप में उपस्थित होता है। यह बात सत्य-सत्य और अत्यन्त सत्य है कि जो दान आतुर होकर चक्षुरादि इन्द्रिय दुर्बल होने पर दिया जाता है और जिस दान का पुत्त्र अनुमोदन करता है वहाँ वह दान अनन्त फल देने वाला होता है। क्योंकि अतिवाहशरीर में रहता हुआ प्रेत भोगों को पाता है, इस लिए जितने समय तक यह मरता हुआ मनुष्य जीवित रहता है तब तक चिरकाल तक पुत्त्र दान दे, क्यों कि अतिवाहरूप में स्थित और प्रेतरूप में प्राप्त भी मृतक व्यक्ति उस दान से भोगों को प्राप्त करता है॥९-१०॥ अस्वस्थ होकर मरने के समय में देह गिरने पर भूमितल में देह स्थित होने के समय में और पीछे अतिवाहशरीर में रहे हुए जीव का भी दान से सन्तृप्ति होगी॥११॥ रोग से पङ्गु होने पर, अन्ध होने पर, काना होने पर और मरण अति निकट में आने से अर्धोन्मीलितलोचन होने पर भी तिलों में कुश बिछाकर उस के ऊपर रहकर जो दान दिया जाता है वह अक्षय फल देने वाला होता है॥१२॥ तिल, लोहा, सोना, कार्पास (रुई), नमक, सप्तधान्य (जौ, धान, तिल, कँगनी, मूँग, चना, साँवा), भूमि और गाय ये एक एक भी दान देने पर दाता को शुद्ध करने वाले समझे गए हैं॥१३॥ लोहा के दान से यमराज प्रसन्न होंगे, तिलदान से धर्मराज प्रसन्न होंगे। नमक देने से यमराज से डर नहीं होता है॥१४॥ रुई के दान से भूतों से डर नहीं होगा। दान में दी गई गायें मनुष्य को मानस वाचिक और कायिक तीनों प्रकार के पापों से पार कराती हैं॥१५॥

हेमदानात् सुखं स्वर्गे भूमिदानान् नृपो भवेत्। हेमभूमिप्रदानाच् च न पीडा नरके भवेत्॥१६॥
सर्वेऽपि यमदूताश्च यमरूपा विभीषणाः। सर्वे ते वरदा यान्ति सप्तधान्येन प्रीणिताः॥१७॥
विष्णोः स्मरणमात्रेण प्राप्यते परमा गतिः। एतत् ते सर्वमाख्यातं मर्त्यैर् या गतिराप्यते॥१८॥
तस्मात् पुत्त्रं प्रशंसन्ति ददाति पितुराज्ञया। भूमिष्ठं पितरं दृष्ट्वा ह्यर्धोन्मीलितलोचनम्॥१९॥
तस्मिन् काले सुतो यस्तु सर्वदानानि दापयेत्। गयाश्राद्धाद् विशिष्येत स पुत्त्रः कुलनन्दनः॥२०॥
स्वस्थानाच् चलिते श्वासे विकलस्य पितुस् तदा। पुत्त्रैर् यत्नेन कर्त्तव्या पितरं तारयन्ति ते॥२१॥
किं दत्तैर् बहुभिर् दानैः पितुरन्त्येष्टिमाचरेत्। अश्वमेधो महायज्ञः कलां नाऽर्हति षोडशीम्॥२२॥
धर्मात्मा स तु पुत्त्रो वै देवैरपि सुपूज्यते। दापयेद् यस्तु दानानि ह्यातुरं पितरं भुवि॥२३॥

सोने के दान से स्वर्ग में सुख मिलेगा, भूमि के दान से दूसरे जन्म में राजा होगा; सोने का और भूमि का दान देने से नरक में कोई पीडा भी नहीं होगी॥१६॥ सभी यमदूत यम के जैसे रूप वाले और भयङ्कर होते हैं; किन्तु सप्तधान्य के दान से सन्तुष्ट किए जाने पर वे सब वर देने वाले हो जाते हैं॥१७॥ अन्त्यकाल में विष्णु का स्मरण मात्र करने से परम गति पाई जाती है। मनुष्यों से दानादि से जो गति पाई जाती है यह सब तुम को बता दिया॥१८॥ इस लिए लोग पुत्त्र की प्रशंसा करते हैं, क्योंकि वह भूमि में पडे हुए आधी आँखें ही खोल रहे पिता को देखकर पिता की (पहले ही दी गई) आज्ञा से दान देता है॥१९॥ उस समय में जो पुत्त्र सभी दान पिता से दिलवाएगा, वह दान गया में किए गए श्राद्ध से भी बढकर होगा, वैसा करने वाला पुत्त्र सम्पूर्ण कुल का ही उद्धार करके आनन्द देने वाला होता है॥२०॥ मरते हुए पिता के श्वास अपने स्थान को छोडकर चलने लगने पर (द्रष्टव्य– जीवानन्दसंस्करण २०।१७) पुत्त्रों से यह दानादि क्रिया करनी चाहिए, ऐसा करने वाले जो पुत्त्र हैं वे पिता को नरक से पार कराते हैं॥२१॥ अनेक दान देने से ही क्या होगा, पुत्त्र पिता की अन्त्येष्टि करे। श्रद्धा से की गई जो अन्त्येष्टि क्रिया है उस की सोलहवीं कला से भी अश्वमेध यज्ञ भी तुल्य नहीं होता है॥२२॥ जो भूमि में पडे मरते हुए पिता से दानों को दिलवाता है वह धर्मात्मा पुत्त्र देवताओं से भी बहुत पूजित होता है॥२३॥

लोहदानं च दातव्यं भूमियुक्तेन पाणिना। यमं भीमं च नाऽऽप्नोति न गच्छेत् तस्य वेश्मनि॥२४॥
कुठारो मुसलो दण्डः खड्गश् च च्छुरिका तथा। एतानि यमहस्तेषु दृश्यानि पापकर्मिणाम्॥२५॥
तस्माल् लोहस्य दानं तु ब्राह्मणायाऽऽतुरो ददेत्। यमायुधानां सन्तुष्ट्यै दानमेतदुदाहृतम्॥२६॥
गर्भस्थाः शिशवो ये च युवानः स्थविरास् तथा। एभिर् दानविशेषैस् तु निर्दहेयुः स्वपातकम्॥२७॥
छुरिणः श्यामशबलाः षण्डामर्का उदुम्बराः। शबलाः श्यामदूता ये लोहदानेन प्रीणिताः॥२८॥
पुत्त्राः पौत्त्रास्तथा बन्धुः सगोत्राः सुहृदस्तथा। ददते नाऽऽतुरे दानं ब्रह्मघ्नैस्तु समा हि ते॥२९॥
पञ्चत्वे भूवियुक्तस्य शृणु तस्य च या गतिः। अतिवाहः पुनः प्रेतो वर्षोर्ध्वं सुकृतं लभेत्॥३०॥
अग्नित्रयं त्रयो लोकास् त्रयो वेदास् त्रयोऽमराः। कालत्रयं त्रिसन्ध्यं च त्रयो वर्णास् त्रिशक्तयः॥३१॥

भूमियुक्त हाथ से लोहदान देना चाहिए। लोहदान देने से मनुष्य डरावने यमराज को नहीं देखता है और डरावने यमराज के घर में जाता भी नहीं हैं॥२४॥ कुल्हाडी, मुसल, डण्डा, तलवार और छुरी ये शस्त्र पापी लोगों से यमराज के हाथों में देखे जाने वाले हैं॥२५॥ इस लिए मरता हुआ मनुष्य लोहे का दान ब्राह्मण को दे। यह दान यमराज के आयुधों की सन्तुष्टि के लिए बताया गया है॥२६॥ गर्भ में रहे हुए प्राणी, बालक, युवक और वृद्ध सभी इन विशेष दानों से अपने पाप को जला सकते हैं॥२७॥ छुरीधारी, श्याम, शबल, षण्डामर्क, उदुम्बर, शबल इत्यादि यम के दूत लोहदान से प्रसन्न होते हैं॥२८॥ पुत्त्र, पौत्त्र, बन्धु, सगोत्र और मित्र जो कोई भी मरते हुए स्वजन के लिए दान नहीं देते हैं तो वे ब्रह्महत्या करने वाले के तुल्य पातकी होते हैं॥२९॥ मरण के समय में भूमि से वियुक्त (अन्तरिक्ष में मरने वाले) की जो गति होती है उस को सुनो। वह आतिवाहिकशरीर वाला प्रेत होकर एक वर्ष बीतने पर ही पुण्य का फल प्राप्त कर सकता है॥३०॥ इस लोक में तीन अग्नि (गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि), तीन लोक (भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक), तीन वेद (ऋक्, यजुः, साम), तीन देवता (ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर), तीन काल (भूत, भविष्यत्, वर्तमान), तीन सन्ध्या (प्रातःसन्ध्या, मध्याह्नसन्ध्या, सायंसन्ध्या), तीन द्विज वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य), तीन शक्तियाँ (ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर की शक्तियां; सृष्टिशक्ति, पालनशक्ति और संहारशक्ति) हैं॥३१॥

पादादूर्ध्वं कटिं यावत् तावद् ब्रह्माऽधितिष्ठति। ग्रीवां यावद् धरिर् नाभेः शरीरे मनुजस्य च॥३२॥
मस्तके तिष्ठतीशानो व्यक्ताऽव्यक्तो महेश्वरः। एकमूर्तेस्त्रयो भागा ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः॥३३॥
अहं प्राणः शरीरस्थो भूतग्रामचतुष्टये। धर्माऽधर्मे मतिं दद्यां सुखदुःखे कृताऽकृते॥३४॥
जन्तोर् बुद्धिं समास्थाय पूर्वकर्माधिवासिताम्। अहमेव तथा जीवान् प्रेरयामि च कर्मसु।
स्वर्गं च नरकं मोक्षं प्रयान्ति प्राणिनो ध्रुवम्॥३५॥
स्वर्गस्थं नरकस्थं वा श्राद्धेनाऽऽप्यायनं भवेत्। तस्माच् छ्राद्धानि कुर्वीत त्रिविधानि विचक्षणः॥३६॥
मत्स्यं कूर्मं च वाराहं नारसिंहं च वामनम्। रामं रामं च कृष्णं च बुद्धं चैव सकल्किनम्।
एतानि दश नामानि स्मर्तव्यानि सदा बुधैः॥३७॥

मनुष्य के शरीर में पैर से ऊपर कटितक का जो भाग है उस भाग को ब्रह्माजी अपने अधीन में रखते हैं; कटि से गले तक के भाग को विष्णु अपने अधीन में रखते हैं॥३२॥ व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप वाले और जगत् को अपने अधीन में रखने वाले महेश्वर शिर में रहते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर एक-स्वरूप परमेश्वर के तीन भाग हैं॥३३॥ उद्भिज्ज, संस्वेदज, अण्डज और जरायुज इन चार प्रकार के प्राणियों के शरीर में प्राण के रूप में रहकर मैं ही धर्म में और अधर्म में, सुखपूर्ण काम में और दुःखपूर्ण काम में, अपने से पहले किए गए कार्य में और नहीं किए गए नवीन कार्य में भी बुद्धि देता हूँ॥३४॥ प्राणियों के पूर्व कर्मों से अधिवासित बुद्धि में रहकर मैं ही प्राणियों को विविध कामों में प्रेरित करता हूँ। प्राणी अपने कर्म के अनुसार स्वर्ग अथवा नरक अथवा मोक्ष में जाते हैं॥३५॥ स्वर्ग में रहने वाले का और नरक में रहने वाले का भी श्राद्ध से आप्यायन होगा। इस लिए विचारचतुर मनुष्य तीनों प्रकार का श्राद्ध करे॥३६॥ विज्ञ जनों को मत्स्यावतार, कूर्मावतार, वराहावतार, नरसिंहावतार, वामनावतार, परशुरामावतार, रामावतार, कृष्णावतार, बुद्धावतार और कल्क्यवतार इन दश अवतारों के नामों का स्मरण करना चाहिए॥३७॥

स्वर्गं जीवाः सुखं यान्ति च्युताः स्वर्गाच् च मानवाः। लब्ध्वा सुखं च वित्तं च दयादाक्षिण्यसंयुताः।
पुत्त्रपौत्त्रैर् धनैराढ्या जीवेयुः शरदां शतम्॥३८॥
आतुरे च ददेद् दानं विष्णुपूजां च कारयेत्। अष्टाक्षरं तथा मन्त्रं जपेद् वा द्वादशाक्षरम्॥३९॥
पूजयेच् छुक्लपुष्पैश्च नैवेद्यैर् घृतपाचितैः। तथा गन्धैश्च धूपैश्च श्रुति-स्मृतिमनूदितैः॥४०॥
विष्णुर् माता पिता विष्णुर् विष्णुः स्वजनबान्धवाः। यत्र विष्णुं न पश्यामि तेन वासेन किं मम॥४१॥
जले विष्णुः स्थले विष्णुर् विष्णुः पर्वतमस्तके। ज्वालामालाकुले विष्णुः सर्वं विष्णुमयं जगत्॥४२॥
वयमापो वयं पृथ्वी वयं दर्भा वयं तिलाः। वयं गावो वयं राजा वयं वायुर् वयं प्रजाः॥४३॥
वयं हेम वयं धान्यं वयं मधु वयं घृतम्। वयं विप्रा वयं देवा वयं शम्भुश् च भूर् भुवः॥४४॥

इन के स्मरण से मनुष्य सुख से ही स्वर्ग जाते हैं, स्वर्ग से यहाँ लौटे हुए मनुष्य भी सुख और धन को पाकर दया और मिलनसारपन से युक्त और पुत्र-पौत्रों से तथा धन से सम्पन्न होकर सौ वर्षतक जीवित रहेंगे॥३८॥ मरण आसन्न होने पर दान दे, विष्णु की पूजा कराए, अष्टाक्षर मन्त्र (ओम् नमो नारायणाय) अथवा द्वादशाक्षर मन्त्र (ओम् नमो भगवते वासुदेवाय) को जपे॥३९॥ श्रुति-स्मृति के मन्त्रों में कथित श्वेत पुष्पों से, घी में पकाए हुए नैवेद्यों से, तथा चन्दनों से तथा धूपों से विष्णु की पूजा करे॥४०॥ माता विष्णु हैं, पिता भी विष्णु ही हैं, अपने सभी जन और बान्धव जन भी विष्णु ही हैं, जहाँ विष्णु को नहीं देखता हूँ उस वास से मेरा क्या होगा॥४१॥ जल में विष्णु हैं, स्थल में विष्णु हैं, पर्वत की चोटी में विष्णु हैं, अग्नि की ज्वालाओं के समूह से युक्त विकट स्थल में भी विष्णु हैं, सभी जगत् विष्णुमय है॥४२॥ जल हम हैं, पृथ्वी हम हैं, कुश हम हैं, तिल हम हैं, गाय हम हैं, राजा हम हैं, वायु हम हैं, प्रजा हम हैं, सोना हम हैं, धान्य हम हैं, मधु हम हैं, हम घी हैं, ब्राह्मण हम हैं, देवता हम हैं, शम्भु और भूर्लोक तथा भुवर्लोक भी हम ही हैं॥४३-४४॥

अहं दाता अहं ग्राही अहं यज्वा अहं क्रतुः। अहं हर्ता अहं धर्मो अहं पृथ्वी ह्यहं जलम्॥४५॥
धर्माधर्मे मतिं दद्यां कर्मभिस्तु शुभाऽशुभैः। यत् कर्म क्रियते क्वाऽपि पूर्वजन्मार्जितं खग॥४६॥
धर्मे मतिमहं दद्यामधर्मेऽप्यहमेव च। यतनं कुरुते सोऽपि धर्मे मुक्तिं ददाम्यहम्॥४७॥
मनुजानां हिता तार्क्ष्य अन्ते वैतरणी स्मृता। तयाऽवमत्य पापौघं विष्णुलोकं स गच्छति॥४८॥
बालत्वे यच्च कौमारे यच् च परिणतौ च यत्। सर्वावस्थाकृतं पापं यच् च जन्मान्तरेष्वपि॥४९॥
यन् निशायां तथा प्रातर् यन् मध्याह्नापराह्णयोः। सन्ध्ययोर् यत् कृतं कर्म कर्मणा मनसा गिरा॥
दत्त्वा वरां सकृदपि कपिलां सर्वकामिकाम्। उद्धरेदन्तकाले स आत्मानं पापसञ्चयात्॥५१॥

देने वाला मैं हूँ, प्रतिग्रह करने वाला मैं हूँ, यज्ञ करने वाला मैं हूँ, यज्ञ मैं हूँ, हरण करने वाला मैं हूँ, धर्म मैं हूँ, पृथ्वी मैं हूँ, जल मैं हूँ॥४५॥ मैं मनुष्यों को उन के शुभ अथवा अशुभ कर्मों के विचार से धर्म में अथवा अधर्म में बुद्धि देता हूँ। हे पक्षिन्, पूर्वजन्म से अर्जित रूप में कहीं भी जो कर्म किया जाता है उस में भी मैं ही धर्मकर्म में अथवा अधर्मकर्म में बुद्धि देता हूँ। मनुष्य धर्मकार्य में यत्न करता है और मैं उस को पाप से मुक्ति देता हूँ॥४६-४७॥ हे गरुड, अन्तकाल में मनुष्यों के लिए वैतरणी गाय का दान हितकारी है। उस दान से मनुष्य पापों के ढेर का तिरस्कार करके विष्णुलोक में जाता है॥४८॥ जो बालककाल में, जो कुमारावस्था में, जो वृद्धावस्था में और सभी अवस्थाओं में किया गया पाप है, जो पूर्वजन्मों में भी किया गया पाप है, जो रात में और प्रातःकाल में, जो मध्याह्न में और अपराह्ण में तथा प्रातःसन्ध्याकाल में और सायंसन्ध्याकाल में किया गया पाप है, और जो कर्म से, मन से और वाणी से किया गया पापकर्म है उन सब पापों के सञ्चय से मनुष्य अन्तकाल में एक बार भी सम्पूर्ण कामनाओं से पूर्ण करने वाली अच्छी भूरे रङ्ग की गाय को (वैतरणी गाय के रूप में) दान में देकर अपने को उद्धार करता है॥४९-५१॥

गावो ममाऽग्रतः सन्तु पृष्ठतः पार्श्वतस् तथा। गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥५२॥
या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवे व्यवस्थिता। धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु॥५३॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे नानादाननिरूपणं नाम त्रिंशोऽध्यायः॥

अथ एकत्रिंशोऽध्यायः

श्रीविष्णुरुवाच

ये नराः पापसंयुक्तास्ते गच्छन्ति यमालयम्। नृणां मत्साक्षिकं दत्तमनन्तफलदं भवेत्॥१॥

(गाय का दान देते हुए इस प्रकार से गाय की प्रार्थना करे) मेरे आगे गायें हों, मेरे पीछे और दाहिनी ओर और बायीं ओर भी गायें हों, मेरे हृदय में गायें हों, मैं गायों के बीच में बास करता हूँ॥५२॥ सभी प्राणियों की जो लक्ष्मी है, जो लक्ष्मी देवों में भी सुस्थिर है धेनु के रूप में रही हुई वह देवी मेरे पापों को दूर करे॥५३॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में नाना दानों का निरूपण करने वाला तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥३०॥

श्रीविष्णु ने कहा— जो मनुष्य पाप से युक्त होते हैं वे यमराज के घर में जाते हैं। मेरे समक्ष में दिया गया दान मनुष्यों के लिए अनन्त फल देने वाला होता है॥१॥ भूमिदान देने वाला मनुष्य दी गई भूमि को धूलि के रूप में ले जाने पर जितने धूलिकण हो सकेंगे उतने वर्षों तक स्वर्ग में रहता है। जो

यावद्रजःप्रमाणाब्दं स्वर्गे तिष्ठति भूमिदः। अश्वारूढाश्च ते यान्ति ददते ये ह्युपानहौ॥२॥
आतपे श्रमयोगेण न दह्यन्ते च कुत्रचित्। छत्रदानेन वै प्रेता विचरन्ति सुखं पथि॥३॥
यमुद्दिश्य ददात्यन्नं तेन चाऽऽप्यायितो भवेत्॥४॥
अन्धकारे महाघोरे अमूर्ते लक्ष्यवर्जिते। उद्योतेनैव ते यान्ति दीपदानेन मानवाः॥५॥
आश्विने कार्तिके वाऽपि माघे मृततिथावपि। चतुर्दश्यां च दीयेत दीपदानं सुखाय वै॥६॥
प्रत्यहं च प्रदातव्यं मार्गे सुविषमे नरैः। यावत् संवत्सरं वाऽपि प्रेतस्य सुखलिप्सया॥७॥
कुले द्योतति शुद्धात्मा प्रकाशत्वं स गच्छति। ज्योतिर्मयोऽसौ पूज्योऽसौ दीपदानप्रदो नरः॥८॥
प्राङ्मुखोदङ्मुखं दीपं देवागारे द्विजालये। कुर्याद् याम्यमुखं पित्रे अद्भिः सङ्कल्प्य सुस्थिरम्॥९॥

मनुष्य जूते का दान देते हैं वे घोडे में सबार होकर यमलोक में जाते हैं॥२॥ छाते के दान से प्रेत धूप में भी थकान से नहीं जलते हैं, यममार्ग में सुखपूर्वक ही चलते हैं॥३॥ जिस को उद्देश्य करके अन्न देता है उस से वह आप्यायि त (तृप्त) होगा॥४॥ दीप के दान से मनुष्य यममार्ग के लक्ष्यदर्शन से रहित, अमूर्त और महाभयङ्कर गाढ अन्धकार में भी प्रकाश के सहारे चलते हैं॥५॥ यममार्ग में सुख के लिए आश्विन मास में अथवा कार्तिक मास में अथवा माघमास में मृततिथियों (क्षयाहों) में और (कृष्ण)चतुर्दशियों में भी दीपदान किया जा सकता है॥६॥ अथवा प्रेत की अत्यन्त विषम यममार्ग में सुखप्राप्ति की इच्छा से मृत्यु के दिन से वर्षपर्यन्त प्रतिदिन मनुष्यों से दीपदान किया जाना चाहिए॥७॥ जो दीपदान करने वाला मनुष्य है वह कुल में प्रकाशित होता है, उस का चित्त शुद्ध होता है, वह प्रकाशरूप में प्राप्त होता है, वह ज्योतिर्मय और पूज्य भी होता है॥८॥ पानी लेकर सङ्कल्प करके देवता के मन्दिर में और ब्राह्मण के घर में दीप पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख करके स्थिर करना चाहिए। पितरों के लिए दक्षिणाभिमुख करके स्थिर करना चाहिए॥९॥

सर्वोपहारयुक्तानि पदान्यत्र त्रयोदश। यो ददाति मृतस्येह जीवन्नप्यात्महेतवे ॥१०॥
स गच्छति महामार्गे महाकष्टविवर्जितः। आसनं भाजनं भोज्यं दीयते यद् द्विजातये ॥११॥
सुखेन भुञ्जमानस्तु तेन गच्छत्यलं पथि। कमण्डलुप्रदानेन तृषितः पिबते जलम् ॥१२॥
भाजनं वस्त्रदानं च कुसुमं चाऽङ्गुलीयकम्। एकादशाहे दातव्यं प्रेतोद्धरणहेतवे ॥१३॥
त्रयोदश पदानीत्थं प्रेतस्य शुभमिच्छता। दातव्यानि यथाशक्त्या प्रेतोऽसौ प्रीणितो भवेत् ॥१४॥
भोजनानि तिलांश् चैव उदकुम्भांस् त्रयोदश। मुद्रिकां वस्त्रयुग्मं च तया याति परां गतिम् ॥१५॥
योऽश्वं नावं गजं वाऽपि ब्राह्मणे प्रतिपादयेत्। स महिम्नोऽनुसारेण तत्तत् सुखमुपाश्नुते ॥१६॥
नानालोकान् विचरति महिषीं च ददाति यः। यमपत्रस्य या माता महिषी सुगतिप्रदा ॥१७॥

जो मनुष्य मरे हुए मनुष्य के लिए अथवा अपनी जीवितावस्था में अपने ही लिए भी सभी उपहारों से युक्त तेरह पद (पदार्थ) दान में देता है वह यममार्ग में महाकष्टों से रहित होकर जाता है। जो ब्राह्मण को आसन, वर्तन और भोज्यपदार्थ दिया जाता है उस से मनुष्य यममार्ग में सुख से भोजनादि करता हुआ अच्छी तरह चलता है। कमण्डलु के दान से यममार्ग में प्यास लगने पर जल पीने को मिलता है॥१०-१२॥ प्रेत के उद्धार के लिए ग्यारहवें दिन में वर्तन, वस्त्र, फूल और अँगूठी देने चाहिए॥१३॥ इस प्रकार से तेरह पद (पदार्थ) प्रेत के कल्याण चाहने वालों को अपनी शक्ति के अनुसार देने चाहिए। इस से प्रेत तृप्त और प्रसन्न होगा॥१४॥ विविध भोज्य पदार्थ, तिल और तेरह जलघट, अँगूठी और वस्त्रद्वय भी दान में देना चाहिए। उस दानक्रिया से प्रेत परमगति को प्राप्त करता है॥१५॥ जो मनुष्य घोडा, नौका अथवा हाथी ब्राह्मण को देगा वह उस उस पदार्थ के दान के माहात्म्य के अनुसार उस उस सुख को प्राप्त करता है॥१६॥ जो भैंस का दान करता है वह नाना प्रकार के स्वर्ग लोकों में विचरण करता है। जो यम के वाहन की माता है वह भैंस दान में देने से सुगति देने वाली होती है॥१७॥ यम के अनुचरों के हर्ष को देने वाले पान

ताम्बूलं कुसुमं देयं याम्यानां हर्षवर्धनम्। तेन सम्प्रीणिताः सर्वे तस्मिन् क्लेशं न कुर्वते॥१८॥
गो-भू-तिल-हिरण्यानि दानान्याहुः स्वशक्तितः॥१९॥
मृतोद्देशेन यो दद्याज् जलपात्रं च मृन्मयम्। उदपात्रसहस्रस्य फलमाप्नोति मानवः॥२०॥
यमदूता महारौद्राः करालाः कृष्णपिङ्गलाः। न भीषयन्ति तं याम्या वस्त्रदाने कृते सति॥२१॥
मार्गे हि गच्छमानस् तु तृष्णार्तः श्रमपीडितः। घटान्नदानयोगेन सुखी भवति निश्चितम्॥२२॥
शय्या दक्षिणया युक्ता आयुधाम्बरसंयुता। हैमश्रीपतिना युक्ता देया विप्राय शर्मणे।
तथा प्रेतत्वमुक्तोऽसौ मोदते सह दैवतैः॥२३॥
एतत् ते कथितं तार्क्ष्य दानमन्त्येष्टिकर्मजम्। अधुना कथयिष्येऽहमन्यदेहप्रवेशनम्॥२४॥
जातस्य मृत्युलोके वै प्राणिनो मरणं ध्रुवम्। मृत्यौ कुर्यात् स्वधर्मेण यास्यतश्च परन्तप॥२५॥

का और फूल का दान करना चाहिए। उस से अच्छी तरह तृप्त और प्रसन्न होके वे सभी यमानुचर लोग उस प्रेत को क्लेश नहीं देते हैं॥१८। अपनी शक्ति के अनुसार ही गाय, भूमि, तिल और स्वर्ण के दान देने की बात मुनि लोग बताते हैं॥१९॥ मृत मनुष्य के लिए मनुष्य मिट्टी का जलपात्र देगा तो हजारों जलपात्र देने का फल पाता है॥२०॥ वस्त्र के दान दिए जाने पर प्रेत को यमलोकवासी अत्यन्त क्रोधी भयङ्कर और काले तथा भूरे यमदूत डर नहीं देते हैं॥२१॥ जलघट और अन्न का दान देने से यममार्ग में जाता हुआ, प्यास से आर्त और थकान से पीडित प्रेत निश्चित रूप में सुखी होता है॥२२॥ दक्षिणा से युक्त तथा शस्त्रास्त्र और वस्त्रों से सहित विष्णु की स्वर्णप्रतिमा से भी युक्त शय्या कल्याणरूप ब्राह्मण को देना चाहिए। उस से मृत व्यक्ति प्रेतत्व से मुक्त होकर देवताओं के साथ में सुखभोग करता है॥२३॥ हे गरुड, अन्त्येष्टि कर्म के अङ्ग के रूप का दान यह तुम को बता दिया। अब मैं प्राणी के दूसरे देह में प्रवेश को बताउँगा॥२४॥ मर्त्यलोक में जन्मे हुए प्राणी का मरण अवश्य होता है। हे परन्तप खगेश्वर, मृत्यु प्राप्त होने पर जा रहे व्यक्ति के लिए और पूर्वकाल में मृत व्यक्तियों के लिए भी

पूर्वकाले मृतानां च प्राणिनां च खगेश्वर। सूक्ष्मो भूत्वा त्वसौ वायुर् निर्गच्छत्यास्यमण्डलात्।२६।
नवद्वारै रोमभिश् च जनानां तालुरन्ध्रकात्। पापिष्ठानामपानेन जीवो निष्क्रामति ध्रुवम्॥२७॥
शरीरं च पतत् पश्चान् निर्गते मरुतीश्वरे। वाताहतः पतत्येव निराधारो यथा द्रुमः॥२८॥
पृथिव्यां लीयते पृथ्वी आपश् चैव तथाप्सु च। तेजस् तेजसि लीयेत समीरणः समीरणे।
आकाशे च तथाऽऽकाशः सर्वव्यापी च शङ्करे॥२९॥
तत्र कामस् तथा क्रोधः काये पञ्चेन्द्रियाणि च। एते तार्क्ष्य समाख्याता देहे तिष्ठन्ति तस्कराः॥३०॥
कामः क्रोधो ह्यहङ्कारो मनस् तत्रैव नायकः। संहारकश् च कालोऽयं पुण्यपापसमन्वितः॥३१॥
जगतश् च स्वरूपं तु निर्मितं स्वेन कर्मणा। पुनर् देहान्तरं याति सुकृतैर् दुष्कृतैर् नरः॥३२॥

मनुष्य अपने धर्म के अनुसार कृत्य करे। मरते हुए मनुष्यों का प्राणवायु सूक्ष्म होकर मुखमण्डल से और शरीर के नौ द्वारों से और रोमकूपों से और तालुरन्ध्र से निकलता है। मरते हुए पापिष्ठ मनुष्यों का जीव अवश्य ही अपानमार्ग से निकलता है॥२५-२७॥ गिरता हुआ शरीर शरीर का धारक ईश्वर प्राणवायु निकलने पर आधाररहित होकर वायु से आहत पेड की तरह गिरता ही है॥२८॥ शरीर का पृथिवीभाग पृथिवी में ही लीन होता है, जलभाग जल में, तेजोभाग तेज में ही लीन होगा, वायवीय भाग वायु में, आकाशीय भाग आकाश में और सर्वेन्द्रियव्यापी मन शरीर का कल्याण करने वाले प्राण में लीन होगा (द्रष्टव्य– तन् मनः प्राण उत्तरात्।– ब्रह्मसूत्र ४।२।३; प्राण का शरीरशङ्करत्व बृहदारण्यकोपनिषद् में और छान्दोग्योपनिषदादि में भी पाई जाने वाली प्राणाख्यायिका में भी देखना चाहिए)॥२९॥ उस में शरीर में काम, क्रोध और पाँच इन्द्रिय हैं। हे गरुड, तस्कर कहे जाने वाले ये देह में रहते हैं॥३०॥ उस शरीर में काम, क्रोध तथा अहङ्कार और इन का नायक मन तथा पुण्य और पापों से सहित संहारक काल भी रहते हैं॥३१॥ जगत् का स्वरूप अपने कर्म से निर्मित है। मनुष्य धर्म से और अधर्म से दूसरे देह में जाता है॥३२॥

पञ्चेन्द्रियसमायुक्तं सकलैर् विषयैः सह। प्रविशेत् स नवं देहं गृहे दग्धे यथा गृही॥३३॥
शरीरे ये समासीनाः सम्भवे सर्वधातवः। षाट्कौशिको ह्ययं कायो मातापित्रोश्च धातवः॥३४॥
सम्भवेयुस् तथा तार्क्ष्य सर्वे वाताश् च देहिनाम्। मूत्रं पुरीषं तद्योगा ये चाऽन्ये व्याधयस्तथा॥३५॥
अस्थि शुक्रं तथा स्नायुर् देहेन सह दह्यते। एष ते कथितस् तार्क्ष्य विनाशः सर्वदेहिनाम्॥३६॥
कथयामि पुनस्तेषां शरीरं च यथा भवेत्। एकस्तम्भं स्नायुबद्धं स्थूणाद्वयसमुद्धृतम्॥३७॥
इन्द्रियैश् च समायुक्तं नवद्वारं शरीरकम्। विषयैश् च समाक्रान्तं काम-क्रोधसमाकुलम्॥३८॥

एक घर जल जाने पर गृहस्थ जिस प्रकार दूसरे घर में प्रवेश करता है उसी प्रकार जीव पाँच इन्द्रियों से समायुक्त और सभी विषयों से सहित नए शरीर में प्रवेश करेगा॥३३॥ जन्म के समय में शरीर में जो सभी धातु रहते हैं उन से यह षाट्कौशिक शरीर (द्र.- मुद्गलोपनिषद्, याज्ञवल्क्यस्मृति मिताक्षरा ३।८४) बनता है, शरीर में रहने वाले रस-रक्त-मांस-मेद-अस्थि-मज्जा-शुक्र ये धातु माता-पिता के हैं॥३४॥ प्राणियों के प्राण अपान इत्यादि सभी वायु भी जन्म के समय में ही उत्पन्न होते हैं, मूत्र और विष्ठा भी शरीर के साथ ही उत्पन्न होते हैं, उन धातुओं के और मलों के योग से उत्पन्न होने वाले व्याधि (रोग) भी उत्पन्न होते हैं। ये सब और अस्थि (हड्डी) शुक्र (वीर्य) तथा स्नायु भी शरीर के साथ में जल जाते हैं। हे गरुड, सभी प्राणियों का यह मृत्यु तुम को बताया गया॥३५-३६॥ उन प्राणियों का शरीर जैसा होता है उस को मैं फिर बताता हूँ। मुख्य प्राणरूपी एक ही खम्भे से युक्त, स्नायुओं से बद्ध, दो खूंटों से उठाया गया, इन्द्रियों से सहित और नौ द्वारों से युक्त प्राणियों का शरीर है। वह रूप-रसादि विषयों से आक्रान्त, काम-क्रोध इत्यादि से व्याप्त, राग-द्वेषों से पूर्ण, तृष्णारूपी दुर्ग से युक्त, अत्यन्त दुष्पार, लोभ के जाल

राग-द्वेष-समाकीर्णं तृष्णादुर्गं सुदुस्तरम्। लोभजाल-समायुक्तं पुरं पुरुषसञ्ज्ञितम्॥३९॥
एतद्गुणसमायुक्तं शरीरं सर्वदेहिनाम्। तिष्ठन्ति देवताः सर्वा भुवनानि चतुर्दश॥४०॥
आत्मानं ये न जानन्ति ते नराः पशवः स्मृताः। एवमेतन् मयाऽऽख्यातं शरीरं ते चतुर्विधम्॥४१॥
चतुरशीतिलक्षाणि निर्मिता योनयः पुरा। उद्भिज्जाः स्वेदजाश् चैव अण्डजाश् च जरायुजाः॥४२॥
एतत् ते सर्वमाख्यातं यत् पृष्टोऽहं त्वयाऽनघ॥४३॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे दानफलाऽन्यदेहप्रवेशादिनिरूपणं नामैकत्रिंशोऽध्यायः॥

से युक्त पुरुष नाम से व्यवहार किया जाने वाला पुर है॥३७-३९॥ सभी प्राणियों का शरीर ऐसे ही गुणों से युक्त होता है। उस में सभी देवता और चौदह भुवन रहते हैं॥४०॥ आत्मा को जो मनुष्य नहीं जानते हैं वे पशु समझे गए हैं। इस प्रकार मैं ने तुम को चार प्रकार के शरीर को बताया॥४१॥ पुराकाल में चौरासी लाख योनियाँ बनाई गई हैं। वे योनियाँ उद्भिज्-ज, स्वेद-ज, अण्ड-ज और जरायु-ज हैं॥४२॥ हे पाप से रहित गरुड, तुम ने मुझ को जो पूछा यह सब मैं ने बता दिया॥४३॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में दानफल, दूसरे देह में प्रवेश इत्यादि विषयों का निरूपण करने वाला इकतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥३१॥

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

ताक्ष्र्य उवाच

कथमुत्पद्यते जन्तुर् भूतग्रामे चतुर्विधे। त्वचा रक्तं तथा मांसं मेदो मज्जाऽस्थि जीवितम्॥१॥
पादौ पाणी तथा गुह्यं जिह्वा-केश-नखाः शिरः। सन्धिमार्गाश् च बहुशो रेखा नैकविधास् तथा॥२॥
कामः क्रोधो भयं लज्जा मानो हर्षः सुखाऽसुखम्। चित्रितं छिद्रितं चाऽपि नानाजालेन वेष्टितम्॥३॥
इन्द्रजालमिदं मन्ये संसारेऽसारसागरे। कर्ता कोऽत्र हृषीकेश संसारे दुःखसङ्कुले॥४॥

श्रीविष्णुरुवाच

कथयामि परं गोप्यं कोशस्याऽस्य विनिर्णयम्। यस्य विज्ञानमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रजायते॥५॥
साधु पृष्टं त्वया लोके सदयं जीवकारणम्। वैनतेय शृणुष्व त्वमेकाग्रकृतमानसः॥६॥

गरुड ने कहा– चार प्रकार के उद्भिज्जादि प्राणियों के समुदाय में प्राणी कैसे उत्पन्न होता है? त्वचा, रक्त, मांस, मेदा, मज्जा, अस्थि, प्राण, दो पैर, दो हाथ, गुह्य भाग, जीभ, केश, नाखून, शिर, बहुत से सन्धिभाग, अनेक प्रकार की रेखाएं, काम, क्रोध, भय, लज्जा, अभिमान, हर्ष, सुख, दुःख, चित्रों से संयोजन, और छिद्रों से संयोजन तथा अनेक जालों से वेष्टन यह सब इस साररहित संसाररूपी सागर में आश्चर्यदायक निर्माण मानता हूँ। हे इन्द्रियों के स्वामिन्, दुःखों से पूर्ण संसार में इन निर्माणों में कर्ता कौन है?॥१-४॥ श्रीविष्णु ने कहा– इस शरीरकोश का विवरणात्मक निर्णय मैं करता हूँ, जिस के विशिष्ट ज्ञान ही से सर्वज्ञत्व उत्पन्न हो जाता है॥५। हे विनता के पुत्र, तुम ने दयापूर्वक लोक में जीव के कारण के विषय में अच्छा प्रश्न किया, तुम मन को एकाग्र करके सुनो॥६॥ ऋतुकाल में स्त्रियों के चार दिन त्याज्य होते हैं,

ऋतुकाले च नारीणां वर्ज्यं दिनचतुष्टयम्। यतस् तस्मिन् ब्रह्महत्यां पुरा वृत्रसमुत्थिताम्॥७॥
ब्रह्मा शक्रात् समुत्तार्य चतुर्थांशेन दत्तवान्। तावन् नाऽऽलोक्यते वक्त्रं पापं यावद् वपुःस्थितम्॥८॥
प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी। तृतीये रजकी ज्ञेया चतुर्थेऽहनि शुध्यति॥९॥
सप्ताहात् पितृदेवानां भवेद् योग्या कृताऽर्चने। सप्ताहमध्ये यो गर्भस् तत्सम्भूतिर् मलिम्लुचा॥१०॥
निषेकसमये पित्रोर् यादृक् चित्तविकल्पना। तादृग्गर्भसमुत्पत्तिर् जायते नाऽत्र संशयः॥११॥
युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु। पूर्वसप्तकमुत्सृज्य तस्माद् युग्मासु संविशेत्॥१२॥
षोडशर्तुर् निशाः स्त्रीणां सामान्यात् समुदाहृतः। या चतुर्दशमी रात्रिर् गर्भस् तिष्ठति तत्र चेत्॥१३॥

क्योंकि उस समय की स्त्रियों को पुराकाल में वृत्र के हत्या से उत्पन्न और इन्द्र में लगी हुई ब्रह्महत्या को चतुर्थांशरूप में ब्रह्माजी ने दिया था। जब तक स्त्रियों के शरीर में ब्रह्महत्या का अंशरूप पाप रहता है तब तक उन का मुख नहीं देखा जाता है॥७-८॥ रजोदर्शन के पहले दिन में स्त्री चाण्डालीतुल्य होती है, दूसरे दिन में स्त्री ब्रह्मघातिनीतुल्य होती है, तीसरे दिन में स्त्री रजकीतुल्य होती है, और चतुर्थ दिन में शुद्ध होती है॥९॥ रजोदर्शन के सप्ताह बीतने पर स्त्री पितरों के और देवताओं के पूजन में योग्य हो गई होती है। स्त्रियों में रजोदर्शन के प्रारम्भ से सप्ताहमध्य में जो गर्भ स्थापित होता है उस की उत्पत्ति मलिम्लुच (मलिन) होती है॥१०॥ माता के गर्भाशय में पिता के वीर्य के सेचन के समय में माता-पिताओं के चित्तों में जैसा विचारतरङ्ग उठता है उस के अनुरूप ही गर्भ की उत्पत्ति होती है, इस में सन्देह नहीं है॥११॥ रजोदर्शन के सम (जूस) रात्रियों में निषेक (वीर्याधान) करने से पुत्त्र जन्मते हैं, विषम रात्रियों में निषेक करने से स्त्रियाँ जन्मती हैं। इस लिए (पुत्र चाहने वाला पुरुष) प्रथम सात रात्रियों को छोडकर सम रात्रियों में (आठवीं, दसवीं, बारहवीं, चौदहवीं और सोलहवीं रात्रियों में) ऋतुमती पत्नी के साथ सोए॥१२॥ सामान्यतया रजोदर्शन से सोलह रात्रियाँ स्त्रियों का ऋतुकाल (गर्भ रहने का समय) बताया गया है। उस में जो चौदहवीं रात्रि है उस में स्त्री में गर्भ रहता है तो

गुणभाग्यनिधिः पुत्त्रस्तत्र जायेत धार्मिकः। सा निशा तत्र सामान्यैर् न लभ्येत खगाधिप ॥१४॥
प्रायशः सम्भवत्यत्र गर्भस्त्वष्टाहमध्यतः। पञ्चमेऽहनि नारीणां कार्यं माधुर्यभोजनम् ॥१५॥
कटु क्षारं च तीक्ष्णं च त्याज्यमुष्णं च दूरतः। तत्क्षेत्रमोषधीपात्रं बीजं चाऽप्यमृतायितम् ॥१६॥
तस्मिन्नुप्त्वा नरः स्वामी सम्यक् फलमवाप्नुयात्। तस्याश्चैवाऽऽतपो वर्ज्यः शीतलं केवलं चरेत् ॥१७॥
ताम्बूलपुष्पश्रीखण्डैः संयुक्तः शुचिवस्त्रभृत्। धर्ममादाय मनसि सुतल्पं संविशेत् पुमान् ॥१८॥
निषेकसमये यादृङ् नरचित्तविकल्पना। तादृक्स्वभावसम्भूतिर् जन्तुर् विशति कुक्षिगः ॥१९॥
शुक्रशोणितसंयोगे पिण्डोत्पत्तिः प्रजायते। वर्धते जठरे जन्तुस् तारापतिरिवाऽम्बरे ॥२०॥
चैतन्यं बीजरूपं हि शुक्रे नित्यं व्यवस्थितम्। कामश् चित्तं च शुक्रं च यदा ह्येकत्वमाप्नुयुः ॥२१॥

उस गर्भ से गुणों का और भाग्य का धनी और धार्मिक पुत्र जन्मेगा, हे पक्षियों के स्वामिन्, वह रात्रि सामान्य जनों से नहीं पाई जा सकती है ॥१३-१४॥ इस ऋतुकाल में प्रायः आठ दिनों के मध्य में गर्भ रहता है। रजोदर्शन के पाँचवें दिन में स्त्रियों को माधुर्यप्रधान भोजन कराना चाहिए ॥१५॥ उस समय में कडुवा, ज्यादा नमकीन, चरपरे स्वाद का, ज्यादा गरम भोजन दूर से ही त्याग देना चाहिए। उस प्रकार का क्षेत्र (उस प्रकार के नियम में रही हुई स्त्री का गर्भाशय) ओषधी का पात्र होता है, बीज (वीर्य) अमृत (जीवन्त) रूप का होता है। उस ओषधीपात्र में बीज बोकर स्वामी मनुष्य अच्छी तरह फल पाएगा। ऋतुमती स्त्री के लिए आतप (कडा धूप) त्याज्य है, केवल शीतल उपचार की सेवा करनी चाहिए ॥१६-१७॥ पान, फूल और श्रीखण्डचन्दन से सुवासित होकर और शुद्ध वस्त्रों को पहनकर मन में धर्म को लेकर पुरुष सुखदायी शय्या में ऋतुमती पत्नी के साथ सोए ॥१८॥ वीर्य के सेचन के समय में मनुष्य के चित्त में जैसा विचारतरङ्ग उठता है उसी के अनुरूप स्वभाव वाले जन्म को पाने के लिए प्राणी गर्भ में प्रवेश करता है ॥१९॥ पुरुष के वीर्य के और स्त्री के डिम्ब के संयोग से गर्भपिण्ड की उत्पत्ति होती है, और वह पिण्ड प्राणी के रूप में गर्भाशय में आकाश में चन्द्र की तरह बढता है ॥२०॥ बीजरूप चैतन्य पुरुष के वीर्य में सदा ही उपस्थित रहता है। जब काम, चित्त और वीर्य एकत्व

तदा द्रवमवाप्नोति योषागर्भाऽऽशये नरः। रक्ताधिक्ये भवेन् नारी शुक्राधिक्ये भवेत् पुमान्॥२२॥
शुक्रशोणितयोः साम्ये गर्भाः षण्ढत्वमाप्नुयुः। अहोरात्रेण कललं बुद्बुदं पञ्चभिर् दिनैः॥२३॥
चतुर्दशे भवेन् मांसं मिश्रधातुसमन्वितम्। घनं मांसं च विंशाहे गर्भस्थो वर्धते क्रमात्॥२४॥
पञ्चविंशतिमे चाह्नि बलं पुष्टिश् च जायते। तथा मासे तु सम्पूर्णे पञ्च तत्त्वानि धारयेत्॥२५॥
मासद्वये तु सञ्जाते त्वचा मेदश् च जायते। मज्जाऽस्थीनि त्रिभिर् मासैः केशाङ्गुल्यश् चतुर्थके॥२६॥
कर्णौ च नासिके वक्षो जायेरन् मासि पञ्चमे। कण्ठरन्ध्रोदरं षष्ठे गुह्यादिर् मासि सप्तमे॥२७॥
अङ्गप्रत्यङ्गसम्पूर्णो गर्भो मासैरथाऽष्टभिः। अष्टमे चलते जीवो धात्रीगर्भे पुनःपुनः।
नवमे मासि सम्प्राप्ते गर्भस्थौजो दृढं भवेत्॥२८॥

में पहुँचेंगे तभी स्त्री के गर्भाशय में मनुष्य द्रवित (द्रव के रूप में प्रविष्ट) हो जाता है। स्त्री के शोणित की प्रबलता होने पर वह द्रव स्त्रीरूप में परिणत होगा पुरुष के वीर्य की प्रबलता होने पर पुरुषरूप में परिणत होगा॥२१-२२॥ वीर्य के और शोणित के साम्य होने पर वे द्रवरूप गर्भ नपुंसकत्व में पहुँच जाएंगे। गर्भाशय में प्रविष्ट वह द्रव एक अहोरात्र में कलल होगा, पाँच दिनों में बुद्बुद होगा॥२३॥ चौदहवें दिन में मांसरूप होगा, बीसवें दिन में रस-रक्त-मांस-मेद इत्यादि धातुओं के सूक्ष्मांशों से युक्त ठोस मांस होगा और वह ठोस मांस-पिण्ड गर्भाशय में रहकर बढता जाता है॥२४॥ पचीसवें दिन में बल और पुष्टि उत्पन्न होते हैं और महीना पूरा होने पर पञ्च तत्त्वों का (पञ्च तत्त्वों के गुणों का ग्रहण करने वाले इन्द्रियों के सूक्ष्म रूपों का) धारण करेगा॥२५॥ दो महीने पूर्ण होने पर त्वचा और मेद स्पष्ट हो जाते हैं, तीन महीनों में मज्जा और हड्डी स्पष्ट होते हैं, चौथा महीना पूर्ण होने पर केश और अङ्गुलियाँ व्यक्त होते हैं॥२६॥ पाँचवाँ महीना पूर्ण होने पर दो कान, दो नासिकापुट और छाती अभिव्यक्त होते हैं। छठा महीना पूर्ण होने पर कण्ठरन्ध्र (गलबिल) और उदर स्पष्ट होते हैं, सातवाँ महीना पूर्ण होने पर गुह्य अङ्ग इत्यादि स्पष्ट होते हैं॥२७॥ आठ महीनों से गर्भ सभी अङ्ग-प्रत्यङ्गों से पूर्ण हो जाता है। आठवें महीने में गर्भस्थ प्राणी गर्भधारण करने वाली स्त्री के गर्भ में वारवार चलता है। नवाँ

इच्छा सञ्जायते तस्य गर्भवासपरिक्षये। नारी वाऽथ नरो वाऽथ नपुंस्त्वं वाऽभिजायते॥२९॥
शक्तित्रयं विशालाक्षं षाट्कौशिकसमायुतम्। पञ्चेन्द्रियसमोपेतं दशनाडीविभूषितम्॥३०॥
दशप्राणगुणोपेतं यो जानाति स योगवित्। मज्जाऽस्थिशुक्रमांसानि रसो रक्तबलं तथा॥३१॥
षाट्कौशिकमिदं पिण्डं स्याज् जन्तोः पाञ्चभौतिकम्। नवमे दशमे मासि जायते पाञ्चभौतिकः॥३२॥
सूतिवातैः समाकृष्टः पीडया विह्वलीकृतः। पुष्टो नाड्याः सुषुम्णाया योषिद्गर्भस्थितस्त्वरन्॥३३॥
क्षितिर् वारि हविर्भोक्ता पवनाकाशमेव च। एभिर् भूतैः पीडितस् तु निबद्धः स्नायुबन्धनैः॥३४॥
मूलभूता इमे प्रोक्ताः सप्त नाड्यन्तरे स्थिताः। त्वचाऽस्थिनाड्यो रोमाणि मांसं चैवाऽत्र पञ्चमम्॥३५॥

महीना पूर्ण होने पर गर्भस्थ प्राणी का ओजोधातु दृढ होगा॥२८॥ तब उस प्राणी का गर्भवास समाप्त करने की (गर्भ से निकलने की) इच्छा होती है। स्त्री अथवा पुरुष अथवा नपुंसक रूप में वह प्राणी जन्म लेता है॥२९॥ तीन शक्तियों से (सर्जन-पालन-संहरण-शक्तियों से) युक्त, मनरूपी विशाल इन्द्रिय से सहित, छः कोशों से वेष्टित शरीर से युक्त, पाँच ज्ञानेन्द्रियों से सहित, इडा-पिङ्गलादि दश नाडियों से विभूषित, प्राणाऽपानादि दश प्राणों के गुणों से सहित आत्मतत्त्व को जो यथार्थ रूप में जानता है वही जीवात्मा और परमात्मा के ऐक्यरूप योग को जानने वाला है। मज्जा, अस्थि (हड्डी), शुक्र (वीर्य), मांस, रस और रक्तबल इन छः कोशों से युक्त, (द्र.– मिताक्षरा ३।८४) पञ्च महाभूतों से बना हुआ यह शरीरपिण्ड प्राणी का होगा। गर्भवास के नौवें अथवा दसवें महीने में पाञ्चभौतिक शरीर से युक्त, जन्म कराने वाले वायु से आकृष्ट, पीडा से विह्वल बनाया गया और स्त्री के गर्भ में रहते समय माँ की सुषुम्णा नाडी के प्रभाव से पुष्ट प्राणी बाहर निकलने के लिए शीघ्रता करता हुआ जन्म लेता है॥३०-३३॥ जन्मे हुए प्राणी का देह पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन महाभूतों से पिण्डीभूत और स्नायुरूप बन्धनों से युक्त होगा॥३४॥ शरीर में ये सात ही नाडियों के बीच में रहे हुए मूलभूत तत्त्व बताए गए हैं। हे पक्षियों के स्वामिन्, त्वचा, अस्थि (हड्डी), नाडियाँ, रोवें और पाँचवाँ मांस ये पाँच गुण मुझ से शरीर में रही हुई भूमि के बताए गए हैं (द्रष्टव्य- चरकसंहिता, शारीरस्थान ७।१७)। हे कश्यपपुत्र, जिस प्रकार से जल भी पाँच गुण वाला

एते पञ्च गुणाः प्रोक्ता मया भूमेः खगेश्वर। यथा पञ्चगुणाश् चाऽऽपस्तथा तच् छृणु काश्यप॥३६॥
लाला मूत्रं तथा शुक्रं मज्जा रक्तं च पञ्चमम्। आपः पञ्चगुणाः प्रोक्ता ज्ञातव्यास्ते प्रयत्नतः॥३७॥
क्षुधा तृषा तथा निद्रा आलस्यं कान्तिरेव च। तेजः पञ्चगुणं प्रोक्तं तार्क्ष्य सर्वत्र योगिभिः॥३८॥
रागद्वेषौ तथा लज्जा भयं मोहस् तथैव च। इत्येतत् कथितं तार्क्ष्य वायुजं गुणपञ्चकम्॥३९॥
आकुञ्चनं धावनं च लङ्घनं च प्रसारणम्। निरोधः पञ्चमः प्रोक्तो वायोः पञ्च गुणाः स्मृताः॥४०॥
घोषश् छिद्राणि गाम्भीर्यं श्रवणं सर्वसंश्रयः। आकाशस्य गुणाः पञ्च ज्ञातव्यास् तार्क्ष्य यत्नतः॥४१॥
श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासा बुद्धीन्द्रियाणि च। पाणी पादौ गुदं वाक् च गुह्यं कर्मेन्द्रियाणि च॥
इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्णा च तृतीयका। गान्धारी गजजिह्वा च पूषा चैव यशा तथा॥४३॥

है उस प्रकार के विवरण से युक्त उस बात को सुनो॥३५-३६॥ लार, मूत्र, शुक्र, मज्जा और पाँचवाँ रक्त इन पाँच को लेकर शरीर में रहा हुआ जल पाँच गुण वाला बताया गया है, वे गुण यत्नपूर्वक जानने योग्य हैं॥३७॥ हे गरुड, भूख, प्यास, निद्रा, आलस्य और कान्ति इन पाँच को लेकर शरीर में रहा हुआ तेज भी योगियों से पाँच गुण वाला बताया गया है॥३८॥ हे गरुड, राग, द्वेष, लज्जा, भय और मोह इन पाँच गुणों का समुदाय शरीर में रहे हुए वायु से उत्पन्न बताया गया है॥३९॥ सिकुडना, दौडना, लांघना, फैलाना और पाँचवें रूप में बताया गया रोकना ये वायु के पाँच गुण समझे गए हैं॥४०॥ हे गरुड, शब्द, छिद्र, गाम्भीर्य, श्रवण और सर्वाधारत्व ये पाँच आकाश के गुण यत्नपूर्वक ज्ञातव्य हैं (द्रष्टव्य– जीवानन्दसंस्करण २२।३६; तुलनार्थ द्रष्टव्य- चरकसंहिता, शारीरस्थान ७।१६)॥४१॥ श्रवणेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय, दर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय (ये पाँच) ज्ञानेन्द्रिय हैं। दो हाथ, दो पैर, गुदा, जिह्वा (वाक्) और गुह्य (जननेन्द्रिय) (ये पाँच) कर्मेन्द्रिय हैं॥४२॥ इडा, पिङ्गला, तीसरी सुषुम्णा, गान्धारी, गजजिह्वा, पूषा, यशा,

अलम्बुषा कुहूश् चैव शङ्खिनी दशमी स्मृता। पिण्डमध्ये स्थिता ह्येताः प्रधाना दश नाडयः॥४४॥
प्राणापानौ समानश् च उदानो व्यान एव च। नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः॥४५॥
इत्येते वायवः प्रोक्ता दश देहेषु सुस्थिताः। केवलं भुक्तमन्नं च पुष्टिदं सर्वदेहिनाम्॥४६॥
नयते प्राणदो वायुः शरीरे सर्वसन्धिषु। आहारो भुक्तमात्रस् तु वायुना क्रियते द्विधा॥४७॥
स प्रविश्य गुदे सम्यक् पृथगन्नं पृथग् जलम्। ऊर्ध्वमग्नेर् जलं कृत्वा तदन्नं च जलोपरि॥४८॥
अग्नेश् चाधः स्वयं प्राणस्तमग्निं च धमेच् छनैः। वायुना धम्यमानोऽग्निः पृथक् किट्टं पृथग् रसम्॥४९॥
मलैर् द्वादशभिः किट्टं भिन्नं देहात् पृथग् भवेत्। कर्णाक्षि नासिका जिह्वा दन्तनाभिवपुर्गुदम्॥५०॥
नखा मलाश्रया ह्येते विण्मूत्रं चेत्यनन्तकम्। शुक्रशोणितसंयोगादेतत् षाट्कौशिकं स्मृतम्॥५१॥

अलम्बुषा, कुहू और दसवीं शङ्खिनी समझी गई है। ये शरीरपिण्ड में रही हुई प्रधान दश नाडियाँ हैं॥४३-४४॥ प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान; नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय ये देहों में अच्छी तरह रहे हुए दश वायु बताए गए हैं। सभी प्राणियों से खाए गए पुष्टिदायक अन्न को प्राण वायु शरीर में सभी सन्धियों में ले जाता है; खाने के बाद तुरत ही आहार वायु से दो भागों में बांटा जाता है॥४५-४७॥ वह वायु गुदा में प्रविष्ट होकर अच्छी तरह अन्न को पृथक् और जल को पृथक् करके अग्नि के ऊपर जल को और जल के ऊपर अन्न को रखकर अग्नि के नीचे स्वयम् रहकर प्राणरूप से उस अग्नि को धीरे धीरे फूँकेगा। वायु से फूँका गया अग्नि किट्ट (मल) को अलग और रस को अलग करता है॥४८-४९॥ अलग किया गया किट्ट (मल) बारह प्रकार के मलों के रूप से (द्रष्टव्य- मनुस्मृति ५।१३५) देह से अलग होता है। कान, आँख, नाक, जीभ, दाँत, नाभि, सम्पूर्ण शरीर अथवा उस में व्याप्त चर्म के रोमकूपादि, गुदा, नाखून ये मल के आश्रय हैं; विष्ठा, मूत्र, पसीना इत्यादि रूप से ये मल देह से निरन्तर निकलने वाले हैं। शुक्र (वीर्य) और शोणित (स्त्रीडिम्ब) का संयोग से यह छः

रोम्णां कोट्यस्तथा तिस्रोऽप्यर्धकोटिसमन्विताः। द्वात्रिंशद् दशनाः प्रोक्ताः सामान्याद् विनतासुत।५२।
सप्त लक्षाणि केशाः स्युर् नखाः प्रोक्तास्तु विंशतिः। मांसं पलसहस्रैकं सामान्याद् देहसंस्थितम्॥५३॥
रक्तं पलशतं तार्क्ष्य बुद्धमेव पुरातनैः। पलानि दश मेदश्च त्वचा चैव तु तत्समा॥५४॥
पलद्वादशकं मज्जा महारक्तं पलत्रयम्। शुक्रं द्विकुडवं ज्ञेयं शोणितं कुडवं स्मृतम्॥५५॥
श्लेष्मणश् च षडर्धं च विण् मूत्रं तत्प्रमाणतः। अस्थ्नां हि ह्यधिकं प्रोक्तं षष्ट्युत्तरशतत्रयात्॥५६॥
एवं पिण्डः समाख्यातो वैभवं सम्प्रचक्ष्महे। सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैव हि प्राप्यते॥५७॥
अधोमुखं चोर्ध्वपादं गर्भाद् वायुः प्रकर्षति। तले तु करयोर् न्यस्य वर्धते जानुपार्श्वयोः॥५८॥

कोशों से युक्त शरीर बनने वाला समझा गया है॥५०-५१॥ हे विनता के पुत्र, शरीर में रोवों की आधी कोटि से युक्त तीन कोटियाँ हैं, सामान्यतया बत्तीस दाँत बताए गए हैं॥५२॥ केश सात लाख हैं, नख बीस बताए गए हैं। सामान्यतया एक हजार पल (चार तोलों का एक पल होता है) मांस देह में रहा हुआ माना जाता है॥५३॥ हे गरुड, मानवशरीर में रक्त एक सौ पल रहने की बात प्राचीन विद्वानों ने समझी है। मेदा दश पल और त्वचा भी उसी के तुल्य समझी गई है॥५४॥ मज्जा बारह पल और महारक्त (ओजोधातु) तीन पल, पुरुष में शुक्र दो कुडव (आठ पल) और स्त्री में शोणित (डिम्भ) एक कुडव (चार पल) समझा गया है। (सभी ओर चार अङ्गुल प्रमाण के चतुष्कोण पात्र को भी शास्त्रों में कुडव कहा जाता है)॥५५॥ श्लेष्म का भी एक कुडव ही समझा गया है। विष्ठा छः पल और आधा पल तथा मूत्र भी उसी परिमाण का समझा गया है (द्रष्टव्य– जीवानन्दसंस्करण २२।५१; तुलनार्थ द्रष्टव्य- चरकसंहिता, शारीरस्थान ७।१५)। शरीर में हड्डियों की सङ्ख्या तीन सौ साठ से अधिक बताई गई है॥५६॥ इस प्रकार से शरीररूप पिण्ड बताया गया। इस का महत्त्व बताते हैं। सुख, दुःख, भय और कल्याण भी इसी शरीर से किए गए कर्म से पाया जाता है॥५७॥ गर्भ में अधोमुख और ऊर्ध्वपाद होकर रहे हुए प्राणी को प्रसूतिवायु गर्भ से बाहर खींचता है। गर्भ में रहते समय मनुष्य घुटनों के आस-पास में हथेलियों को रखकर बढता है॥५८॥

अङ्गुष्ठौ चोपरि न्यस्तौ जान्वोरथ कराङ्गुली। जानुपृष्ठे तथा नेत्रे जानुमध्ये च नासिका॥५९॥
एवं वृद्धिं क्रमाद् याति जन्तुः स्त्रीगर्भसंस्थितः। काठिन्यमस्थीन्यायान्ति भुक्तपीतेन जीवति॥६०॥
नाडी वाऽऽप्यायनी नाम नाभ्यां तत्र निबध्यते। स्त्रीणां तथाऽन्त्रसुषिरे स निबद्धः प्रजायते॥६१॥
क्रामन्ति भुक्तपीतानि स्त्रीणां गर्भोदरे तथा। तैराप्यायितदेहोऽसौ जन्तुर् वृद्धिमुपैति च॥६२॥
स्मृत्यस्तत्र प्रयान्त्यस्य बह्व्यः संसारभूतयः। ततो निर्वेदमायाति पीड्यमान इतस्ततः॥६३॥
पुनर् नैवं करिष्यामि मुक्तमात्र इहोदरात्। तथातथा यतिष्यामि गर्भं नाप्नोम्यहं यथा॥६४॥
इति सञ्चिन्तयन् जीवो स्मृत्वा जन्मशतानि वै। यानि पूर्वानुभूतानि देवभूतात्मजानि वै॥६५॥
ततः कालक्रमाज् जन्तुः परिवर्त्य त्वधोमुखः। नवमे दशमे वाऽपि मासि सञ्जायते ततः॥६६॥

उस समय में अँगूठे और हाथ की अङ्गुलियाँ घुटनों के ऊपर रखी गई होती हैं। आँखे घुटनों के पीछे भाग में छिपी रहती हैं तो नाक दो घुटनों के बीच में रहता है॥५९॥ स्त्री के गर्भाशय में रहा हुआ प्राणी इस प्रकार से धीरे धीरे बढता है। धीरे धीरे हड्डियाँ ठोस हो जाती हैं। माँ से खाए और पिए गए अन्न-पानों से गर्भ जीवित रहता है॥६०॥ आप्यायनी (नाल) नाम की नली गर्भ के नाभि में और स्त्री की अन्त्र (धमनी) के छिद्र में भी जोडी जाती है। गर्भ इसी प्रकार उस नली से बँधा हुआ ही जन्म लेता है॥६१॥ स्त्री से खाए-पिए गए अन्न-पान स्त्रियों के गर्भ के भीतर भी सरकते हैं। उन्ही खाए-पिए गए अन्न-पानों से गर्भस्थ प्राणी का देह पोषित होता है और प्राणी बढता भी है॥६२॥ संसार में पूर्वजन्म में अनुभूत अनेक विषयों की स्मृतियाँ उस को होती हैं, उस से वह वैराग्य पाता है, इधर-उधर से पीडित होता हुआ वह पहले जो कुछ किया गया, अब ऐसा नहीं करुँगा, इस गर्भवास से मुक्त होते ही वैसा प्रयत्न करुँगा जिस से फिर गर्भवास में बैठना न पडे ऐसा चिन्तन करता हुआ जीव पूर्वकाल में अनुभूत देवयोनि भूतयोनि इत्यादि स्वकर्म से संजात सैकडों जन्मों का स्मरण करके कालक्रम से वह प्राणी शरीर को परिवर्तित करके अधोमुख होकर नवम अथवा दशम महीने में गर्भाशय से बाहर निकलता है॥६३-६६॥

निष्क्रम्यमाणो वातेन प्राजापत्येन पीड्यते। निष्क्रमते च विलपंस् तदा दुःखनिपीडितः॥६७॥
निष्क्रामंश् चोदरान् मूर्च्छामसह्यां प्रतिपद्यते। प्राप्नोति चेतनां चासौ वायुस्पर्शसुखान्वितः॥६८॥
ततस् तं वैष्णवी माया समास्कन्दति मोहिनी। तया विमोहितात्माऽसौ ज्ञानभ्रंशमवाप्नुते॥६९॥
भ्रष्टज्ञानो बालभावं ततो जन्तुः प्रपद्यते। ततः कौमारकावस्थां यौवनं वृद्धतामपि॥७०॥
पुनश्च तद्वन् मरणं जन्म प्राप्नोति मानवः। ततः संसारचक्रेऽस्मिन् भ्राम्यते घटयन्त्रवत्॥७१॥
कदाचित् स्वर्गमाप्नोति कदाचिन् निरयं नरः। स्वर्गं च निरयं चैव स्वकर्मफलमश्नुते॥७२॥
कदाचिद् भुक्तकर्मा च भुवं स्वल्पेन गच्छति। स्वर्लोके नरके चैव भुक्तप्राये द्विजोत्तम॥७३॥
नरकेषु महद् दुःखमेतद् यत् स्वर्गवासिनः। दृश्यते नाऽत्र मोदन्ते पात्यमानास् तु नारकैः॥७४॥

निकलता हुआ वह प्राणी प्राजापत्य वायु से पीडित होता है। उस समय में दुःख से पीडित होकर विलाप करता हुआ निकलता है॥६७॥ माँ के पेट से निकलता हुआ प्राणी असह्य पीडा से मूर्छा में पडता है। बाहर निकलने पर बाहर के वायु के स्पर्श से उत्पन्न सुख से युक्त होकर वह प्राणी चेतना को प्राप्त करता है॥६८॥ तब संसार को मोहित करने वाली विष्णु की माया उस प्राणी को आक्रान्त करती है। उस माया से मोहित बुद्धि वाला वह प्राणी गर्भ में जो वैराग्ययुक्त ज्ञान हुआ था उस से च्युत हो जाता है॥६९॥ ज्ञान के भ्रंश से युक्त वह प्राणी बालभाव को प्राप्त करता है, तब फिर कुमार की अवस्था को, जवानी को और वृद्धावस्था को भी प्राप्त करता है॥७०॥ फिर भी मनुष्य पूर्वोक्त रूप में मरण को और जन्म को पाता है। तब इस संसारचक्र में इनारे से पानी निकालने के लिए घूमाए गए घटयन्त्र की तरह ऊपर-नीचे घूमता रहता है॥७१॥ मनुष्य कभी स्वर्ग को पाता है, कभी नरक को पाता है। वह अपने कर्म के फल के रूप में ही स्वर्ग का अथवा नरक का भोग करता है॥७२॥ हे पक्षियों में उत्तम, स्वर्गलोक का अथवा नरक का भोग समाप्तप्राय होने पर अपने कर्म के फल के भोग को प्राप्त करने वाला वह कर्मफल अल्पमात्र अवशिष्ट रहने पर इस भूमि में आता है॥७३॥ नरकों में बडा दुःख है,

स्वर्गेऽपि दुःखमतुलं यदारोहणकालतः। प्रभृत्यहं पतिष्यामीत्येतन् मनसि वर्तते ॥७५॥
नारकांश् चैव सम्प्रेक्ष्य महद् दुःखमवाप्यते। एवं गतिमहं गन्तेत्यहर्निशमनिर्वृतः॥७६॥
गर्भवासे महद् दुःखं जायमानस्य योनिजम्। जातस्य बालभावेऽपि वृद्धत्वे दुःखमेव च॥७७॥
कामेर्ष्याक्रोधसम्बन्धाद् यौवनेऽपि च दुःसहम्। दुःस्वप्नं या वृद्धता च मरणे दुःखमुत्कटम्॥७८॥
कृष्यमाणश्च याम्यैः स नरकेऽपि च यात्यधः। पुनश्च गर्भाज् जन्म स्यान् मरणं दुस्तरं तथा॥७९॥
एवं संसारचक्रेऽस्मिन् जन्तवो घटयन्त्रवत्। भ्राम्यन्ते प्राक्तनैर् बन्धैर् बद्धा विध्यन्ति चाऽसकृत्॥८०॥
नास्ति पक्षिन् सुखं किञ्चित् क्षेत्रे दुःखशताकुले। विनतासुत मोक्षाय यतितव्यं ततो नरैः॥८१॥

स्वर्गवासी का जो सुख देखा जाता है उस में नरकदायी कर्मों से नरक में पतित किए जाने वाले लोग नहीं रम सकते हैं॥७४॥ स्वर्ग में भी अतुलनीय दुःख है, क्योंकि स्वर्ग में पहुँचने के समय से ही 'मैं फिर गिर जाउँगा' यह चिन्ता मन में रहती है, नरक में पडे हुए लोगों को देखकर बडा दुःख पाया जाता है, मैं भी ऐसी ही गति में जाने वाला हूँ, रातदिन ऐसी चिन्ता से स्वर्ग में रहने वाला भी असन्तुष्ट ही रहता है॥७५-७६॥ गर्भ में रहने में भी बडा दुःख है, जन्मते हुए प्राणी को माता की संकरी योनि से पीडित होकर बडा दुःख होता है, जन्मे हुए प्राणी को बालभाव में और वृद्धावस्था में भी दुःख होता है॥७७॥ यौवन में भी काम, ईर्ष्या और क्रोध के सम्बन्ध से दुःसह दुःख होता है। दुःस्वप्न और जो वृद्धावस्था है वह भी दुःख ही है। मरण में तीव्र दुःख है॥७८॥ यमराज के अनुचरों से खींचा जाता हुआ प्राणी नरक में भी नीचे जाता है। फिर भी गर्भ से जन्म होगा, फिर भी दुस्तर मरण होगा॥७९॥ इस प्रकार संसारचक्र में प्राणी घटीयन्त्र की तरह घूमाए जाते हैं, पुराने बन्धनों से बंधे हुए प्राणी वारंवार संसारदुःख से विद्ध हो जाते हैं॥८०॥ हे पक्षिन्, सैकडों दुःख से व्याप्त इस संसार में कुछ भी सुख नहीं है। हे विनता के पुत्र, इस लिए मनुष्यों को मोक्ष प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए॥८१॥

एतत् ते सर्वमाख्यातं यथा गर्भस्य संस्थितिः। कथयामि क्रमप्रश्नं प्रष्टुं वा वर्तते स्पृहा॥८२॥

गरुड उवाच

मध्ये कृतमहाप्रश्नद्वयस्याऽऽप्तं मयोत्तरम्। प्रश्नस्याऽपि तृतीयस्य उत्तरं च विधीयताम्॥८३॥

श्रीकृष्ण उवाच

म्रियमाणस्य किं कृत्यमिति त्वं पृष्टवानसि। शृणु तत्रोत्तरं तूक्तं कथयामि समासतः॥८४॥
आसन्नमरणं ज्ञात्वा पुरुषं स्नापयेत् ततः। गोमूत्र-गोमय-सुमृत्-तीर्थोदक-कुशोदकैः॥८५॥
वाससी परिधार्य्याऽथ धौते तु शुचिनी शुभे। दर्भाण्यादौ समास्तीर्य दक्षिणाग्रान् विकीर्य च॥८६॥
तिलान् गोमयलिप्तायां भूमौ तत्र निवेशयेत्॥८७॥

जैसी गर्भ की स्थिति होती है यह सब मैं ने बता दिया, पूछे गए क्रमप्राप्त प्रश्न का उत्तर बताता हूँ, अथवा तुम्हारी और कोई प्रश्न करने की इच्छा है क्या?॥८२॥ गरुड ने कहा— बीच में किए गए दो महान् प्रश्नों के उत्तर मैं ने पाए। तीसरे प्रश्न का उत्तर भी दिया जाय॥८३॥ श्रीकृष्ण ने कहा— मरते हुए मनुष्य का क्या कृत्य है ऐसा प्रश्न तुम ने किया है, उस में उत्तर तो कहा गया ही है, फिर भी सङ्क्षेप से कहता हूँ, सुनो॥८४॥ समीप में आए हुए मरण को जानकर मनुष्य का गोमूत्र, गोबर, शुद्ध मिट्टी, तीर्थ का जल और कुशजल से स्नान कराए॥८५॥ धोए गए शुद्ध और शोभन धोती और उपरना पहनाकर गोबर से लिपी गई भूमि में पहले दक्षिणाग्र कुशों को बिछाकर उस पर तिलों को बिखेरकर उस पर मरते हुए मनुष्य को पूर्व की ओर अथवा उत्तर की ओर शिर करके सुलाए। मुख में सोने का टुकडा रखे। हे पक्षियों के ईश्वर, उस स्थल में शालग्रामशिला और तुलसी भी समीप में रखी जानी चाहिए। फिर घी का दीपक जलाए। वहाँ 'नमो भगवते वासुदेवाय' इस मन्त्र का जप भी आदि में प्रणव (ओङ्कार) जोडकर किया जाना चाहिए। तब पूजा और दान करने योग्य समझे गए हैं।

प्रागुदक्शिरसं वाऽपि मुखे स्वर्णं विनिःक्षिपेत्। शालग्रामशिला तत्र तुलसी च खगेश्वर॥८८॥
विधेया सन्निधौ सर्पिर्दीपं प्रज्वालयेत् पुनः। नमो भगवते वासुदेवायेति जपस्तथा॥८९॥
आदौ तु प्रणवं कृत्वा पूजादाने ततः स्मृते। समभ्यर्च्य हृषीकेशं पुष्पधूपादिभिस्ततः॥९०॥
प्रणिपातैः स्तवैः पुण्यैर् ध्यानयोगेन पूजयेत्। दत्त्वा दानं च विप्रेभ्यो दीनानाथेभ्य एव च॥९१॥
पुत्रे मित्रे कलत्रे च क्षेत्रधान्यधनादिषु। निवर्तयेन् ममत्वं च विष्णोः पादौ हृदि स्मरन्॥९२॥
उच्चैः पुरुषसूक्तं च यदि श्रेष्ठाऽऽपदस् तदा। पुत्राद्याः प्रपठेयुस् ते म्रियमाणे निजे जने॥९३॥
एतत् ते सर्वमाख्यातं कृत्यं मृत्यावुपस्थिते। फलमप्यस्य कृत्स्नस्य समासात् ते वदाम्यहम्॥९४॥
स्नानेन शुचिताप्राप्तिरपावित्र्यहृतिस्ततः। ततो विष्णोः स्मृतिस् तस्य ज्ञानात् सर्वफलप्रदा॥९५॥
दर्भतूली नयेत् स्वर्गमातुरं तु न संशयः। तिलैर् दर्भैश् च निःक्षिप्तैः स्नानं क्रतुमयं भवेत्॥९६॥

उस के बाद फूल, धूप इत्यादि से हृषीकेश विष्णु की पूजा करके दण्डवत् प्रणामों से, पवित्र स्तुतियों से और ध्यानयोग से भी विष्णु की पूजा करे। ब्राह्मणों को, दीन-दुःखियों को अनाथों को भी दान देकर हृदय में विष्णु के चरणों का स्मरण करते हुए पुत्र में, मित्र में, पत्नी में; क्षेत्र, धान्य और धन इत्यादि में ममता छोड दे॥८६-९२॥ यदि मरणासन्न व्यक्ति की आतुरता अधिक है, वह स्वयम् नहीं पढ सकता है तो मरते हुए अपने मनुष्य के लिए पुत्रादि लोग उच्च स्वर से पुरुषसूक्त का अच्छी तरह पाठ करें॥९३॥ मृत्यु समीप में आने पर कर्तव्य कर्म यह सब तुम को बताया गया, इन सब कर्मों के फलों को भी मैं तुम को बताता हूँ॥९४॥ स्नान से शुद्धता की प्राप्ति होगी, तब अशुद्धता का हरण होगा; तब विष्णु की स्मृति विष्णु के ज्ञान के जरिए सभी फलों को देने वाली होती है॥९५॥ कुश का बिस्तरा आतुर को स्वर्ग ले जाएगा, इस में कोई संशय नहीं है। स्नान-जल में मिलाए गए तिल और कुश से स्नान यज्ञमय होगा॥९६॥

ब्रह्मा विष्णुश् च रुद्रश् च श्रीर् हुताशस् तथैव च। मण्डले चोपतिष्ठन्ति तस्मात् कुर्वीत मण्डलम्।९७।
प्रागुदग् वा कृतेनेह शिरसा लोकमुत्तमम्। व्रजते यदि पापस्याऽल्पत्वं पुंसो भवेत् खग॥९८॥
पञ्चरत्ने मुखे मुक्ते जीवे ज्ञानं प्ररोहति। तुलसी ब्राह्मणा गावो विष्णुरेकादशी खग॥९९॥
पञ्च प्रवहणान्येव भवाब्धौ मज्जतां नृणाम्। विष्णुरेकादशी गीता तुलसी विप्रधेनवः॥१००॥
असारे दुर्गसंसारे षट्पदी मुक्तिदायिनी। नमो भगवते वासुदेवायेति जपन् नरः॥१०१॥
ओङ्कारपूर्वं सायुज्यं प्राप्नुयान् नाऽत्र संशयः। पूजयाऽपि च मल्लोकप्राप्तिराराद् दिवं व्रजेत्॥१०२॥
बन्धाभावेऽममत्वे तु ज्ञानं पुरुषसूक्ततः। यस्ययस्याऽधिकत्वं तु साधनेष्वेषु काश्यप॥१०३॥
तत्तत्फलस्याऽप्याधिक्यं भवतीत्यवधारय। दातव्यानि यथाशक्त्या प्रीतोऽसौ सर्वदा भवेत्।१०४।

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, श्री और अग्नि भी मण्डल में उपस्थित होते हैं, इस लिए मण्डल बनाए॥९७॥ हे पक्षिन्, यदि पाप थोडा ही है तो आतुर का शिर पूर्व की ओर अथवा उत्तर की ओर करने से वह उत्तम लोक को जाता है॥९८॥ आतुर के मुख में पञ्चरत्न (सोना, चाँदी, मोती, राजावर्त [लाजवर्द] और मूँगा) रखदेने से जीव में ज्ञान उत्पन्न होता है। हे पक्षिन्, तुलसी, ब्राह्मण, गाय, विष्णु, एकादशी ये पाँच संसारसमुद्र में डूबते हुए मनुष्यों के लिए नौकाएँ हैं। विष्णु, एकादशी, गीता, तुलसी, ब्राह्मण और गौ ये छः पदार्थ इस दुर्गम संसार में मुक्ति देने वाले हैं। ओङ्कार को पहले रखकर 'नमो भगवते वासुदेवाय' इस मन्त्र को जपता हुआ मनुष्य सायुज्य-मुक्ति पाएगा, इस में सन्देह नहीं है। पूजा से भी मेरे लोक की (विष्णुलोक की) प्राप्ति होगी, समीप में ही वर्तमान स्वर्ग में भी जाएगा॥९९-१०२॥ ममता के अभाव से संसार का बन्धन शिथिल होने पर पुरुषसूक्त के पाठ से परमात्मज्ञान होता है। हे कश्यपपुत्र, इन साधनों में जिस जिस साधन की अधिकता होगी उस उस साधन के फल की भी अधिकता होगी यह निश्चय करो। अपनी शक्ति के अनुसार दान देने चाहिए, इस से सदा परमेश्वर प्रसन्न होंगे॥१०३-१०४॥

एतत् ते सर्वमाख्यातं स्नानादिषु फलं मया। ब्रह्माण्डे ये गुणाः सन्ति शरीरे ते व्यवस्थिताः॥१०५॥
पातालभूधरा लोकास् तथाऽन्ये द्वीपसागराः। आदित्यादिग्रहाः सर्वे पिण्डमध्ये व्यवस्थिताः॥१०६॥
पादाधस्तु तलं ज्ञेयं पादोर्ध्वं वितलं तथा। जानुभ्यां सुतलं विद्धि सक्थिदेशे महातलम्॥१०७॥
तथा तलातलं चोरौ गुह्यदेशे रसातलम्। पातालं कटिसंस्थं तु पादादौ लक्षयेद् बुधः॥१०८॥
भूर्लोकं नाभिमध्ये तु भुवर्लोकं तदूर्ध्वतः। स्वर्लोकं हृदये विद्यात् कण्ठदेशे महस्तथा॥१०९॥
जनलोकं वक्त्रदेशे तपोलोकं ललाटके। सत्यलोकं महारन्ध्रे भुवनानि चतुर्दश॥११०॥
त्रिकोणे संस्थितो मेरुरधःकोणे च मन्दरः। दक्षिणे चैव कैलासो वामभागे हिमाचलः॥१११॥
निषधश् चोर्ध्वभागे च दक्षिणे गन्धमादनः। मलयो वामरेखायां सप्तैते कुलपर्वताः॥११२॥

यह सब स्नानादि कृत्यों के फल मैं ने तुम को बता दिया। ब्रह्माण्ड में जो गुण हैं वे सब शरीर में भी रहे हुए हैं॥१०५॥ पाताल, पर्वत, लोक और द्वीप और समुद्र तथा आदित्यादि ग्रह ये सब ही शरीर में ही रहे हुए हैं॥१०६॥ पैर के नीचे तललोक है, पैर के ऊपर वितललोक है, घुटनों में सुतललोक है, घुटनों से ऊपर के भाग में महातललोक है॥१०७॥ उस के ऊपर ऊरुदेश में ही तलातललोक है, गुह्यस्थल में रसातललोक है, पाताललोक कटिदेश में है, इस प्रकार पदादि स्थलों में लोकों की स्थिति जाने। *[विशेष— अतलादि सात अधोलोकों का यह ऊर्ध्वाधोभाव चिन्त्य है, द्र.- भागवत ५।२४।७; आरुण्युपनिषद्, १]*॥१०८॥ नाभिदेश में भूर्लोक, उस के ऊपर भुवर्लोक, हृदय में स्वर्लोक और कण्ठदेश में महर्लोक जाने॥१०९॥ मुखदेश में जनलोक, ललाट में तपोलोक और ब्रह्मरन्ध्रदेश में सत्यलोक जाने; ये शरीर में रहे हुए चौदह भुवन हैं॥११०॥ त्रिकोणस्थल में (जघनस्थल में) मेरु पर्वत रहा है, अधःकोण में मन्दर पर्वत रहा है, उस के दक्षिण भाग में कैलास पर्वत रहा है, वामभाग में हिमालयपर्वत रहा है, ऊपर के भाग में निषधपर्वत रहा है, दक्षिणभाग में गन्धमादनपर्वत रहा है, वामरेखा में मलयपर्वत रहा है, ये सात शरीर में स्थित कुलपर्वत हैं॥१११-११२॥

अस्थिस्थाने स्थितो जम्बूः शाको मज्जासु संस्थितः। कुशद्वीपः स्थितो मांसे क्रौञ्चद्वीपः शिरास्थितः॥११३॥
त्वचायां शाल्मलिद्वीपो प्लक्षो रोम्णां च सञ्चये। नखस्थः पुष्करद्वीपः सागरास्तदनन्तरम्॥११४॥
क्षारोदश् च तथा मूत्रे क्षीरे क्षीरोदसागरः। सुरोदधिश् च श्लेष्मस्थः मज्जायां घृतसागरः॥११५॥
रसोदधिं रसे विद्याच् छोणिते दधिसागरम्। स्वादूदकं च विट्स्थाने गर्भोदं शुक्रसंस्थितम्॥११६॥
नादचक्रे स्थितः सूर्यो बिन्दुचक्रे च चन्द्रमाः। लोचनस्थः कुजो ज्ञेयो हृदये च बुधः स्मृतः॥११७॥
विष्णुस्थाने गुरुं विद्याच् छुक्रे शुक्रो व्यवस्थितः। नाभिस्थाने स्थितो मन्दो मुखे राहुः स्थितः सदा।११८।
पायुस्थाने स्थितः केतुः शरीरे ग्रहमण्डलम्। विभक्तं च समाख्यातमापादतलमस्तकम्॥११९॥

शरीर के अस्थिस्थान में जम्बूद्वीप रहा है, मज्जास्थान में शाकद्वीप स्थित है, मांसस्थान में कुशद्वीप स्थित है, शिरास्थान में क्रौञ्चद्वीप स्थित है॥११३॥ त्वचास्थान में शाल्मलिद्वीप स्थित है, रोवों के समूह में प्लक्षद्वीप स्थित है, पुष्करद्वीप नाखूनों में स्थित है, उस के बाद शरीर में समुद्र स्थित हैं॥११४॥ मूत्र में क्षारोद समुद्र है, क्षीर (दुग्धतत्त्व) में क्षीरोद समुद्र है, श्लेष्मा में सुरोद समुद्र है, मज्जा में घृतोद समुद्र है॥११५॥ रस में इक्षुरसोद समुद्र को जाने, रक्त में दध्युद सागर को जाने, विष्ठा के स्थान में स्वादूद समुद्र को जाने (द्रष्टव्य– जीवानन्दसंस्करण २२।६२); गर्भोद समुद्र (पृथिवी के गर्भ में स्थित जल के रूप में रहे हुए गर्भोद समुद्र) को शुक्र में रहा हुआ जाने॥११६॥ शरीर में नादचक्र में सूर्य स्थित है, बिन्दुचक्र में चन्द्रमा स्थित है, आँखों में मङ्गल को स्थित जानना चाहिए, हृदय में बुध को स्थित समझा गया है, विष्णुस्थान (पाद) में बृहस्पति स्थित है, शुक्र-(वीर्य)-स्थान में शुक्र रहा हुआ है, नाभिस्थान में शनैश्चर रहा है, मुख में सदाकाल राहु स्थित है, गुदस्थान में केतु स्थित है, शरीर में ग्रहमण्डल इस प्रकार पादतल से लेकर माथा तक विभक्त होकर रहा हुआ बताया गया है॥११७-११९॥

उत्पन्ना ये हि संसारे म्रियन्ते ते न संशयः। बुभुक्षा च तृषा रौद्रा दाहोद्भूता च मूर्छना॥१२०॥
यत्र पीडास् त्विमा रौद्रास् ता वै वृश्चिकदंशजाः। विनाशः पूर्णकाले च जायते सर्वदेहिनाम्॥१२१॥
अग्रेअग्रे हि धावन्ति यमलोकगतस्य वै। तप्तवालुकमध्येन प्रज्वलद्वह्निमध्यतः॥१२२॥
केशग्राहैः समाक्रान्ता नीयन्ते यमकिङ्करैः। पापिष्ठास् त्वधमास् तार्क्ष्य दयाधर्मविवर्जिताः॥१२३॥
यमलोके वसन्त्येते कुट्यां जन्म न विद्यते। एवं सञ्जायते तार्क्ष्य मर्त्ये जन्तुः स्वकर्मभिः॥१२४॥
उत्पन्ना ये हि संसारे म्रियन्ते ते न संशयः। आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च॥१२५॥
पञ्चैतानि हि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः। कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते॥१२६॥

जो भी संसार में जन्म लेते हैं वे सब मरते ही हैं, इस में सन्देह नहीं है; भूख, प्यास और दाह से उत्पन्न भयङ्कर मूर्छा ये तीव्र पीडाएँ जहाँ हैं, वे पीडाएँ बिच्छू के डंक से उत्पन्न पीडा की तरह होती हैं। आयु पूर्ण होने पर सभी प्राणियों का मरण होता है॥१२०-१२१॥ यमलोक में जाने वाले के आगे आगे यमदूत दौडते हैं। हे गरुड, पापिष्ठ अधम और दया-धर्म से रहित मनुष्य यम के अनुचरों से वाल पकडके घसीटकर गरम बालू के मध्य से और दहकते अग्नि के मध्य से भी ले जाए जाते हैं॥१२२-१२३॥ ये पापिष्ठ लोग (प्रलय काल तक) यमलोक में वास करते हैं, मनुष्य शरीर में जन्म नहीं होता है। हे गरुड, प्राणी इस प्रकार अपने कर्मों से मर्त्यलोक में जन्म लेता है॥१२४॥ जो संसार में उत्पन्न हुए हैं वे मरते हैं इस में सन्देह नहीं है। प्राणियों के आयु, जीविकाकर्म, धन, विद्या और मरण ये पाँच गर्भ में रहने के समय में ही (विधाता से) निश्चित किए जाते हैं। प्राणी अपने ही कर्म से उत्पन्न होता है, अपने ही कर्म से मरता है॥१२५-१२६॥ प्राणी सुख अथवा दुःख, भय अथवा कल्याण भी अपने ही कर्म से पाता है। प्राणी को अधोमुख और ऊर्ध्वपाद करके वायु गर्भाशय

सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैवाऽभिपद्यते। अधोमुखं चोर्ध्वपादं गर्भाद् वायुः प्रकर्षति॥१२७॥
जन्मतो वैष्णवी माया सम्मोहयति सत्वरम्। स्वकर्मकृतसम्बन्धो जन्तुर् जन्म प्रपद्यते॥१२८॥
सुकृतादुत्तमो भोगी भाग्यवान् सुकुले भवेत्। यथायथा दुष्कृतं तत् कुले हीने प्रजायते॥१२९॥
दरिद्रो व्याधितो मूर्खः पापकृद् दुःखभाजनम्। अतः परं कमर्थं ते कथयानि खगेश्वर॥१३०॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे जन्तूत्पत्ति-तद्गतधात्वादिविभाग-भुवनादिविभागवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः॥

से बाहर खींचता है॥१२७॥ जन्मकाल से ही तुरत विष्णु की माया प्राणियों को सम्मोहित करती है। अपने कर्म से सम्बन्ध स्थापित करके ही प्राणी जन्म लेता है॥१२८॥ सुकर्म (धर्म) से उत्तम होकर भोगवान् होने का भाग्य लेकर उत्तम कुल में जन्म लेता है। किन्तु जैसे जैसे कुकर्म करता है वैसे वैसे नीच और नीचतर कुल में दरिद्र, रोगी, मूर्ख, पाप करने वाला और दुःख भोगने वाला होकर जन्म लेता है। हे पक्षियों के ईश्वर, अब इस के आगे तुम को मैं कौन सी बात बताऊँ॥१२९-१३०॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में प्राणियों की उत्पत्ति, प्राणिदेहों में रहने वाले रस-रक्तादि धातुओं का विभाग, और भुवन इत्यादि का विभाग का वर्णन करने वाला बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥३२॥

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

गरुड उवाच

उत्पत्तिलक्षणं जन्तोः कथितं मयि पुत्त्रके। यमलोकः कियन्मात्रस् त्रैलोक्ये सचराचरे।
विस्तारं तस्य मे ब्रूहि अध्वा चैव कियान् स्मृतः॥१॥
कैश्च पापैः कृतैर् देव केन वा शुभकर्मणा। गच्छन्ति मानवास् तत्र कथयस्व विशेषतः॥२॥

श्रीभगवानुवाच

षडशीतिसहस्राणि योजनानां प्रमाणतः। यमलोकस्य चाऽध्वानमन्तरा मानुषस्य च॥३॥
ध्माततताम्रमिवाऽऽतप्तो ज्वलन् दुर्गो महापथः। तत्र गच्छन्ति पापिष्ठा मानवा मूढचेतसः॥४॥
कण्टकाश् च सुतीक्ष्णा वै विविधा घोरदर्शनाः। तैस् तु वालुक्षितिर् व्याप्ता हुताशश् च तथोल्बणः॥५॥

गरुड ने कहा— प्राणी की उत्पत्ति का लक्षण पुत्त्रतुल्य मुझ को बताया गया। इस चराचरसहित त्रिलोक में यमलोक कितने परिमाण वाला है? उस के विस्तार को मुझे बताइए, मर्त्यलोक से यमलोक तक के मार्ग का परिमाण कितना समझा गया है?॥१॥ हे देव, कौन कौन पाप करने से और कौन शुभ कर्म करने से मनुष्य वहाँ जाते हैं, इस बात को विशेष रूप से कहिए॥२॥ श्रीभगवान् ने कहा— यमलोक के और मानुषलोक के बीच के मार्ग को परिमाण से छियासी हजार योजन बताते हैं॥३॥ वह महापथ धौकनी से दहकाए गए तांवे की तरह दहकता हुआ और दुर्गम है। मूढ चित्त वाले पापिष्ठ मनुष्य उस मार्ग में चलते हैं॥४॥ उस मार्ग में अत्यन्त तेज और देखने में भयङ्कर विविध काटे हैं। उस मार्ग की वालुकामयी भूमि उन्हीं कांटों से व्याप्त है, फिर वहाँ प्रचण्ड अग्नि भी है॥५॥

वृक्षच्छाया न तत्राऽस्ति यत्र विश्रमते नरः। गृहीतः कालपाशैश् च कृतैः कर्मभिरुल्बणैः॥६॥
तस्मिन् मार्गे न चाऽन्नाद्यं येन प्राणान् प्रपोषयेत्। न जलं दृश्यते तत्र तृषा येन विलीयते॥७॥
क्षुधया पीडितो याति तृष्णया च महापथे। शीतेन कम्पते क्वाऽपि यममार्गेऽतिदुर्गमे॥८॥
यद् यस्य यादृशं पापं स पन्थास्तस्य तादृशः। सुदीनाः कृपणा मूढा दुःखैर् व्याप्तास् तरन्ति तम्॥९॥
रुदन्ति दारुणं केचित् केचिद् द्रोहं वदन्ति च। आत्मकर्मकृतैर् दोषैः पच्यमाना मुहुर्मुहुः॥१०॥
ईदृग्विधः स वै पन्था विज्ञेयो दारुणः खग। वितृष्णा ये नरा लोके सुखं तस्मिन् व्रजन्ति ते॥११॥
यानियानि च दानानि दत्तानि भुवि मानवैः। तानितान्युपतिष्ठन्ति यमलोके पुरः पथि॥१२॥
पापिनां नोपतिष्ठन्ति दाहश्राद्धजलाञ्जलिः। भ्रमन्ति वायुभूतास् ते ये क्षुद्राः पापकर्मिणः॥१३॥

उस मार्ग में कोई वृक्ष की छाया भी नहीं है, जहाँ अपने से किए गए उत्कट दुष्कर्मों के हेतु काल के पाशों से बँधा हुआ मनुष्य विश्राम करे॥६॥ उस मार्ग में अन्नादि भोज्य पदार्थ भी नहीं हैं, जिस से उस मार्ग का राही प्राणों को पुष्ट करे। वहाँ पानी तो देखा भी नहीं जाता है, जिस से प्यास बुझाई जा सकती है॥७॥ उस महापथ में राही भूख से और प्यास से पीडित होता हुआ चलता है। अत्यन्त दुर्गम उस यममार्ग में राही कहीं पर ठण्डक से कांपता है॥८॥ जिस का जैसा जो पाप है उस के लिए वह यममार्ग उसी पाप का अनुरूप कष्टमय होता है। कृपण मूढ लोग अत्यन्त दीन होकर दुःख से व्याप्त होके उस मार्ग को पार करते हैं॥९॥ अपने से किए गए कर्मों के दोष से वारंवार नरकाग्नि में पकते हुए कुछ लोग उस मार्ग में दारुण रूप में रोते हैं, कोई भाग्य को कोसते हैं॥१०॥ हे पक्षिन्, वह मार्ग को इस प्रकार का भयङ्कर जानना चाहिए। लोक में तृष्णा से रहित जो लोग हैं वे उस मार्ग में सुखपूर्वक ही चलते हैं॥११॥ इस पृथ्वीलोक में मनुष्यों से जो जो वस्तु दान में दिए गए हैं वे वे वस्तु यमलोक के मार्ग में राही के आगे उपस्थित होते हैं॥१२॥ पापियों को दाह, श्राद्ध और जलाञ्जलिदान का फल प्राप्त नहीं होता है। जो क्षुद्र और पाप कर्म करने वाले हैं वे वायुरूप लेकर घूमते रहते हैं॥१३॥

ईदृशं वर्त्म तद् रौद्रं कथितं तव सुव्रत। पुनश्च कथयिष्यामि यममार्गस्य या स्थितिः॥१४॥
याम्यनैर्ऋतयोर् मध्ये पुरं वैवस्वतस्य तु। सर्वं वज्रमयं दिव्यमभेद्यं तत् सुरासुरैः॥१५॥
चतुरश्रं चतुर्द्वारं सप्तप्राकारतोरणम्। स्वयं तिष्ठति वै यस्यां यमो दूतैः समन्वितः॥१६॥
योजनानां सहस्रं वै प्रमाणेन तदुच्यते। सर्वरत्नमयं दिव्यं विद्युज्ज्वालार्कतैजसम्॥१७॥
तद् गृहं धर्मराजस्य विस्तीर्णं काञ्चनप्रभम्। योजनानां पञ्चशतप्रमाणेन समुच्छ्रितम्॥१८॥
वृतं स्तम्भसहस्रैस्तु वैदूर्यमणिमण्डितम्। मुक्ताजालगवाक्षं च पताकाशतभूषितम्॥१९॥
घण्टाशतनिनादाढ्यं तोरणानां शतैर् वृतम्। एवमादिभिरन्यैश्च भूषणैर् भूषितं सदा॥२०॥
तत्रस्थो भगवान् धर्म आसने तु समे शुभे। दशयोजनविस्तीर्णे नीलजीमूतसन्निभे॥२१॥

हे अच्छा व्रत करने वाले, ऐसा भयङ्कर वह मार्ग तुम को बताया गया। यममार्ग की जो वस्तुस्थिति है उस को मैं तुम को फिर भी कहूँगा॥१४॥ दक्षिणदिशा और नैर्ऋत्यदिशा के बीच में यमराज का पुर अवस्थित है। वह सम्पूर्ण ही हीरकमय दिव्य और देवों से और असुरों से भी अभेद्य है॥१५॥ वह पुर चौकोर, चार द्वारों से युक्त और प्राकार के सात तोरणद्वारों से युक्त है। जिस पुरी में दूतों से युक्त यमराज स्वयम् विराजमान होते हैं॥१६॥ उस पुर को परिमाण से एक हजार योजन का कहा जाता है। वह पुर सभी रत्नों से बना हुआ, दिव्य, बिजली तथा अग्नि की ज्वाला और सूर्य के तेज की तरह चमकने वाला है॥१७॥ धर्मराज का वह घर विस्तीर्ण और सोने की प्रभा से तुल्य प्रभा से युक्त तथा पाँच सौ योजन ऊँचा, हजारों स्तम्भों से युक्त, वैदूर्य मणियों से विभूषित, मोतियों के समूह से विभूषित गवाक्षों से युक्त, सैकडों पताकाओं से अलङ्कृत, सैकडों घण्टाओं के निनाद से पूर्ण, सैकडों तोरणों से घिरा हुआ, इसी प्रकार के अन्य आभूषणों से सदाकाल विभूषित रहता है॥१८-२०॥ उस भवन में दश योजन विस्तार वाले, काले मेघ जैसे, सम और शुभ आसन में भगवान् धर्मराज बैठने वाले हैं॥२१॥ वस्तुतः यमराज धर्म के पूर्ण जानकार, धर्म को स्वभावतः पालन करने वाले, धर्म से युक्त और प्राणियों के लिए

धर्मज्ञो धर्मशीलश् च धर्मयुक्तो हितो यमः। भयदः पापयुक्तानां धार्मिकाणां सुखप्रदः॥२२॥
मन्दमारुतसंयोगैरुत्सवैर् विविधैस् तथा। व्याख्यानैर् विविधैर् युक्तः शङ्खवादित्रनिःस्वनैः॥२३॥
पुरमध्यप्रदेशे तु चित्रगुप्तस्य वै गृहम्। पञ्चविंशतिसङ्ख्यानां योजनानां सुविस्तरम्॥२४॥
दशोच्छ्रितं महादिव्यं लोहप्राकारवेष्टितम्। प्रतोलीशतसञ्चारं पताकाशतशोभितम्॥२५॥
दीपिकाशतसङ्कीर्णं गीतध्वनिसमाकुलम्। चित्रितं चित्रकुशलैश् चित्रगुप्तस्य वै गृहम्॥२६॥
मणिमुक्तामये दिव्ये आसने परमाद्भुते। तत्रस्थो गणयत्यायुर् मानुषेष्वितरेषु च॥२७॥
न मुह्यति कदाचित् स सुकृते दुष्कृतेऽपि वा। यद् येनोपार्जितं यावत् तावद् वै वेत्ति तस्य तत्॥२८॥
दशाष्टदोषरहितं कृतकर्म लिखत्यसौ। चित्रगुप्तालयात् प्राच्यां ज्वरस्याऽस्ति महागृहम्॥२९॥

हितकारी हैं। वे पाप से युक्त लोगों के लिए भयदायी और धार्मिक लोगों के लिए सुखदायी हैं॥२२॥ यमराज मन्द मन्द वायु के संयोगों से, अनेक प्रकार के उत्सवों से, विविध व्याख्यानों से और शङ्ख तथा अन्य वाद्यों के शब्दों से भी युक्त रहते हैं॥२३॥ यमपुर के बीच में चित्रगुप्त का पचीस योजन के विस्तार से युक्त घर है॥२४॥ चित्रगुप्त का घर दश योजन ऊँचा, महादिव्य, लोहे के चहारदीवारी से वेष्टित, सैकडों उपद्वारों से आना-जाना किया जाने वाला, सैकडों पताकाओं से शोभित, सैकडों दीपिकाओं से युक्त, गीतों के ध्वनि से व्याप्त और चित्रलेखन में कुशल शिल्पियों से चित्रों से सजाया गया है॥२५-२६॥ मणियों से और मोतियों से बने हुए, अत्यन्त अद्भुत, दिव्य आसन में उस घर में बैठते हुए चित्रगुप्त मनुष्यों के और अन्य प्राणियों के आयु को गिनते रहते हैं॥२७॥ प्राणियों के सुकर्म के और कुकर्म के विषय में कभी भी वे मोह (अज्ञान, संशय अथवा विपरीत ज्ञान) में नहीं पडते हैं। जिस ने जितना जो पुण्य वा पाप उपार्जित किया है उस के उतने उस पुण्य अथवा पाप को वे जानते हैं॥२८॥ वे जीवों से किए गए कर्मों को अठारह वाक्यदोषों से रहित रूप में लिखते हैं। (अठारह वाक्यदोष चित्रशालासंस्करण के महाभारत के शान्तिपर्व में [३२०।७८-] प्रतिपादित हैं)। चित्रगुप्त के घर से पूर्वदिशा की ओर ज्वर का बडा घर है॥२९॥

दक्षिणे चाऽपि शूलस्य लूताविस्फोटकस्य च। पश्चिमे कालपाशस्य अजीर्णस्याऽरुचेस् तथा॥३०॥
मध्यपीठोत्तरे ज्ञेया तथा चाऽन्या विषूचिका। ऐशान्यां वै शिरोऽर्तिश् च आग्नेय्यां चैव मूकता॥३१॥
अतिसारश्च नैर्ऋत्यां वायव्यां दाहसञ्ज्ञकः। एभिः परिवृतो नित्यं चित्रगुप्तः स तिष्ठति॥३२॥
यत् कर्म कुरुते कश्चित् तत् सर्वं विलिखत्यसौ। धर्मराजगृहद्वारि दूतास् तार्क्ष्य तथा दिशि।
तिष्ठन्ति पापकर्माणः पीडयन्तो नराधमान्॥३३॥
यमदूतैर् महापाशैर् हन्यमानाश् च मुद्गरैः। बध्यन्ते विविधैः पापैः पूर्वकर्मकृतैर् नराः॥३४॥
नानाप्रहरणाग्रैश् च नानायन्त्रैस् तथा परे। छिद्यन्ते पापकर्माणः क्रकचैः काष्ठवद् द्विधा॥३५॥
अन्ये ज्वलद्भिरङ्गारैर् वेष्टिताः परितो भृशम्। पूर्वकर्मविपाकेन ध्मायन्ते लोहपिण्डवत्॥३६॥

दक्षिणदिशा की ओर शूल का, लूता का और विस्फोटक का भी घर है। पश्चिमदिशा की ओर कालपाश का, अजीर्ण का और अरुचि का भी घर है॥३०॥ चित्रगुप्त के घर के मध्यपीठ से उत्तरदिशा की ओर अन्य रोग विषूचिका (हैजा) रहती है। ऐशानी दिशा की ओर शिरोऽर्ति (शिरःपीडा) रोग है, और आग्नेयी दिशा में मूकता है॥३१॥ नैर्ऋती दिशा की ओर अतिसार (दस्त) है और वायवी दिशा में दाह नाम का रोग है। वह चित्रगुप्त सदाकाल इन रोगों से घिरे हुए रहते हैं॥३२॥ जो कोई भी प्राणी जो कर्म करता है उस सब कर्म को वे लिखते हैं। हे गरुड, धर्मराज के घर के द्वार में तथा सभी दिशाओं में भी क्रूर कर्म करने वाले यमदूत पापिष्ठ लोगों को पीडा देते हुए रहते हैं (द्रष्टव्य– जीवानन्दसंस्करण २३।३३)॥३३॥ अपने से पहले किए गए विविध पापों के कारण से मनुष्य यमदूतों से मुद्गरों से मारे जाते हुए महापाशों से बाँधे जाते हैं॥३४॥ अन्य पापकर्म वाले लोग अनेक प्रकार के हथियारों के अग्रभागों से और नाना प्रकार के यन्त्रों से भी आरे से काठ की तरह काटकर दो भागों में बांटे जाते हैं॥३५॥ अन्य पापी लोग पहले किए गए कर्म के फल के रूप में सभी ओर दहकते हुए अङ्गारों से वेष्टित करके लोहे के गोले की तरह फूँके जाते हैं॥३६॥

क्षिप्त्वाऽन्ये च धरापृष्ठे कुठारेणाऽवकर्तिताः। क्रन्दमानाश्च दृश्यन्ते पूर्वकर्मविपाकतः॥३७॥
केचिद् गुडमयैः पाकैस् तैलपाकैस् तथा परे। पीड्यन्ते यमदूतैश्च पापिष्ठाः सुभृशं नराः॥३८॥
ऋणानि प्रार्थयन्त्यन्ये देहिदेहीति कोटिशः। यमलोके मया दृष्टो मम स्वं भक्षितं त्वया॥३९॥
इत्येवं बहुशस् तार्क्ष्य नरकाः पापिनां स्मृताः। कर्मभिर् बहुभिः प्रोक्तैः सर्वशास्त्रेषु भाषितैः।
दानोपकारं वक्ष्यामि यथा तत्र सुखं भवेत्॥४०॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे
यमलोकविस्तृतिवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥

फिर अन्य पापी लोग पहले किए गए कर्म के परिणाम के रूप में पृथिवीतल में फेंककर कुल्हाडे से काटे गए और चिल्ला रहे दिखाई देते हैं॥३७॥ यमदूतों के द्वारा कोई पापिष्ठ लोग गुड के साथ में किए गए पाकों से और अन्य कोई पापिष्ठ लोग तेल के साथ में किए गए पाकों से अत्यन्त तीव्र रूप में पीडित किए जाते हैं॥३८॥ अन्य करोडों लोग 'तुम मुझ से यमलोक में देखे गए हो, तुम ने मेरा धन खाया था, दे दो दे दो' कहकर ऋण चुकाने के लिए माँग करते हैं (द्रष्टव्य– जीवानन्दसंस्करण २३।३९) ॥३९॥ हे गरुड, धर्मशास्त्रों में बताए गए और मुझ से भी पहले ही कहे गए अनेक पापकर्मों से पापियों के इस प्रकार के बहुत से नरक होने वाले समझे गए हैं। अब मैं दान से होने वाले प्रेत के उपकार को बताउँगा, जिस प्रकार दान देने से उस यमलोक में सुख मिलेगा॥४०॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में
यमलोक के विस्तार का वर्णन करने वाला तेंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।३३।।

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु तार्क्ष्य यथान्यायं धर्माऽधर्मस्य लक्षणम्। सुकृतं दुष्कृतं नृणामग्रे धावति धावताम्॥१॥
कृते तपः प्रशंसन्ति त्रेतायां ज्ञानसाधनम्। द्वापरे यज्ञदाने च दानमेकं कलौ युगे॥२॥
गृहस्थानां स्मृतो धर्म उत्तमानां विचक्षणैः। इष्टापूर्ते स्वशक्त्या हि कुर्वतां नास्ति पातकम्॥३॥
वृक्षास् तु रोपिता येन खनिकूपजलाशयाः। कृता मार्गे सुखं तस्य व्रजतो नितरां भवेत्॥४॥
अग्नितापप्रदातारो ये शीतपीडिते द्विजे। तप्यमानाः सुखं यान्ति सर्वकामैः प्रपूरिताः॥५॥

श्रीकृष्ण ने कहा– हे गरुड, न्याय (धर्ममीमांसाशास्त्र) के अनुसार धर्म का और अधर्म का लक्षण सुनो। संसारचक्र में दौडते हुए मनुष्यों के आगे आगे उन से किए गए धर्म और अधर्म दौडते हैं॥१॥ मुनि लोग सत्ययुग के लिए तपस्या की प्रशंसा करते हैं, त्रेतायुग के लिए ज्ञान की साधना की प्रशंसा करते हैं, द्वापरयुग के लिए यज्ञ और दान की प्रशंसा करते हैं और कलियुग के लिए केवल दान की ही प्रशंसा करते हैं॥२॥ विवेचनशील पण्डितों ने गृहस्थों के लिए यह धर्म समझा है कि अपनी शक्ति के अनुसार इष्टापूर्त कर्म करने वाले गृहस्थों का पाप से सम्पर्क नहीं होता है। *[विशेष– इष्टापूर्तशब्द का अर्थ आजकल प्रायः पण्डित लोग भी ठीक ठीक नहीं समझ रहे हैं, इष्टापूर्तशब्द का अर्थ अत्रिसंहिता के वचनों से स्पष्ट होता है– 'अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चैव पालनम्। आतिथ्यं वैश्वदेवश्च इष्टमित्यभिधीयते॥ वापी-कूप-तडागादि-देवतायतनानि च। अन्नप्रदानमारामाः पूर्तमित्यभिधीयते॥– श्लो. ४३-४४]*॥३॥ जिस ने वृक्ष रोपे हैं, और जिस ने गुफा, कुआँ और जलाशय बनाया है, यमपुरी के मार्ग में चलते हुए उस को अत्यन्त सुख होगा॥४॥ ठण्डक से पीडित ब्राह्मण को अग्नि के ताप का दान करने वाले लोग ठण्डक से पीडित करने वाले यममार्ग में आग का ताप लेते हुए और कामनाओं के सम्पूर्ण विषयों को भोगते हुए सुख से यात्रा करते हैं॥५॥

सुवर्णमणिमुक्तादि वस्त्राण्याभरणानि च। तेन सर्वमिदं दत्तं येन दत्ता वसुन्धरा॥६॥
यानियानि च भूतानि दत्तानि भुवि मानवैः। यमलोकपथे तानि तिष्ठन्त्येषां समीपतः॥७॥
व्यञ्जनानि विचित्राणि भक्ष्यभोज्यानि यानि च। ददाति विधिना पुत्त्रः प्रेते तदुपतिष्ठति॥८॥
आत्मा वै पुत्त्रनामाऽस्ति पुत्त्रस् त्राता यमालये। तारयेत् पितरं घोरात् तेन पुत्त्रः प्रचक्ष्यते॥९॥
अतो देयं च पुत्त्रेण श्राद्धमाजीविताavधि। अतिवाहस्तदा प्रेतो भोगान् वै लभते हि सः॥१०॥
दह्यमानस्य प्रेतस्य स्वजनैर् यो जलाञ्जलिः। दीयते प्रेतरूपोऽसौ प्रीतो याति यमालये॥११॥
अपक्वे मृन्मये पात्रे दुग्धं दत्तं दिनत्रयम्। काष्ठत्रयं गुणैर् बद्ध्वा प्रीत्यै रात्रौ चतुष्पथे॥१२॥
प्रथमेऽह्नि द्वितीये च तृतीये च तथा खग। आकाशस्थं पिबेद् दुग्धं प्रेतो वायुवपुर्धरः॥१३॥

जिस ने भूमि दी उस ने सोना, मणि, मोती इत्यादि और वस्त्र, आभूषण ये सब पदार्थ दिए॥६॥ इस मर्त्यलोक में मनुष्यों ने जो जो पदार्थ दिए वे पदार्थ यमलोक के मार्ग में उन के समीप में उपस्थित होते हैं॥७॥ यदि पुत्त्र मृत पिता के लिए नाना प्रकार के व्यञ्जन और लड्डू पेडा इत्यादि भक्ष्य पदार्थ तथा हलुवा, खीर, भात इत्यादि भोज्य पदार्थ शास्त्रोक्त विधि से ब्राह्मणों को देता है तो वह सब प्रेत के आगे उपस्थित होता है॥८॥ पुत्त्र नाम का व्यक्ति अपना एक स्वरूप है, यमराज के घर में पुत्त्र रक्षक होता है, पिता को घोर नरक से उतारता है, इस लिए पुत्त्र कहा जाता है॥९॥ इस लिए पुत्त्र से अपने जीवनकाल तक मृत पिता को श्राद्ध दिया जाना चाहिए। जिस समय में प्रेत अतिवाह शरीर में रहता है उस समय में वह भोगों को पाता है॥१०॥ जलाए जा रहे प्रेत को अपने लोगों से जो जलाञ्जलि दिया जाता है उस से प्रेतरूप वह तृप्त होकर यमपुरी में जाता है॥११॥ तीन काष्ठों को रस्सी से बाँधकर बनाई गई तिगोडिये के ऊपर रखे गए कच्ची मिट्टी के पात्र में रात में चौराहे पर तीन दिन तक दिया गया दूध प्रेत की तृप्ति के लिए होता है॥१२॥ हे पक्षिन्, पहले दिन में, दूसरे दिन में, और तीसरे दिन में भी वायवीय शरीर लेने वाला प्रेत आकाश में स्थित दूध का पान करेगा॥१३॥

चतुर्थे सञ्चयः कार्यः चतुर्थे वाऽपि साऽग्निके। अस्थिसञ्चयनं कार्यं दद्यादाप्याऽञ्जलिं ततः॥१४॥
न पूर्वाह्णे न मध्याह्ने नाऽपराह्णे न सन्धिषु। याते प्रथमयामे तु दद्यादाद्यजलाञ्जलीन्॥१५॥
पुत्त्रेण दत्ते ते सर्वे गोत्रिणो हितबान्धवाः। स्वजात्यैः परजात्यैश्च देयो नद्यां जलाञ्जलिः॥१६॥
गन्तव्यं नैव विप्रेण दातुं शूद्रे जलाञ्जलिम्। निवृत्ताश् च यदा तीराल् लोकाचारस् ततो भवेत्॥१७॥
पञ्चत्वं च गते शूद्रे यः काष्ठं नयते चिताम्। अनुव्रजेत् तथा विप्रस् त्रिरात्रमशुचिर् भवेत्॥१८॥
त्रिरात्रे च ततः पूर्णे नदीं गच्छेत् समुद्रगाम्। प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुध्यति॥१९॥
शूद्रो गच्छति सर्वत्र वैश्यस् त्रिषु द्वयोः परः। गच्छति स्वीयवर्णेषु विप्रो दातुं जलाञ्जलिम्॥२०॥

(साधारणतया) चौथे दिन में अस्थिसञ्चयन किया जाना चाहिए, प्रेत श्रौताग्नियुक्त था तो चतुर्थ दिन में (ही) अस्थिसञ्चयन किया जाना चाहिए, उस के बाद जल का अञ्जलि दें॥१४॥ पूर्वाह्ण में भी नहीं, मध्याह्न में भी नहीं, अपराह्ण में भी नहीं, सन्धिकालों में भी नहीं, किन्तु दिन का प्रथम प्रहर बीतने पर द्वितीय प्रहर लगते ही जलाञ्जलि दे॥१५॥ पुत्त्र से जलाञ्जलि दिए जाने पर वे सब गोत्री, हितैषी बन्धु-बान्धव जलाञ्जलि दें। प्रेत के स्वजाति के और परजाति के भी बन्धु-बान्धवों से नदी में जलाञ्जलि दिया जाना चाहिए॥१६॥ ब्राह्मण को शूद्र के लिए जलाञ्जलि देने के लिए नहीं जाना चाहिए। जलाञ्जलि देने वाले नदी-तटादि के तीर से जब लौटते हैं उस समय में लोकाचार होगा (द्रष्टव्य– जीवानन्दसंस्करण २४।१९)॥१७॥ शूद्र के मरण होने पर जो ब्राह्मण चिता के लिए लकडी ले जाता है अथवा शूद्र के शव का अनुगमन करता है वह तीन अहोरात्र तक आशौच से युक्त होगा॥१८॥ तब तीन अहोरात्र पूर्ण होने पर वह ब्राह्मण समुद्र तक जाने वाली नदी में जाए (और स्नान करे) तब सौ वार प्राणायाम करके घृत-प्राशन करने पर वह शुद्ध होता है॥१९॥ शूद्र जलाञ्जलि देने के लिए सभी वर्णों की शवयात्रा में जाता है, वैश्य तीन वर्णों की शवयात्रा में जाता है, क्षत्रिय दो वर्णों की शवयात्रा में जाता है और ब्राह्मण अपने वर्ण की शवयात्रा में ही जाता है (द्रष्टव्य– जीवानन्दसंस्करण २४।२२)॥२०॥

दत्ते जलाञ्जलौ पश्चाद् विदध्याद् दन्तधावनम्। त्यजन्ति गोत्रिणः सर्वे दिनानि नव काश्यप॥२१॥
जलाञ्जलिं तथा दातुं गच्छन्ति द्विजसत्तमाः। यत्र स्थाने मिलेद् यस्तु अध्वन्यपि गृहेऽपि वा।
विश्लेषस्तु ततः स्थानादादाहाद् विहितो बुधैः॥२२॥
स्त्रीजनश् चाऽग्रतो गच्छेत् पृष्ठतो नरसञ्चयः। आचमनं विधातव्यं पाषाणोपरि संस्थितैः॥२३॥
यवांश्च सर्षपान् दूर्वाः पूर्णपात्रे विलोकयेत्। प्राशयेन् निम्बपत्राणि स्नेहस्नानं समाचरेत्॥२४॥
गोत्रिभिर् न च कर्तव्यं गृहान्नं च न भोजयेत्। भुञ्जीत मृन्मये पात्रे उत्तानं च विवर्जयेत्॥२५॥
मृतकस्य गुणा ग्राह्या यमगाथां समुदगिरेत्। शुभाऽशुभे च ध्यातव्ये पूर्वकर्मोपसञ्चिते॥२६॥

जलाञ्जलि देने के बाद दन्तधावन करे। हे कश्यपपुत्र, नौ दिनों तक सभी सगोत्री लोग दन्तधावन छोड देते हैं॥२१॥ ब्राह्मण लोग जलाञ्जलि देने के लिए जाते हैं। शव का अनुगमन करने वालों में से जो व्यक्ति दाहस्थल तक मार्ग में अथवा घर में जिस स्थान में अन्य शवयात्रियों से मिलता है शवदाह के बाद उस का विश्लेष भी उसी स्थान से करने का विधान विद्वान् लोगोंने किया है (द्रष्टव्य– जीवानन्दसंस्करण २४।२५,२६)॥२२॥ जलाञ्जलिदान के बाद घर को लौटते समय स्त्रियों का समूह आगे-आगे चले और पुरुषों का समूह पीछे-पीछे चले। घर में पहुँचने पर द्वारदेश में पत्थर में बैठे हुए शवानुयायियों से आचमन किया जाना चाहिए॥२३॥ वहाँ शवानुयायी जौ, सरसों, दूर्वा और दो जलपूर्ण पात्रों को देखे। नीम के पत्तियों का प्राशन करे। तेल लगाकर स्नान करे। सगोत्रियों को तो स्नेहस्नान नहीं करना चाहिए। (अपने) घर का अन्न नहीं खाना चाहिए। मिट्टी के वर्तन में भोजन करे। खाने के बाद उस पात्र को ऊपर मुख करके नहीं छोडना चाहिए (नीचे मुख करके रख देना चाहिए)॥२४-२५॥ मृतक के गुणों की चर्चा करनी चाहिए, "अहरहर् नयमानः" इत्यादि यमगाथा का उच्चारण करे। पूर्वजन्म के कर्मों से सञ्चित पुण्य और पाप का भी चिन्तन करना चाहिए॥२६॥

अलब्धेन च देहेन भुङ्क्ते सुकृतदुष्कृते। वायुरूपो भ्रमत्येव वायुः कुट्यां स गच्छति॥२७॥
दशाहकर्मक्रियया कुटी निष्पाद्यते ध्रुवम्। नवकैः षोडशश्राद्धैः प्रयाति हि कुटीं नरः॥२८॥
तिलैर् दर्भैश्च भूम्यां वै कुटी ऋतुमती भवेत्। पञ्च रत्नानि वक्त्रे तु येन जीवः प्ररोहति॥२९॥
यदा पुष्पं प्रनष्टं हि तदा गर्भं न धारयेत्। आदराच् च ततो भूमौ तिलदर्भान् विनिःक्षिपेत्॥३०॥
पशुत्वे स्थावरत्वे च यत्र क्वाऽपि स जायते। यत्रैव जन्तुरुत्पन्नः श्राद्धं तत्रोपतिष्ठति॥३१॥
धन्विना लक्ष्यमुद्दिश्य मुक्तो बाणस् तदाप्नुयात्। यथा श्राद्धं यमुद्दिश्य कृतं तस्योपतिष्ठति॥३२॥
यावन् नोत्पादितो देहस् तावच् छ्राद्धैर् न प्रीणनम्। क्षुधाविभ्रममापन्नो दशाहे न च तर्पितः॥३३॥

देह प्राप्त न होने पर भी प्राणी धर्म का और पाप का फल भोगता ही है। देह प्राप्त न होने पर प्राणी वायुरूप होकर घूमता रहता है, वह वायुरूप प्रेत कुटी प्राप्त होने पर वहाँ जाता है (द्रष्टव्य– जीवानन्दसंस्करण २४।३०,३१)॥२७॥ दश दिनों तक की जाने वाली क्रिया से कुटी (शरीर) अवश्य बनाई जाती है। नवश्राद्धों से और सोलह श्राद्धों से मनुष्य उस कुटी में जाता है॥२८॥ तिलों से और कुशों से भूमि में कुटी स्वपूर्ववर्ती ऋतु से युक्त होगी। मुख में जो पञ्चरत्न (सोना, चाँदी, मोती, राजावर्त [लाजवर्द] तथा मूँगा) रखे जाते हैं उन से जीव उद्भूत (विकसित) होता है॥२९॥ जब स्त्री का पुष्प (रज) सर्वथा लुप्त हो जाता है तब वह गर्भधारण नहीं करेगी। इस लिए आदरपूर्वक भूमि में तिल और कुशों को बिखेरे॥३०॥ मरा हुआ मनुष्य पशुरूप में और स्थावररूप में जहाँ कहीं भी जन्म ले सकता है। वह प्राणी जहाँ उत्पन्न होता है वहीं पुत्रादि से दिए गए श्राद्ध का फल उस को प्राप्त होता है॥३१॥ जैसे धनुर्धर से जिस लक्ष्य को वेधने के लिए बाण छोडा जाता है बाण उसी लक्ष्य में पहुँचता है वैसे ही श्राद्ध भी जिस को उद्दिष्ट करके किया जाता है उसी के लिए उपस्थित होता है॥३२॥ जब तक पिण्डदेह उत्पादित नहीं किया जाता है तब तक श्राद्ध से सन्तृप्ति नहीं होती है। दश दिनों तक जो जलाञ्जलि से सन्तृप्त नहीं किया गया है और जिस का पिण्डदान नहीं हुआ है वह मृत प्राणी भूख से चक्कर में पडकर आकाश में घूमता रहता है। तीन दिन तक जल

पिण्डदानं न यस्याऽभूदाकाशे भ्रमते तु सः। दिनत्रयं वसेत् तोये अग्नावपि दिनत्रयम्।
आकाशे वसते त्रीणि दिनमेकं तु वासके॥३४॥
दग्धे देहे च वह्नौ च जलेनैव तु तर्पितः। स्नेहस्नानं जलेनैव पूपकैः कृशरैर् गृहे॥३५॥
प्रथमेऽह्नि तृतीये च पञ्चमे सप्तमेऽपि वा। नवमैकादशे चैव श्राद्धं नवकमुच्यते॥३६॥
गृहद्वारे श्मशाने वा तीर्थे देवालयेऽपि वा। यत्राऽऽद्यो दीयते पिण्डस् तत्र सर्वान् समापयेत्॥३७॥
एकादशाहे यच् छ्राद्धं तत् सामान्यमुदाहृतम्। चतुर्णामेव वर्णानां शुद्ध्यर्थं स्नानमुच्यते॥३८॥
कृत्वा चैकादशाहं च पुनः स्नात्वा शुचिर् भवेत्। दद्याद् विप्राय शय्यां च यथोक्तां प्रेतमोक्षदाम्॥३९॥
न भवेच् च यदा गोत्री परोऽपि विधिमाचरेत्। स्त्री वाऽपि पुरुषः कश्चित् तुष्टये कुरुते क्रियाम्॥४०॥

में निवास करेगा, तीन दिन तक आग में निवास करेगा, तीन दिन तक आकाश में निवास करेगा और एक दिन अपनी आवासभूमि में निवास करता है॥३३-३४॥ देह आग में जलाए जाने पर, जल देने से ही प्रेत तृप्त होता है; उस कास्नेहस्नान भी जल से ही सम्पन्न होता है; घर में पूआ और खिचडी से पहले, तीसरे, पाँचवें, सातवें, नौवें और ग्यारहवें दिन में जो श्राद्ध होता है उस को नवश्राद्ध अथवा नवकश्राद्ध कहा जाता है॥३५-३६॥ घर के द्वार में, श्मशान में अथवा तीर्थ में अथवा देवालय में जहाँ पर पहला पिण्ड दिया जाता है वहीं सभी पिण्डों का दान देने का कार्य समाप्त करे॥३७॥ ग्यारहवें दिन में जो श्राद्ध किया जाता है वह चारों वर्णों के लिए समान कहा गया है। शुद्धि के लिए स्नान विहित किया जाता है॥३८॥ एकादशाह के श्राद्ध को सम्पन्न करके स्नान करने से कर्ता शुद्ध होगा। ग्यारहवें दिन में ब्राह्मण को प्रेत को प्रेतयोनि से मोक्ष देने वाली शास्त्रोक्त प्रकार की शय्या भी दे॥३९॥ जब प्रेत के गोत्र का कर्ता न हो तब दूसरे गोत्र का मनुष्य भी उस का और्ध्वदेहिक कर्म करे। प्रेत की तुष्टि के लिए कोई स्त्री अथवा पुरुष क्रिया करता है (द्रष्टव्य– जीवानन्दसंस्करण २४।३६-३७)॥४०॥

प्रथमेऽहनि यः पिण्डो दीयते विधिपूर्वकम्। अन्नाद्येन च तेनैव सर्वश्राद्धानि कारयेत्॥४१॥
अमन्त्रं कारयेच् छ्राद्धं दशाहं नामगोत्रतः। श्राद्धं कृतं तु यैर् वस्त्रैस् तानि त्यक्त्वा गृहं विशेत्॥४२॥
असगोत्रः सगोत्रो वा यदि स्त्री यदि वा पुमान्। प्रथमेऽहनि यः कुर्यात् स दशाहं समापयेत्॥४३॥
जीवस्य दशभिः पिण्डैर् देहो निष्पाद्यते ध्रुवम्। वृद्धिश् च दशभिर् मासैर् गर्भस्थस्य यथा भवेत्॥४४॥
आशौचं यावदेतस्य तावत् पिण्डोदकक्रिया। चतुर्णामपि वर्णानामेष एव विधिः स्मृतः॥४५॥
यत्र त्रिरात्रमाशौचं तत्रादौ त्रीन् प्रदापयेत्। चतुरस् तु द्वितीयेऽह्नि तृतीये त्रींस् तथैव च॥४६॥
पृथक् शरावयोर् दद्यादेकाहं क्षीरमम्बु च। एकोद्दिष्टं तु वै श्राद्धं चतुर्थेऽहनि कारयेत्॥४७॥
प्रथमेऽहनि यः पिण्डस्तेन मूर्धा प्रजायते। चक्षुः श्रोत्रं च नासा च द्वितीयेऽह्नि प्रजायते॥४८॥

पहले दिन में जिस प्रकार के अन्नादि भोज्य पदार्थ से शास्त्रोक्त विधि से पिण्ड दिया जाता है उसी अन्नादि भोज्य पदार्थ से सभी श्राद्धों को सम्पन्न करवाए॥४१॥ दश दिन तक मन्त्रों के प्रयोग के विना ही प्रेत के नाम का और गोत्र का प्रयोग करके श्राद्ध कराए। जिन वस्त्रों को पहनकर दश दिनों के प्रेतश्राद्ध किए गए उन वस्त्रों को फेंककर घर में प्रवेश करे॥४२॥ असगोत्र अथवा सगोत्र, स्त्री अथवा पुरुष जो मनुष्य प्रथम दिन में दाहपिण्डदानादि कार्य करता है वही दश दिनों के कृत्यों को सम्पन्न करे॥४३॥ जैसे गर्भ में रहे हुए प्राणी की दश महीनों से वृद्धि होती है उसी प्रकार मृत प्राणी का भी अवश्य दश पिण्डों से देह निष्पन्न किया जाता है॥४४॥ जितने दिन तक इस मरे हुए व्यक्ति का आशौच रहता है उतने दिन तक पिण्ड और जल देने की क्रिया होती रहती है। चारों वर्णों का यही विधि समझा गया है॥४५॥ जहाँ तीन अहोरात्र तक आशौच रहेगा वहाँ पहले दिन तीन पिण्ड दिलवाए, दूसरे दिन चार और तीसरे दिन तीन पिण्ड दिलवाए॥४६॥ एक दिन दो मिट्टी के कटोरों में अलग अलग दूध और पानी दे। एकोद्दिष्टश्राद्ध तो चौथे दिन में करवाए॥४७॥ पहले दिन में जो पिण्ड दिया जाता है उस से शिर बनता है, दूसरे दिन के पिण्ड से आँखें कान और नाक बनते हैं॥४८॥

गण्डौ वक्त्रं तथा ग्रीवा तृतीयेऽहनि जायते। हृदयं कुक्षिरुदरं चतुर्थे तद्वदेव हि॥४९॥
कटिपृष्ठं गुदं चाऽपि पञ्चमेऽहनि जायते। षष्ठे ऊरू च विज्ञेये सप्तमे गुल्फसम्भवः॥५०॥
अष्टमे दिवसे प्राप्ते जङ्घे च भवतोऽण्डज। पादौ च नवमे ज्ञेयौ दशमे बलवत्क्षुधा॥५१॥
एकादशाहे यः पिण्डस् तं दद्यादामिषेण तु। सिद्धान्नं तस्य दातव्यं कृशराः पूपकाः पयः।
प्रक्षाल्य विप्रचरणावर्घ्यं धूपं च दीपकम्॥५२॥
द्वादश प्रतिमास्यानि श्राद्धान्येकादशे तथा। त्रिपक्षं चाऽपि षण्मासे द्वे श्राद्धानि च षोडश॥५३॥
प्रतिमासं प्रदातव्यं मृताहे या तिथिर् भवेत्। स मासः प्रथमो ज्ञेयः अहरेकादशं तु यत्॥५४॥
शवहस्ते तु यच् छ्राद्धं मृतिस्थाने द्विजाऽऽसने। तदेव प्रथमं श्राद्धं तत् स्यादेकादशेऽहनि॥५५॥

तीसरे दिन के पिण्ड से कनपटियों से युक्त दो गाल, मुख और गले का भाग बनते हैं, चौथे दिन के पिण्ड से हृदय, पेट के पार्श्वभाग और पेट बनते हैं॥४९॥ पाँचवें दिन के पिण्ड से कटि और पीठ तथा गुदा बनते हैं; छठे दिन के पिण्ड से घुटने से ऊपर का भाग बनने वाला जानना चाहिए, सातवें दिन के पिण्ड से टखनों का निर्माण होता है॥५०॥ आठवें दिन प्राप्त होने पर दिए गए पिण्ड से दो जङ्घाएँ बनती हैं, नवम दिन में दिए गए पिण्ड से दो पैर बनते हैं, दसवें दिन में दिए गए पिण्ड से कडी भूख उत्पन्न होती है॥५१॥ ग्यारहवें दिन में जो पिण्ड दिया जाता है उस पिण्ड को आमिष (मांस) से बनाकर दे, उस दिन में पका हुआ अन्न, खिचडियाँ, पूआ और दूध भी देने चाहिए। उस दिन में ब्राह्मण के चरणों को धोकर अर्घ्य धूप और दीप भी देने चाहिए॥५२॥ प्रतिमास दिए जाने वाले बारह श्राद्ध, एकादशाह का श्राद्ध, त्रैपक्षिक श्राद्ध, षण्मासादि से सम्बद्ध दो श्राद्ध (ऊनषाण्मासिक, ऊनाब्दिक), ये सोलह श्राद्ध हैं॥५३॥ मृत्यु के दिन में जो तिथि है उस तिथि में वर्षपर्यन्त प्रत्येक महीने में पिण्ड दिया जाना चाहिए। जो ग्यारहवाँ दिन है उस को प्रथम मास का पिण्ड देने का दिन जानना चाहिए (द्रष्टव्य– जीवानन्दसंस्करण २४।४२)॥५४॥ हे पक्षिन्, द्विजासन रखने पर मरणस्थल में शवहस्त में जो श्राद्ध (पिण्ड) दिया जाता है वही प्रथमश्राद्ध है, तथापि मासिकश्राद्धों में प्रथम श्राद्ध तो ग्यारहवें दिन में

सा तिथिर् मासिके श्राद्धे मृतो यस्मिन् दिने नरः। रिक्तयोश्च त्रिपक्षे च सा तिथिर् नाऽद्रियेत वै॥५६॥
पौर्णमास्यां मृतो योऽसौ चतुर्थी तस्य चोनका। चतुर्थ्यां तु मृतो यस्तु नवमी तस्य चोनका॥५७॥
नवम्याञ्च मृतो यश्च रिक्ता तस्य चतुर्दशी। एता रिक्ताश्च विज्ञेया अन्त्येष्टौ कुशलेन च॥५८॥
एकादशाहे यच् छ्राद्धं नवकं तत् प्रकीर्तितम्। चतुष्पथे त्यजेदन्नं पुनः स्नानं समाचरेत्॥५९॥
एकादशाहादारभ्य घटस्याऽन्नं जलान्वितम्। दिनेदिने च दातव्यमब्दं यावद् द्विजोत्तमे॥६०॥
मानुषस्य शरीरे तु विद्यते ह्यस्थिसञ्चयः। तत्सङ्ख्या सर्वदेहेषु षष्ट्यधिकशतत्रयम्॥६१॥
उदकुम्भेन पुष्टानि तान्यस्थीनि भवन्ति हि। एतस्माद् दीयते कुम्भः प्रीतिः प्रेतस्य जायते॥६२॥

किया जाने वाला मासिक श्राद्ध ही है॥५५॥ ग्यारहवें दिन में होने वाले प्रथम मासिकश्राद्ध को छोडकर अन्य मासिक श्राद्धों में तो वही तिथि ली जाती है जिस तिथि में मनुष्य मरा है। रिक्ताओं में (ऊनषाण्मासिकश्राद्ध में और ऊनाब्दिकश्राद्ध में) तथा त्रैपक्षिकश्राद्ध में भी वह तिथि आदृत नहीं होगी, अन्य तिथि में ही श्राद्ध होगा॥५६॥ पूर्णिमा में जो मरा है उस के ऊनमासिकादि ऊनश्राद्ध के लिए चौथ ग्राह्य होगी, चौथ में जो मरा है उस के ऊनमासिकादि ऊनश्राद्ध के लिए नवमी ग्राह्य होगी॥५७॥ जो नवमी में मरा है उस के ऊनमासिकादि ऊनश्राद्ध के लिए चतुर्दशी ग्राह्य होगी। अन्त्येष्टि में कुशल मनुष्य को इन रिक्ता तिथियों को जानना चाहिए॥५८॥ ग्यारहवें दिन में जो श्राद्ध है उस को नवकश्राद्ध कहा गया है। (उस श्राद्ध के लिए पाचित और श्राद्ध से अवशिष्ट) अन्न को चौराहे पर छोड दे और पुनः स्नान करे॥५९॥ ग्यारहवें दिन से प्रारम्भ करके वर्षपर्यन्त प्रतिदिन ब्राह्मण को जल से युक्त घट और अन्न देना चाहिए॥६०॥ मनुष्य के शरीर में हड्डियों का समूह है। उस की सङ्ख्या सभी देहों में तीन सौ साठ है॥६१॥ जलघट के दान से वे हड्डियाँ पुष्ट होती हैं, इस कारण से जलघट दिया जाता है; उस से प्रेत की प्रसन्नता होती है॥६२॥

यस्मिन् दिने मृतो जन्तुरटव्यां विषमेऽपि वा। यदा तदा भवेद् दाहः सूतकं मृतवासरात्॥६३॥
तिलपात्रं तथाऽन्नाद्यं गन्धधूपादिकं च यत्। एकादशाहे दातव्यं तेन शुद्धो द्विजो भवेत्॥६४॥
क्षत्रियो द्वादशाहे तु वैश्यः पञ्चदशे तथा। शुद्धिः शूद्रस्य मासेन मृतके जातसूतके॥६५॥
मासत्रये त्रिरात्रं स्यात् षण्मासेन तु पक्षिणी। अहः संवत्सरादर्वाक् पूर्णे दत्त्वोदकं शुचिः।
अनेनैवाऽनुसारेण शुद्धिः स्यात् सार्ववर्णिकी॥६६॥
एकादशाहप्रभृति पुरतः प्रतिवत्सरम्। विश्वेदेवांस् तु सम्पूज्य पिण्डमेकं च निर्वपेत्॥६७॥
यथा तारागणाः सर्वे च्छाद्यन्ते रविरश्मिभिः। एवं प्रच्छाद्यते सर्वं न प्रेतो भवति क्वचित्॥६८॥
शय्यादानं प्रशंसन्ति सर्वदैव द्विजोत्तमाः। अनित्यं जीवनं यस्मात् पश्चात् को नु प्रदास्यति॥६९॥

प्राणी वन में अथवा विषमस्थल में भी जिस दिन में मरा है जब कभी उस का दाह हो आशौच तो मृत्यु के दिन से ही होता है॥६३॥ तिलपात्र अन्नादि भोज्यवस्तु और चन्दन-धूपादि जो सत्कारद्रव्य है वह सब ग्यारहवें दिन में देना चाहिए, उस से ब्राह्मण शुद्ध होगा॥६४॥ क्षत्रिय बारहवें दिन में शुद्ध होता है और वैश्य पन्द्रहवें दिन में शुद्ध होता है। शूद्र की तो मृताशौच में और जननाशौच में भी एक महीना बीतने पर शुद्धि होती है॥६५॥ बीते हुए पूर्णकालिक मरणाशौच में तीन महीनों के अन्दर तीन अहोरात्र आशौच होगा, छे महीनों के अन्दर पक्षिणी (दिन+रात+दिन अथवा रात+दिन+रात) आशौच होगा, वर्षदिन के अन्दर एक दिन आशौच होगा, पूर्णवर्ष बीत जाने पर स्नान करके जलाञ्जलि देकर तत्काल शुद्ध होगा। सभी वर्णों में अतिक्रान्ताशौच में इसी रीति से शुद्धि होगी॥६६॥ ग्यारहवें दिन से आगे प्रतिवर्ष विश्वेदेवों की पूजा करके एक पिण्ड दे। *[विशेष— एकोद्दिष्टश्राद्ध में भी विश्वेदेवों की पूजा करने का विधान किसी वेदशाखा में रहा हो सकता है]*॥६७॥ जैसे सूर्य के किरणों से सभी तारागण ढके जाते हैं वैसे ही और्ध्वदेहिक कृत्यों से सभी प्रेतत्वकारी दोष ढके जाते हैं, मनुष्य कहीं भी प्रेत नहीं होता है॥६८॥ ब्राह्मण किसी भी काल में किए जाने वाले शय्यादान की प्रशंसा करते हैं, क्योंकि जीवन अनित्य है, जीवन समाप्त होने पर कौन मृत व्यक्ति के लिए शय्यादान देगा॥६९॥

तावद् बन्धुः पिता तावद् यावज् जीवति मानवः। मृते मृत इति ज्ञात्वा क्षणात् स्नेहो निवर्तते।७०।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरेवं ज्ञात्वा मुहुर्मुहुः। जीवन्नपीति सञ्चिन्त्य स्वीयं हितमनुस्मरेत्॥७१॥
मृतानां कः सुतो दद्याद् द्विजे शय्यां सतूलिकाम्। एवं जानन्निदं सर्वं स्वहस्तेनैव दापयेत्॥७२॥
तस्माच् छय्यां समासाद्य सारदारुमयीं दृढाम्। दन्तादिरुचिरां रम्यां हेमपट्टैरलङ्कृताम्।
तस्यां संस्थाप्य हैमं च हरिं लक्ष्म्या समन्वितम्॥७३॥
घृतपूर्णं च कलशं तत्रैव परिकल्पयेत्। विज्ञेयो गरुडप्रीत्यै स निद्राकलशो बुधैः॥७४॥
ताम्बूल-कुङ्कुमक्षोद-कर्पूराऽगुरु-चन्दनम्। दीपिकोपानह-च्छत्र-चामराऽऽसन-भाजनम्॥७५॥
पार्श्वेषु स्थापयेच् छक्त्या सप्तधान्यानि चैव हि। शयनस्थस्य भवति यच् चाऽन्यदुपकारकम्॥७६॥
भृङ्गारकरकादर्श पञ्चवर्णं वितानकम्। शय्यामेवंविधां कृत्वा ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥७७॥

जब तक मनुष्य जीवित रहता है तब तक वह बन्धु होता है, पिता होता है, मरने पर मर गया ऐसा जानकर तत्काल स्नेह हट जाता है॥७०॥ स्वयम् ही अपना बन्धु है, ऐसा जानकर, जीते हुए भी वारंवार ऐसा चिन्तन करके अपने हित का विचार करे॥७१॥ मरे हुए पुरुषों के लिए कौन सा पुत्र ब्राह्मण को विस्तरे से युक्त शय्या देगा, ऐसा जानकर यह सब अपने ही हाथ से दे॥७२॥ इस कारण से अच्छी लकडी की, दृढ, हाथी के दाँत से शोभित, सोने की पट्टिकाओं से विभूषित, रमणीय शय्या को प्राप्त करके उस में लक्ष्मी से युक्त विष्णु की सोने की प्रतिमा को रखकर, वहीं पर शिरःस्थान के समीप में घी से पूर्ण घट भी रखे; वह निद्राकलश गरुड की तुष्टि के लिए रखा गया है, यह बात विज्ञों को जानना चाहिए। पान, कुङ्कुमचूर्ण, कपूर, अगुरु, श्रीखण्डचन्दन, दीपिका, जूता, छाता, चामर, आसन, वर्तन, सप्तधान्य (जौ, धान, तिल, कँगनी, मूँग, चना, साँवा) ये सब चीजें अपनी शक्ति के अनुसार शय्या के पार्श्वभाग में रखे; अन्य भी जो कोई चीज शयन का उपकारक होता है, झारी, कमण्डलु, दर्पण और पञ्चरङ्गी चाँदनी इत्यादि उन को भी शय्या के बगल में रखे। इस प्रकार

सपत्नीकाय सम्पूज्य स्वर्लोकसुखदायिनीम्। वस्त्रैः सुशोभनैः पूज्य चैलकं परिधापयेत्॥७८॥
कर्णकण्ठाङ्गुलीबाहुभूषणैश् चित्रभूषणैः। गृहोपकरणैर् युक्तं गृहं धेन्वा समन्वितम्॥७९॥
ततोऽर्घः सम्प्रदातव्यः पञ्चरत्नफलाऽक्षतैः॥८०॥
यथा न कृष्णशयनं शून्यं सागरकन्यया। शय्या ममाऽप्यशून्याऽस्तु तथा जन्मनिजन्मनि॥८१॥
दत्त्वैवं तल्पममलं क्षमाप्य च विसर्जयेत्। तथा चैकादशाहे तु विधिरेष प्रकीर्तितः॥८२॥
ददाति यो हि धर्मार्थे बान्धवो बान्धवे मृते। विशेषमत्र पक्षे तु कथ्यमानं मया शृणु॥८३॥
उपयुक्तं च तस्याऽऽसीत् यत् किञ्चित् स्वगृहे पुरा। तस्य यद् गात्रसंलग्नं वस्त्रं भाजनवाहनम्।
यदभीष्टं च तस्याऽऽसीत् तत् सर्वं परिकल्पयेत्॥८४॥

की स्वर्गलोक के सुख को देने वाली शय्या को निष्पन्न करके पत्नी से सहित ब्राह्मण को पूजापूर्वक निवेदित (समर्पित) करे। अत्यन्त उत्तम वस्त्रों से सपत्नीक ब्राह्मण की पूजा करके एक कोई वस्त्र पहनावे॥७३-७८॥ कान, गला, अंगुली, बाहु के आभूषणों से, अन्य विचित्र भूषणों से, घरेलू उपकरणों से युक्त और दूध देने वाली गाय से सहित घर भी उस सपत्नीक ब्राह्मण को दे। तब सपत्नीक ब्राह्मण को पञ्चरत्न (सोना, चाँदी, मोती, राजावर्त [लाजवर्द], मूँगा), फल और अक्षतों से युक्त अर्घ देना चाहिए॥७९-८०॥ तब "यथा न कृष्णशयनं" इत्यादि मन्त्र से प्रार्थना करनी चाहिए। मन्त्र का अर्थ- जिस प्रकार विष्णु की शय्या समुद्र की कन्या (लक्ष्मी) से शून्य नहीं होती है उसी प्रकार से मेरी शय्या भी जन्म-जन्मान्तरों में कभी भी पत्नी से शून्य न हो॥८१॥ इस प्रकार से निर्मल शय्या का दान देकर क्षमापन करके ब्राह्मण को विसर्जित करे। ग्यारहवें दिन में भी यह विधि बताया गया है॥८२॥ बान्धव मरने पर जो बान्धव धर्मार्थ शय्यादान देता है इस पक्ष में मुझ से बताए जा रहे विशेष कार्य को सुनो॥८३॥ पहले जीवितावस्था में अपने घर में उस मृत व्यक्ति से उपयोग में लाया गया जो भी वस्तु था, उस के शरीर से सम्बद्ध वस्त्र, वर्तन, यान वह सब शय्या के साथ में देना चाहिए, मृतक के अभीष्ट सभी वस्तुओं को रखे॥८४॥

स्थापयेत् पुरुषं हैमं शय्योपरि शुभं बुधः। पूजयित्वा प्रदातव्या मृतशय्या यथोदिता॥८५॥
पुरन्दरगृहे सर्वं सूर्यपुत्त्राऽऽलये तथा। उपतिष्ठेत् सुखं जन्तोः शय्यादानप्रभावतः॥८६॥
पीडयन्ति न तं याम्याः पुरुषा भीषणाऽऽननाः। न घर्मेण न शीतेन बाध्यते स नरः क्वचित्॥८७॥
शय्यादानप्रभावेण प्रेतो मुच्येत बन्धनात्। अपि पापसमायुक्तः स्वर्गलोकं स गच्छति॥८८॥
विमानवरमारूढः सेव्यमानोऽप्सरोगणैः। आभूतसंप्लवं यावत् तिष्ठेत् पातकवर्जितः॥८९॥
नवकं षोडशश्राद्धं शय्यां सांवत्सरं तथा। भर्तुर् या कुरुते नारी तस्याः श्रेयो ह्यनन्तकम्॥९०॥
उपकाराय सा भर्तुर् जीवन्ती न मृता तथा। उद्धरेज् जीवमाना सा सती सत्यवती प्रियम्॥९१॥
स्त्रियो दद्याच् च शयने हेमकुङ्कुममञ्जनम्। वस्त्रं भूषां तथा शय्यामेवं कृत्वा च दापयेत्॥९२॥

विज्ञ कर्ता शय्या के ऊपर मृतपुरुष की सोने की प्रतिमा रखे। पूजा करके पूर्वोक्त प्रकार की शय्या मृतशय्या के रूप में देनी चाहिए॥८५॥ शय्यादान के प्रभाव से प्राणी के लिए इन्द्र के घर में (स्वर्ग में) और यमराज के घर में भी सम्पूर्ण सुख उपस्थित होगा॥८६॥ डरावने मुह वाले यमराज के पुरुष उस शय्यादान वाले मनुष्य को पीडा नहीं देते हैं, वह मनुष्य धूप से अथवा ठण्डक से कहीं भी पीडित नहीं होता है॥८७॥ शय्यादान के प्रभाव से प्रेत बन्धन से मुक्त होगा। पापों से युक्त मनुष्य भी शय्यादान के प्रभाव से स्वर्ग जाता है॥८८॥ पातकरहित मनुष्य तो श्रेष्ठ विमान में चढकर अप्सराओं के गणों से सेवित होता हुआ प्रलयकाल तक स्वर्ग में निवास करेगा॥८९॥ जो स्त्री मृत पति के लिए नवकश्राद्ध,सोलह श्राद्ध, शय्यादान तथा श्राद्ध करती है उस का कल्याण असीमित होता है॥९०॥ पति के उपकार के लिए जीवित रहती हुई पति के चिता में चढकर न मरने वाली वह स्त्री भी उस प्रकार कर्म करती हुई जीवित रहकर पति का उद्धार करेगी॥९१॥ स्त्री के लिए दिए जाने वाले शय्यादान में सोने के आभूषण, कुङ्कुम, अञ्जन (कज्जल), वस्त्र, अलङ्कार भी रखे, इस प्रकार शय्या बनाकर दान करे। स्त्रियों के लिए

उपकारकरं स्त्रीणां यद् भवेदिह किञ्चन। भूषणं गात्रलग्नं च वस्तु भोग्यादिकं च यत्॥९३॥
तत् सर्वं मेलयित्वा तु स्वेस्वे स्थाने नियोजयेत्। पूजयेल् लोकपालांश् च ग्रहान् देवीं विनायकम्॥९४॥
ततः शुक्लाम्बरधरो गृहीतकुसुमाञ्जलिः। इममुच्चारयेन् मन्त्रं विप्रस्य पुरतो बुधः॥९५॥
प्रेतस्य प्रतिमा ह्येषा सर्वोपकरणैर् युता। सर्वरत्नसमायुक्ता तव विप्र निवेदिता॥९६॥
आत्मा शम्भुः शिवा गौरी शक्रः सुरगणैः सह। तस्माच् छय्याप्रदानेन सैष आत्मा प्रसीदतु॥९७॥
आचार्याय प्रदातव्या ब्राह्मणाय कुटुम्बिने। गृहीते ब्राह्मणस् तत्र कोऽदादिति च कीर्तयेत्॥९८॥
ततः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणिपत्य विसर्जयेत्। विधिनाऽनेन वै पक्षिन् दानमेकस्य दापयेत्॥९९॥
बहुभ्यो न प्रदेयानि गौर् गृहं शयनं स्त्रियः। विभक्तदक्षिणा ह्येते दातारं पातयन्ति हि॥१००॥

इस लोक में उपयोगी वस्तु जो कुछ हो वह सब मिलाकर शय्या में अपने अपने स्थान में रखे (द्रष्टव्य– जीवानन्दसंस्करण २४।६९-७२)। लोकपालों की, ग्रहों की, देवी गौरी की और विनायक की भी पूजा करे॥९२-९४॥ तब श्वेतवस्त्र पहनके पुष्पाञ्जलि लेकर विज्ञ कर्ता ब्राह्मण के आगे खडा होकर **"प्रेतस्य प्रतिमा ह्येषा"** इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करे॥९५॥ **"प्रेतस्य प्रतिमा"** इत्यादि का अर्थ- हे ब्राह्मणदेव, सभी उपकरणों से युक्त तथा सभी रत्नों से सहित यह प्रेत की प्रतिमा आप को समर्पित की गई है॥९६॥ आत्मा ही शम्भु है, शिवा गौरी और देवता के गणों से युक्त इन्द्र भी है। इस लिए शय्यादान से सर्वदेवमय यह आत्मा प्रसन्न (निष्कलमष) हो॥९७॥ शय्यादान पत्नीपुत्रादि से युक्त और वेद-वेदाङ्गों के अध्यापक ब्राह्मण को देना चाहिए। वहाँ शय्या दान लेने पर ब्राह्मण **"कोऽदातत् कसम्मा ऽअदातत्"** (मा.वा.शु.य.वे.म.सं.७।४८) इत्यादि मन्त्र पढे॥९८॥ तब ब्राह्मण की प्रदक्षिणा करके दण्डवत् प्रणाम भी करके ब्राह्मण को विसर्जित करे। हे पक्षिन्, इसी विधि से शय्यादान एक ही ब्राह्मण को दे॥९९॥ एक गाय, एक घर, एक शय्या और एक स्त्री अनेक ब्राह्मणों को नहीं देना चाहिए। दक्षिणा विभक्त होने पर ये दान देने वाले को नरक में डाल देते हैं॥१००॥

एवं यो वितरेत् तार्क्ष्य शृणु तस्य च यत् फलम्। साग्रं वर्षशतं दिव्यं स्वर्गलोके महीयते ॥१०१॥
यत् पुण्यं तु व्यतीपाते कार्तिक्यामयनद्वये। द्वारकायां तु यत् पुण्यं चन्द्रसूर्यग्रहे तथा ॥१०२॥
प्रयागे नैमिषे यच् च कुरुक्षेत्रे तथाऽर्बुदे। गङ्गायां यमुनायां च सिन्धुसागरसङ्गमे ॥१०३॥
तेषु यद् दीयते दानं तस्मादप्यधिकं त्विदम्। एतच्छय्याप्रदानस्य नाऽऽप्नोति षोडशीं कलाम् ॥१०४॥
यत्राऽसौ जायते प्राणी भुङ्क्ते तत्रैव तत् फलम्। कर्मक्षये क्षितौ याति मानुषः शुभदर्शनः ॥१०५॥
महाधनी च धर्मज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः। पुनः स याति वैकुण्ठं मृतोऽसौ नरपुङ्गवः ॥१०६॥
दिव्यं विमानमारुह्य अप्सरोभिः समावृतः। अर्होऽसौ हव्यकव्येषु पितृभिः सह मोदते ॥१०७॥

हे गरुड, इस प्रकार जो मनुष्य दान देगा उस का जो फल होता है उस को सुनो। वह दाता कुछ अधिक दिव्य एक सौ वर्ष तक स्वर्गलोक में सत्कृत होता है॥१०१॥ जो पुण्य व्यतीपात में, कार्तिकपूर्णिमा में, उत्तरायणप्रतिपदा में और दक्षिणायनप्रतिपदा में दान देने से मिलता है, जो पुण्य द्वारका में, चन्द्रग्रहण में, सूर्यग्रहण में, जो पुण्य प्रयाग में, नैमिषारण्य में, कुरुक्षेत्र में, अर्बुदपर्वत में, गङ्गा में, यमुना में, सिन्धुनद और समुद्र के सङ्गम में दान देने से जो पुण्य मिलता है उस से भी अधिक पुण्य इस शय्या दान से मिलता है॥१०२-१०३॥ व्यतीपातादि में दिया गया दान शय्यादान के सोलहवें अंश का भी तुल्य नहीं होता है॥१०४॥ यह शय्यादान देने वाला प्राणी जहाँ जन्म लेता है वहीं उस के फल का भोग करता है। शय्यादान कर्म के फल का क्षय होने पर शय्यादान देने वाला मनुष्य सुन्दर रूपवाला, महाधनी, धर्म का विज्ञ, वेद, वेदाङ्ग, वेदोपाङ्ग, स्मृति, पुराण इत्यादि सभी शास्त्रों में निपुण रूप में प्रकट होने के लिए पृथ्वीलोक में आता है और वह श्रेष्ठ मनुष्य मरने पर अप्सराओं से घिरा हुआ होकर दिव्य विमान में चढकर फिर वैकुण्ठ में जाता है। वह मनुष्य हव्यकर्म और कव्यकर्म के फल भोगने में योग्य होकर पितरों के साथ में सुखभोग करता है॥१०५-१०७॥

अष्टकासु कृतं श्राद्धममावास्यादिने तथा। मघासु पितृपर्वाणि यानियानि च तेषु च॥१०८॥
शृणु तार्क्ष्य यथान्यायं प्रेतत्वे पितरो यदि। नोपतिष्ठन्ति श्राद्धानि सपिण्डीकरणं विना॥१०९॥
सपिण्डीकरणं कार्यं पूर्णे वर्षे न संशयः। आद्यं तु शवशुद्ध्यर्थं कृत्वा चैव त्रिषोडशीम्॥११०॥
पितृपङ्क्तिविशुद्ध्यर्थं शतार्धेन तु योजयेत्। वृद्धिं प्राप्याऽग्रतः कुर्याच् छूद्रस्य स्वेच्छयैव हि॥१११॥
साम्प्रतं साऽग्निके कार्यं द्वादशाहे सपिण्डनम्। न चाऽसौ कुरुते यावत् प्रेत एव स वह्निमान्।
द्वादशाहे ततः कार्यं साग्निकेन सपिण्डनम्॥११२॥
अस्थिक्षेपो गयाश्राद्धं श्राद्धं चाऽऽपरपक्षिकम्। अब्दमध्ये न कुर्वीत सपिण्डीकरणं विना॥११३॥
सपत्न्यो यदि बह्व्यः स्युरेका पुत्त्रवती भवेत्। सर्वास्ता पुत्त्रवत्यः स्युस् तेनैकेनाऽऽत्मजेन हि॥११४॥

हे गरुड, सुनो, अष्टकाओं में (सहस्यकृष्णाष्टमी इत्यादि अष्टमियों में) किया गया श्राद्ध, अमावास्या के दिन में, मघा नक्षत्र में और अन्य जो कोई पितृपर्व हैं उन में किया गया श्राद्ध इत्यादि शास्त्रानुसार किए गए श्राद्ध भी यदि पितर लोग प्रेतभाव में रहे हैं तो सपिण्डीकरण न होने तक पितरों को प्राप्त नहीं होते हैं॥१०८-१०९॥ वर्ष पूर्ण होने पर सपिण्डीकरण करना चाहिए, इस में सन्देह नहीं है। शवशुद्धि के लिए (एकादशाह में) आद्यश्राद्ध और यथाकाल मासिक-ऊनमासिकादि त्रिगुणित सोलह श्राद्ध करके पितृपङ्क्ति के शुद्धि के लिए किए गए पचासवें श्राद्ध (पिण्ड) से प्रेत को पितरों के साथ में मिलाए। अवश्य कर्तव्य वृद्धिश्राद्ध आने पर वर्ष पूर्ण होने से पहले भी सपिण्डीकरण करे। शूद्र का तो स्वेच्छा से ही वर्ष पूर्ण होने से पहले भी सपिण्डीकरण करे॥११०-१११॥ कर्ता अग्नि से युक्त होने पर बारहवें दिन में सपिण्डीकरण करना चाहिए। जब तक प्रेत ही अग्नियुक्त है (कर्ता अग्नियुक्त नहीं है) तो कर्ता बारहवें दिन में सपिण्डीकरण नहीं करता है। इस लिए अग्नियुक्त कर्ता से बारहवें दिन में सपिण्डीकरण किया जाना चाहिए॥११२॥ सपिण्डीकरण के विना मृत्यु से एक वर्ष तक अस्थिक्षेप, गयाश्राद्ध और अपरपक्षश्राद्ध (कृष्णपक्ष का श्राद्ध) भी न करे॥११३॥ यदि एक पुरुष की बहुत सी पत्नियाँ हैं तो उन में से कोई एक पत्नी पुत्त्रवती होने पर उसी एक पुत्र से सभी पत्नियाँ

नाऽसपिण्ड्याऽग्निमान् पुत्त्रः पितृयज्ञं समाचरेत्। समाचाराद् भवेत् पापी पितृहा चापि जायते।।११५।।
मृते भर्तरि या नारी प्राणांश् चैव परित्यजेत्। भर्त्रैव हि समं तस्याः प्रकुर्वीत सपिण्डनम्।।११६।।
अस्थानिकापि या व्यूढा वैश्या वा क्षत्रियांपि वा। याः पत्न्यो वै पितुः काश्चित् कुर्यात् पुत्त्रः सपिण्डनम्।।
विप्रेणैव यदा शूद्रा परिणीता प्रमादतः। एकोद्दिष्टं तु तच्छ्राद्धं सा तु तेनैव युज्यते।।११८।।
अन्ये तु दश ये पुत्त्रा जाता वर्णचतुष्टये। ते तासुतासु योक्तव्याः सपिण्डीकरणे सदा।।११९।।
अन्वष्टकासु यच् छ्राद्धं यच् छ्राद्धं वृद्धिहेतुकम्। पितुः पृथक् प्रदातव्यं स्त्रियाः पिण्डं सपिण्डने।।१२०।।
पितामह्या समं मातुः पितुः सह पितामहैः। सपिण्डीकरणं कार्यमिति तार्क्ष्य मतं मम।।१२१।।

पुत्त्रवती मानी जाती हैं।।११४।। पिता का सपिण्डीकरण किए विना अग्नियुक्त पुत्त्र पिण्डपितृयज्ञ न करे, करने से वह पापी और पितृघाती भी हो जाता है।।११५।। पति मरने पर जो स्त्री प्राणों को त्याग देती है उस का सपिण्डीकरण पति के साथ में ही करे।।११६।। पिता की शास्त्रोक्त क्रम को छोडकर भी विवाहिता जो कोई वैश्य जाति की अथवा क्षत्रिय जाति की पत्नियाँ हैं उन का भी (ब्राह्मण भी) पुत्त्र सपिण्डीकरण करे।।११७।। ब्राह्मण से ही जब प्रमाद से शूद्रकन्या विवाहिता होती है, उस का श्राद्ध तो एकोद्दिष्ट ही होता है, उसी से वह सम्बद्ध होती है (उस का ब्राह्मणी श्वश्र्वादि से वा पति से सपिण्डन नहीं होता है)।।११८।। चारों वर्णों की पत्नियों में अन्य दश प्रकार के जो पुत्त्र उत्पन्न होते हैं वे तो सदाकाल उस-उस वर्ण की पत्नी के सपिण्डीकरण में लगाए जाने के योग्य होते हैं।।११९।। अन्वष्टकाओं में (अष्टका के बाद की नवमियों में) जो श्राद्ध होता है, वृद्धि के निमित्त से जो नान्दीश्राद्ध होता है उन श्राद्धों में और सपिण्डीकरणश्राद्ध में भी स्त्री को (माँ को) पिता के पिण्ड से अलग ही पिण्ड देना चाहिए।।१२०।। हे गरुड, माँ का पितामहियों के साथ में और पिता का पितामहों के साथ में सपिण्डीकरण करना चाहिए, यह मेरा मत है।।१२१।।

अपुत्रायां मृतायां तु पतिः कुर्यात् सपिण्डनम्। मात्रादिभिस्तिसृभिः सार्धमेवं धर्मेण योजयेत्॥१२२॥
पुत्रो नास्ति न भर्ता च स्त्रीणां तार्क्ष्य सपिण्डनम्। कारयेद् वृद्धिसमये भ्रातृदायाददेवरैः॥१२३॥
पतिपुत्रविहीनानां गोत्री नास्ति न देवरः। एकोद्दिष्टेन दातव्यं परेण सह भ्रातृभिः॥१२४॥
अज्ञानाद् विघ्नतो वाऽपि न कृतं चेत् सपिण्डनम्। नवकं षोडशश्राद्धमाब्दिकं कारयेत् ततः॥१२५॥
अदाहे न च कर्तव्यं सदाहे कारयेद् बुधः। दर्भपुत्तलकं कृत्वा वह्निना दाहयेच् छवम्॥१२६॥
पितुः पुत्रेण कर्तव्यं न कुर्वीत पिता सुते। अतिस्नेहान् न कर्तव्यं सपिण्डीकरणं सुते॥१२७॥
बहवोऽपि यदा पुत्रा विधिमेकः समाचरेत्। नवश्राद्धं सपिण्डत्वं श्राद्धान्यन्यानि षोडश॥१२८॥

पत्नी पुत्ररहित रहकर ही मरती है तो पति अपनी माता इत्यादि तीन स्त्रियों के साथ उस का सपिण्डीकरण करे, इस प्रकार उस को पितृधर्म से युक्त करे॥१२२॥ हे गरुड, यदि स्त्रियों का पुत्र नहीं है और पति भी नहीं है तो वृद्धिकार्य के समय में स्त्री के भाई से अथवा स्त्री का दायभाग खाने वाले किसी उत्तराधिकारी से अथवा देवर से उस का सपिण्डीकरण कुलवृद्ध करवाए॥१२३॥ पति से और पुत्र से भी रहित स्त्रियों का यदि कोई गोत्री भी नहीं है, देवर भी नहीं है तो स्त्री के भाइयों को साथ में लेकर किसी दूसरे से एकोद्दिष्ट विधि से ही उस को श्राद्ध देना चाहिए॥१२४॥ अज्ञान से अथवा किसी विघ्न से भी किसी का सपिण्डीकरण नहीं हुआ है तो कुलवृद्ध एकादशाहिक श्राद्ध, प्रथम-मासिकश्राद्धादि सोलह श्राद्ध और आब्दिकश्राद्ध कराकर उस के बाद सपिण्डीकरण करवाए॥१२५॥ जिस का किसी कारण से दाहसंस्कार नहीं हुआ है उस का नवकश्राद्धादि नहीं करना चाहिए, दाहसंस्कार होने पर ही विज्ञ जन नवकश्राद्धादि करवाए। किसी कारण से साक्षात् शव का दाहसंस्कार न हो सकने पर कुश का पुत्तलक बनाकर उसी का शव के रूप में दाह करवाए॥१२६॥ पिता का सपिण्डीकरण पुत्र को करना चाहिए, पुत्र का सपिण्डीकरण पिता न करे। अति स्नेह से अभिभूत होकर पिता को पुत्र का सपिण्डीकरण नहीं करना चाहिए॥१२७॥ यदि मृत मनुष्य के बहुत से पुत्र हैं तो भी और्ध्वदेहिक कृत्य का विधि को एक ही पुत्र सम्पन्न करे।

एकेनैव तु कार्याणि संविभक्तधनेष्वपि। अन्त्येष्टिं कुरुते ह्येको मुनिभिः समुदाहृतम्॥१२९॥
विभक्तैश्च पृथक् कार्या क्रिया सांवत्सरादिका। एकैकेन च कर्तव्या पुत्त्रेण च स्वयंस्वयम्॥१३०॥
यस्यैतानि न दत्तानि प्रेतश्राद्धानि षोडश। पिशाचत्वं स्थिरं तस्य कृतैः श्राद्धशतैरपि॥१३१॥
भ्राता वा भ्रातृपुत्त्रो वा सपिण्डः शिष्य एव वा। सपिण्डीकरणं कुर्यात् पुत्त्रहीने खगेश्वर॥१३२॥
सर्वेषां पुत्त्रहीनानां पत्नी कुर्यात् सपिण्डनम्। ऋत्विजं कारयेद् वाऽथ पुरोहितमथापि वा॥१३३॥
मृते पितर्यब्दमध्ये ह्युपरागो यदा भवेत्। पार्वणं न सुतैः कार्यं श्राद्धं नान्दीमुखं न च॥१३४॥
तीर्थश्राद्धं गयाश्राद्धं श्राद्धमन्यच्च च पैतृकम्। अब्दमध्ये न कुर्वीत महागुरुविपत्तिषु॥१३५॥

पैतृक धन के बटवारा करके अलग अलग पाक करके रहने वाले पुत्त्रों में से और पैतृक धन को बंटवारा न करके एक ही पाक करके रहने वाले पुत्त्रों में से भी एक पुत्त्र ही नवश्राद्ध, सपिण्डीकरणश्राद्ध और प्रथममासिकश्राद्धादि सोलह श्राद्ध करता है। अन्त्येष्टि एक ही पुत्त्र करता है, यह बात मुनियों से बताई गई है॥१२८-१२९॥ जो पैतृक धन का बंटवारा करके अलग अलग पाक करके रहने वाले पुत्त्र हैं उन को प्रत्येक को ही पिता का सांवत्सरिकश्राद्धादि श्राद्ध (अपने अपने अलगरूप में घर में) स्वयम् करना चाहिए॥१३०॥ जिस के लिए ये सोलह श्राद्ध प्रेतश्राद्ध नहीं दिए गए हैं उस का प्रेतत्व अन्य सैकडों श्राद्ध करने पर भी स्थिर ही रहता है, जाता नहीं॥१३१॥ हे पक्षियों के मालिक, पुत्त्ररहित व्यक्ति मरने पर भार्या अथवा भाई का पुत्त्र अथवा अन्य कोई सपिण्ड अथवा शिष्य ही उस का सपिण्डीकरण करे॥१३२॥ पुत्त्र से रहित पुरुषों का सपिण्डन पत्नी स्वयम् करे अथवा ऋत्विक् से करवाए अथवा पुरोहित से करवाए (द्रष्टव्य– जीवानन्दसंस्करण १६।२४)॥१३३॥ पिता का मरण होने पर वर्ष के मध्य में यदि चन्द्रग्रहण अथवा सूर्यग्रहण होता है तो उस में पुत्त्र को (ग्रहणनिमित्तक) पार्वणश्राद्ध नहीं करना चाहिए; वर्षमध्य में नान्दीमुखश्राद्ध भी नहीं करना चाहिए॥१३४॥ महागुरुओं का (पिता, माता और पति का) मरण होने पर वर्षमध्य में तीर्थश्राद्ध, गयाश्राद्ध और अन्य पैतृक श्राद्ध भी न करे॥१३५॥

यमके च गजच्छायामन्वादिषु युगादिषु। पितृपिण्डो न दातव्यः सपिण्डीकरणं विना॥१३६॥
यज्ञपुरुषस्य यद् दानं देवादीनां च यत् तथा। अपूर्णेऽप्यब्दमध्येऽपि कर्तव्यमिति के चन॥१३७॥
पितृभ्योऽपि हि यद् दत्तमर्घपिण्डविवर्जितम्। कर्तव्यं तच् च वै सर्वमेष एव विधिः स्मृतः॥१३८॥
देवानां पितरो देवा पितॄणामृषयस् तथा। ऋषीणां पितरो देवाः पिता जयति तेन वै॥१३९॥
पितृदेवमनुष्याणां यज्ञनाथो विभुर् भवेत्। यज्ञनाथस्य यद् दत्तं तद् दत्तं सर्वदेहिनाम्॥१४०॥
मृते पितर्यब्दमध्ये यः श्राद्धं कारयेत् सुतः। सप्तजन्मकृताद् धर्मात् हीयते नाऽत्र संशयः॥१४१॥
प्रेतीभूतास् तु पितरो लुप्तपिण्डोदकक्रियाः। भ्रमन्ति वायुना सर्वे क्षुत्तृड्भ्यां परिपीडिताः॥१४२॥

सपिण्डीकरण न होने पर वर्षपर्यन्त अयनमुखों में, गजच्छायायोग में, मन्वादि तिथियों में और युगादि तिथियों में भी पितृपिण्ड नहीं देना चाहिए॥१३६॥ यज्ञपुरुष का जो दान है वह और देवादि का जो दान है वह भी वर्ष पूर्ण न होने पर भी और वर्ष के बीच में भी करना योग्य है, ऐसा कोई कहते हैं॥१३७॥ पितरों को भी जो अर्घ से और पिण्ड से रहित रूप में दान दिया जाता है वह सब भी करना चाहिए, यही शास्त्र का विधान समझा गया है॥१३८॥ देवताओं के लिए पितर देवता हैं, पितरों के लिए ऋषि लोग देवता हैं, ऋषियों के लिए पितर लोग देवता हैं, इस लिए पितर लोग सर्वश्रेष्ठ हैं॥१३९॥ पितर, देवता और मनुष्यों के प्रभु यज्ञनाथ (विष्णु) है, यज्ञनाथ को जो दिया गया होता है वह सभी प्राणियों को दिया गया होता है॥१४०॥ पिता मरने पर वर्ष के भीतर जो पुत्र अन्य पैतृक श्राद्ध करता है वह सात जन्मों में किए गए धर्म से च्युत हो जाता है, इस में कोई सन्देह नहीं हैं॥१४१॥ जो पितर लोग पिण्डदान और जलदान न होने से प्रेतयोनि में पडे हैं, वे भूख और प्यास से अत्यन्त पीडित होकर वायु के साथ में घूमते रहते हैं॥१४२॥

पितरि प्रेततापन्ने लुप्यन्ते मातृकाः क्रियाः। अथ मातुर् विपत्तिः स्यात् पितृकार्यं न लुप्यते॥१४३॥
मृता माता पिता तिष्ठेज् जीवन्ती च पितामही। सपिण्डनं तु कर्तव्यं पितामह्या सहैव तु॥१४४॥
सत्यंसत्यं पुनः सत्यं श्रूयतां वचनं मम। न पिण्डो मिलितो येषां मृतानां तु नृणां भुवि॥१४५॥
उपतिष्ठेन् न वै तेषां पुत्त्रैर् दत्तमनेकधा। हन्तकारस् तदुद्देशे श्राद्धं नैव जलाञ्जलिः॥१४६॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे
और्ध्वदेहिकादिनिरूपणं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥

पिता प्रेतत्व में रहने पर माता का कार्य लुप्त होता है, यदि माता का मरण होता है तो पिता का कार्य लुप्त नहीं होता है *[विशेष— वेङ्कटेश्वरसंस्करण और वङ्गवासिसंस्करण दोनों में "पैतृकी क्रिया" पाठ है। किन्तु नेपाल के राष्ट्रिय अभिलेखालय की ३५ अध्याय वाली हस्तलिखित पोथी में (२१।११८-११९) "मातृकाः क्रियाः" ही पाठ है]* ॥१४३॥ माता मरी है, पिता जीवित है और पितामही भी जीवित है तो प्रपितामही के साथ सपिण्डन करना चाहिए॥१४४॥ सत्य सत्य और भी सत्य मेरा वचन सुना जाय। इस भूलोक में मरे हुए जिन मनुष्यों का पिण्ड पितरों के पिण्डों से नहीं मिलाया गया है उन के उद्देश से पुत्त्रों से अनेक प्रकार से दिए गए हन्तकार (ब्राह्मणभोजन), श्राद्ध और जलाञ्जलि (तर्पण) भी उन को प्राप्त नहीं होंगे॥१४५-१४६॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में
और्ध्वदेहिककृत्यादि का निरूपण करने वाला चौतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥३४॥

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

ताक्ष्र्य उवाच

अपरं मम सन्देहं कथयस्व जनार्दन। पुरुषस्य च कस्याऽपि माता पञ्चत्वमागता॥१॥
पितामही जीवति च तथा च प्रपितामही। वृद्धप्रपितामही तद्वन् मातृसक्तः पिता तथा॥२॥
प्रमातामहश् च तथा वृद्धप्रमातामहस् तथा। केन सा मेल्यते माता एतत् कथय मे प्रभो॥३॥

श्रीकृष्ण उवाच

पुनरुक्तं प्रवक्ष्यामि सपिण्डीकरणं खग। उमा लक्ष्मीश्च सावित्रीत्येताभिर् मेलयेद् ध्रुवम्॥४॥
त्रयः पिण्डभुजो ज्ञेयास् त्याजकाश् च त्रयः स्मृताः। त्रयः पिण्डानुलेपाश् च दशमः पङ्क्तिसन्निधः॥५॥
इत्येते पुरुषाः ख्याताः पितृमातृकुलेषु च। तारयेद् यजमानस् तु दश पूर्वान् दशाऽवरान्॥६॥

गरुड ने कहा– हे जनार्दन, मेरे दूसरे सन्देह के विषय को भी बताइए। किसी मनुष्य की माँ मर गई है, किन्तु पितामही, प्रपितामही और वृद्धप्रपितामही भी जीवित है, माता से सम्बद्ध पिता (मातामह) जीवित है, प्रमातामह भी जीवित है, वृद्धप्रमातामह भी जीवित है तो वह माँ किस से (सपिण्डीकरण करके) पितरों की पङ्क्ति में मिलाई जाती है? हे प्रभो, मुझ को यह बताइए॥१-३॥ श्रीकृष्ण ने कहा– हे पक्षिन्, बताए गए सपिण्डीकरण को फिर बताउँगा। वैसी माँ को उमा लक्ष्मी और सावित्री (महेश्वर, विष्णु और ब्रह्मा की पत्नियां) इन से ही अवश्य मिलाए॥४॥ लोक में (यजमान से पूर्व के) तीन पुरुष पिण्डभोग करने वाले हैं, (पिण्डभोग करने वालों से पूर्व के) तीन पुरुष त्याजक समझे गए हैं, (त्याजकों से पूर्व के) तीन पुरुष पिण्डानुलेप हैं और (उन से पूर्व का) दशम पुरुष पङ्क्तिसन्निध है॥५॥ पितृकुल में और मातृकुल में भी ये पुरुष प्रसिद्ध हैं। यजमान सुकर्म करके अपने पूर्वज दश पुरुषों का

सपिण्डः स भवेदादौ सपिण्डीकरणे कृते। अन्त्यस् तु त्याजको ज्ञेयो यो वृद्धप्रपितामहः॥७॥
अन्तिमस् त्याजको ज्ञेयो लेपकः प्रथमो भवेत्। लेपकस् त्वन्तिमो यस्तु स भवेत् पङ्क्तिसन्निधः॥८॥
यजमानो भवेदेको दश पूर्वे दशाऽवरे। इत्येते पितरो ज्ञेया एकविंशतिसङ्ख्यकाः॥९॥
विधिना कुरुते यस् तु संसारे श्राद्धमुत्तमम्। जायतेऽत्र न सन्देहः शृणु तस्याऽपि यत् फलम्॥१०॥
पिता ददाति पुत्त्रान् वै गोधनं च पितामहः। हेमदाता भवेत् सोऽपि यस्तस्य प्रपितामहः॥११॥
कृते श्राद्धे गुणा ह्येते पितॄणां तर्पणे स्मृताः। दद्याद् विपुलमन्नाद्यं वृद्धस् तु प्रपितामहः॥१२॥
यस्य पुंसश् च मर्त्ये वै विच्छिन्ना सन्ततिः खग। स वसेन् नरके घोरे पङ्के मग्नः करी यथा॥१३॥

और अपने से बाद के दश पुरुषों का उद्धार कर सकता है॥६॥ सपिण्डीकरण करने पर पहले आने वाला पिण्डभुक् होता है, जो सपिण्डीकरण होने पर निवृत्त होता है, पिण्डभुक् नहीं रहता है वह वृद्धप्रपितामह त्याजक रूप में ज्ञेय है, जो पहले तीन त्याजको में अन्तिम (पूर्वतम) त्याजक था इस वार सपिण्डीकरण होने पर वह प्रथम पिण्डानुलेपक होगा, पहले तीन पिण्डानुलेपकों में जो अन्तिम (पूर्वतम) पिण्डानुलेपक था इस वार सपिण्डीकरण होने पर वह पिण्डानुलेपक न रहकर पङ्क्तिसन्निध होगा॥७-८॥ यजमान एक होगा उस से पूर्व के दश और पीछे आने वाले दश मिलाकर ये इक्कीस सङ्ख्या वाले पितर लोग जानने चाहिए॥९॥ जो व्यक्ति इस संसार में शास्त्रोक्त विधि से उत्तम प्रकार का श्राद्ध करता है उस का जो निस्सन्देह फल होता है उस को सुनो॥१०॥ पिता पुत्त्रों का (सन्तति का) दान करता है, पितामह गोधन (पशुधन) देता है, श्राद्धकर्ता का जो प्रपितामह है वह हिरण्यदाता (धनदाता) होता है (द्रष्टव्य– जीवानन्दसंस्करण २५।११)॥११॥ श्राद्ध करने पर पितरों की तृप्ति से ये गुण (फल) होने वाले समझे गए हैं। श्राद्ध करने से वृद्धप्रपितामहादि भी प्रभूत अन्नपानादि भोज्यपदार्थ देंगे॥१२॥ हे पक्षिन्, इस मर्त्यलोक में जिस की सन्तति विच्छिन्न होती है वह कीचड में फंसे हुए हाथी की तरह घोर नरक में निवास करेगा॥१३॥ वह मनुष्यभिन्न योनियों में जन्म

योन्यन्तरेषु जायेत यत्र वृक्षसरीसृपाः। न सन्ततिं विना सोऽत्र मुच्यते नरकाद् ध्रुवम्॥१४॥
आचार्यस् तस्य शिष्यो वा यो दूरेऽपि हि गोत्रजः। नारायणबलिं कुर्यात् तस्योद्देशेन भक्तितः॥१५॥
विशुद्धः सर्वपापेभ्यो मुक्तः स नरकाद् ध्रुवम्। निवसेन् नाकलोके च नाऽत्र कार्या विचारणा॥१६॥
आदौ कृत्वा धनिष्ठां च एतन् नक्षत्रपञ्चकम्। रेवत्यन्तं सदा दूष्यमशुभं सर्वदा भवेत्॥१७॥
दाहस् तत्र न कर्तव्यो विप्रादिसर्वजातिषु। दीयते न जलं तत्र अशुभं जायते ध्रुवम्।
लोकयात्रा न कर्तव्या दुःखार्तः स्वजनो यदि॥१८॥
पञ्चकानन्तरं तस्य कर्तव्यं सर्वमन्यथा। पुत्त्राणां गोत्रिणां तस्य सन्तापोऽप्युपजायते॥१९॥
गृहे हानिर् भवेत् तस्य ऋक्षेष्वेषु मृतश्च यः। अथवा ऋक्षमध्येऽपि दाहस्तस्य विधीयते॥२०॥

लेगा, जिस में वृक्ष और सरीसृप (रेंगने वाले जन्तु) इत्यादि योनियाँ आती है। इस मर्त्यलोक में सन्तति के विना वह पापी नरक से छुटकारा नहीं ही पाएगा॥१४॥ जिस की सन्तति विच्छिन्न हुई है उस का आचार्य (गुरु) अथवा शिष्य अथवा जो उस का दूर का भी सगोत्र बन्धु है वह भी इस सन्तति विच्छेद वाले व्यक्ति के उद्देश से भक्तिपूर्वक नारायणबलि करे॥१५॥ वह सभी पापों से अत्यन्त शुद्ध होकर अवश्य ही नरक से भी मुक्त होकर स्वर्गलोक में निवास करेगा, इस विषय में ऊहापोह करने की आवश्यकता नहीं है॥१६॥ धनिष्ठा नक्षत्र को आदि में रखकर रेवती तक का जो पाँच नक्षत्रों का समुदाय (पञ्चक) है उस में मरण दोषकारी और सर्वदा ही अशुभ होगा॥१७॥ उन नक्षत्रों में मरने वालों का ब्राह्मणादि सभी जातियों में किसी का भी दाह नहीं किया जाना चाहिए। वहाँ जल भी नहीं दिया जाता है, देने से अवश्य अशुभ होता है। यदि स्वजन दुःख से आर्त है तो उस समय में लोकयात्रा कार्य भी नहीं करना चाहिए॥१८॥ पञ्चक के बाद उस का दाहादि सभी कर्म किया जाना चाहिए, अन्यथा उस के पुत्त्रों का और गोत्रियों का भी सन्ताप उत्पन्न हो जाता है॥१९॥ जो इन नक्षत्रों में मरा है उस के घर में हानि होगी। अथवा पञ्चक में मरने वाले का भी उन पाँच नक्षत्रों के बीच में भी मनुष्यों के हित के लिए

मानुषाणां हितार्थाय सद्य आहुतिकारणात्। सद्याहुतिकरं पुण्यं तीर्थे तद्दाह उत्तमः॥२१॥
विप्रैर् नियमतः कार्यः समन्त्रो विधिपूर्वकः। शवस्य च समीपे तु क्षिप्यन्ते पुत्तलास्ततः॥२२॥
दर्भमयाश् च चत्वार ऋक्षमन्त्राऽभिमन्त्रिताः। ततो दाहः प्रकर्तव्यस् तैश् च पुत्तलकैः सह॥२३॥
सूतकान्ते ततः पुत्रः कुर्याच् छान्तिकमुत्तमम्॥२४॥
पञ्चकेषु मृतो योऽसौ न गतिं लभते नरः। तिलान् गाश् च सुवर्णं च तमुद्दिश्य घृतं ददेत्॥२५॥
विप्राणां दीयते दानं सर्वोपद्रवनाशनम्। सूतकान्ते च सत्पुत्रैः स प्रेतो लभते गतिम्॥२६॥
भाजनोपानहौ च्छत्रं हेम मुद्रा च वाससी। दक्षिणा दीयते विप्रे सर्वपातकमोचनी॥२७॥
बालवृद्धाऽऽतुराणां च मृतानां पञ्चकेषु हि। विधानं यो न कुर्वीत विघ्नस्तस्य प्रजायते॥२८॥

तत्काल शरीर का आहुति करने के लिए दाह किया जाता है (द्रष्टव्य– जीवानन्दसंस्करण २५।२१)। तत्काल मृत शरीर की आहुति करने के पुण्य को प्राप्त करने के लिए पञ्चक में मरने वाले का तीर्थ में दाह करना उत्तम होता है, वह दाह मन्त्रयुक्त रूप में और शास्त्रोक्त विधि से नियमपूर्वक ब्राह्मणों से किया जाना चाहिए। इस लिए शव के समीप में नक्षत्रों के मन्त्रों से अभिमन्त्रित कुश के चार पुत्तलक रखे जाते हैं। तब उन पुत्तलकों के साथ में शव का दाह किया जाना चाहिए॥२०-२३॥ तब आशौच के अन्त में पुत्र उत्तम प्रकार से शान्तिकृत्य करे॥२४॥ जो मनुष्य पञ्चक में मरा है वह सुगति नहीं पाता है। उस के उद्देश से तिल, गाय, सोना और घी का दान करे॥२५॥ आशौच के अन्त में उत्तम पुत्रों से सभी उपद्रवों का नाश करने वाला दान ब्राह्मणों को दिया जाता है, तब वह प्रेत सुगति प्राप्त करता है॥२६॥ वर्तन, जूता, छाता, सोना, अँगूठी, धोती-उपरना और सभी पातकों से छुटकारा देने वाली दक्षिणा भी ब्राह्मण को दी जाती है॥२७॥ धनिष्ठादि पाँच नक्षत्रों में मरे हुए बाल, वृद्ध और आतुर इत्यादि के लिए जो उक्त विधान नहीं करेगा उस का विघ्न उत्पन्न हो जाता है॥२८॥

अष्टादशैव वस्तूनि प्रेतश्राद्धे विवर्जयेत्। आशिषो द्विगुणान् दर्भान् प्रणवान् नैकपिण्डताम्॥२९॥
अग्नौकरणमुच्छिष्टं श्राद्धं वै वैश्वदेविकम्। विकिरं च स्वधाकारं पितृशब्दं न चोच्चरेत्॥३०॥
अनुशब्दं न कुर्वीत नाऽऽवाहनमथोल्मुकम्। आसीमान्तं न कुर्वीत प्रदक्षिणविसर्जनम्॥३१॥
न कुर्यात् तिलहोमं च द्विजः पूर्णाहुतिं तथा। न कुर्याद् वैश्वदेवं च कर्ता गच्छत्यधोगतिम्॥३२॥
मलिनश्राद्धसञ्ज्ञानं पूर्वषोडशकं तथा। स्थाने द्वारे चाऽर्धमार्गे चितायां शवहस्तके॥३३॥
श्मशानवासिभूतेभ्यः पञ्चमं प्रातिवेश्यकम्। षष्ठं सञ्चयने प्रोक्तं दश पिण्डा दशाहिकाः।
श्राद्धषोडशकं चैतत् प्रथमं परिकीर्तितम्॥३४॥

अन्यच्च षोडशं मध्ये द्वितीयं तार्क्ष्य मे शृणु। कर्तव्यानीह विधिना श्राद्धान्येकादशैव तु॥३५॥

प्रेतश्राद्ध में अठारह वस्तु वर्जित करे। आशीर्वाद माँगने का कृत्य, द्विगुणदर्भ (मोटक), मन्त्रों के आदि में ओङ्कार का उच्चारण, अनेक पिण्डदान, अग्नौकरण (होम), श्राद्धशेषान्नभोजन, वैश्वदेवश्राद्ध, विकरकरण, स्वधाशब्द का उच्चारण, पितृशब्द का उच्चारण, **'ये च त्वाम् अनु'** इत्यादि रूप में अनुशब्द का प्रयोग न करे, पितरों का आवाहन न करे, उल्मुक (जलती लकडी) का प्रयोग और विधान न करे, गृह की सीमा के अन्त तक श्राद्धभोजी ब्राह्मण का अनुगमन न करे, ब्राह्मण की प्रदक्षिणापूर्वक विसर्जन भी न करे, तिलहोम न करे, द्विज पूर्णाहुति भी न करे, श्राद्धशेष अन्न से वैश्वदेव कर्म (पञ्चमहायज्ञान्तर्गत कर्म) भी न करे, करने वाला अधोगति में जाता है॥२९-३२॥ पहले सोलह श्राद्धों का समुदाय मलिनश्राद्ध शब्द से जाना जाता है। उस मलिनश्राद्ध में मरणस्थान में, द्वार में, आधे मार्ग में, चिता में शव के हाथ में, प्रेत के पडोसियों के रूप में रहे हुए श्मशान में रहने वाले भूतों के लिए पञ्चम पिण्ड और सञ्चयन में छठा पिण्ड, दश दिनों के दश पिण्ड होते हैं। सोलह श्राद्धों का यह पहला समुदाय कहा गया है॥३३-३४॥ हे गरुड, बीच में होने वाले सोलह श्राद्धों का और दूसरे समूह को सुनो। इस में विधि से ग्यारह श्राद्ध (विष्णु, शिव, याम्यपरिवार, सोमराज, हव्यवाह, कव्यवाह, काल,

ब्रह्मविष्णुशिवाद्यं च तथाऽन्यच्च् छ्राद्धपञ्चकम्। मध्यं षोडशकं प्राहुरेतत् तत्त्वविदो जनाः॥३६॥
द्वादश प्रतिमास्यानि श्राद्धमेकादशे तथा। त्रिपक्षसम्भवं चैव द्वे रिक्ते खग षोडश॥३७॥
आद्यं शवविशुद्ध्यर्थं कृत्वाऽन्यच्च च त्रिषोडशम्। पितृपङ्क्तिविशुद्ध्यर्थं शतार्धेन तु योजयेत्॥३८॥
शतार्धेन विहीनो यो मिलितः पङ्क्तिभाङ् न हि। चत्वारिंशत् तथैवाऽष्टश्राद्धं प्रेतत्वनाशनम्॥३९॥
सकृदूनशतार्धेन सम्भवेत् पङ्क्तिसन्निधिः। मेलनीयः शतार्धेन सन्धिः श्राद्धेन तत्त्वतः॥४०॥

(अथ शवविधिः)

शवस्य शिबिकायां करचरणबन्धनं तत्र कर्तव्यम्। एवं चेन्न विधानं विधीयते तत्पिशाचपरिभवनम्।४१।

रुद्र, पुरुष, प्रेत, विष्णु के श्राद्ध [द्रष्टव्य- इसी ग्रन्थ में ५।३८, ४०।२०-३०, ४४।६-१०]) तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिव इत्यादि के (यम और तत्पुरुष के साथ) पाँच श्राद्धों का और एक समूह रहता है, इस प्रकार सोलह श्राद्धों के इस दूसरे समूह को मध्यमश्राद्धषोडशक के तत्त्व को जानने वाले लोग मध्यमषोडशक बताते हैं॥३५-३६॥ प्रत्येक महीने के बारह श्राद्ध, ग्यारहवें दिन का श्राद्ध, त्रिपक्ष का श्राद्ध, दो ऊनश्राद्ध इस प्रकार और सोलह श्राद्ध होते हैं। शव की शुद्धि के लिए आद्य श्राद्ध करके अन्य तीन श्राद्धषोडशक भी करके सपिण्डीकरण में प्रेत को दिए जाने वाले पचासवें पिण्ड से प्रेत को पितरों के साथ में मिलाए॥३७-३८॥ सौ के आधे पिण्डों से विहीन जो प्रेत पितरों में मिलाया जाता है वह पितृपङ्क्ति का भागी नहीं होगा। चालीस और आठ श्राद्धों का समुदाय प्रेतत्व का नाश करने वाला होता है॥३९॥ एक वार न्यून आधे शतक से पितरों के पङ्क्ति की समीपता होगी, पचासवें श्राद्ध से पितरों के पङ्क्ति में मिलाया जाना चाहिए। तत्त्वतः श्राद्ध से ही प्रेत का पितरों से सन्धि (मेलन) होता है॥४०॥ अब शवविधि बताया जाता है। शवनिर्हरण के लिए बनाई गई पालकी में शव के हाथ पैर बाँध देना चाहिए। यदि ऐसा विधान नहीं किया जाता है तो उस का पिशाचों से धर्षण होगा॥४१॥

सञ्जायते रजन्यां च शवनिर्गमने राष्ट्रं भयशून्यम्। शवं न मुञ्चेन् मुञ्चेच् चेत् दुःस्पर्शाद् दुर्गतिर्भवेत्।४२।
ग्राममध्ये स्थिते प्रेते श्रुते भुङ्क्ते यदृच्छया। तदन्नं मांसवज् ज्ञेयं तत् तोयं रुधिरोपमम्॥४३॥
ताम्बूलं दन्तकाष्ठं च भोजनमृतुसेवनम्। ग्राममध्ये स्थिते प्रेते वर्जयेत् पिण्डपातनम्॥४४॥
स्नानं दानं जपो होमस्तर्पणं सुरपूजनम्। ग्राममध्ये स्थिते प्रेते तद् व्यर्थं ज्ञातिधर्मतः॥४५॥
ज्ञातिसम्बन्धिनामेवं व्यवहारः खगेश्वर। विलुप्य ज्ञातिधर्मं च प्रेतपापेन लिप्यते॥४६॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे
सपिण्डनशवविध्योर् निरूपणं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥

रात में शवनिर्हरण करने पर राष्ट्र भय के कारण से शून्य हो जाता है, शव को अकेला न छोडे, यदि छोडा जाता है तो अपवित्र प्राणियों के शव के स्पर्श से मरने वाले की दुर्गति होगी (द्रष्टव्य– बङ्गवासिसंस्करण ३५।४०)॥४२॥ ग्राम के अन्दर शव रहने की बात सुनने पर भी यदि कथञ्चित् भोजन करता है तो वह अन्न मांस के समान और वह जल लहू के समान होता है॥४३॥ गाँव के अन्दर शव रहने पर पान खाना, दतवन करना, भोजन करना और ऋतुकाल में स्त्रीसमागम करना और श्राद्ध करना वर्जित कर दे॥४४॥ गाँव के अन्दर शव रहने पर स्नान, दान, जप होम, तर्पण, देवपूजन जो किया जाता है वह ज्ञातिधर्म के कारण व्यर्थ हो जाता है (द्रष्टव्य– जीवानन्दसंस्करण २५।४५,४६)॥४५॥ हे पक्षियों के मालिक, किसी के मरण होने पर ज्ञाति और सम्बन्धियों का ऐसा व्यवहार होना चाहिए। जो मनुष्य इस प्रकार के ज्ञातिधर्म को छोड देता है वह प्रेत के पाप से लिप्त हो जाता है॥४६॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में
सपिण्डीकरण कर्म का और शवविधि का निरूपण करने वाला पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥३५॥

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

तार्क्ष्य उवाच

कस्मादनशनं पुण्यमक्षय्यगतिदायकम्। स्वगृहं तु परित्यज्य तीर्थे वै म्रियते यदि ॥१॥
अप्राप्य तीर्थं म्रियते गृहे वा मृत्युमागतः। भूत्वा कुटीचरो यस् तु स कां गतिमवाप्नुयात् ॥२॥
सन्न्यासं कुरुते यस् तु तीर्थे वाऽपि गृहेऽपि वा। कथं तस्य प्रकर्तव्यमप्राप्तनिधनेऽपि वा ॥३॥
नियमे चेत् कृते देव चित्तभङ्गो हि जायते। केन तस्य भवेत् सिद्धिः कृतेनाऽप्यकृतेन वा ॥४॥

श्रीकृष्ण उवाच

कृत्वा निरशनं यो वै मृत्युमाप्नोति कोऽपि चेत्। मानुषीं तनुमुत्सृज्य मम तुल्यो विराजते ॥५॥
यावन्त्यहानि जीवेत व्रते निरशने कृते। क्रतुभिस् तानि तुल्यानि समग्रवरदक्षिणैः ॥६॥

गरुड ने कहा— किस कारण से अनशन पुण्य और अक्षय गति देने वाला होता है? अपने घर को छोडकर यदि कोई तीर्थ में मरता है अथवा तीर्थ को जाता हुआ तीर्थ में पहुँचे विना मार्ग में ही यदि कोई मरता है अथवा कोई कुटीचर होकर घर में ही मृत्यु को प्राप्त हुआ है तो वह कैसी गति को प्राप्त करेगा? ॥१-२॥ तीर्थ में अथवा घर में जो सन्न्यास करता है उस का और्ध्वदेहिक कृत्य कैसे करना चाहिए? मरण समीप में प्राप्त न होने पर भी नियम (व्रत) किए जाने पर किसी का चित्त विचलित होने से नियमभङ्ग (व्रतभङ्ग) हो जाता है तो उस की सिद्धि क्या करने से अथवा न करने से होगी? ॥३-४॥ **श्रीकृष्ण ने कहा—** कोई मनुष्य अनशन करके मरता है तो वह मनुष्यशरीर को छोडकर मेरे तुल्य होकर विराजित होता है॥५॥ अनशनव्रत करने पर वह जितने दिन तक जीवित रहेगा वे दिन समग्र और उत्तम दक्षिणा से युक्त यज्ञों से तुल्य होते हैं॥६॥

तीर्थे गृहे वा सन्न्यासं नीत्वा चेन् म्रियते यदि। प्रत्यहं लभते सोऽपि पूर्वोक्तं द्विगुणं फलम्॥७॥
महारोगोपपत्तौ च गृहीतेऽनशने कृते। पुनर् न जायते रोगो देववद् धि विराजते॥८॥
य आतुरः सन् सन्न्यासं गृह्णाति यदि मानवः। पुनर् न जायते भूमौ संसारे दुःखसागरे॥९॥
अहन्यहनि दातव्यं ब्राह्मणानां च भोजनम्। तिलपात्रं यथाशक्ति दीपदानं सुरार्चनम्॥१०॥
एवंवृत्तस्य दह्यन्ते पापान्युच्चावचानि च। मृतो मुक्तिमवाप्नोति यथा सर्वे महर्षयः॥११॥
तस्मादनशनं नृणां वैकुण्ठपददायकम्। तस्मात् स्वस्थे चोत्तरे वा साधयेन् मोक्षलक्षणम्॥१२॥
पुत्त्रद्रव्यादि सन्त्यज्य तीर्थं व्रजति यो नरः। ब्रह्माद्या देवतास् तस्य भवेयुस् तुष्टिपुष्टिदाः॥१३॥
यस् तीर्थसम्मुखो भूत्वा व्रते ह्यनशने कृते। चेन् म्रियेताऽन्तरालेऽपि ऋषीणां मण्डले वसेत्॥१४॥

तीर्थ में अथवा घर में भी सन्न्यास करके यदि मरता है तो वह प्रतिदिन पूर्वोक्त फल से दुगुना फल पाता है॥७॥ असाध्य महान् रोग उत्पन्न होने पर लिए गए अनशनव्रत का धारण करने पर फिर रोग उत्पन्न नहीं होता है, वह देवता की तरह स्वर्ग में विराजित होता है॥८॥ जो मनुष्य रोग से मरणासन्न होने पर सन्न्यास लेता है वह इस भूलोक में दुःख के समुद्ररूपी संसार में फिर जन्म नहीं लेता है॥९॥ किसी व्रत को लेने वाले को प्रतिदिन ब्राह्मणों को भोजन और तिलपात्र यथाशक्ति देना चाहिए, दीपदान करना चाहिए और देवता का पूजन भी करना चाहिए॥१०॥ इस प्रकार का आचरण करने वाले के विभिन्न प्रकार के सभी पाप जल जाते हैं, मरने पर वह महर्षियों की तरह मुक्ति पाता है॥११॥ इस लिए अनशन व्रत मनुष्यों को स्वर्ग का स्थान देने वाला है। इस लिए स्वस्थावस्था में अथवा आतुर अवस्था में भी मोक्ष का लक्षण सिद्ध करे॥१२॥ जो मनुष्य पुत्त्र और द्रव्यादि में ममता को छोडकर तीर्थ में जाता है, उस के लिए ब्रह्मादि देवता तुष्टि और पुष्टि देने वाले होते हैं॥१३॥ जो मनुष्य अनशन व्रत करने पर तीर्थ को जाने के लिए चलकर मार्ग के बीच में ही मर भी जाएगा वह मनुष्य भी ऋषियों के मण्डल में निवास करेगा॥१४॥

व्रतं निरशनं कृत्वा स्वगृहेऽपि मृतो यदि। स्वकुलानि परित्यज्य एकाकी विचरेद् दिवि॥१५॥
अन्नं चैव तथा तोयं परित्यज्य नरो यदि। पीतमत्पादतोयश्च न पुनर् जायते क्षितौ॥१६॥
त्यक्ताशनं तीर्थगतं रक्षन्ति वनदेवताः। यमदूता विशेषेण न याम्यास् तस्य पार्श्वगाः॥१७॥
तीर्थसेवी नरो यस् तु सर्वकिल्बिषवर्जितः। तत्र म्रियेत दह्येत्त स तीर्थफलभाग् भवेत्॥१८॥
सेवितेऽपि सदा तीर्थे ह्यन्यत्र म्रियते यदि। शुभे देशे कुले धीमान् स भवेद् वेदविद् द्विजः॥१९॥
कृत्वा निरशनं तार्क्ष्य पुनर् जीवति मानवः। ब्राह्मणान् स समाहूय सर्वस्वं च परित्यजेत्॥२०॥
चान्द्रायणं चरेत् कृत्स्नमनुज्ञातश् च तैर् द्विजैः। अनृतं न वदेत् पश्चाद् धर्ममेव समाचरेत्॥२१॥
तीर्थे गत्वा च यः कोऽपि पुनरायाति वै गृहम्। अनुज्ञातः स वै विप्रैः प्रायश्चित्तमथाऽऽचरेत्॥२२॥

यदि अनशनव्रत करके अपने ही घर में मरा है, वह अपने कुल को छोडकर अकेला ही स्वर्ग में विचरण करेगा॥१५॥ यदि मनुष्य अन्न को और जल को छोडकर केवल मेरे चरण का जल ही पीकर मरता है तो वह फिर भूलोक में जन्म नहीं लेता है॥१६॥ भोजन त्याग करके रहे हुए और तीर्थ में स्थित मनुष्य की वनदेवताएँ रक्षा करती हैं (द्रष्टव्य– जीवानन्दसंस्करण २६।१७), विशेष रूप से यम के दूत उस के समीप में नहीं आते हैं॥१७॥ तीर्थ का सदाकाल सेवा करने वाला मनुष्य जो है वह सभी पापों से रहित होता है और उसी तीर्थ में यदि मरता है और जलाया जाता है तो उस तीर्थ के फल का भोगी होगा॥१८॥ तीर्थ का सदाकाल सेवा करने पर भी यदि कथञ्चित् तीर्थ के बाहर अन्यत्र मरता है तो वह उत्तम देश में उत्तम कुल में बुद्धिमान् वेदज्ञ ब्राह्मण के रूप में जन्म लेगा॥१९॥ हे गरुड, मरने के लिए अनशन करके भी यदि मनुष्य फिर चित्तभङ्ग होने से जीने की इच्छा करता है और जीता है तो वह ब्राह्मणों को बुलाकर जो उस का सर्वस्व है उस का दान करे॥२०॥ उन ब्राह्मणों की अनुमति से वह चान्द्रायणव्रत करे। उस के बाद वह भूठ न बोले, धर्म ही करे॥२१॥ मरने के लिए तीर्थ में जाकर जो कोई यदि फिर घर में आता है तो वह ब्राह्मणों की अनुमति लेकर प्रायश्चित्त करे॥२२॥

दत्त्वा वा स्वर्णदानानि गो-मही-गज-वाजिनः। तीर्थं यदि लभेद् यस्तु मृत्युकाले स भाग्यवान्॥२३॥
गृहात् प्रचलितस् तीर्थं मरणे समुपस्थिते। पदेपदे तु गोदानं यदि हिंसा न जायते॥२४॥
गृहे तु यत् कृतं पापं तीर्थस्नानेन शुध्यति। कुरुते तत्र पापं चेद् वज्रलेपसमं हि तत्॥२५॥
क्लिश्येत् स नात्र सन्देहो यावच्चन्द्रार्कतारकम्। तत्र दत्तानि दानानि जायन्ते चाऽक्षयाणि वै॥२६॥
आतुरे सति दातव्यं निर्धनैरपि मानवैः। गावस् तिला हिरण्यं च सप्तधान्यं विशेषतः॥२७॥
दानवन्तं नरं दृष्ट्वा हृष्टाः सर्वे दिवौकसः। ऋषिभिः सह धर्मेण चित्रगुप्तेन सर्वदा॥२८॥
आत्मायत्तं धनं यावत् तावद् विप्रे समर्पयेत्। पराधीनं मृते सर्वं कृपया कः प्रदास्यति॥२९॥
पित्रुद्देशेन यैः पुत्त्रैर् धनं विप्रकरेऽर्पितम्। आत्मानं सधनं तेन चक्रे पुत्त्रप्रपौत्त्रकैः॥३०॥

स्वर्णदान देकर अथवा गाय, भूमि, हाथी और घोडा दान में देकर यदि कोई मृत्युकाल में तीर्थ को पाता है तो वह भाग्यवान् है॥२३॥ मरण समीप आने पर तीर्थ जाने के लिए घर से चला है और वहाँ कोई हिंसा नहीं होती है तो उस को पग-पग में गोदान का फल मिलता है॥२४॥ घर में जो पाप हो जाता है वह पाप तीर्थ में स्नान करने से छूट जाता है, तीर्थ में पाप करता है तो वह वज्रलेपतुल्य होता है॥२५॥ उस पाप से वह जब तक आकाश में चन्द्र और तारा रहते हैं तब तक कष्ट झेलता है, इस में सन्देह नहीं है। तीर्थ में दिए गए दान अक्षय होते हैं॥२६॥ मरणासन्न होने पर निर्धन मनुष्यों से भी दान दिया जाना चाहिए। विशेष करके गौ, तिल, सोना और सप्तधान्य (जौ, धान, तिल, कँगनी, मूँग, चना तथा साँवा) देना चाहिए॥२७॥ दान देने वाले मनुष्य को देखकर ऋषियों से धर्मराज से और चित्रगुप्त से सहित सभी देवताएँ सदाकाल हर्षित होती हैं॥२८॥ जब तक धन अपने वश में है तब तक ब्राह्मण को समर्पित करे। मरने पर सब पराधीन हो जाता है, तब मरने वाले के प्रति कृपा करके कौन देगा?॥२९॥ जिन पुत्त्रों से पिता के उद्देश से ब्राह्मण के हाथ में धन अर्पित किया गया उन पुत्त्र-पौत्त्र-प्रपौत्त्रों से अपना ही धर्मफलसाधन किया गया॥३०॥

पितुः शतगुणं दत्तं सहस्रं मातुरुच्यते। भगिन्या शतसाहस्रं सोदर्ये दत्तमक्षयम् ॥३१॥
यदि लोभान् न यच्छन्ति प्रमादान् मोहतोऽपि वा। मृताः शोचन्ति ते सर्वे कदर्याः पापिनस्त्विवति ॥३२॥
अतिक्लेशेन लब्धस्य प्रकृत्या चञ्चलस्य च। गतिरेकैव वित्तस्य दानमन्या विपत्तयः ॥३३॥
मृत्युः शरीरगोप्तारं वसुरक्षं वसुन्धरा। दुश्चारिणीव हसति स्वपतिं पुत्त्रवत्सलम् ॥३४॥
उदारो धार्मिकः सौम्यः प्राप्याऽपि विपुलं धनम्। तृणवन् मन्यते तार्क्ष्य आत्मानं वित्तमप्यथ ॥३५॥
न चैवोपद्रवास् तस्य मोहजालो न चैव हि। मृत्युकाले न च भयं यमदूतसमुद्भवम् ॥३६॥

पिता के उद्देश से दिया गया दान सौ गुना फल देगा, माता के उद्देश से दिया गया दान हजार गुना फल देगा, बहन के लिए दिया गया दान लाख गुना फल देगा, और सहोदर भाई के उद्देश से दिया गया दान अक्षय फल देगा॥३१॥ यदि लोभ से भूल से अथवा अज्ञान से भी मृत पिता आदि के उद्देश से दान नहीं देते हैं तो पुत्र-भ्रात्रादि सभी कदर्य पापी हैं ऐसा जानकर वे मृत पिता इत्यादि लोग शोक में पडते हैं॥३२॥ अत्यन्त कष्ट से पाए गए और स्वभाव से ही चञ्चल वित्त का दान ही एक मात्र सुगति है और सब विपत्तियाँ ही हैं॥३३॥ दूसरे के ही वीर्य से अपनी स्त्री में उत्पन्न बच्चे को अपने वीर्य से उत्पन्न अपना पुत्र समभकर पुत्र में अत्यन्त स्नेह करने वाले पति का गुप्त व्यभिचार करने वाली स्त्री मन से जैसे उपहास करती है वैसे ही अपने शरीर की रक्षा में व्यग्र होने वाले मनुष्य का मृत्यु उपहास करता है, धन की रक्षा में व्यग्र होने वाले मनुष्य का वसुन्धरा (पृथिवी) उपहास करती है॥३४॥ हे गरुड, महामना दानी, धार्मिक और सौम्य मनुष्य बडे दौलत को पाकर भी अपने शरीर को और धन को भी तृणतुल्य ही मानता है॥३५॥ उस व्यक्ति के लिए कोई भी उपद्रव नहीं होते हैं, अज्ञान का जाल भी नहीं होता है, मृत्यु के समय में यमदूतों से होने वाला भय भी नहीं होता है॥३६॥ हे कश्यपपुत्र गरुड, रोग-वार्धक्य इत्यादि से पीडित होने पर शरीर में ममता छोडके प्रयागादितीर्थ में अथवा गङ्गादि नदी में जल में कूँदकर शरीरत्याग करने पर सात हजार दिव्य वर्ष तक, आग में कूँदकर शरीरत्याग करने पर ग्यारह हजार दिव्य वर्ष तक और भृगुपतन से (अमरकण्टकादि पवित्र पर्वतों की चोटी से कूँदकर) (द्रष्टव्य– ३८।१९, बङ्गवासिसंस्करण ३६।३७, जीवानन्दसंस्करण २६।२६, स्कन्दपुराण आवन्त्यखण्ड ३।९७।१८०,रेणुकृत कातीयगृह्यकारिका, पृ.१५३) शरीर त्याग करने पर सोलह हजार दिव्य वर्ष तक स्वर्ग में निवास करता है। राष्ट्र की रक्षा, अथवा धार्मिक

समाः सहस्राणि च सप्त वै जले दशैकमग्नौ पतने च षोडश।
महाहवे षष्टिरशीतिर् गोग्रहे अनाशके काश्यप चाऽक्षया गतिः॥३७॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे
श्रीकृष्णगरुडसंवादेऽनशनमृतगतिनिरूपणं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः॥

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

तार्क्ष्य उवाच

उदकुम्भप्रदानं मे कथयस्व यथातथम्। विधिना केन कर्तव्या कृतिरेषा जनार्दन॥१॥

वेदशास्त्रानुसारी राजा की रक्षा इत्यादि के लिए हुए बडे धर्मयुद्ध में शरीरत्याग करने पर साठ हजार दिव्य वर्ष तक और गायों को अपहरणादि से बचाने के लिए हुए युद्ध में शरीरत्याग करने पर अस्सी हजार दिव्य वर्ष तक स्वर्ग में निवास करता है, अनशन व्रत में शरीरत्याग करने पर तो अक्षय गति मिलती है॥३७॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में अनशनव्रत
करके मरने वालों की गति का निरूपण करने वाला छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥३६॥

गरुड ने कहा– हे जनार्दन, जलकुम्भ के दान के विषय में मुझ को यथार्थरूप में बताइए। यह कार्य किस पद्धति से किया जाना चाहिए?॥१॥ हे जनार्दन, प्रेत की तृप्ति को सिद्ध करने वाले उदकुम्भ किस लक्षण से युक्त और किस वस्तु से पूर्ण होने चाहिए और किस काल में

किंलक्षणाः केन पूर्णाः कस्य देया जनार्दन। कस्मिन् काले प्रदातव्या प्रेततृप्तिप्रसाधकाः॥२॥

श्रीकृष्ण उवाच

सत्यं पुनः प्रवक्ष्यामि उदकुम्भप्रदानकम्। प्रेतोद्देशेन दातव्या अन्नपानीयसंयुताः। विशेषेण महापक्षिन् प्रेतमुक्तिप्रदायकाः॥३॥

द्वादशाहे च षण्मासे त्रिपक्षे वाऽपि वत्सरे। उदकुम्भाः प्रदातव्या मार्गे तस्य सुखाय वै॥४॥

अहन्यहनि दातव्या उदकुम्भास् तिलैर् युताः। सुलिप्ते भूमिभागे तु पक्वान्नजलपूरिताः॥५॥

प्रेतस्य तत्र दातव्यं भाजनं च यदृच्छया। सुप्रीतस् तेन दत्तेन प्रेतो याम्यैः स गच्छति॥६॥

द्वादशाहे विशेषेण उदकुम्भान् प्रदापयेत्। विधिना तत्र सङ्कल्प्य घटान् द्वादशसङ्ख्यकान्॥७॥

एकाऽपि वर्धनी तत्र पक्वान्नफलपूरिता। विष्णुमुद्दिश्य दातव्या सङ्कल्प्य ब्राह्मणे शुभे॥८॥

किस को दिए जाने चाहिए?॥२॥ श्रीकृष्ण ने कहा— जलघट के दान के विषय में अच्छी तरह फिर कहूँगा। हे महापक्षिन्, विशेषरूप में प्रेत को प्रेतभाव से मुक्ति देने वाले अन्न और पानी से युक्त कुम्भ प्रेत के उद्देश से देने चाहिए॥३॥ बारहवें दिन में, छः महीने पूर्ण होने पर अथवा तीन पक्ष पूर्ण होने पर अथवा वर्ष पूर्ण होने पर भी यममार्ग में मृत व्यक्ति के सुख के लिए जलकुम्भों का दान देना चाहिए॥४॥ अच्छी तरह लिपी हुई भूमि में रखकर पक्वान्न से युक्त, जल से पूर्ण और तिलों से सहित जलघट प्रत्येक दिन (मृत्यु से वर्षपर्यन्त) देना चाहिए॥५॥ इच्छा होने पर उस में प्रेत के लिए वर्तन भी देना चाहिए। उस वर्तन के दान से प्रेत प्रसन्न होकर यमदूतों के साथ में जाता है॥६॥ विशेषरूप में बारहवें दिन में जलकुम्भ दिलवाए। बारहवें दिन में शास्त्रोक्त विधि से सङ्कल्प करके बारह जलघटों का दान करे॥७॥ बारहवें दिन में पक्व अन्न और फलों से पूर्ण एक तस्तरी भी विष्णु का उद्देश करके सङ्कल्पपूर्वक उत्तम ब्राह्मण को देनी चाहिए॥८॥

एका वै धर्मराजाय तेन तुष्टेन मुक्तिभाक्। चित्रगुप्ताय चैका तु गतस् तत्र सुखी भवेत्॥९॥
षोडशाऽऽद्याः प्रदातव्या माषाऽन्नजलपूरिताः॥१०॥
उत्क्रान्तिश्राद्धमारभ्य श्राद्धषोडशकस्य तु। षोडशब्राह्मणानां तु एकैकं विनिवेदयेत्॥११॥
एकादशाहात् प्रभृति देयो नित्यं दृढाह्वयः। पक्वान्नजलपूर्णो हि यावत् संवत्सरं दिनम्॥१२॥
अन्नपात्राणि वृद्धानि दत्तानि घटकानि च। एकां च वर्धनीं तत्र वंशपात्रोपरिस्थिताम्॥१३॥
वस्त्रेणाऽऽच्छादयेत् तां तु संयुक्तां च सुगन्धिभिः। ब्राह्मणाय विशेषेण जलपूर्णां प्रदापयेत्॥१४॥
अहन्यहनि सङ्कल्प्य विधिपूर्वं खगेश्वर। ब्राह्मणाय कुलीनाय वेदवृत्तयुताय च॥१५॥

और एक वैसी ही तस्तरी धर्मराज का उद्देश करके दान में देनी चाहिए, इस से होने वाली धर्मराज की तुष्टि से प्रेत प्रेतभाव से मुक्ति पाता है। चित्रगुप्त का उद्देश करके अन्य एक वैसी ही तस्तरी भी दान में देनी चाहिए, इस से चित्रगुप्त के यहाँ पहुँचा हुआ प्रेत सुखी होगा॥९॥ उत्क्रान्तिश्राद्ध से लेकर सोलह श्राद्धों के लिए माषान्नयुक्त और जल से पूर्ण सोलह आद्य घट देने चाहिए। उन सोलह घटों को एक एक करके सोलह ब्राह्मणों को अर्पित करे॥१०-११॥ ग्यारहवें दिन से लेकर संवत्सर पूर्ण होने के दिन तक नित्य ही पक्वान्न से युक्त और जलपूर्ण दृढनामक घट प्रतिदिन देना चाहिए॥१२॥ परोसे गए अन्न से युक्त पात्र और जलघट भी वर्ष दिन तक प्रतिदिन दिए जाने पर अन्त में बाँस से निर्मित एक पात्र के ऊपर एक तस्तरी को रखकर उस को जल से पूर्ण करके उस के साथ में नाना प्रकार के सुगन्धि द्रव्यों को भी रखकर वस्त्र से ढके और ब्राह्मण को विशेष रूप से दे (द्रष्टव्य– जीवानन्दसंस्करण २७।१३,१४)॥१३-१४॥ हे पक्षियों के मालिक, प्रतिदिन जो दान दिया जाता है वह दान शास्त्रोक्त विधि से सङ्कल्प करके शुद्ध कुल के और वेदाध्ययन तथा सद्वृत्त से भी युक्त ब्राह्मण को देना चाहिए॥१५॥

विद्यावृत्तवते देयं मूर्खे तन् न कदाचन। समर्थो वेदवृत्ताढ्यस् तारणे तरणेऽपि च॥१६॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे सोदकुम्भश्राद्धनिरूपणं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥

अथ अष्टात्रिंशोऽध्यायः

तार्क्ष्य उवाच

दानतीर्थाश्रितं मोक्षं स्वर्गं च वद मे प्रभो। केन मोक्षमवाप्नोति केन स्वर्गे वसेच् चिरम्॥१॥
केन गच्छति तेजस्तु स्वर्लोकात् सत्यलोकतः। मानुष्यं केन लभते नरकेषु निमज्जति॥२॥

दान वेदविद्या से और सच्चरित्र से युक्त ब्राह्मण को देना चाहिए, मूर्ख को कभी भी नहीं देना चाहिए। वेदाध्ययन से और सच्चरित्र से सम्पन्न ब्राह्मण ही स्वयम् संसारसागर से उतरने में और दूसरों को उतारने में भी समर्थ होता है॥१६॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में उदकुम्भ से युक्त श्राद्ध का निरूपण करने वाला सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥३७॥

गरुड ने कहा— हे प्रभो, दान और तीर्थसेवन में आश्रित मोक्ष के और स्वर्ग के विषय में मुझ को बताइए। मनुष्य किस कर्म से मोक्ष पाता है? किस कर्म से चिरकालतक स्वर्ग में निवास करता है?॥१॥ किस कर्म से तेज स्वर्गलोक से सत्यलोक की ओर जाता है? किस कर्म से मनुष्ययोनि में जन्म

एतन् मे वद निश्चित्य भक्तानां मोक्षदायक। ब्रूहि कस्मिन् गते स्वर्गे पुनर् जन्म न विद्यते॥३॥

श्रीविष्णुरुवाच

मानुष्यं भारते वर्षे त्रयोदशसु जातिषु॥४॥
तत् प्राप्य म्रियते क्षेत्रे पुनर् जन्म न विद्यते। अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका॥५॥
पुरी द्वारवती ज्ञेयाः सप्तैता मोक्षदायिकाः। सन्न्यस्तमिति यो ब्रूयात् प्राणैः कण्ठगतैरपि॥६॥
मृतो विष्णुपुरं याति न पुनर् जायते क्षितौ। सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम्॥७॥
बद्धः परिकरस् तेन मोक्षाय गमनं प्रति। कृष्णकृष्णेति कृष्णेति यो मां स्मरति नित्यशः॥८॥
जलं भित्त्वा यथा पद्मं नरकादुद्धराम्यहम्। शालग्रामशिला यत्र यत्र द्वारवतीशिला॥९॥

पाता है? किस कर्म से नरक में गडता है?॥२॥ हे भक्तों को मोक्ष देने वाले, यह बात निश्चित करके मुझे बताइए। कौन स्वर्ग में जाने पर फिर जन्म नहीं होता है यह भी बताइए॥३॥ **श्रीकृष्ण ने कहा**— भारतवर्ष में तेरह जातियों में किसी भी जाति में मनुष्यजन्म पाकर पुण्यक्षेत्र में मरता है तो फिर जन्म नहीं होता है॥४॥ अयोध्या, मथुरा, माया (हरिद्वार), काशी (वाराणसी), काञ्ची, अवन्ती, द्वारवती (द्वारका) ये सात पुरियाँ मोक्ष देने वाली जाननी चाहिए॥५॥ प्राण निकलते हुए गले में पहुँचने पर भी जो मनुष्य सन्न्यस्तम् (सम्पूर्ण लोक को छोडदिया) ऐसा कहेगा, मरने पर वह वैकुण्ठ में जाता है, फिर भूलोक में जन्म नहीं लेता है, जिस ने एक वार भी 'हरिः' ये दो अक्षर उच्चरित किए वह मोक्ष के लिए चलने हेतु कटिबद्ध हो गया। जो मनुष्य कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण ऐसा पुकारकर मुझ को नित्य स्मृति में लाता है मैं उस को जैसे जल को भेदकर कमल बाहर आता है वैसे ही नरक से बाहर निकालता हूँ। जहाँ शालग्रामशिला है जहाँ द्वारवतीशिला है, जहाँ उन दोनों शिलाओं का सङ्गम है वहाँ (मरने पर) मुक्ति होती है, सन्देह नहीं। जहाँ पापदोषों का क्षय करने वाली शालग्रामशिला है, उस के समीप में मरने से प्राणी की मुक्ति निश्चित रूप में होती है। हे पक्षिन्, रोपने से,

उभयोः सङ्गमो यत्र मुक्तिस्तत्र न संशयः। शालग्रामशिला यत्र पापदोषक्षयावहा॥१०॥
तत्सन्निधानमरणान् मुक्तिर् जन्तोः सुनिश्चिता। रोपणात् पालनात् सेकाद् ध्यानस्पर्शनकीर्तनात्।
तुलसी दहते पापं नृणां जन्मार्जितं खग॥११॥
ज्ञानह्रदे सत्यजले रागद्वेषमलापहे। यः स्नातो मानसे तीर्थे न स लिप्येत पातकैः॥१२॥
न काष्ठे विद्यते देवो न शिलायां कदाचन। भावे हि विद्यते देवस् तस्माद् भावं समाचरेत्॥१३॥
प्रातःप्रातः प्रपश्यन्ति नर्मदां मत्स्यघातिनः। न ते शिवपुरीं यान्ति चित्तवृत्तिर् गरीयसी॥१४॥
यादृक् चित्तप्रतीतिः स्यात् तादृक् कर्मफलं नृणाम्। परलोकगतिस् तादृक् सूचीसूत्रविचारवत्॥१५॥
ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा स्त्रीणां बालवधेषु च। प्राणत्यागपरो यस्तु स वै मोक्षमवाप्नुयात्॥१६॥

पालन करने से, जलसेचन करने से, ध्यान करने से, छूने से और नाम लेने से भी तुलसी मनुष्यों के जन्मों में सञ्चित पाप को जलाती है॥६-११॥ सत्यरूपी जल से युक्त और राग-द्वेषरूपी मल को हटाने वाले ज्ञानरूपी जलाशय से युक्त मानसरूपी तीर्थ में जिस ने स्नान किया है वह पातकों से संयुक्त नहीं होता है॥१२॥ काठ में देवता नहीं रहती है, पत्थर में भी देवता कभी भी नहीं रहती है, देवता भावना में रहती है, इस लिए देवता की अच्छी भावना करे॥१३॥ मछुआरे प्रतिदिन सबेरे-सबेरे अनेक नर्मदेश्वर शिला से युक्त नर्मदा नदी का दर्शन करते हैं, तथापि वे मरने पर शिवपुरी को नहीं जाते हैं, इस लिए चित्त की देवताविषयक वृत्ति फल देने वाली होने से बडी है (समुचित चित्तवृत्ति के विना मूर्तिदर्शनादि फल देने वाला न होने से बडा [महत्त्वपूर्ण] नहीं है)॥१४॥ जैसे वस्त्र सिलाने की सूई जिधर जिधर जाती है उस में पिरोया गया सूत्र उधर उधर ही विचरण करता हुआ सूई का अनुगामी होता है वैसे ही चित्त की प्रतीति जैसी होती है वैसा ही कर्म का फल मिलता है और परलोक में मिलने वाली गति भी वैसी ही होती है (कर्मफल और परलोकगति चित्तवृत्ति के अनुगामी होते हैं)॥१५॥ ब्राह्मण की रक्षा के लिए, गाय की रक्षा के लिए, स्त्रियों की रक्षा के लिए और बालकों का वध होने की सम्भावना होने पर

अनाशके मृतो यस् तु स वै मोक्षमवाप्नुयात्। अनाशके मृतो यस् तु स मुक्तः सर्वबन्धनैः॥१७॥
दत्त्वा दानानि विप्रेभ्यस् ततो मोक्षमवाप्नुयात्। एते वै मोक्षमार्गाश् च स्वर्गमार्गास् तथैव च॥१८॥
गोग्रहे देशविध्वंसे देव-तीर्थ-विपत्सु च। उत्तमा-ऽधम-मध्यस्य बाध्यमानस्य देहिनः।
आत्मानं तत्र सन्त्यज्य स्वर्गवासं लभेच् चिरम्॥१९॥
जीवितं मरणं चैव द्वयं शिक्षेत पण्डितः। जीवितं दानभोगाभ्यां मरणं रणतीर्थयोः॥२०॥
हरिक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे भृगुक्षेत्रे तथैव च। प्रभासे श्रीस्थले चैव अर्बुदे च त्रिपुष्करे॥२१॥
भूतेश्वरे मृतो यस्तु स्वर्गे वसति मानवः। ब्रह्मणो दिवसं यावत् ततः पतति भूतले॥२२॥

उन की रक्षा के लिए भी जो व्यक्ति अपने प्राणों का त्याग करने में भी तत्पर होकर प्रयत्न करता है वह मोक्ष पा सकता है॥१६॥ अनशनव्रत में रहकर जो मरा है वह मोक्ष पा सकता है। अनशनव्रत में रहकर जो मरा है वह सभी बन्धनों से मुक्त होता है॥१७॥ ब्राह्मणों को अनेक दान देकर मनुष्य पापों से छुट्कारा पाएगा। ये ही मोक्ष के मार्ग और स्वर्ग के मार्ग भी हैं॥१८॥ गायों के अपहरणादि होने पर, स्वदेश का ध्वंस उपस्थित होने पर और देवालयों का और तीर्थों का दूषण उपस्थित होने पर और स्वपक्ष के उत्तम मध्यम तथा अधम मनुष्य विपक्षियों से बाधित होने पर भी उस अवस्था में उक्त आपत्ति के निवारण के लिए अपने शरीर का त्याग करके मनुष्य चिरकाल तक स्वर्ग में रहने का अवसर प्राप्त करता है॥१९॥ सदसद्विवेक करने वाली बुद्धि से युक्त मनुष्य जीने की कला को और मरने की कला को भी सीखे, दान और भोग करते हुए जीकर जीना सीखे और धर्मयुद्ध में अथवा तीर्थ में मरकर मरना सीखे॥२०॥ हरिक्षेत्र में, कुरुक्षेत्र में, भृगुक्षेत्र में, उसी प्रकार प्रभास में, श्रीस्थल (श्रीपर्वत) में, अर्बुदपर्वत में और त्रिपुष्कर में (पुष्करक्षेत्र में) तथा भूतेश्वरक्षेत्र में जो मनुष्य मरा है वह ब्रह्मा के दिन तक (एक कल्प तक) स्वर्ग में निवास करता है, और उस के बाद भूलोक में जन्म लेता है॥२१-२२॥

वर्षवृत्तिं तु यो दद्याद् ब्राह्मणे दोषवर्जिते। सर्वं कुलं समुद्धृत्य स्वर्गलोके महीयते॥२३॥
कन्यां विवाहयेद् यस्तु ब्राह्मणं वेदपारगम्। इन्द्रलोके वसेत् सोऽपि स्वकुलैः परिवेष्टितः॥२४॥
महादानानि दत्त्वा च नरस् तत् फलमाप्नुयात्। वापी-कूप-तडागानामारामसुरसद्मनाम्॥२५॥
जीर्णोद्धारं प्रकुर्वाणः पूर्वकर्तुः फलं लभेत्। जीर्णोद्धारेण वा तेषां तत्पुण्यं द्विगुणं भवेत्॥२६॥
शीतवातातपहरमपि पर्णकुटीरकम्। कृत्वा विप्राय विदुषे प्रददाति कुटुम्बिने॥२७॥
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च नरः स्वर्गे महीयते॥२८॥

जो व्यक्ति महापातक, उपपातक, संस्कारत्याग, शिखासूत्रत्याग, स्नान-सन्ध्योपासन-ब्रह्मयज्ञ-तर्पणादिनित्यकृत्यत्याग इत्यादि दोषों से रहित ब्राह्मण को एक वर्ष के लिए पर्याप्त भोजन-वस्त्रादि जीविका-साधन का दान देता है, वह अपने सम्पूर्ण कुल का नरक से उद्धार करता है और स्वर्गलोक में सत्कृत होता है॥२३॥ जो यथाविधि वेद पढके वेद में पारङ्गत हुए अकिञ्चन ब्राह्मण को आवश्यक गृहक्षेत्रादि धन देकर कन्या-विवाह करने में योग्य बनाकर विवाह कराता है वह अपने कुलों से सहित होकर इन्द्रलोक में (स्वर्ग में) निवास करेगा॥२४॥ स्वर्णतुलादानादि महादानों को देकर भी मनुष्य वैसा ही फल पाएगा (स्वकुलों से सहित होकर स्वर्ग में निवास करेगा)। बाबली, इनारा, तडाग, उद्यान, देवालय इन का जीर्णोद्धार (नवीकरण) करने वाला मनुष्य इन का नवीन निर्माण करने वाले को जो जैसा फल मिलता है वैसा ही फल पाएगा; अथवा जीर्णोद्धार करने से उन का नवीन निर्माण करने पर मिलने वाले पुण्य से दुगुना पुण्य होगा॥२५-२६॥ जो मनुष्य पत्नी-पुत्रादि से युक्त वेद-वेदाङ्गवित् विद्वान् ब्राह्मण को शीत, वायु और धूप का परिहार करने वाली घास, फूस और पत्तों से बनी झोपडी भी देता है वह साढे तीन करोड वर्ष तक स्वर्गलोक में सत्कृत होता है (पक्का घर ही देता है तो बात ही क्या)॥२७-२८॥

या स्त्री सवर्णा संशुद्धा मृतं पतिमनुव्रजेत्। सा मृता स्वर्गमाप्नोति वर्षाणां रोमसङ्ख्यया॥२९॥
पुत्त्रपौत्त्रादिकं त्यक्त्वा स्वपतिं याऽनुगच्छति। स्वर्गं लभेतां तौ चोभौ दिव्यस्त्रीभिरलङ्कृतौ॥३०॥
कृत्वा पापान्यनेकानि भर्तृद्रोहमतिः सदा। प्रक्षालयति सर्वाणि या स्वं पतिमनुव्रजेत्॥३१॥
महापापसमाचारो भर्ता चेद् दुष्कृती भवेत्। तस्याऽप्यनुव्रता नारी नाशयेत् सर्वकिल्बिषम्॥३२॥
ग्रासमात्रं नियमतो नित्यदानं करोति यः। चतुश्चामरसंयुक्तविमानेनाऽधिगच्छति॥३३॥
यत् कृतं हि मनुष्येण पापमामरणान्तिकम्। तत् सर्वं नाशमायाति वर्षवृत्तिप्रदानतः॥३४॥
भूतं भव्यं भविष्यं च पापं जन्मत्रयार्जितम्। प्रक्षालयति तत् सर्वं विप्रकन्योपनायनात्॥३५॥
दशकूपसमा वापी दशवापीसमं सरः। सरोभिर् दशभिस् तुल्या या प्रपा निर्जले वने॥३६॥

जो पतिव्रतधर्मपालनादि से शुद्ध और पति की सवर्णा स्त्री है वह मरे हुए पति का अनुगमन करती है तो मरने पर अपने शरीर में जितने रोवें हैं उतने वर्ष तक स्वर्गलोकवास प्राप्त करती है॥२९॥ जो स्त्री पुत्र-पौत्रादि को छोडकर अपने पति का अनुगमन करती है, वे दोनों पति-पत्नी दिव्य स्त्रियों से (अप्सराओं से) शोभित होकर स्वर्गवास पाएंगे॥३०॥ जो सदाकाल पति का द्रोह करने वाली स्त्री अनेक पाप करके भी अपने मृत पति का अनुगमन करती है तो सभी पापों का प्रक्षालन करती है॥३१॥ यदि पति महापाप करने वाला दुष्कर्मी भी होगा तो भी मरने पर उस का अनुगमन करने वाली स्त्री पति के सभी पापों को नष्ट कर देगी॥३२॥ जो मनुष्य ग्रासमात्र अन्न का भी नित्यदान करता है वह चार चामरों से युक्त दिव्य विमान से स्वर्ग जाता है॥३३॥ मनुष्य से मरणपर्यन्त भी जो पाप किया जाता है वह सब पाप वर्षवृत्ति (वर्षपर्यन्त जीविका के लिए पर्याप्त अन्नवस्त्रादि) देने से नष्ट होता है॥३४॥ इस जन्म के भूत काल से, वर्तमान काल से और भविष्य काल से सम्बद्ध जो पाप है और पूर्व तीन जन्मों में कमाया गया जो पाप है उन सब ही पापों को मनुष्य ब्राह्मणकन्या का उपनयन (अथवा उपनयनस्थानापन्न विवाह) करवाने से धोता है॥३५॥ एक बाबली दश इनारों की समान होती है, एक सरोवर (तलाव) दश बाबलियों का तुल्य होता है, जो

यद्वापी निर्जले देशे यद्दानं निर्धने द्विजे। प्राणिनां यो दयां धत्ते स भवेन् नाकनायकः॥३७॥
एवमादिभिरन्यैश्च सुकृतैः स्वर्गभाग् भवेत्। स तत् सर्वं फलं प्राप्य प्रतिष्ठां परमां लभेत्॥३८॥
फल्गु कार्यं परित्यज्य सततं धर्मवान् भवेत्। दानं दमो दया चेति सारमेतत् त्रयं भुवि॥३९॥
दानं साधोर् दरिद्रस्य शून्यलिङ्गस्य पूजनम्। अनाथप्रेतसंस्कारः कोटियज्ञफलप्रदः॥४०॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे उत्तमलोकगत्यादिगतिमोक्षमानुष्यहेतु-निरूपणं नामाऽष्टात्रिंशत्तमोऽध्यायः॥

जल से रहित वन में रखी गई प्रपा (पौसरा) है वह दश सरोवर के तुल्य होती है॥३६॥ जल से रहित देश में जिस की बनाई गई बाबली है, जिस से दिया गया दान निर्धन ब्राह्मण में जाता है और जो हृदय में प्राणियों के प्रति सदा दयाभाव का धारण करता है वह स्वर्ग का नायक (इन्द्र) होगा॥३७॥ इस प्रकार के और अन्य सुकर्मों से मनुष्य स्वर्गसुख का भोगने वाला होगा, वह उस सब फल को पाकर इस लोक में और परलोक में भी उच्च प्रतिष्ठा को भी प्राप्त करेगा॥३८॥ निस्सार काम को छोडकर मनुष्य निरन्तर धर्मयुक्त हो, दान, दम (इन्द्रियनिग्रह) और दया इन तीनों का यह समुदाय इस भूलोक में सारतत्त्व है॥३९॥ ब्रह्मचर्याश्रम-गृहस्थाश्रमादि आश्रमों के धर्म की साधना में संलग्न दरिद्र को दिया जाने वाला दान, शून्यरूप लिङ्ग में परमात्मा का आराधन और अनाथ प्रेत का दाहादि संस्कार करोडों यज्ञ का फल देने वाले होते हैं॥४०॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में उत्तमलोकगति इत्यादि गतियों का, मोक्ष का और मनुष्यजन्मप्राप्तिहेतु का निरूपण करने वाला अडतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥३८॥

अथ ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः

ताक्ष्र्य उवाच

सूतकानां विधिं ब्रूहि दयां कृत्वा मयि प्रभो। विवेकाय हि चित्तस्य मानवानां हिताय च॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच

मृते जन्मनि पक्षीन्द्र सूतकं स्याच् चतुर्विधम्। चतुर्णामपि वर्णानां सामान्येन विवर्जितम्॥२॥
उभयत्र दशाहानि कुलस्याऽन्नं विवर्जयेत्। दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायश्च निवर्तते॥३॥
देशं कालं तथाऽऽत्मानं द्रव्यं द्रव्यप्रयोजनम्। उपपत्तिमवस्थां च ज्ञात्वा कर्म समाचरेत्॥४॥
गुहावह्निप्रवेशे च देशान्तरमृतेषु च। स्नानं सचैलं कर्तव्यं सद्यः शौचं विधीयते॥५॥
आमगर्भाश् च ये जीवा ये च गर्भाद् विनिःसृताः। न तेषामग्निसंस्कारो नाऽऽशौचं नोदकक्रिया॥६॥

गरुड ने कहा— हे प्रभो, मुझ पर कृपा करके चित्त के सन्देह को हटाकर निर्णय करने में समर्थ बनाने के लिए और मानवों के हित के लिए आशौचों के विधि को बताइए॥१॥ **श्रीकृष्ण ने कहा—** हे पक्षियों में श्रेष्ठ, मृत्यु में और जन्म में चारों वर्णों का सामान्य से रहित चार प्रकार का आशौच होगा॥२॥ दोनों प्रकार के (जन्म-मृत्यु के) आशौचों में दश दिन तक उस कुल (घर) का अन्न को वर्जित करे। आशौच में दान, प्रतिग्रह, होम और स्वाध्यायाध्ययन (ब्रह्मयज्ञ) भी निवृत्त होते हैं॥३॥ देश, काल, अपनी धन-जन-शरीरबल की स्थिति, द्रव्य, द्रव्य का प्रयोजन, उपपत्ति, अवस्था इन सब को जानकर कर्म करे॥४॥ अपने बन्धु का गुहाप्रवेश करके और अग्निप्रवेश करके मरण होने पर और देशान्तर में (दूर देश में) मरण होने पर भी सचैल (प्रक्षालित वस्त्र के साथ) स्नान करना चाहिए, तत्काल शुद्धि की जाती है॥५॥ अपरिपक्व गर्भ के रूप में गर्भस्राव अथवा गर्भपात से मरे हुए जो जीव हैं और गर्भाशय से निकलते ही मरे हुए भी

शिल्पिनः कारवो वैद्या दासीदासास्तथैव च। राजानः श्रोत्रियाश् चैव सद्यःशौचाः प्रकीर्तिताः॥७॥
सत्री च मन्त्रपूतश्च आहिताग्निर् नृपस् तथा। एतेषां सूतकं नास्ति यस्य चेच्छन्ति वाडवाः॥८॥
प्रसवे च सपिण्डानां न कुर्यात् सङ्करं द्विजः। दशाहाच् छुध्यते माता अवगाह्य पिता शुचिः॥९॥
विवाहोत्सवयज्ञेषु अन्तरा मृतसूतके। पूर्वसङ्कल्पितं द्रव्यं भोज्यं तन् मनुरब्रवीत्॥१०॥
सर्वेषां शावमाशौचं मातापित्रोस् तु सूतकम्। सूतकं मातुरेव स्यादुपसृश्य पिता शुचिः॥११॥
अन्तर्दशाहे स्यातां चेत् पुनर्मरणजन्मनी। तावत् स्यादशुचिर् विप्रो यावत् तत् स्यादनिर्दशम्॥१२॥

जो जीव हैं उन का अग्निसंस्कार (शवदाहकर्म) भी नहीं होता है, आशौच भी नहीं होता है और स्नान-उदकदानादिक्रिया भी नहीं होती है॥६॥ शिल्पीलोग, कारीगर, चिकित्सक, दासियाँ और दास लोग, राजा लोग और नित्यवेदाध्ययन करने वाले ब्राह्मण लोग ये सब आशौच का निमित्त उपस्थित होने पर यथोचित रूप में स्नान करके तत्काल शुद्ध होने वाले बताए गए हैं॥७॥ अनेक मनुष्यों को नित्य ही भोजन वितरण करने वाला, वेदमन्त्रों के नित्यअध्ययन से पवित्र ब्राह्मण, श्रौत अग्नि का आधान करने वाला व्यक्ति और राजा इन लोगों को आशौच नहीं होता है, ब्राह्मण लोग जिस को आशौच न लगे ऐसी इच्छा करते हैं उस को भी आशौच नहीं होता है (द्रष्टव्य– बङ्गवासिसंस्करण ३७।६४, जीवानन्दसंस्करण २९।८)॥८॥ जननाशौच में भी द्विजाति सपिण्डों से सम्पर्क न करे। सूतिका माँ दश दिनों में शुद्ध हो जाती है, जातक का पिता तो स्नान करके तत्काल शुद्ध हो जाता है॥९॥ विवाह में, उत्सव में और यज्ञ में बीच में मरणाशौच अथवा जननाशौच हो जाता है तो भी पूर्व काल में (आशौचरहित काल में) सङ्कल्प करके उत्सृष्ट द्रव्य असपिण्डों के लिए भी भोज्य होता है, यह बात मनु ने बताई है॥१०॥ शवसम्बन्धी आशौच सभी सपिण्डों के लिए होता है, सूतिकासम्बन्धी आशौच केवल मातापिताओं के लिए ही होता है, पिता तो स्नान करके तत्काल शुद्ध हो जाता है (द्रष्टव्य- गौतमधर्मसूत्र और उस की हरदत्तकृतव्याख्या २।५।१३,१४; याज्ञवल्क्यस्मृति ३।१८; वासिष्ठधर्मशास्त्र ४।२१,२२; मनुस्मृति ५।६२; पराशरस्मृति ३।२६-२८; बौधायनधर्मसूत्र १।११।१७-२१)॥११॥ एक मरणाशौच के अथवा जननाशौच के दश दिनों के भीतर ही यदि फिर दूसरा मरण अथवा जन्म होता है तो ब्राह्मण उसी काल तक अशुद्ध रहता है जब तक पहले मरण के अथवा जन्म के दश दिन नहीं बीतते हैं॥१२॥

उदिते नियमाऽऽदाने आर्ते विप्रे निवेदयेत्। तथैव ऋषिभिः प्रोक्तं यथाकालं न दुष्यति॥१३॥
मृन्मयेन तु पात्रेण तिलैर् मिश्रजलैः सह। मृत्तिकया तथाऽन्ते च नरः स्नात्वा शुचिर् भवेत्॥१४॥
दानं परिषदे दद्यात् सुवर्णं गां वृषं द्विजः। क्षत्रियो द्विगुणं चैव वैश्यस्तु त्रिगुणं तथा॥१५॥
चतुर्गुणं तु शूद्रेण दातव्यं ब्राह्मणे धनम्। एवं चाऽनुक्रमेणैव चातुर्वर्ण्यं विशुध्यति॥१६॥
सप्ताष्टमान्तरैः शीर्णे गृह्यसंस्कारवर्जिते। अहस्तु सूतकं तस्य त्वब्दानां सङ्ख्यया स्मृतम्॥१७॥
ब्राह्मणार्थे विपन्ना ये नारीणां गोग्रहेषु च। आहवेषु विपन्नानामेकरात्रमशौचकम्॥१८॥

व्रतग्रहण का सङ्कल्प उच्चरित हो चुकने पर भी व्रती आर्त (अशक्त) हो जाने पर ब्राह्मण को निवेदन करके ब्राह्मण की अनुमति से व्रतसङ्कोच करके अत्यावश्यक भोजन-पानादि करे, यह बात ऋषियों ने बताई है, तत्काल की अवस्था के अनुसार काम करने से दोषी नहीं होता है॥१३॥ तिल से मिश्रित जल से मिट्टी के वर्तन से स्नान करके अन्त में फिर मिट्टी के साथ स्नान करके मनुष्य शुद्ध होगा॥१४॥ ब्राह्मणों से प्रायश्चित्तादि के लिए अनुमति माँगने के लिए परिषद् को ब्राह्मण एक कर्ष सोना, गाय और बैल दे, क्षत्रिय दुगुना दे, वैश्य तिगुना दे (द्रष्टव्य– जीवानन्दसंस्करण २९।१४)॥१५॥ शूद्र से तो ब्राह्मण को चौगुना धन दिया जाना चाहिए, इस प्रकार क्रमानुसार ही चार वर्ण शुद्ध होते हैं॥१६॥ अपनी वेदशाखा के गृह्यसूत्र में बताए गए संस्कार (उपनयनसंस्कार) से रहित अवस्था में सात-आठ वर्षों की अवस्था में मरने पर उस का आशौच उस के वर्ष की सङ्ख्या जो है उतनी सङ्ख्या के दिनों तक रहने वाला समझा गया है॥१७॥ ब्राह्मण के रक्षा के लिए, स्त्रियों के रक्षा के लिए और गायों के अपहरणादि से बचाने के लिए प्रयत्न करते हुए जो लोग मरते हैं उन का और धर्मयुद्धों में मरे हुए लोगों का भी आशौच एक अहोरात्र ही रहता है॥१८॥

न तेषामशुभं किञ्चिद् विप्राणां शुभकर्मणि। अनाथप्रेतसंस्कारं ये कुर्वन्ति नरोत्तमाः॥१९॥
न तेषामशुभं किञ्चिद् विप्रेण सहकारिणा। जलावगाहनात् तेषां सद्यः शुद्धिरुदाहृता॥२०॥
विनिवृत्ता यदा शूद्रा उदकान्तमुपस्थिताः। तदा विप्रेण द्रष्टव्या इति वेदविदो विदुः॥२१॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे सूतककालादिनिरूपणं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥

जो मनुष्यों में श्रेष्ठ विप्र लोग अनाथ प्रेत का दाहादिसंस्कार करते हैं उन ब्राह्मण लोगों का शुभ कार्य में कुछ भी अशुभ नहीं होता है॥१९॥ सहकारी ब्राह्मण के साथ अनाथप्रेत के संस्कार में संलग्न अन्य जनों का भी कुछ भी अशुभ नहीं होता है। उन लोगों की शुद्धि जल में अवगाहन (स्नान) करने से तत्काल ही हो जाने की बात मुनियों से बताई गई है॥२०॥ शूद्र लोग जब शवदाह के बाद स्नान और अञ्जलिदान करके जलाशयादि के तट में उपस्थित होते हैं उसी समय में आश्वासन देने वाले ब्राह्मण से देखे जाने चाहिए (शूद्रशवानुगमनादि ब्राह्मण को नहीं करना चाहिए) ऐसा वेदविज्ञ मुनि लोग समझते हैं (द्रष्टव्य- गतप्रसङ्ग ३४।१७-२०)॥२१॥

श्रीगरुडपुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश म धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में आशौचकालादि का निरूपण करने वाला उनचालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥३९॥

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

ताक्ष्र्य उवाच

भगवन् ब्राह्मणाः केचिदपमृत्युवशं गताः। कथं तेषां भवेन् मार्गः किं स्थानं का गतिर् भवेत्॥१॥
किं च युक्तं भवेत् तेषां विधानं वाऽपि कीदृशम्। तदहं श्रोतुमिच्छामि ब्रूहि मे मधुसूदन॥२॥

श्रीकृष्ण उवाच

प्रेतीभूतद्विजातीनां सम्भूते मृत्युवैकृते। तेषां मार्गगतिस्थानं विधानं कथयाम्यहम्॥३॥
शृणु ताक्ष्र्य परं गोप्यं जाते दुर्मरणे सति। लङ्घनैर् ये मृता विप्रा दंष्ट्रिभिश् चाऽभिघातिताः॥४॥
कण्ठग्राहविमग्नानां क्षीणानां तुण्डघातिनाम्। विषाग्निवृषविप्रेभ्यो विषूच्या चाऽऽत्मघातकाः॥५॥
पतनोद्बन्धनजलैर् मृतानां शृणु संस्थितिम्। यान्ति ते नरके घोरे ये च म्लेच्छादिभिर् हताः॥६॥

गरुड ने कहा— हे भगवन्, कोई ब्राह्मण दुर्मरण में पड जाते हैं तो उन का मार्ग कैसा होगा, कैसा स्थान होगा और कैसी गति होगी?॥१॥ हे मधुसूदन, उन के लिए क्या समुचित होगा? कैसा विधान होगा? वह सब मैं सुनना चाहता हूँ, मुझ को बताइए॥२॥ श्रीकृष्ण ने कहा— मृत्युकृत विगुणता हो जाने पर प्रेतयोनि में प्राप्त द्विजातियों का मार्ग, गति, स्थान और विधान मैं कहता हूँ॥३॥ हे गरुड, दुर्मरण हो जाने पर कर्तव्य परम गोपनीय कृत्य को सुनो। जो ब्राह्मण खाई नाला इत्यादि को लांघना इत्यादि प्रकार के साहसिक कर्म से मरे हैं, दाढों वाले हिंस्रक व्याघ्रादि प्राणियों से मारे गए हैं उन का, भूखे और मुह से मारने वाले प्राणियों से गले में पकडे जाने से मरने वालों का; विष, अग्नि, बैल, ब्राह्मण और हैजे से मरने वालों का, जो आत्महत्या करने वाले हैं उन का, ऊँचे जगह से गिरना, फाँसी लगाना, गहरे जल में कूँदना इत्यादि से मरने वालों का भी परिणाम को तुम सुनो। वे सब भयङ्कर नरक में पड जाते हैं। जो म्लेच्छादि नीच जातियों से मारे गए हैं,

श्वसृगालादिसंस्पृष्टा अदग्धाः कृमिसङ्कुलाः। उल्लङ्घिता मृता ये च महारोगैश्च पीडिताः॥७॥
अभिशस्तास् तथा व्यङ्गा ये च पापान्नपोषिताः। चण्डालादुदकात् सर्पाद् ब्राह्मणाद् वैद्युताग्नितः॥८॥
दंष्ट्रिभ्यश् च पशुभ्यश् च वृक्षादिपतनान् मृताः। उदक्या-सूतकी-शूद्री-रजकी-सङ्गदूषिताः॥९॥
तेन पापेन नरकान् मुक्ताः प्रेतत्वभागिनः। न तेषां कारयेद् दाहं सूतकं नोदकक्रियाम्॥१०॥
न विधानं मृताद्यं च न कुर्यादौर्ध्वदैहिकम्। तेषां तार्क्ष्य प्रकुर्वीत नारायणबलिक्रियाम्॥११॥
सर्वलोकहितार्थाय शृणु पापभयापहाम्। षण्मासे ब्राह्मणे दाहस् त्रिमासे क्षत्रिये मतः॥१२॥
सार्धमासे तु वैश्यस्य सद्यः शूद्रे विधीयते। गङ्गायां यमुनायां च नैमिषे पुष्करेऽथ च॥१३॥

जो मरने पर कुत्ता सियार इत्यादि से छूए गए हैं, जिन का दाहसंस्कार नहीं हुआ है, जो घावों में कीडे पडने से मरे हैं अथवा मरने पर कीडों से व्याप्त हो गए हैं, जो तिरस्कारपूर्ण व्यवहार में पडकर मरे हैं, जो कुष्ठादि महारोगों से पीडित होकर मरे हैं, जो महापातकादि से आरोपित होकर मरे हैं, जो छिन्नभिन्नाङ्ग होकर मरे हैं, जो पापियों के अन्न से पोषित होकर मरे हैं, जो चण्डाल से अथवा जल से अथवा सर्प से अथवा ब्राह्मण से अथवा बिजली गिरने से लगे अग्नि से अथवा दाढों वाले प्राणियों से अथवा पशुओं से अथवा वृक्षादि से गिरने से मरे हैं, जो रजस्वला के अथवा सूतिका के अथवा शूद्री के अथवा रजकी के सङ्ग से दूषित होकर मरे हैं वे सब उन उन पापों से नरक का भोग करके वहाँ से मुक्त होने पर प्रेतभाव में प्राप्त होने वाले हैं। उन का दाहसंस्कार भी न करे, आशौच भी न करे, स्नान-जलाञ्जलिदानादि भी न करे॥४-१०॥ उन लोगों का मृतक के लिए किए ज़ाने वाले कोई विधान भी न करे, औध्र्वदेहिक कृत्य भी न करे। हे गरुड, उन के लिए नारायणबलि की क्रिया करे॥११॥ हे गरुड, सभी लोगों के हित के लिए पाप के भय को हटाने वाली नारायणबलिक्रिया को सुनो। उक्त प्रकार का दुर्मरण होने पर ब्राह्मण का छे महीनों में दाहसंस्कार किया जाता है, क्षत्रिय का तीन महीनों में, वैश्य का डेढ महीने में और शूद्र का तत्काल ही दाहसंस्कार किया जाता है। गङ्गा में अथवा यमुना में अथवा नैमिषारण्य में अथवा पुष्करतीर्थ में अथवा जल से पूर्ण तालाव में अथवा निर्मल जल से युक्त

तडागे जलपूर्णे वा ह्रदे वा विमलोदके। वाप्यां कूपे गवां गोष्ठे गृहे वा प्रतिमालये॥१४॥
कृष्णाग्रे कारयेद् विप्रैः बलिं नारायणाह्वयम्। प्रेताय तर्पणं कार्यं मन्त्रैः पौराणवैदिकैः॥१५॥
सर्वौषध्यक्षतैर् मिश्रैर् विष्णुमुद्दिश्य तर्पयेत्। कार्यं पुरुषसूक्तेन मन्त्रैर् वा वैष्णवैरपि॥१६॥
दक्षिणाभिमुखो भूत्वा प्रेतं विष्णुरिति स्मरेत्। अनादिनिधनो देवः शङ्खचक्रगदाधरः॥१७॥
अव्ययः पुण्डरीकाक्षः प्रेतमोक्षप्रदो भवेत्। तर्पणस्याऽवसाने च वीतरागो विमत्सरः॥१८॥
जितेन्द्रियमना भूत्वा शुचिमान् धर्मतत्परः। दानधर्मरतः शान्तः प्रणम्य वाग्यतः शुचिः॥१९॥
यजमानो भवेत् तत्र शुचिर् बन्धुसमन्वितः। भक्त्या तत्र प्रकुर्वीत श्राद्धान्येकादशैव तु॥२०॥

ह्रद में, अथवा बाबली में अथवा इनारे में अथवा गायों के गोष्ठ में अथवा घर में अथवा प्रतिमा के घर में (देवालय में) कृष्ण की मूर्ति के समक्ष में ब्राह्मणों के द्वारा नारायंण नाम का बलि करवाए। पुराण में और वेद में पठित मन्त्रों से प्रेत के लिए तर्पण करना चाहिए॥१२-१५॥ सर्वौषधिगण (मुरा [कृष्णजटा-मांसी], जटामांसी, वचा, कुष्ठ, शैलेय, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, शटी, चम्पक, मुस्ता) से और जौ से मिश्रित जल से विष्णु का उद्देश करके तर्पण करे। यह तर्पण "सहस्रशीर्षा पुरुषः" इत्यादि पुरुषसूक्त (मा.वा.शु.य.वे.म.सं.३१।१-१६) से अथवा अन्य विष्णुदेवता वाले मन्त्रों से करना चाहिए॥१६॥ दक्षिणदिशा की ओर मुह करके प्रेत का विष्णुरूप में स्मरण करे। ऐसा करने से आदि और अन्त से रहित, शङ्ख-चक्र-गदा को धारण करने वाले, अपचय से रहित पुण्डरीकाक्ष भगवान् विष्णु प्रेत को प्रेतयोनि से मुक्ति देने वाले होंगे। तर्पण के अन्त में रागरहित, मत्सर से शून्य, इन्द्रिय और मन को वश में रखने वाला होकर शुद्ध सहायकों से युक्त, धर्म में तत्पर, दानरूप धर्म में रमने वाला और मानस विक्षेपों से रहित होकर वाणी पर संयम रखता हुआ और मन से और इन्द्रियों से भी निर्मल होकर विष्णु को प्रणाम करके वहाँ बन्धुओं से सहित यजमान शुद्ध होवे। वहाँ भक्तिपूर्वक ग्यारह श्राद्ध करे॥१७-२०॥

सर्वकर्मविधानेन एकैकाग्रे समाहितः। तोयव्रीहियवान् षष्ट्या गोधूमांश् च प्रियङ्गुकान्॥२१॥
हविष्यान्नं शुभं मुद्रां छत्रोष्णीषे च चेलकम्। दापयेत् सर्वसस्यानि क्षीरक्षौद्रयुतानि च॥२२॥
वस्त्रोपानहसंयुक्तं दद्यादष्टविधं पदम्। दापयेत् सर्वविप्रेभ्यो न कुर्यात् पङ्क्तिबन्धनम्॥२३॥
भूमौ स्थितेषु पिण्डेषु गन्धपुष्पाक्षताऽन्वितम्। शङ्खपात्रे तथा ताम्रे तर्पणं च पृथक्पृथक्॥२४॥
ध्यान-धारण-संयुक्तो जानुभ्यामवनिं गतः। दातव्यं सर्वविप्रेभ्यो वेदशास्त्र-विधानतः॥२५॥
ऋचा वै दापयेदर्घ्यमेकोद्दिष्टे पृथक्पृथक्। अपोदेवीर् मधुमतीरादिपिण्डे प्रकल्पितम्॥२६॥
उपयामगृहीतोऽसि द्वितीयेऽर्घं निवेदयेत्। येनापावकचक्षषा तृतीये च सुकल्पितम्॥२७॥
ये देवासश् चतुर्थे तु समुद्रङ् गच्छ पञ्चमे। अग्निर्ज्योतिस् तथा षष्ठे हिरण्यगर्भः सप्तमे॥२८॥

एक एक पिण्ड के आगे समाहित चित्त वाला होकर सभी कर्मों के विधान से (द्रष्टव्य– जीवानन्दसंस्करण ३०।२०) जल, भदैया धान, जौ, साठी धान से युक्त गेहूँ, कँगनी, अन्य शुभ हविष्यान्न, अँगूठी, छाता, पगडी, वस्त्र, दूध और मधु से युक्त सभी प्रकार के धान्य भी दे॥२१-२२॥ वस्त्र और जूता सहित आठ वस्तुओं से युक्त पद ब्राह्मणों को दे। उक्त ग्यारह श्राद्धों के सभी ब्राह्मणों को पददान दे, पङ्क्तिभेद न करे॥२३॥ पिण्ड भूमि में रहते ही चन्दन, फूल, अक्षता से युक्त जल शङ्खपात्र में अथवा तांवे के पात्र में लेकर प्रत्येक पिण्ड में पृथक्-पृथक् तर्पण करे॥२४॥ विष्णु के ध्यान और धारणा से युक्त होकर और घुटनों के बल पृथिवी पर टिकता हुआ वेदों के और वेदाङ्गशास्त्रों के विधान से (ग्यारह श्राद्ध के) सभी ब्राह्मणों को अर्घ्य देना चाहिए॥२५॥ एकोद्दिष्ट श्राद्ध में ऋचा (मन्त्र) से अलग अलग अर्घ देना चाहिए। वहाँ पहले पिण्ड (श्राद्ध) में **"अपो देवी मधुमतीः"** इत्यादि मन्त्र से अर्घदान कल्पशास्त्र में विहित है (द्रष्टव्य– जीवानन्दसंस्करण ३०।२६)॥२६॥ द्वितीय श्राद्ध में **"उपयामगृहीतोऽसि"** इत्यादि मन्त्र से अर्घ निवेदित करे। तृतीय श्राद्ध में **"येना पावक चक्षसा"** इत्यादि मन्त्र से अर्घदान कल्पशास्त्र में सुविहित है॥२७॥ चतुर्थ श्राद्ध में **"ये देवासः"** इत्यादि मन्त्र से, पञ्चम श्राद्ध में "समुद्रङ्

यमाय त्वाऽष्टमे ज्ञेयं यज्जाग्रन् नवमे तथा। दशमे याः फलिनीति पिण्डे चैकादशे ततः॥२९॥
भद्रं कर्णेभिरिति च कुर्यात् पिण्डविसर्जनम्। कृत्वैकादशदेवत्यं श्राद्धं कुर्यात् परेऽहनि॥३०॥
विप्रानावाहयेत् पञ्च चतुर्वेदविशारदान्। विद्याशीलगुणोपेतान् स्वकीयान् कुलसत्तमान्।
अव्यङ्गान् सुप्रशस्तांश् च न तु वर्ज्यान् कदाचन॥३१॥
विष्णुः स्वर्णमयः कार्यो रुद्रस् ताम्रमयस्तथा। ब्रह्मा रूप्यमयस् तद्वद् यमो लोहमयो भवेत्॥३२॥
सीसकं तु भवेत् प्रेतं त्वथ वा दर्भकं तथा। शन्नोदेवीति मन्त्रेण गोविन्दं पश्चिमे न्यसेत्॥३३॥
अग्न आयाहीति रुद्रमुत्तरत्रैव विन्यसेत्। अग्निमीडेति मन्त्रेण पूर्वेणैव प्रजापतिम्॥३४॥
इषेत्वोर्जेति मन्त्रेण दक्षिणे स्थापयेद् यमम्। मध्ये मण्डलकं कृत्वा स्थाप्यो दर्भमयो नरः॥३५॥

गच्छ" इत्यादि मन्त्र से, छठे श्राद्ध में "अग्निर्ज्योतिः" इत्यादि मन्त्र से, सातवें श्राद्ध में "हिरण्यगर्भः" इत्यादि मन्त्र से, आठवें श्राद्ध में "यमाय त्वा" इत्यादि मन्त्र से, नौवें श्राद्ध में "यज्जाग्रतः" इत्यादि मन्त्र से, दसवें श्राद्ध में "याः फलिनी" इत्यादि मन्त्र से और ग्यारहवें श्राद्ध में "भद्रङ् कर्णेभिः" इत्यादि मन्त्र से अर्घ निवेदित करे; पिण्डविसर्जन करे। इस प्रकार ग्यारह देवता वाले श्राद्ध को सम्पन्न करके दूसरे दिन अन्य श्राद्ध करे॥२८-३०॥ चार वेदों में विशारद, विद्या और शील दोनों गुणों से युक्त, कुल से भी उत्तम, अङ्गभङ्ग से रहित, अत्यन्त प्रशंसनीय अपने पाँच ब्राह्मणों को निमन्त्रित करे, वर्जनीय ब्राह्मणों को तो कभी भी निमन्त्रित न करे॥३१॥ विष्णु की प्रतिमा सोने की बनानी चाहिए, रुद्र की प्रतिमा तांबे की बनानी चाहिए, वैसे ही ब्रह्मा की प्रतिमा चाँदी की बनानी चाहिए, यम की प्रतिमा लोहे की हो॥३२॥ प्रेत की प्रतिमा सीसे की अथवा कुश की हो। "शन्नो देवीः" इत्यादि मन्त्र से पश्चिम दिशा में गोविन्द को रखे॥३३॥ "अग्न आयाहि" इत्यादि मन्त्र से उत्तर दिशा में रुद्र को रखे, "अग्निमीडे" इत्यादि मन्त्र से पूर्व दिशा में ब्रह्मा को रखे॥३४॥ "इषे त्त्वोर्ज्जे" इत्यादि मन्त्र से दक्षिण दिशा में यम को स्थापित करे। बीच में मण्डल बनाकर उस में कुश का मनुष्य (प्रेत) रखा जाना चाहिए॥३५॥

ब्रह्मा विष्णुस् तथा रुद्रो यमः प्रेतश् च पञ्चमः। पृथक् कुम्भे ततः स्थाप्याः पञ्चरत्नसमन्विताः॥३६॥
वस्त्रयज्ञोपवीतानि पृथङ् मुद्रायुतानि च। जपं कुर्यात् पृथक् तत्र ब्रह्मादौ देवतासु च॥३७॥
पञ्च श्राद्धानि कुर्वीत देवतानां यथाविधि। जलधारां ततो दद्यात् पिण्डेपिण्डे पृथक्पृथक्॥३८॥
शङ्खे वा ताम्रपात्रे वा अलाभे मृन्मयेऽपि वा। तिलोदकं समादाय सर्वौषधिसमन्वितम्॥३९॥
आसनोपानहौ च्छत्रं मुद्रिका च कमण्डलुः। भाजनं भोज्यधान्यं च वस्त्राण्यष्टविधं पदम्॥४०॥
ताम्रपात्रं तिलैः पूर्णं सहिरण्यं सदक्षिणम्। दद्याद् ब्राह्मणमुख्याय विधियुक्तं खगेश्वर॥४१॥
ऋग्वेदपारगे दद्याज् जातसस्यां वसुन्धराम्। यजुर्वेदमये विप्रे गां च दद्यात् पयस्विनीम्॥४२॥
सामगाय शिवोद्देशात् प्रदद्यात् कलधौतकम्। यमोद्देशात् तिलाँल् लोहं ततो दद्याच्च दक्षिणाम्॥४३॥

वहाँ पाँच रत्नों (सोना, चांदी, मोती, राजावर्त [लाजवर्द], मूँगा) से युक्त ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, यम और पाँचवाँ प्रेत घटों में पृथक्-पृथक् रखे जाने चाहिए॥३६॥ वहाँ घटों में मुद्रिका से युक्त वस्त्र और यज्ञोपवीत भी पृथक् पृथक् रखने चाहिए। वहाँ ब्रह्मादि देवताओं में पृथक् पृथक् मन्त्रजप करे॥३७॥ शास्त्र में बताए गए विधि से देवताओं के पाँच श्राद्ध करे। शङ्ख में अथवा तांवे के वर्तन में अथवा उन के अभाव में मिट्टी के वर्तन में भी सर्वौषधिगण (मुरा [कृष्णजटामांसी], जटामांसी, वचा, कुष्ठ, शैलेय, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, शटी, चम्पक, गुस्ता) से युक्त तिलमिश्रित जल को लेकर पिण्ड-पिण्ड में अलग-अलग जलधारा दे (द्रष्टव्य– जीवानन्दसंस्करण ३०।३८)॥३८-३९॥ हे पक्षियों के मालिक, आसन, जूता, छाता, अँगूठी, कमण्डलु, वर्तन, भोज्यधान्य और वस्त्र इन आठ प्रकार के वस्तुओं का पद और तिलों से पूर्ण सुवर्णखण्ड से युक्त तथा दक्षिणा से सहित एक तांवें का पात्र भी ब्राह्मणों में मुख्य व्यक्ति को विधिपूर्वक दे॥४०-४१॥ ऋग्वेद में पारङ्गत ब्राह्मण को हरीभरी फसल से युक्त भूमि दे, यजुर्वेदपूर्ण ब्राह्मण को दूध देने वाली गाय दे॥४२॥ सामवेदी ब्राह्मण को रुद्र के उद्देश से सुवर्णदान दे। यम के उद्देश से तिल और लोहा का दान दे और दक्षिणा भी दे॥४३॥

पश्चात् पुत्तलकं कार्यं सर्वौषधिसमन्वितम्। पलाशस्य च वृन्तानां विभागं शृणु काश्यप॥४४॥
कृष्णाजिनं समास्तीर्य कुशैश्च पुरुषाकृतिम्। शतत्रयेण षष्ट्या च वृन्तैः प्रोक्तोऽस्थिसञ्चयः॥४५॥
विन्यस्य तानि वृन्तानि अङ्गेष्वेषु पृथक्पृथक्। चत्वारिंशच् छिरोदेशे ग्रीवायां दश विन्यसेत्।४६।
विंशत्युरःस्थले दद्याद् विंशतिं जठरेऽपि च। बाहुयुग्मे शतं दद्यात् कटिदेशे च विंशतिम्॥४७॥
ऊरुद्वये शतं चाऽपि त्रिंशज् जङ्घाद्वये न्यसेत्। दद्याच् चतुष्टयं शिश्ने षड् दद्याद् वृषणद्वये।
दश पादाङ्गुलीभागे एवमस्थीनि विन्यसेत्॥४८॥
नारिकेलं शिरःस्थाने तुम्बं दद्याच् च तालुके। पञ्चरत्नं मुखे दद्याज् जिह्वायां कदलीफलम्॥४९॥
अन्त्रेषु नालकं दद्याद् बालकं घ्राण एव च। वसायां मृत्तिकां दद्याद् गोमूत्रं मूत्रके तथा॥५०॥

इतने कर्मों के बाद में सर्वौषधियों से युक्त पुत्तलक (कुश का मनुष्य) बनाना चाहिए। हे कश्यपपुत्र, उस पुत्तलक में रखेजाने वाले पलाश के पत्रवृन्तों के विभाग को सुनो॥४४॥ कृष्णसार मृग के चर्म को बिछाकर उस में कुशों से मनुष्य की आकृति बनाए। उस में तीन सौ साठ पलाशपत्रवृन्तों से हड्डियों का समूह बनाने का कृत्य बताया गया है॥४५॥ उन पलाशपत्रवृन्तों को इन अङ्गों में पृथक् पृथक् रखकर हड्डियों का समूह बनाए, शिर के भाग में चालीस वृन्त और ग्रीवाभाग में दश वृन्त रखे॥४६॥ छाती में बीस वृन्त दे, पेट में भी बीस ही वृन्त दे। दोनों बाहुओं में सौ वृन्त दे और कटिदेश में बीस वृन्त दे॥४७॥ दो ऊरुओं में सौ वृन्त और दो जङ्घाओं में तीस वृन्त रखे। मेढ़ के स्थान में चार वृन्त दे और अण्डकोष के स्थान में छः वृन्त दे। पैर की अङ्गुलियों के भागों में दश वृन्त रखे, इस प्रकार पुत्तलक में पलाशवृन्तरूपी हड्डियाँ रखे॥४८॥ उस पुत्तलक के शिर के भाग में नारियल दे, तालु के स्थान में तुम्बा दे, मुख के स्थान में पञ्चरत्न दे, जीभ के स्थान में केले का फल दे॥४९॥ अँतडियों के स्थान में कमलनाल दे, घ्राणेन्द्रिय के स्थान में सुगन्धबाल दे, वसा के स्थान में मिट्टी दे, मूत्र के स्थान में गोमूत्र दे॥५०॥

गन्धकं धातवे देयं हरितालं मनःशिला। रेतःस्थाने पारदं च पुरीषे पित्तलं तथा॥५१॥
मनःशिलां तथा गात्रे तिलकल्कं च सन्धिषु। यवपिष्टं तथा मांसे मधु वै शोणिते च हि॥५२॥
केशेषु वै वटजटास् त्वचि दद्यान् मृगत्वचम्। कर्णयोस् तालपत्रं च स्तनयोश् चैव गुञ्जिकाः॥५३॥
नासायां शतपत्रं च कमलं नाभिमण्डले। वृन्ताकं वृषणद्वन्द्वे लिङ्गे स्याद् गृञ्जनं शुभम्॥५४॥
घृतं नाभ्यां प्रदेयं स्यात् कौपीने च त्रपु स्मृतम्। मौक्तिकं स्तनयोर् मूर्ध्नि कुङ्कुमेन विलेपनम्॥५५॥
कर्पूराऽगुरुधूपैश् च शुभैर् माल्यैः सुगन्धिभिः। परिधानं पट्टसूत्रं हृदये रुक्मकं न्यसेत्॥५६॥
ऋद्धिवृद्धी भुजौ द्वौ च चक्षुषोश् च कपर्दकौ। सिन्दूरं नेत्रकोणे च ताम्बूलाद्युपहारकैः॥५७॥

धातुओं के स्थान में गन्धक, हरिताल और मैनसिल दे; वीर्य के स्थान में पारद दे, पुरीष (विष्ठा) के स्थान में पित्तल दे॥५१॥ शरीर में (मध्यकाय में) मैनसिल दे, सन्धिस्थलों में तिल की पीठी दे, मांस के स्थान में जौ का आँटा दे, लहू के स्थान में मधु (शहद) दे॥५२॥ केशों के स्थान में बरगद की बरोह दे, त्वचा के स्थान में मृगचर्म दे, कानों के स्थान में तालपत्र दे, स्तनों के स्थान में रत्तियाँ (घुमचिया) दे॥५३॥ नाक में कमलपुष्प दे, नाभिमण्डल के स्थान में कमल दे, अण्डकोशों के युगल के स्थान में बैगन दे, लिङ्ग के स्थान में अच्छा गाजर दे॥५४॥ नाभि के स्थान में घी देना चाहिए, गुह्य अङ्ग के स्थान में त्रपु (राँगा) देने योग्य समझा गया है, स्तनों में मोती दे, शिर में कुङ्कुम से लेपन करे॥५५॥ कपूर, अगरु और धूपों से और सुगन्धि मालाओं से पुत्तलक को सुगन्धित करे। पट्टसूत्र का परिधान दे, हृदय के देश में परिमण्डल (गोल) सुवर्णपत्र रखे॥५६॥ भुजाओं के स्थल में ऋद्धि और वृद्धि नाम की ओषधियाँ रखे, आँखों के स्थल में दो कौडियाँ रखे, नेत्र के कोणों के स्थल में सिन्दूर दे, पुत्तलक को पान इत्यादि उपहारों से भी युक्त करे॥५७॥

सर्वौषधियुतं प्रेतं कृत्वा पूजा यथोदिता। साग्निके चापि विधिना यज्ञपात्रं न्यसेत् क्रमात्॥५८॥
शिरो मे श्रीरिति ऋचा पुनन्तु वरुणेति च। प्रेतस्य पावनं कृत्वा शालग्रामशिलोदकैः॥५९॥
विष्णुमुद्दिश्य दातव्या सुशीला गौः पयस्विनी॥६०॥
तिला लोहं हिरण्यं च कार्पासं लवणं तथा। सप्तधान्यं क्षितिर् गाव एकैकं पावनं स्मृतम्॥६१॥
तिलपात्रं ततो दत्त्वा पददानं तथैव च। महादानानि देयानि तिलपात्रं तथेति च।
ततो वैतरणी देया सर्वाभरणभूषिता॥६२॥
कर्तव्यं वैष्णवं श्राद्धं प्रेतमुक्त्यर्थमात्मवान्। प्रेतमोक्षं ततः कुर्याद् हृदि विष्णुं प्रकल्प्य च॥६३॥
ओं विष्णुरिति संस्मृत्य प्रेतं तन्मृत्युमेव च। अग्निदाहं ततः कुर्यात् सूतकं तु दिनत्रयम्॥६४॥

इस प्रकार के प्रेत के पुत्तलक को सर्वौषधियों सें युक्त बनाकर शास्त्र में जैसी पूजा बताई गई है वैसी ही पूजा करनी चाहिए। यदि प्रेत अग्निमान् था तो उस के पुत्तलक के अङ्गों में श्रौतसूत्र-पितृमेधसूत्रादि-विधि में बताए गए क्रम से यज्ञपात्रों को रखे॥५८॥ शालग्रामशिला धोने के जल से **"शिरो मे श्श्रीः"** (मा.वा.शु.य.वे.म.सं. २०।५) इत्यादि मन्त्र से, **"पुनन्तु"** (मा.वा.शु.य.वे.म.सं. १९।३९) इत्यादि मन्त्र से और **"बरुणः"** (मा.वा.शु.य.वे.म.सं. ३३।४६) इत्यादि मन्त्र से भी प्रेत के पुत्तलक की शुद्धि करके विष्णु के उद्देश से दूध देने वाली एक सुशील गाय दान में ब्राह्मण को देनी चाहिए॥५९-६०॥ तिल, लोहा, सोना, कार्पास (रुई), नमक, सप्तधान्य, भूमि, गाय इन में से एक एक का दान भी शुद्ध करने वाला समझा गया है॥६१॥ उस के बाद तिलपात्र और पददान देकर महादान देने चाहिए, उसी प्रकार तिलपात्र भी देना चाहिए। उस के बाद सभी आभरणों से भूषित वैतरणी गाय देनी चाहिए॥६२॥ तब प्रेत की प्रेतभाव से मुक्ति के लिए वैष्णव श्राद्ध करना चाहिए, तब अन्तःकरणसंयम से युक्त मनुष्य हृदय में विष्णु की कल्पना करके प्रेत का मोक्ष करे॥६३॥ ओं विष्णुः इस प्रकार उच्चारण करके प्रेत का और उस के मरण का भी स्मरण करके उस पुत्तलकरूप प्रेत का अग्नि से दाह करे, और तीन दिनों तक सपिण्ड लोग आशौच रक्खें॥६४॥

दशाहकर्त्रा पिण्डाश्च कर्तव्याः प्रेतमुक्तये। सर्वं वर्षविधिं कुर्यादेवं प्रेतश्च मुक्तिभाक्॥६५॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे-
ऽपमृत्यौ सुखदुःखलाभाऽलाभनिरूपणं नाम चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥

अथ एकचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीविष्णुरुवाच

वृषोत्सर्गं प्रकुर्वीत विधिपूर्वं खगेश्वर। कार्तिकादिषु मासेषु पौर्णमास्यां शुभे दिने॥१॥
विवाहोत्सर्जनं श्राद्धं नान्दीमुखमुपक्रमेत्। कुर्याद् भुवश् च संस्कारानग्निस्थापनमेव च॥२॥

दश दिन तक प्रेतकृत्य करने वाले से प्रेत की प्रेतभाव से मुक्ति के लिए पिण्ड भी दिए जाने चाहिए। तब वर्षपर्यन्त शास्त्रविहित सभी विधान को सम्पन्न करे। ऐसा करने से प्रेत भी प्रेतभाव से मुक्तिभागी होता है॥६५॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरख़ण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में दुर्मरण होने पर
सुख-दुःखों के लाभ और अलाभ का निरूपण करने वाला चालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥४०॥

श्रीविष्णु ने कहा— हे पक्षियों के मालिक, कार्तिकादि महीनों में पूर्णिमा तिथि में शुभ दिन में गृह्यसूत्रादि शास्त्र में बताए गए विधि से वृषोत्सर्गकृत्य करे॥१॥ वृष का वत्सतरियों से विवाह औ उत्सर्जन के अङ्ग के रूप में किए जाने वाले नान्दीमुखश्राद्ध से उस वृषोत्सर्गकृत्य का प्रारम्भ

वाप्यां कूपे गवां गोष्ठे स्थाप्याऽग्निं विधिवत् ततः। विवाहविधिना सर्वं कुर्याद् ब्राह्मणवाचनम्॥३॥
पात्रासादनं श्रपणमुपयमनकुशादिकम्। पर्युक्षणान्ते होमं च कुर्याद् वै ब्राह्मणेन तु॥४॥
आघारावाज्यभागौ च चक्षुषी च प्रदापयेत्। प्रथमेहरतिमन्त्रेण होतव्याश् च षडाहुतीः॥५॥
आघारावाज्यभागौ तु पायसेनाऽङ्गदेवताः। अग्नये रुद्राय शर्वाय पशुपतये उग्राय शिवाय।
भवाय महादेवाय ईशानाय यमाय च॥६॥
पिष्टकेन सकृद् धोमं पूषा गा इति मन्त्रतः। उभयोः स्विष्टिकृद्धोमश् चरुणा पायसेन च॥७॥
प्रथमं व्याहृतिहोमः प्रायश्चित्तं प्रजापतिः। संस्रवप्राशनं कुर्यात् प्रणीतापरिमोक्षणम्॥८॥

करे। भूमि के (पाँच) संस्कारों को सम्पन्न करे, अग्नि का स्थापन भी करे॥२॥ बाबली के तट में अथवा इनारे के समीप में अथवा गायों के गोठ में अपने गृह्यसूत्रादिरूप शास्त्र में बताए गए विधि से अग्नि को स्थापित करके उस के बाद सभी कृत्य वृषविवाह (वृषोत्सर्ग) के विधि से करे, ब्राह्मणवाचन (पुण्याहवाचन) भी करे॥३॥ पात्रासादन, पायसचरु-पिष्टचरुपाचन, उपयमनकुशग्रहण इत्यादि करके अग्नि के पर्युक्षण के अन्त में ब्राह्मण द्वारा हवन करे॥४॥ दो आघारों का दो आज्यभागों का यज्ञ के चक्षु के रूप में अग्नि में प्रदान करे। उस के बाद पहली आहुति **"इह रतिः"** (मा.वा.शु.य.वे.म.सं. ८।५१), पारस्करगृह्यसूत्र ३।९।४) इत्यादि मन्त्र से देनी चाहिए, और (अन्य पाँच मन्त्रों से पाँच आज्याहुति देकर) कूल छः आज्याहुतियाँ देनी चाहिए॥५॥ आघारादि होम आज्यभागी (आज्य से [केवल घी से] किए जाने वाले) हैं, अग्निप्रभृति अङ्गदेवताएँ तो पायस से यष्टव्य हैं। अग्नि, रुद्र, शर्व, पशुपति, उग्र, शिव, भव, महादेव, ईशान, यम इन को पायस से आहुति दे (द्रष्टव्य- पारस्करगृह्यसूत्र ३।९।२, ३।८।१५, ३।८।६)॥६॥ **"पूषा गाः"** इत्यादि मन्त्र से (पारस्करगृह्यसूत्र ३।९।५) एक वार पौष्णपिष्टकचरु का हवन करे। पिष्टकचरु से और पायस से लेकर दोनों को मिलाकर स्विष्टकृद्-होम होता है॥७॥ उस के बाद उत्तराङ्ग होम में पहले महाव्याहृतिहोम, प्रायश्चित्ताख्य आहुतियों का होम और प्रजापति की आहुति का होम होता है। तब जो आहुतियों का अवशेष एक पात्र में संस्रुत करके एकत्रित किया गया होता है उस का यजमान प्राशन करे, तब प्रणीतामोक्षण करे॥८॥

पवित्रप्रतिपत्तिश्च ब्रह्मणे दक्षिणा ततः। षडङ्गरुद्रजाप्येन प्रेतो मोक्षमवाप्नुयात्॥९॥
एकवर्णं वृषं चैव सकृद् वत्सतरीं खग। स्नापयित्वा ततः कुर्यात् सर्वालङ्कारभूषितम्॥१०॥
प्रतिष्ठाप्य च तद्युग्मं प्रेतो मोक्षमवाप्नुयात्। पुच्छे च तर्पणं कार्यमुच्छ्रिते मन्त्रपूर्वकम्।
ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चाद् दक्षिणाभिश् च तोषयेत्॥११॥
ततः श्राद्धं समुद्दिष्टमेकोद्दिष्टं यथाविधि। जलमन्नं तथा देयं प्रेतोद्धरणहेतवे॥१२॥
द्वादशाहे ततः कुर्यान् मासेमासे पृथक्पृथक्। एवं विधिः समायुक्तः प्रेतमोक्षं करोति हि॥१३॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे वृषोत्सर्गनिरूपणं नामैकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥

तब पवित्रप्रतिपत्ति होती है और ब्रह्मा को दक्षिणा दी जाती है। छः अङ्गों से युक्त रुद्राध्याय के जप से प्रेत प्रेतभाव से मुक्ति पाएगा॥९॥ एक रङ्ग के वृष (बैल) को और बछिया को भी एक साथ नहलाकर उस जोडे को सभी अलङ्कारों से भूषित करे॥१०॥ उस जोडे का प्रतिष्ठापन (उत्सर्जन) करने से प्रेत प्रेतभाव से मुक्ति पाएगा। वृष के पूँछ को उठाकर (हाथ में लेकर उस पूँछ में छोडे गए जल से) मन्त्रोच्चारणपूर्वक तर्पण करना चाहिए। उस के बाद ब्राह्मणों को भोजन कराए और दक्षिणाओं से उन को सन्तुष्ट करे॥११। उस के बाद शास्त्रोक्त विधि से एकोद्दिष्टश्राद्ध करने का विधान है। प्रेत के उद्धार के हेतु जल और अन्न देना चाहिए॥१२॥ उस के बाद बारहवें दिन में एकोद्दिष्टश्राद्ध करे और महीने महीने में अलग अलग एकोद्दिष्टश्राद्ध करे। इस प्रकार से समायोजित विधान प्रेत को प्रेतभाव से मोक्ष देता ही है॥१३॥

श्रीगरुडपुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में वृषोत्सर्गकृत्य का निरूपण करने वाला एकतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥४१॥

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीविष्णुरुवाच

यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्। तथा पूर्वकृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति॥१॥
आदित्यो वरुणो विष्णुर् ब्रह्मा सोमो हुताशनः। शूलपाणिश्च भगवानभिनन्दति भूमिदम्॥२॥
नास्ति भूमिसमं दानं नास्ति भूमिसमो निधिः। नास्ति सत्यसमो धर्मो नाऽनृतात् पातकं परम्॥३॥
अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णं भूर् वैष्णवी सूर्यसुताश् च गावः।
लोकत्रयं तेन भवेत् प्रदत्तं यः काञ्चनं गां च महीं च दद्यात्॥४॥
त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती। नरकादुद्धरन्त्येते जपपूजनहोमतः॥५॥
कृत्वा बहूनि पापानि रौद्राणि विपुलानि च। अपि गोचर्ममात्रेण भूमिदानेन शुध्यति॥६॥

श्रीविष्णु ने कहा— जैसे हजारों गायों में कहीं छिपी हुई माँ को भी बछडा ढूंढ लेता है वैसे ही पूर्वजन्म में किया गया कर्म कर्ता को कहीं भी जाए उस के पीछे पीछे चलता ही है॥१॥ भूमि का दान करने वाले मनुष्य का सूर्य, वरुण, विष्णु, ब्रह्मा, चन्द्रमा, अग्नि और भगवान् महादेव भी अभिनन्दन करते हैं॥२॥ भूमिदान के समान दान नहीं है, भूमितुल्य भण्डारगृह (खजाना) नहीं है, सत्य के समान धर्म और नहीं है, भूठ के समान पातक दूसरा नहीं है॥३॥ सुवर्ण अग्नि का प्रंथम सन्तान है, भूमि विष्णु की है, गाय सूर्य की पुत्त्रियाँ हैं। जो मनुष्य सुवर्ण, गाय और भूमि का दान करता है उस से तीनों लोकों का दान दिया गया होता है॥४॥ गाय, भूमि और विद्या इन तीन चीजों के दान को अतिदान (बडा दान) कहते हैं। ये दान जप, पूजा और होम से युक्त होने पर प्राणी का नरक से उद्धार करते हैं॥५॥ भयङ्कर और बडे बडे बहुत से पाप करने पर भी मनुष्य गोचर्ममात्र भूमि के दान से शुद्ध (पापमुक्त) होता है (गोचर्म भूमि की

हरन्तमपि लोभेन निरुध्यैनं निवारयेत्। स याति नरके घोरे यस् तं न परिरक्षति॥७॥
अकर्तव्यं न कर्तव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि। कर्तव्यमेव कर्तव्यमिति धर्मविदो विदुः॥८॥
आकरप्रवर्तने पापं गोसहस्रवधैस् समम्। वृत्तिच्छेदे तथा वृत्तेः करणं लक्षधेनुकम्॥९॥
वरमेकाऽनपहृता न तु दत्तं गवां शतम्। एकां हृत्वा शतं दत्त्वा न तेन समता भवेत्॥१०॥
स्वयमेव तु यो दत्त्वा स्वयमेव प्रबाधते। स पापी नरकं याति यावदाभूतसम्प्लवम्॥११॥
न चाऽश्वमेधेन तथा विधिवद्दक्षिणावता। अवृत्तिकर्शिते दीने ब्राह्मणे रक्षिते यथा॥१२॥

परिभाषा पराशरस्मृति में है १२।४३)॥६॥ लोभ से दूसरे की भूमि को अपहरण करते हुए मनुष्य को जबरन रोक करके उस को भूमिहरण से निवृत्त करे, जो मनुष्य समर्थ होने पर उस को नहीं रोकता है वह भयङ्कर नरक में जाता है॥७॥ धर्मतत्त्व जानने वाले ऐसा समझ रखते हैं कि प्राण गले से बाहर निकल जाने की ही अवस्था आने पर भी शास्त्रनिषिद्ध कर्म नहीं करना चाहिए, शास्त्र में विहित कर्म ही करना चाहिए॥८॥ सोना, लोहा इत्यादि का खान चालू करने में जो पाप होता है वह हजार गायों को मारने के पाप से तुल्य होता है, किसी की वृत्ति (आजीविका) को छीनने में भी उतना ही पाप होता है, किसी की वृत्ति (आजीविका) की व्यवस्था कर देने का पुण्य लाखों दुधारू गायों के दान के पुण्य से तुल्य होता है॥९॥ दूसरे की गाय का अपहरण किए विना (द्रष्टव्य– बङ्गवासिसंस्करण ४०।१०) अपनी ही एक ही गाय का दान करना अच्छा है, दूसरे की एक गाय का भी हरण करके सौ गायों का दान करना अच्छा नहीं, सौ गायों के दान से भी एक गाय के हरण का पाप नहीं मिटाया जा सकता है, सौ गायों के दान के पुण्य से भी एक गाय के हरण के पाप की समता नहीं होती है, पाप ही अधिक होता हैं॥१०॥ जो मनुष्य स्वयम् दान देकर स्वयम् ही उस दत्त वस्तु के भोग में दानपात्र को बाधा पहुँचाता है वह पापी प्रलय काल तक निवास करने के लिए नरक में जाता है॥११॥ वृत्ति (आजीविकासाधन) के अभाव से क्षीण हुए ब्राह्मण की रक्षा से जैसा पुण्य होता है वैसा पुण्य वेदशास्त्र के विधान के अनुसार दी गई दक्षिणा से युक्त अश्वमेध यज्ञ करने से भी नहीं होता है॥१२॥

न तद् भवति वेदेषु यज्ञे सुबहुदक्षिणे। यत् पुण्यं दुर्बले त्रस्ते ब्राह्मणे परिरक्षिते॥१३॥
ब्रह्मस्वैश्च सुपुष्टानि वाहनानि बलानि च। युद्धकाले विशीर्यन्ते सैकताः सेतवो यथा॥१४॥
स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेच् च वसुन्धराम्। षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः॥१५॥
ब्रह्मस्वं प्रणयाद् भुक्तं दहत्यासप्तमं कुलम्। तदेव चौर्यरूपेण दहत्याचन्द्रतारकम्॥१६॥
लोहचूर्णाऽश्मचूर्णानि कदाचिज् जरयेत् पुमान्। ब्रह्मस्वं त्रिषु लोकेषु कः पुमाञ् जरयिष्यति॥१७॥
देवद्रव्यविनाशेन ब्रह्मस्वहरणेन च। कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणाऽतिक्रमेण च॥१८॥
ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विप्रे विद्याविवर्जिते। ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते॥१९॥

जो पुण्य दुर्बल और भयभीत ब्राह्मण की सभी ओर से रक्षा करने से होता है वह पुण्य दी गई अत्यन्त बहुत दक्षिणा से युक्त वेदों में बताए गए यज्ञ करने पर भी नहीं होता है॥१३॥ ब्राह्मण के धन से बहुत पोसे गए घोडे हाथी इत्यादि वाहन और सैनिक जो हैं वे युद्ध का समय आने पर बालू के बाँध की तरह बिखर जाते हैं॥१४॥ अपने से दी गई अथवा दूसरे से दी गई (ब्राह्मण की) भूमि का जो हरण करेगा, वह साठ हजार वर्षों तक विष्ठा में कीडे का जन्म लेता रहेगा॥१५॥ प्रेम से ही प्राप्त करके खाया गया ब्राह्मण का धन सातवीं पींढी तक कुल को जलाता है, डकैती चोरी से प्राप्त करके उपभोग किया गया ब्राह्मण का धन जहाँ तक आकाश में चन्द्रमा और ताराएँ रहती हैं तब तक कुल को जलाता रहता है॥१६॥ पुरुष कदाचित् लोहे के चूर्ण को और पत्थर के चूर्ण को भी खाकर पचा सकेगा, किन्तु तीनों लोकों में वर्तमान पुरुषों में से कोई भी पुरुष ब्राह्मण के धन को खाकर पचा सकेगा क्या?॥१७॥ देवता के द्रव्य का नाश करने से, ब्राह्मण के धन का हरण करने से और सन्निहित ब्राह्मण को छोडकर दूर के ब्राह्मण का सत्कार करने से उत्तम कुल भी दुष्कुल हो जाते हैं॥१८॥ विद्या से रहित ब्राह्मण के विषय में ब्राह्मण के अतिक्रमण का दोष नहीं होता है, जलते हुए अग्नि को छोडकर राख में तो हवन नहीं किया जाता है॥१९॥

सङ्क्रान्तौ यानि दानानि हव्यकव्यानि यानि च। सप्तकल्पक्षयं यावद् ददात्यर्कः पुनःपुनः॥२०॥

प्रतिग्रहाऽध्यापनयाजनेषु प्रतिग्रहं स्वेष्टतमं वदन्ति।
प्रतिग्रहाच् छुध्यति जाप्यहोमैर् न याजनं कर्म पुनन्ति वेदाः।२१।

सदा जापी सदा होमी परपाकविवर्जितः। रत्नपूर्णामपि महीं प्रतिगृह्णन् न लिप्यते॥२२॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे
भूदानादिनिरूपणं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥

सूर्य के सङ्क्रमण होने के पुण्यकाल में जो दान दिए जाते हैं, जो देवकार्य और पितृकार्य किए जाते हैं, सूर्य उन का फल सात कल्प तक वारंवार देते रहते हैं॥२०॥ वृत्ति के लिए प्रतिग्रह लेना, अध्यापन करना और वैदिक यज्ञ कराना इन कामों में से मुनि लोग प्रतिग्रह लेने के काम को लेने वाले के लिए अभीष्टतम बताते हैं; क्योंकि प्रतिग्रह से जो दोष उत्पन्न होता है उस से वेदपाठ, होम इत्यादि द्वारा प्रतिग्रह लेने वाला शुद्ध हो जाता है, जिस किसी का याजन करने वाले को तो वेद भी शुद्ध नहीं कर सकते हैं॥२१॥ सदा वेदपाठ करने वाला, सदा होम (देवयज्ञ) करने वाला और स्वाऽसम्बद्ध दूसरे के वैश्वदेवपाक से भोजन न करने वाला (अपने से ही किए गए वैश्वदेव कर्म से संस्कृत पाक का ही भोजन करने वाला) ब्राह्मण रत्नों से भरी हुई सम्पूर्ण पृथिवी का प्रतिग्रह करता हुआ भी प्रतिग्रहदोष से लिप्त नहीं होता है॥२२॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में
भूमिदानादि का निरूपण करने वाला बयालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥४२॥

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीविष्णुरुवाच

जलाग्निबन्धनभ्रष्टा प्रव्रज्याऽनाशकच्युताः। ऐन्दवाभ्यां विशुध्यन्ति दत्त्वा धेनुं तथा वृषम्॥१॥
ऊनद्वादशवर्षस्य चतुर्वर्षाधिकस्य च। प्रायश्चित्तं चरेन् माता पिता वाऽन्योऽपि बान्धवः॥२॥
अतो बालतरस्याऽपि नाऽपराधो न पातकम्। राजदण्डो न तस्याऽस्ति प्रायश्चित्तं न विद्यते॥३॥
रक्तस्य दर्शने जाते आतुरा स्त्री भवेद् यदि। चतुर्थे हविषं स्पृष्ट्वा त्यक्त्वा वस्त्रं विशुध्यति॥४॥

श्रीविष्णु ने कहा— मरने के लिए जल में कूँदने पर अथवा अग्नि में कूँदने पर अथवा फाँसी लगाने पर विभिन्न कारणों से जो मरने से बचे हैं वे, सन्न्यास लेकर सन्न्यासधर्म से विमुख होकर गृह-स्त्री-धनादि में फंसने वाले और आमरण अनशनव्रत लेने पर भी बुद्धिपरिवर्तन से फिर खान-पान करके जीने वाले लोग दो चान्द्रायणकृच्छ्र करके एक दुधार गाय और एक वृष (बैल) का दान करके शुद्ध होते हैं॥१॥ बारह वर्ष से न्यून और चार वर्ष से अधिक अवस्था वाले मनुष्य को प्रायश्चित्तयोग्य पाप हो जाने पर उन के लिए माँ अथवा बाप अथवा अन्य कोई बान्धव प्रायश्चित्त करे॥२॥ चार वर्ष से न्यून अवस्था के मनुष्य का कोई अपराध नहीं होता है, पातक भी नहीं होता है, उस को राजदण्ड का विधान भी नहीं है, प्रायश्चित्त का विधान भी नहीं है॥३॥ रजोदर्शन होने की अवस्था में यदि स्त्री ज्वरादि रोग से आक्रान्त होती है तो चौथे दिन में वस्त्रों को छोडकर घी का स्पर्श करके शुद्ध होती है (द्रष्टव्य— जीवानन्दसंस्करण ३२।४)॥४॥ रोगग्रस्त व्यक्ति के लिए कोई स्नान का निमित्त उत्पन्न होने पर कोई

आतुरे स्नान उत्पन्ने दशकृत्वो ह्यनातुरः। स्नात्वास्नात्वा स्पृशेदेनं ततः शुध्येत् स आतुरः॥५॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे शुद्धिनिरूपणं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीविष्णुरुवाच

स्वेच्छया तार्क्ष्य मरणं शृङ्गिदंष्ट्रिसरीसृपैः। चाण्डालाद्यात्मघातैश्च विषाद्यैस् ताडनैस् तथा॥१॥
जलाग्निपातवातैश् च निराहारादिभिस् तथा। येषामेवं भवेन् मृत्युः प्रोक्तास् ते पापकर्मिणः॥२॥

स्वस्थ पुरुष स्नान करके उस आतुर को छोवे, फिर स्नान करके फिर छोवे, ऐसा दश वार करे तो वह आतुर मनुष्य शुद्ध हो जाता है॥५॥

श्रीगरुडपुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में शुद्धि का निरूपण करने वाला तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥४३॥

श्रीविष्णु ने कहा— हे गरुड, जिस का अपनी इच्छा से किए गए सींग वाले पशु से युद्धादिरूप के सम्पर्क, दाढों वाले प्राणियों से युद्धादि सम्पर्क, सर्पादि रेंगने वाले जन्तु से खेल, चाण्डालादि से कलह, आत्महत्या, विषपानादि, ताडन, जल में कूँदना, अग्नि में कूँदना, ऊँचे स्थल वृक्ष इत्यादि से पतन, प्रचण्ड वायु में खतरनाक स्थल में रहना, क्रोधादिकृत निराहार इत्यादि से मरण होता है, वे पापकर्मी कहे गए हैं॥१-२॥

पाषण्ड्यनाश्रमाश् चैव महापातकिनस्तथा। स्त्रियश् च व्यभिचारिण्य आरूढपतितास् तथा॥३॥
न तेषां स्यान् नवश्राद्धं न संस्कारः सपिण्डनम्। श्राद्धानि षोडशोक्तानि न भवन्ति च तान्यपि॥४॥
वैतानं यत् क्षिपेदप्सु गृह्याग्निं च चतुष्पथे। पात्राणि निर्दहेदग्नौ साग्निके पापकर्मणि॥५॥
पूर्णे संवत्सरे तेषामित्थं कार्यं दयालुभिः। एकादशीं समासाद्य शुक्लपक्षे च काश्यप॥६॥
विष्णुं यमं च सम्पूज्य गन्धपुष्पाक्षतादिभिः। दश पिण्डान् घृताक्तांश्च दर्भेषु मधुसंयुतान्॥७॥
यज्ञोपवीती सतिलान् ध्यायन् विष्णुं यमं तथा। दक्षिणाभिमुखस् तूष्णीमेकैकं निवपेत् तु तान्॥८॥
उदधृत्य मिश्रितान् पश्चात् तीर्थेऽम्भःसु विनिःक्षिपेत्। क्षिपन् सङ्कीर्तयेन् नाम गोत्रं च मृतकस्य च।९।

जो पाखण्डी (वेदबाह्यधर्म लेनेवाले), ब्रह्मचर्याश्रमादि आश्रमों में से किसी आश्रम में भी न रहने वाले, ब्रह्महत्यादि महापाप करने वाले, अपने वैध पति से भिन्न पुरुष से सहवासादि करने वाली स्त्रियां, ब्रह्मचर्याश्रम गृहस्थाश्रम वानप्रस्थाश्रम सन्यासाश्रम इन आश्रमों में से अगले आश्रम में जाकर फिर पहले आश्रम में लौटने वाले मनुष्य हैं उन का नवश्राद्ध भी नहीं होगा, अग्निसंस्कार (दाहकर्म) भी नहीं होगा, सपिण्डीकरण भी नहीं होगा, जो पूर्वोक्त सोलह श्राद्ध हैं वे भी नहीं होंगे॥३-४॥ यदि श्रौत-गृह्य-अग्नि से युक्त पुरुष उपर्युक्त पापकर्मों में से किसी पापकर्म का करने वाला होता है तो उस की वैतानाग्नियों (श्रौताग्नियों) को जल में फेंक दे, गृह्याग्नि को चौराहे पर फेंक दे और उस के काठ के स्रुक्-स्रुवादि यज्ञपात्रों को अग्नि में जला दे॥५॥ उक्त प्रकार के पातकियों के प्रति दया करने वाले बन्धुओं को उन के मरण के एक वर्ष के बाद उन का इस प्रकार और्ध्वदेहिक कृत्य करना चाहिए— हे गरुड, शुक्लपक्ष की एकादशी को पकडकर उस तिथि में विष्णु की और यम की चन्दन, फूल, अक्षता इत्यादि से पूजा करके घी से मले हुए और मधु से युक्त तिल से सहित दश पिण्डों को निष्पन्न करके यज्ञोपवीती होकर दक्षिण दिशा की ओर मुख करके विष्णु का और यम का ध्यान करते हुए मौन धारण करके उन पिण्डों को एक एक करके कुशों में दे॥६-८॥ पीछे उन को उठाकर एकत्र करके तीर्थ में पानी में डाल दे। पिण्डों को जल में डालते हुए मृतक के

पुनरप्यर्चयेद् विष्णुं यमं कुसुमचन्दनैः। धूपदीपैः सनैवेद्यैर् भक्ष्यभोज्यसमन्वितैः॥१०॥
तस्मिन्ननुपवसेदह्नि विप्रांश् चैव निमन्त्रयेत्। कुलविद्यातपोयुक्तान् साधुशीलसमन्वितान्॥११॥
नव सप्ताऽथवा पञ्च स्वसामर्थ्यानुसारतः। अपरेऽहनि मध्याह्ने यमं विष्णुं तथार्चयेत्॥१२॥
उदङ्मुखांस् तथा विप्रांस् तान् सम्यगुपवेशयेत्। आवाहनार्घदानादौ विष्णुं यमसमन्वितम्॥१३॥
यज्ञोपवीती कुर्वीत प्रेतनाम प्रकीर्तयेत्। प्रेतं यमं च विष्णुं च स्मरन् श्राद्धं समापयेत्॥१४॥
अन्येभ्यश् चापि सर्वेभ्यः पिण्डदानार्थमुद्धरेत्। पृथग् वा दश पिण्डांश् च पञ्च दद्यात् क्रमेण तु।१५।
प्रथमं विष्णवे दद्याद् ब्रह्मणे च शिवाय च। सभृत्याय यमायाऽथ प्रेतायापि च पञ्चमम्॥१६॥
नाम गोत्रं स्मरेत् तस्य विष्णुशब्दं प्रकीर्तयेत्। नमस्कारशिरस्कं तु पञ्चमं पिण्डमुद्धरेत्॥१७॥
गोभूमिपिण्डदानाद्यैः शक्त्या प्रेतं स्मरंश् च तम्। तिलैस् तिलांस् तु विप्राणां दर्भयुक्तेषु पाणिषु॥१८॥

नाम और गोत्र का कीर्तन करे॥९॥ फिर नैवेद्य से युक्त तथा भक्ष्यों और भोज्यों से समन्वित फूल, चन्दन, धूप और दीप से विष्णु की और यम की पूजा करे॥१०॥ उन पिण्डों के प्रदान के दिन में उपवास करे और कुल, विद्या और तपस्या से युक्त तथा प्रशंसनीय शीलों से सहित नौ अथवा सात अथवा पाँच ब्राह्मणों को अपनी शक्ति के अनुसार निमन्त्रित करे। दूसरे दिन मध्याह्न समय में यम की और विष्णु की पूर्वोक्त प्रकार से पूजा करे॥११-१२॥ उक्त निमन्त्रित ब्राह्मणों को उत्तर की ओर मुख करके आसनों में अच्छी तरह बैठाए। आवाहन, अर्घदान इत्यादि में यज्ञोपवीती होकर यम से युक्त विष्णु का और प्रेत के नाम का भी उच्चारण करे। प्रेत का यम का और विष्णु का भी स्मरण करते हुए श्राद्ध समाप्त करे॥१३-१४॥ अन्य सभी के लिए भी पिण्डदान के लिए अन्न उद्धृत करे और दश वा पाँच पिण्ड क्रम से पृथक् दे॥१५॥ पहले विष्णु को दे, ब्रह्मा को और शिव को, तथा अनुचरों से सहित यम को भी दे, और पाँचवाँ पिण्ड प्रेत को भी दे॥१६॥ प्रेत के नाम और गोत्र का स्मरण करे, विष्णुशब्द का कीर्तन करे, नमस्कारपूर्वक पाँचवें पिण्ड का उद्धरण करे॥१७॥ अपनी शक्ति के अनुसार गोदान, भूमिदान और पिण्डदानादि से उस प्रेत का स्मरण करता हुआ तिल से सहित और कुश से युक्त ब्राह्मणों के

दद्यादन्नं द्विजानां च ताम्बूलं दक्षिणां तथा। एवं शिष्टतमं विप्रं हिरण्येन प्रपूजयेत्॥१९॥
नाम गोत्रं स्मरन् दद्याद् विष्णुः प्रीतोऽस्त्विति ब्रुवन्। अनुव्रज्य द्विजान् पश्चात् त्यक्ताम्भो दक्षिणामुखः॥
कीर्तयन् नामगोत्रे तु भुवि प्रीतोऽस्त्विति क्षिपेत्। मित्रबन्धुजनैः सार्धं शेषं भुञ्जीत वाग्यतः।
प्रतिसंवत्सरादि स्यादेकोद्दिष्टविधानतः॥२१॥
एवं कृते गमिष्यन्ति स्वर्लोकं पापकर्मिणः। सपिण्डीकरणादौ तु कृते चैवाऽऽप्नुवन्ति ते॥२२॥
अथ कश्चित् प्रमादेन म्रियते ह्युदकादिभिः। संस्कारप्रमुखं तस्य सर्वं कुर्याद् यथाविधि॥२३॥
प्रमादादिच्छया मर्त्यो न गच्छेत् सर्पसम्मुखः। पक्षयोरुभयोर् नागं पञ्चमीषु प्रपूजयेत्॥२४॥
कुर्यात् पिष्टमयीं लेखां नागानामाकृतिं भुवि। अर्चयेत् तां सितैः पुष्पैः सुगन्धैश् चन्दनेन च॥२५॥

हाथों में तिल दे। ब्राह्मणों को अन्न, पान और दक्षिणा भी दे। ब्राह्मणों में विद्या-शील-गुणों से सब से विशिष्ट ब्राह्मण को सुवर्णदान से पूजित करे॥१८-१९॥ दान देते समय नाम और गोत्र का स्मरण करता हुआ और 'विष्णु प्रसन्न हों' ऐसा बोलता हुआ दान दे। श्राद्ध में निमन्त्रित ब्राह्मणों का अनुगमन करके पीछे दक्षिण की ओर मुह करके नाम-गोत्र का कीर्तन करता हुआ त्यागे गए जल को 'प्रसन्न हो' ऐसा बोलकर भूमि में छोड दे। वागिन्द्रिय को नियन्त्रित करके मित्र और बन्धुजनों से युक्त होकर श्राद्धशेष का भोजन करे। प्रतिसंवत्सर श्राद्धादि एकोद्दिष्टविधान से होगा॥२०-२१॥ ऐसा करने पर मरे हुए पापकर्मी लोग स्वर्गलोक में जाएंगे। सपिण्डीकरणादि किए जाने पर ही वे स्वर्गादि प्राप्त करते हैं॥२२॥ यदि कोई भूल करने से जलादि से मर जाता है तो उस का प्रमुख क्रियाधिकारी शास्त्रोक्तविधि से सभी अग्निसंस्कारादि और्ध्वदेहिक कृत्य को सम्पन्न करे॥२३॥ भूल करके भी मनुष्य स्वेच्छा से सर्प के सम्मुख न जाय। अपनी इच्छा से सर्प के सम्मुख जाने से सर्पदंश से किसी की मृत्यु होने पर उस की सद्गति के लिए शुक्ल और कृष्ण दोनो पक्षों की पञ्चमियों में नाग की पूजा करे॥२४॥ भूमि में यवादिचूर्ण से नागों की आकृति की रेखा बनाए। उस की श्वेत पुष्प, अनेक सुगन्ध द्रव्य और चन्दन से पूजा करे॥२५॥

प्रदद्याद् धूपदीपं तु तण्डुलांश् च सितान् क्षिपेत्। आमपिष्टं तथैवान्नं क्षीरं च विनिवेदयेत्॥२६॥
उपस्थाय वदेदेवं मुञ्चन् मुद्रांशुकानि च। मधुरं तद्दिनेऽश्नीयाद् देवश्राद्धं समापयेत्॥२७॥
सौवर्णं शक्तितो नागं ततो दद्याद् द्विजोत्तमे। धेनुं दत्त्वा ततो ब्रूयात् प्रीयतां नागराडिति॥२८॥
यथाविभव्यं कुर्वीत कर्माण्यन्यानि पूर्ववत्। स्वशाखोक्तविधानेन इत्थं कुर्याद् यथातथम्।
प्रेतत्वान् मोचयेत् तांस् तु स्वर्गमार्गं नयेत च॥२९॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे दुर्मरणे कार्याऽकार्यक्रियादिनिरूपणं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥

धूप और दीप दे, श्वेत तण्डुल (चावल) भी छिडके। कच्चा पिसा हुआ अन्न और दूध भी निवेदित करे॥२६॥ उपस्थान (खडा होकर अञ्जलि बाँधकर भक्तिपूर्वक दर्शन करने का काम) करके मुद्राद्रव्य और वस्त्र समर्पित करता हुआ ("नागराट् प्रीयताम्" ऐसा) समर्पण वाक्य बोले। उस दिन में मधुर भोजन करे, इस प्रकार नागदेव की श्रद्धापूर्ण पूजन समाप्त करे॥२७॥ उस के बाद अपनी शक्ति के अनुसार बनाई गई नाग की सोने की प्रतिमा ब्राह्मण को दान में दे। उस के बाद ब्राह्मण को दुधारू गाय दान में देकर "प्रीयतां नागराट्" ऐसा बोले॥२८॥ अन्य और्ध्वदेहिक कृत्य अपने विभव के अनुसार पूर्वोक्त रीति से करे। अपने वेदशाखाकल्पसूत्र में बताए गए विधान से जो जितना जैसा हो सके वह सब जो करेगा वह दुर्मरण से मरने वालों को प्रेतभाव से मुक्त कराएगा और स्वर्गमार्ग में भी ले जाएगा॥२९॥

श्रीगरुडपुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में दुर्मरण होने पर कार्य और अकार्य क्रिया इत्यादि का निरूपण करने वाला चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥४४॥

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीविष्णुरुवाच

प्रत्यब्दं श्राद्धमेवं ते कथयामि खगेश्वर। प्रत्यब्दं पार्वणेनैव कुर्यातां क्षेत्रजौरसौ॥१॥
विधिना चेतरैरेवमेकोद्दिष्टं न पार्वणम्। अनग्नेश्च सुतौ स्यातामनग्नी क्षेत्रजौरसौ॥२॥
एकोद्दिष्टं न कुर्यातां प्रत्यब्दं तौ तु पार्वणम्। यदा त्वन्यतरः साग्निः पुत्त्रो वाऽप्यथवा पिता॥३॥
प्रत्यब्दं पार्वणं तत्र कुर्यातां क्षेत्रजौरसौ। अनग्नयः साग्नयो वा पुत्त्रा वा पितरोऽपि वा॥४॥
एकोद्दिष्टं सुतैः कार्यं क्षयाह इति केचन। दर्शकाले क्षयो यस्य प्रेतपक्षेऽथवा पुनः॥५॥
प्रत्यब्दं पार्वणं कार्यं तस्य सर्वैः सुतैरपि। एकोद्दिष्टमपुत्त्राणां पुंसां स्याद् योषितामपि॥६॥
एकोद्दिष्टे कुशा ग्राह्याः समूला यज्ञकर्मणि। बहिर् लूनाः सकृल् लूनाः श्राद्धं वृद्धिमृते सदा॥७॥

श्रीविष्णु ने कहा— हे खगेश्वर, इसी प्रकार से प्रत्येक वर्ष में मृत्युतिथि में किए जाने वाले श्राद्ध के विषय में तुम को बताता हूँ। क्षेत्रज पुत्त्र और औरस पुत्त्र प्रतिवर्ष क्षयाहश्राद्ध पार्वणविधि से करें॥१॥ इसी प्रकार अन्य पुत्त्रों से प्रत्येक वर्ष क्षयतिथि में एकोद्दिष्टश्राद्ध किया जाना चाहिए पार्वण नहीं। यदि अग्निरहित पिता के अग्निरहित ही क्षेत्रज और औरस पुत्त्र होते हैं तो वे तो प्रतिवर्ष एकोद्दिष्ट ही श्राद्ध करें, पार्वणश्राद्ध न करें। जब पुत्त्र अथवा पिता कोई एक अग्निसहित होता है तब ही क्षेत्रज और औरस पुत्त्र प्रत्येक वर्ष पार्वणश्राद्ध करें। पुत्त्र अथवा पिता दोनों अग्निसहित अथवा अग्निरहित जैसे भी हों क्षयाह में सभी प्रकार के पुत्त्रों से एकोद्दिष्टश्राद्ध ही किया जाना चाहिए, ऐसा कोई कहते हैं। जिस का अमावास्या के समय में अथवा प्रेतपक्ष में (अमान्त मान में नभस्यकृष्णपक्ष में) मरण होता है उस के सभी प्रकार के पुत्त्रों से प्रतिवर्ष पार्वणश्राद्ध ही किया जाना चाहिए। पुत्त्ररहित पुरुषों का और स्त्रियों का भी क्षयाहश्राद्ध एकोद्दिष्ट ही होगा॥२-६॥ एकोद्दिष्टश्राद्ध में मूल से युक्त कुशों का प्रयोग करना चाहिए, यज्ञकृत्य

कर्तव्ये पार्वणे श्राद्धे आशौचं यदि जायते। आशौचावगमे कुर्याच् छ्राद्धं हि तदनन्तरम्॥८॥
एकोद्दिष्टे तु सम्प्राप्ते यदि विघ्नः प्रजायते। मासेऽन्यस्मिन् तिथौ तस्यां कुर्याच् छ्राद्धं तदैव हि॥९॥
तूष्णीं श्राद्धं तु शूद्रस्य भार्यायास् तत्सुतस्य च। कन्यायाश् च द्विजातीनामनुपेतद्विजस्य च॥१०॥
एककाले गतासूनां बहूनामथ वा द्वयोः। तन्त्रेण श्रपणं कुर्याच् छ्राद्धं कुर्यात् पृथक्पृथक्॥११॥
दद्यात् पूर्वं मृतस्याऽऽदौ द्वितीयस्य ततः पुनः। तृतीयस्य ततः कुर्यात् सन्निपाते त्वयं क्रमः॥१२॥
प्रत्यब्दमेवं यः कुर्याद् यथातथमतन्द्रितः। तारयित्वा पितॄन् सर्वान् प्राप्नोति परमां गतिम्॥१३॥
न ज्ञायते मृताहश् चेत् प्रस्थानदिनमेव च। मासश् चेत् स्यात् परिज्ञातस् तद्दर्शे स्यान् मृताहिकम्॥

में मूलरहित रूप में पृथिवी से बाहर निकले हुए भाग में कटे हुए कुशों का प्रयोग करना चाहिए, वृद्धिश्राद्ध को छोडकर अन्य श्राद्धों में काटते समय एक वार के ही दात्रक्रिया से काटे गए कुशों का ही सदाकाल प्रयोग करना चाहिए॥७॥ यदि किए जाने वाले पार्वणश्राद्ध के बीच में आशौच हो जाता है तो आशौच ज्ञात होने पर आशौच के बाद श्राद्ध करे॥८॥ यदि एकोद्दिष्टश्राद्ध आने पर विघ्न हो जाता है तो दूसरे मास में उसी तिथि में उसी काल में श्राद्ध करे॥९॥ शूद्र का और द्विजाति की शूद्रा भार्या का तथा वैसी भार्या के पुत्र का भी श्राद्ध मौन करके (वेदमन्त्र के प्रयोग के विना) होता है, द्विजाति की कन्या का और उपनयनरहित द्विजाति का भी श्राद्ध मौन करके ही होता है॥१०॥ एक ही समय में मरे हुए बहुत से मनुष्यों का अथवा दो मनुष्यों का श्राद्ध प्राप्त होने पर सभी श्राद्धों के लिए पाक एक ही करे, श्राद्ध पृथक् पृथक् करे॥११॥ एक ही दिन में मरने वालों में से पहले मरने वाले का श्राद्ध पहले करे, उस के बाद दूसरे का और उस के बाद तीसरे का श्राद्ध करे, एक काल में श्राद्ध प्राप्त होने पर ऐसा क्रम होता है॥१२॥ आलस्यरहित जो मनुष्य प्रतिवर्ष इस प्रकार से यथार्थ रूप में श्राद्ध करता है वह सभी पितरों का उद्धार करके उत्तम गति को प्राप्त करता है॥१३॥ यदि किसी के मरण का दिन नहीं जाना जाता है तो उस का अपने घर से निकलने की तिथि ही श्राद्ध के लिए ग्राह्य है, किसी के मरण का दिन ज्ञात नहीं है किन्तु मास ज्ञात है तो उसी मास की अमावास्या में उस का क्षयाह-श्राद्ध होगा॥१४॥ यदि किसी के मरण की तिथि ज्ञात है किन्तु मास ज्ञात

यदा मासो न विज्ञातो विज्ञातं दिनमेव च। तदा मार्गशिरे मासि माघे वा तद्दिनं भवेत्॥१५॥
दिनमासाववविज्ञातौ मरणस्य यदा पुनः। प्रस्थानदिनमासौ तु ग्राह्यौ श्राद्धे मयोदितौ॥१६॥
प्रस्थानस्याऽपि न ज्ञातौ दिनमासौ यदा पुनः। मृतवार्ताश्रुतौ ग्राह्यौ पूर्वप्रोक्तक्रमेण तु॥१७॥
प्रवासमन्तरेणाऽपि स्यातां तौ विस्मृतौ यदा। तदानीमपि तौ ग्राह्यौ पूर्ववत् तु मृताहिके॥१८॥
गृहस्थे प्रोषिते यच् च कश्चित् तु म्रियते गृही। आशौचापगमे यत्र प्रारब्धे श्राद्धकर्मणि॥१९॥
प्रत्यागतश् चेज् जानाति तत्र वृत्तं गृही तथा। आशौचं गृहिणस् तेषां न द्रव्यादेस्तदा भवेत्॥२०॥
पुत्त्रादिना यदाऽऽरब्धं श्राद्धं तत्त्वेन वाऽखिलम्। समापनीयं तत्राऽपि श्राद्धं गृही तु दूरतः॥२१॥
दात्रा भोक्त्रा च न ज्ञातं सूतकं मृतकं तथा। उभयोरपि तद्दोषं नाऽऽरोपयति कर्हिचित्॥२२॥

नहीं है तो उस अवस्था में मार्गशीर्ष मास में अथवा माघ मास में उस के क्षयाहश्राद्ध की तिथि होगी॥१५॥ यदि किसी के मरण का दिन और मास भी ज्ञात नहीं हैं तो उस के श्राद्ध के लिए उस के अपने घर से प्रस्थान करने की तिथि और मास ग्राह्य होने की बात मुझ से बताई गई है॥१६॥ यदि किसी के अपने घर से निकलने की तिथि और मास भी ज्ञात नहीं है तो मरण की वार्ता को सुनने की तिथि और मास उस के क्षयाहश्राद्ध के लिए पूर्वोक्त क्रम से ग्राह्य होते हैं॥१७॥ यदि परदेशगमन के विना भी किसी के मरण की तिथि और मास विस्मृत हो जाते हैं तो उस अवस्था में भी क्षयाहश्राद्ध के लिए पूर्ववत् तिथि और मास ग्राह्य होते हैं॥१८॥ किसी गृहस्थ के प्रवास में जाने पर यदि कोई अन्य गृहस्थ मरता है और उस के आशौच के अन्त में प्रवास में गए हुए गृहस्थ के घर में श्राद्धकृत्य का प्रारम्भ किए जाने पर प्रवास से वह गृहस्थ लौटता है और वह वहाँ उन वृत्तान्तों को जानता है तो उक्त प्रकार का अतिक्रान्ताशौच प्रवास से लौटने पर आशौच सुनने वाले गृहस्थ का ही होता है, उस के घर में रहे हुए द्रव्यादि का नहीं होता है॥१९-२०॥ पुत्त्रादि से जो श्राद्ध आरब्ध है वह श्राद्ध भी सम्पूर्ण रूप में यथार्थ रूप में सम्पन्न करना चाहिए, उस में भी वह प्रवास से आया हुआ गृहस्थ तो श्राद्ध देश से दूर ही रहे॥२१॥ देने वाले से और भोजन करने वाले से भी जननाशौच और मरणाशौच नहीं जाना गया है तो अज्ञात आशौच का दोष दोनों को कभी भी आरोपित नहीं होता है॥२२॥

यदा त्वन्यतरज्ञातं सूतकं मृतकं तथा। भोक्तुरेव तदा दोषो नाऽन्यो दाता प्रदुष्यति॥२३॥
इत्युक्तेन प्रकारेण यः कुर्यान् मृतवासरम्। अविज्ञातमृताहस्य सततं तारयत्यसौ॥२४॥
नित्यश्राद्धेऽथ गन्धाद्यैर् द्विजानभ्यर्च्य भक्तितः। सर्वान् पितृगणान् सम्यक् सहैवोद्दिश्य भोजयेत्॥२५॥
आवाहनं स्वधाकारो पिण्डाग्नौकरणादिकम्। ब्रह्मचर्यादिनियमा विश्वेदेवास् तथैव च॥२६॥
नित्यश्राद्धे त्यजेदेतान् भोज्यमन्नं प्रकल्पयेत्। दत्त्वा तु दक्षिणां शक्त्या नमस्कारैर् विसर्जयेत्॥२७॥
देवानुद्दिश्य विश्वादीन् यद् दद्याद् द्विजभोजनम्। तन् नित्यश्राद्धवत् कार्यं देवश्राद्धं तदुच्यते॥२८॥
मातृश्राद्धं तु पूर्वेण कर्मादौ पैतृकं तथा। उत्तरेऽहनि वृद्धौ स्यान् मातामहगणस्य तु॥२९॥
श्राद्धत्रयं प्रकुर्वीत वैश्वदेवं तु तान्त्रिकम्॥३०॥

जब देने वाले और भोजन करने वाले में से किसी एक से जननाशौच अथवा मरणाशौच जाना गया है, तब वहाँ जान कर खाने वाले का ही दोष होता है, अन्य देने वाला दोषी नहीं होता है॥२३॥ इस प्रकार से बताई गई रीति से अविज्ञातमृततिथि वाले पित्रादि का जो मृततिथिश्राद्ध करता है, वह अपने पितरों को तारता है॥२४॥ नित्यश्राद्ध में तो सभी पितृगणों को साथ में ही उद्दिष्ट करके ब्राह्मणों को भक्ति से चन्दन फूल इत्यादि से पूजित करके भोजन कराए॥२५॥ आवाहन, स्वधाशब्द-प्रयोग, पिण्डदान, अग्नौकरण, ब्रह्मचर्यादिनियम, विश्वेदेवों का श्राद्ध, अन्य श्राद्धों में होने वाले इन कृत्यों का नित्यश्राद्ध में त्याग करे, भोज्य अन्न समर्पित करे और अपनी शक्ति के अनुसार दक्षिणा देकर नमस्कार करके ब्राह्मण को विसर्जित करे॥२६-२७॥ विश्वादि देवों को उद्दिष्ट करके जो ब्राह्मणभोजन दिया जाता है वह नित्यश्राद्ध की तरह किया जाना चाहिए, उस को देवश्राद्ध कहा जाता है॥२८॥ वृद्धिश्राद्ध में मुख्य कर्म के आदि में पहले मातृश्राद्ध होगा तब पैतृक श्राद्ध होगा, और दूसरे दिन मातामहगण का श्राद्ध होगा॥२९॥ इस प्रकार तीन श्राद्ध करे, वैश्वदेव श्राद्ध तो तीनों श्राद्धों के लिए एक ही होता है॥३०॥

मातृभ्यः कल्पयेत् पूर्वं पितृभ्यस् तदनन्तरम्। मातामहेभ्यश् च तथा दद्यादित्थं क्रमेण तु ॥३१॥
मातृश्राद्धे तु विप्राणामभावे सुकुलोद्गताः। पतिपुत्रान्विताः साध्व्यो योषितोऽष्टौ च भावयेत् ।३२।
इष्टापूर्तादिके श्राद्धं कुर्यादाभ्युदयं तथा। उत्पातादिनिमित्तेषु नित्यश्राद्धवदेव तु ॥३३॥
नित्यं दैवं च वृद्धिं च काम्यं नैमित्तिकं तथा। श्राद्धान्युक्तप्रकारेण कुर्वन् सिद्धिमवाप्नुयात्।
इति ते कथितं तार्क्ष्य किमन्यत् परिपृच्छसि ॥३४॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे प्रत्याब्दिकादिश्राद्धनिरूपणं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः॥

पहले माताओं का श्राद्ध करे, उस के बाद पिताओं के लिए श्राद्ध करे, तब मातामहों के लिए श्राद्ध करे, इस प्रकार क्रम से श्राद्ध करे॥३१॥ मातृश्राद्ध में तो ब्राह्मणों के अभाव में शुद्ध कुलों में उत्पन्न, पति से और पुत्र से युक्त, पतिव्रता आठ स्त्रियों को ब्राह्मणों के स्थान में रखे॥३२॥ इष्ट कर्म के (यज्ञों के) और पूर्तकर्म के (वापी-कूप-तडाग-उद्यानादि के उत्सर्ग के कर्मों के) आदि में आभ्युदयिक-श्राद्ध करे। उत्पातादि निमित्त उत्पन्न होने पर नित्यश्राद्ध की ही रीति से श्राद्ध करे॥३३॥ नित्यश्राद्ध, दैवश्राद्ध, वृद्धिश्राद्ध, काम्यश्राद्ध, नैमित्तिकश्राद्ध इत्यादि जो श्राद्ध हैं उन को उक्त प्रकार से सम्पन्न करने वाला मनुष्य यथेष्ट पुरुषार्थसिद्धि प्राप्त करता है। हे गरुड, यह सब तुम को बताया गया, और क्या पूछते हो?॥३४॥

श्रीगरुडपुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में प्रत्याब्दिकादिश्राद्धों का निरूपण करने वाला पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥४५॥

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

तार्क्ष्य उवाच

सुकृतस्य प्रभावेण स्वर्गो नानाविधो नृणाम्। भोगाः सौख्यानि रूपं च बलं बुद्धिः पराक्रमः॥१॥
सत्यं पुण्यवतां देव जायतेऽत्र परत्र च। सत्यंसत्यं पुनः सत्यं वेदवाक्यं न चाऽन्यथा॥२॥
धर्मो जयति नाऽधर्मः सत्यं जयति नाऽनृतम्। क्षमा जयति न क्रोधो विष्णुर् जयति नाऽसुरः॥३॥
तद्वत् सत्यं मया ज्ञातं सुकृताच् छोभनं भवेत्। यथोत्कृष्टतमं पुण्यं तथोत्कृष्टतरो नरः॥४॥
एवं तु श्रोतुमिच्छामि जायन्ते पापिनो यथा। येन कर्मविपाकेन यथा नियमभाग् भवेत्॥५॥
यांयां योनिमवाप्नोति यथारूपश् च जायते। तन् मे वद सुरश्रेष्ठ समासेनाऽपि काङ्क्षितम्॥६॥

गरुड ने कहा– हे देव, सुकर्म के प्रभाव से पुण्ययुक्त मनुष्यों के इस लोक में और परलोक में नाना प्रकार के स्वर्ग, उपभोग, सुख, रूप, बल, बुद्धि और पराक्रम होते हैं। यह बात सत्य-सत्य और फिर भी सत्य है, यह वेदवाक्य झूठ नहीं है॥१-२॥ धर्म महान् है, अधर्म महान् नहीं है, सत्य महान् है, झूठ महान् नहीं है, क्षमा बडी है क्रोध बडा नहीं है, विष्णु महान् हैं, असुर महान् नहीं है॥३॥ उसी प्रकार सुकर्म से कल्याण होगा, जितना उत्कृष्ट पुण्य होगा मनुष्य उतना ही उत्कृष्ट होगा, यह सत्य मैं ने जाना॥४॥ इसी प्रकार से पापी लोग जैसे होते हैं, जिस कर्म के परिणाम से मनुष्य जैसे नियन्त्रण-(नरक)भोगी होता है, जैसी जैसी योनि में जन्म पाता है, जैसे रूप से युक्त होकर जन्म लेता है, यह मैं सुनना चाहता हूँ। हे देवताओं में श्रेष्ठ, मेरे लिए आकाङ्क्षित उस बात को सङ्क्षेप से भी बताइए॥५-६॥

श्रीकृष्ण उवाच

शुभाशुभफलैस् ताक्ष्र्य भुक्तभोगा नरास् त्विह। जायन्ते लक्षणैर् यैस्तु तानि मे शृणु काश्यप॥७॥
गुरुरात्मवतां शास्ता राजा शास्ता दुरात्मनाम्। इह प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः॥८॥
प्रायश्चित्तेष्वचीर्णेषु यमलोका ह्यनेकधा। यातनाभिर् विमुक्ता ये यान्ति ते जीवसन्ततिम्॥९॥
गत्वा मानुषभावे तु पापचिह्ना भवन्ति ते। तान्यहं तव चिह्नानि कथयिष्ये खगोत्तम॥१०॥
सोढ्वा वै यातनाः सर्वा गत्वा वैवस्वतक्षयम्। निस्तीर्णयातनास् ते तु लोकमायान्ति चिह्निताः॥११॥
गद्गदोऽनृतवादी स्यान् मूकश् चैव गवानृते। ब्रह्महा जायते कुष्ठी श्यावदन्तश् च मद्यपः॥१२॥
कुनखी स्वर्णहरणाद् दुश्चर्मा गुरुतल्पगः। संयोगी हीनयोनिः स्याद् दरिद्रोऽदत्तदानतः॥१३॥

श्रीकृष्ण ने कहा— हे कश्यपपुत्र गरुड, शुभफल अथवा अशुभफल देने वाले कर्मों के कारण नरकभोग करने के बाद मनुष्य इस मर्त्यलोक में जिन लक्षणों से युक्त होकर जन्म लेते हैं उन लक्षणों को मुझ से सुनो॥७॥ जो अच्छे हृदय वाले लोग हैं उन के लिए गुरु ही शिक्षा देने वाले होते हैं, जो दुष्ट हृदय वाले (और दृश्य रूप से पाप करनेवाले) लोग हैं उन के लिए राजा (शासक) (दण्ड से) शिक्षा देने वाले होते हैं, इस लोक में जो गुप्तरूप से पाप करने वाले (दुष्ट हृदयवाले) लोग हैं उन के लिए सूर्यपुत्र यमराज (नरकयातना से) शिक्षा देने वाले होते हैं॥८॥ प्रायश्चित्त न करने पर पापियों को अनेक प्रकार के यमलोक मिलते हैं। यमलोक में यातनाओं के योगों से मुक्त जो लोग हैं वे प्राणियों की पङ्क्ति में जन्म लेते हैं॥९॥ मनुष्ययोनि में जन्म लेने पर वे पापचिह्नों से युक्त होते हैं। हे पक्षियों में श्रेष्ठ, मैं तुम को उन पापचिह्नों को बताउँगा॥१०॥ सूर्यपुत्र यम के घर में जाकर सभी यातनाओं का भोग करके जो लोग यातनाओं को पार करते हैं वे चिह्न से युक्त होकर इस मर्त्यलोक में आते हैं॥११॥ झूठ बोलने वाला हकलाकर बोलने वाला होगा, गाय के लिए झूठ बोलने वाला गूंगा होगा, ब्रह्महत्या करने वाला कुष्ठी होगा, मद्यपान करने वाला द्विजोत्तम नीलच्छायायुक्त दाँत वाला होगा॥१२॥ ब्राह्मण का सोना चुराने वाला कुनखी (नखरोगयुक्त) होगा,

अयाज्ययाजको याति ग्रामसूकरतां द्विजः। खरो वै बहुयाजी स्यात् काको निर्मन्त्रभोजनात्॥१४॥
अपरीक्षितभोक्तारो व्याघ्राः स्युर् निर्जने वने। बहुतर्जको मार्जारः खद्योतः कक्षदाहकः॥१५॥
पात्रे विद्याऽप्रदाता यो बलीवर्दो भवेत् तु सः। अन्नं पर्युषितं विप्रे प्रददत् कुक्कुरो भवेत्॥१६॥
मात्सर्यादपि-जात्यन्धो जन्मान्धः पुस्तकं हरन्। फलान्याहरतोऽपत्यं म्रियते नाऽत्र संशयः॥१७॥
मृतो वानरतां याति तन्मुखो गण्डवान् भवेत्। अदत्त्वा भक्ष्यमश्नाति अनपत्यो भवेत् तु सः॥१८॥
हरन् वस्त्रं भवेद् गोधा गरदः पवनाशनः। प्रव्रज्याऽऽगमनाद् राजन् भवेन् मरुपिशाचकः॥१९॥
चातको जलहर्ता स्याद् धान्यहर्ता च मूषिकः। अप्राप्तयौवनां सेवन् भवेत् सर्प इति श्रुतिः॥२०॥

गुरु की पत्नी से सहवास करने वाला दुश्चर्मा (चमडे के रोग से युक्त) होगा, उक्त महापातक करने वालों से यौन-मौख-स्रौव-संसर्ग करने वाला नीचयोनि में जन्म लेगा, दान न देने वाला दरिद्र होगा॥१३॥ यज्ञ कराने में अयोग्य जन को यज्ञ कराने वाला ब्राह्मण गाँव का सूअर होगा, (योग्य-अयोग्य) बहुत से लोगों को (वृत्ति के लिए अत्यावश्यक न होनेपर भी) यज्ञ कराने वाला ब्राह्मण गधा होगा, मन्त्रों के विना (मन्त्रपूर्वक अग्रहोम किए विना) भोजन करने वाला काक होगा॥१४॥ विना परीक्षा जिस किसी का अन्न खाने वाले लोग निर्जन वन में बाघ होंगे, बहुत से लोगों की तर्जना करने वाला बिलार होगा, सूखे घास झाडी इत्यादि से युक्त स्थल में आग लगाने वाला जुगुनू होगा॥१५॥ सत्पात्र को भी विद्या न देने वाला जो है वह बैल होगा, ब्राह्मण को बासी अन्न देने वाला कुत्ता होगा॥१६॥ दूसरे की ईर्ष्या करने वाला जन्म से ही अन्धा होगा, पुस्तक चुराने वाला भी जन्म से ही अन्धा होगा। फलों को चुराने वाले का सन्तान मरता है, इस में सन्देह नहीं है॥१७॥ वह मरकर वानरयोनि में जन्म लेता है, फिर मनुष्यजन्म में आने पर भी वह वानर के जैसे मुख वाला और गलगण्ड रोग से युक्त होगा। जो मनुष्य देवता-पितृ-मनुष्यों को दिए विना भक्ष्य पदार्थ खाता है वह सन्तानहीन होगा॥१८॥ वस्त्र चुराने वाला गोह होगा, विष देने वाला सर्प होगा। हे पक्षिराज, सन्न्यासाश्रम से पूर्व आश्रम में लौट आने से मरुस्थल में पिशाच होगा॥१९॥ पानी चुराने वाला पपीहा होगा, धान्य चुराने वाला चूहा होगा। जवानी अवस्था में अप्राप्त नाबालिग कन्या से समागम करने वाला सर्प होगा, ऐसी श्रुति है॥२०॥

गुरुदाराभिलाषी च कृकलासो भवेद् ध्रुवम्। जलप्रस्रवणं यस्तु भिन्द्यान् मत्स्यो भवेन् नरः॥२१॥
अविक्रेयविक्रयाद् वै बको गृध्रो भवेन् नरः। अयोनिगो वृको हि स्यादुलूकः क्रयवञ्चनात्॥२२॥
मृतस्यैकादशाहे तु भुञ्जानः श्वाऽभिजायते। प्रतिश्रुत्य द्विजेभ्योऽर्थमददज् जम्बुको भवेत्॥२३॥
राज्ञीं गत्वा भवेद् दंष्ट्री तस्करो विड्वराहकः। शारिवा फलविक्रेता वृषश्च वृषलीपतिः॥२४॥
मार्जारोऽग्निं पदा स्पृष्ट्वा रोगवान् परमांसभुक्। उदक्यागमनात् षण्डो दुर्गन्धश् च सुगन्धहृत्॥२५॥
यद् वा तद् वाऽपि पारक्यं स्वल्पं वा हरते बहु। हृत्वा वै योनिमाप्नोति तिरश्चां नाऽत्र संशयः॥२६॥
एवमादीनि चिह्नानि अन्यान्यपि खगेश्वर। स्वकर्मविततान्येव दृश्यन्ते यानि मानवैः॥२७॥
एवं दुष्कृतकर्मा हि भुक्त्वा च नरकान् क्रमात्। जायते कर्मशेषेण उक्तास्वेतासु योनिषु॥२८॥

गुरुपत्नी से समागम करने की इच्छा करने वाला निश्चित रूप में गिरगिट होगा, जो मनुष्य जलप्रपात के स्रोत को तोडेगा वह मत्स्य होगा॥२१॥ विक्रय करने में अयोग्य पदार्थ का विक्रय करने वाला बगुला और गिद्ध होगा। योनिभिन्न स्थल में वीर्य छोडने वाला भेडिया होगा। क्रय-विक्रय में ठगी करने वाला उल्लू होगा॥२२॥ मरण के ग्यारहवें दिन में (किए जाने वाले श्राद्ध में) भोजन करने वाला ब्राह्मण कुत्ता होगा, देने का वचन देकर ब्राह्मणों को देय द्रव्य न देने वाला सियार होगा॥२३॥ राजपत्नी से समागम करके वन्यसूकर होगा, डकैती करने वाला ग्राम्यसूकर होगा। फल का विक्रय करने वाला शारिवाशब्दवाच्य लता होगा, वृषली (शूद्रा) को ही पत्नी के रूप में रखने वाला द्विजाति बैल होगा॥२४॥ अग्नि को पैर से छूके बिलार होगा, दूसरे के स्वत्व के मांस को खाने वाला रोगी होगा, रजस्वला स्त्री से समागम करने वाला नपुंसक होगा, सुगन्धिद्रव्य की चोरी करने वाला दुर्गन्धयुक्त होगा॥२५॥ थोडा अथवा बहुत जो कुछ भी परकीय द्रव्य चुराता है, चोरी करके पशु-पक्षी इत्यादि की योनि में जन्म पाता है, इस में सन्देह नहीं हैं॥२६॥ हे पक्षियों के मालिक, ऐसे प्रकार के और भी अपने ही कर्म से फैलाए गए चिह्न होते हैं, जो मनुष्य से देखे ही जाते हैं॥२७॥ पापकर्म करने वाला मनुष्य इस प्रकार क्रम से नरकों को भोगकर अवशिष्ट कर्म से

ततो जन्मशतं मर्त्ये सर्वजन्तुषु काश्यप। जायते नात्र सन्देहः समीभूते शुभाशुभे ॥२९॥
स्त्रीपुंसयोः प्रसङ्गेन निरुद्धे शुक्रशोणिते। समुपेतः पञ्चभूतैर् जायते पाञ्चभौतिकः॥३०॥
इन्द्रियाणि मनः प्राणा ज्ञानमायुः सुखं धृतिः। धारणा प्रेरणं दुःखं मिथ्याहङ्कार एव च॥३१॥
प्रयत्नाकृतिवर्णस् तु रागद्वेषौ भवाभवौ। तस्येदमात्मनः सर्वमनादेरादिमिच्छतः।।३२॥
स्वकर्मबद्धस्य तदा गर्भवृद्धिर् भवेदिति। पुरा यथा मया प्रोक्तं तव जन्तोर् हि लक्षणम्॥३३॥
एवं प्रवर्तितं चक्रं भूतग्रामे चतुर्विधे। समुत्पत्तिर् विनाशश् च जायते तार्क्ष्य देहिनाम्॥३४॥
स्वधर्मेणैवोर्ध्वगतिरधर्मेणाप्यधोगतिः। जायते सर्ववर्णानां स्वधर्मचलनात् खग॥३५॥
देवत्वे मानुषत्वे च दानभोगादिकाः क्रियाः। या दृश्यन्ते वैनतेय तत् सर्वं कर्मजं फलम्॥३६॥

उक्त प्रकार की इन योनियों में जन्म लेता है॥२८॥ हे कश्यपपुत्त्र, तब सभी जन्तुओं में सैकडों जन्म लेता है, पाप और पुण्य समान मात्रा में आ जाने पर मनुष्ययोनि में जन्म लेता है, इस में सन्देह नहीं है॥२९॥ स्त्री का और पुरुष का समागम होने पर शुक्र (वीर्य) का और शोणित (स्त्रीबीज अथवा डिम्ब) का पिण्डीकरण हो जाने से पाँचों महाभूतों से युक्त तथा पाञ्चभौतिकशरीरयुक्त प्राणी जन्म लेता है॥३०॥ उस में इन्द्रिय, मन, प्राण, ज्ञान, आयु, सुख, धैर्य, स्मृति, क्रिया, दुःख, मिथ्या अहङ्कार, प्रयत्न, आकृति, वर्ण, राग-द्वेष, समृद्धि-असमृद्धि यह सब आदि (जन्म) चाहने वाले अनादि आत्मा के गुण होते हैं॥३१-३२॥ इस प्रकार से शुक्रशोणित पिण्ड बनने पर अपने कर्मों से बद्ध प्राणी की गर्भ में वृद्धि होगी, जैसे मुझ से तुम को पहले ही प्राणी का लक्षण बताया गया था॥३३॥ चार प्रकार के प्राणियों के समूह में इस प्रकार से चक्र चलाया गया है। हे गरुड, प्राणियों का जन्म और मरण होता रहता है॥३४॥ अपने धर्म के आचरण से सभी वर्णों की ऊर्ध्वगति होती है, स्वधर्म से विचलन होने पर अधर्म से अधोगति भी होती है॥३५॥ हे विनता के पुत्त्र, देवभाव में और मानवभाव में रहने पर जो दान-भोग इत्यादि क्रियाएँ देखी जाती हैं वह सब कर्म से उत्पन्न फल ही है॥३६॥

अकर्मविहिते घोरे कामक्रोधार्जितेऽशुभे। पतेद् वै नरके भूयो तस्योत्तारो न विद्यते॥३७॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे
दुर्मरणे जीवस्य शुभाशुभगतिनिरूपणं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

गरुड उवाच

भगवन् देवदेवेश कृपया परया वद। दानं दानस्य माहात्म्यं वैतरण्याः प्रमाणकम्॥१॥

मनुष्य होकर भी अकर्म से उत्पादित और काम-क्रोधादि दुर्गुणों से अर्जित भयङ्कर अशुभ नरक में फिर गिर जाएगा तो उस का उद्धार नहीं है। (फिर चिरकाल तक दूसरी योनियों में घूमने से पुण्यपापमात्रा तुल्य होने पर मनुष्यजन्म होने से पुण्य करने पर ही उस का उद्धार हो सकेगा)॥३७॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में दुर्मरण होने पर
होने वाली जीव की शुभ और अशुभ गति का निरूपण करने वाला छियालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥४६॥

गरुड ने कहा– हे देवों के भी देव, ईश्वर, भगवन्, परम कृपा करके दान, दान का माहात्म्य और वैतरणी का परिमाण भी बताइए॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच

या सा वैतरणी नाम यममार्गे महासरित्। अगाधा दुस्तरा पापैर् दृष्टमात्रा भयावहा॥२॥
पूयशोणिततोयाढ्या मांसकर्दमसङ्कुला। पापिनश् चाऽऽगतान् दृष्ट्वा नानाभयसमावृता॥३॥
क्वाथ्यते सत्वरं तोयं पात्रमध्ये घृतं यथा। क्रिमिभिः सङ्कुलं पूयं वज्रतुण्डैः समावृतम्॥४॥
शिशुमारैश् च मकरैर् वज्रकर्तरिकायुतैः। अन्यैश् च जलजीवैश् च हिंसकैर् मांसभेदिभिः॥५॥
उद्यन्ति द्वादशादित्याः प्रलयान्ते तथा हि ते। तपन्ति तत्र वै मर्त्याः क्रन्दमानास्तु पापिनः॥६॥
हा भ्रातः पुत्त्र तातेति प्रलपन्ति महुर्मुहुः। विचरन्ति निमज्जन्ति ग्लानिं गच्छन्ति जन्तवः॥७॥
चतुर्विधैः प्राणिगणैर् दृष्टा व्याप्ता महानदी। तरन्ति गोप्रदानेन त्वन्यथा च पतन्ति ते॥८॥

श्रीकृष्ण ने कहा— यमपुरी के मार्ग में जो वैतरणी नाम की बडी नदी है वह, अगाध (गभीर), पापियों के लिए दुस्तर (कष्ट से तरणीय), देखने से ही भय देने वाली, पीब और लहू के रूप में रहे जल से पूर्ण, मांसरूप के कीचड से भरित है, पापियों को आते हुए देखकर नाना प्रकार के भयङ्कर तत्त्वों से युक्त होती है॥२-३॥ वर्तन में घी की तरह उस नदी का जल खौलने लगता है। उस में कीडों से भरित, हीरे की तरह कठोर मुख वाले जन्तुओं से, शिशुमारों से, हीरे की तरह कठोर और काटने वाले दाँतों से युक्त ग्राहों से, हिंस्रक मांस काटने वाले जलजन्तुओं से युक्त पीब रहता है॥४-५॥ प्रलय के अन्त में जैसे बारह सूर्य उदित होतं हैं वैसे ही वहाँ उदित होते हैं। वहाँ पापी मनुष्य चिल्लाते हुए सन्तप्त होते हैं॥६॥ वे वार वार हाय भाई, हाय पुत्त्र, हाय बाप ऐसा प्रलाप करते रहते हैं। प्राणी वहाँ घूमते हैं, डूबते हैं, ग्लानि में पहुँचते हैं॥७॥ वह बडी नदी चार प्रकार के प्राणियों के समूहों से व्याप्त देखी गई होती है। वहाँ पहुँचने वाले प्राणी किए गए गोदान के पुण्य से उस नदी को पार करते हैं, गोदान न करने से वहाँ गिर जाते हैं॥८॥

मां नरा येऽवमन्यन्ते चाऽऽचार्यं गुरुमेव च। वृद्धानन्यांश् चाऽपि मूढास् तेषां वासस् तु तत्र वै ॥९॥
पतिव्रतां साधुशीलामूढां धर्मेषु निश्चलाम्। परित्यजन्ति ये मूढास्तेषां वासस्तु सन्ततम् ॥१०॥
विश्वासप्रतिपन्नानां स्वामिमित्रतपस्विनाम्। स्त्रीबालविकलादीनां वधं कृत्वा पतन्ति हि।
पच्यन्ते तत्र मध्ये तु क्रन्दमानास्तु पापिनः ॥११॥
शान्तं बुभुक्षितं विप्रं यो विघ्नायोपसर्पति। क्रिमिभिर् भक्ष्यते तत्र यावदाभूतसम्प्लवम् ॥१२॥
ब्राह्मणाय प्रतिश्रुत्य यथार्थं न ददाति तम्। आहूय नास्ति यो ब्रूयात् तस्य वासस्तु तत्र वै ॥१३॥
अग्निदो गरदश् चैव कूटसाक्षी च मद्यपः। यज्ञविध्वंसकश् चैव राज्ञीगामी च पैशुनः ॥१४॥
कथाभङ्गकरश् चैव स्वयंदत्तापहारकः। क्षेत्रसेतुविभेदी च परदारप्रधर्षकः ॥१५॥

जो मूर्ख मनुष्य मेरा (श्रीकृष्ण का), आचार्य का, गुरु का और अन्य वृद्धों का भी अपमान करते हैं उन का उस वैतरणी नदी में निवास होता है ॥९॥ जो मूढ मनुष्य पति का जो व्रत है उसी का पालन करने वाली उत्तम शील वाली विवाहिता और अपने धर्मों में दृढ पत्नी का त्याग करते हैं उन का वैतरणी में निरन्तर निवास होता है ॥१०॥ विश्वास में पडे हुए स्वामी का, मित्र का, तपस्वी का, स्त्री का, बालक का और विकलादि जनों का वध करके मनुष्य वैतरणी में पड जाते हैं। वैतरणी नदी में मध्यभाग में चिल्लाते हुए वे पापी लोग पकाए जाते हैं ॥११॥ शान्तिशील भूखे ब्राह्मण के भोजन में विघ्न करने के लिए जो मनुष्य समीप में जाता है वह उस वैतरणी नदी में प्रलयकाल न आने तक कीडों से खाया जाता है ॥१२॥ ब्राह्मण को जो वस्तु देने की प्रतिज्ञा करके उस वस्तु को नहीं देता है, ब्राह्मण को दान देने के लिए बुलाकर पीछे जो नहीं देता है, उस का वैतरणी में निवास होता है ॥१३॥ आग लगाने वाला, विष देने वाला, भूठी गवाही देने वाला, (ब्राह्मण होकर) मद्यपान करने वाला, यज्ञ का विध्वंस करने वाला, राजपत्नी से सहवास करने वाला, चुगलखोरी करने वाला, कथा में विघ्न करने वाला, अपने से ही दिए गए वस्तु का अपहरण करने वाला, खेत के सेतु को तोडने वाला, दूसरे की पत्नी का धर्षण करने वाला,

ब्राह्मणो रसविक्रेता तथा यो वृषलीपतिः। गोधनस्य तृषार्तस्य वाप्या भेदं करोति यः॥१६॥
कन्याविदूषकश् चैव दानं दत्त्वाऽनुतापकः। शूद्रस् तु कपिलापायी ब्राह्मणो मांसभोजनः॥१७॥
एते वसन्ति सततं मा विचारं कृथाः क्वचित्। कृपणो नास्तिकः क्षुद्रः स तस्यां निवसेत् खग॥१८॥
सदाऽमर्षी सदा क्रोधी निजवाक्यप्रमाणकृत्। परोक्त्युच्छेदको नित्यं वैतरण्यां वसेच् चिरम्॥१९॥
यस्त्वहङ्कारवान् पापी स्वविकत्थनकारकः। कृतघ्नो गर्भसन्तापी वैतरण्यां स मज्जति॥२०॥
कदापि भाग्ययोगेन तरणेच्छा भवेद् यदि। साऽनुकूला भवेद् येन तदाकर्णय काश्यप॥२१॥
अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनोदये। चन्द्रसूर्योपरागे वा सङ्क्रान्तौ दर्शवासरे॥२२॥

ब्राह्मण होकर लवणादि रस का विक्रय करने वाला, ब्राह्मण होकर जो वृषली (शूद्रा) का पति होता है वह, जो प्यास से आर्त गायों के लिए बनाई गई बाबली को तोडता है वह, कन्या को मैथुनादि से दूषित करने वाला, दान देकर पश्चात्ताप करने वाला, कपिला गाय का दूध पीने वाला शूद्र, (वृथा)मांस खाने वाला ब्राह्मण ये सब वैतरणी नदी में निरन्तर वास करते हैं, इस में कहीं भी सन्देह से विचारणा नहीं करो। हे पक्षिन्, जो अपने को, आश्रितों को और धर्म को भी पीडित करके धनसञ्चयन करने वाला है वह, जो वेद में और वेदोक्त कर्मफल में विश्वास न करने वाला है वह और क्षुद्र मनुष्य उस वैतरणी नदी में निवास करेगा॥१४-१८॥ सदा अमर्ष करने वाला, सदा क्रोधशील, अपने ही वचन को प्रमाण करने वाला, दूसरे की उक्ति का उच्छेद करने वाला भी चिरकाल तक वैतरणी नदी में निवास करेगा॥१९॥ जो अहङ्कारयुक्त, अपनी ही भूठी प्रशंसा करने वाला है वह, जो उपकार करने पर उपकार करने वाले को ही कष्ट पहुँचाने वाला है वह, गर्भ को जो पीडित करने वाला है वह वैतरणी नदी में डूब जाता है॥२०॥ हे कश्यपपुत्र, यदि भाग्यसंयोग से कभी वैतरणी नदी को पार करने की इच्छा होती है तो जिस कार्य से वह नदी अनुकूल होती है उस कार्य को सुनो॥२१॥ उत्तरायण के और दक्षिणायन के प्रारम्भ के काल में, रात और दिन तुल्यप्रमाण के होने के काल में, पुण्य व्यतिपात योग के दिन के उदय में,

अन्येषु पुण्यकालेषु दीयते दानमुत्तमम्। यदा तदा भवेद् वाऽपि श्रद्धा दानं प्रति ध्रुवम्॥२३॥
तदैव दानकालः स्याद् यतः सम्पत्तिरस्थिरा। अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः॥२४॥
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसङ्ग्रहः। कृष्णां वा पाटलां वाऽपि कुर्याद् वै तरणीं शुभाम्।२५।
स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां कांस्यपात्रोपदोहनीम्। कृष्णवस्त्रयुगाच्छन्नां सप्तधान्यसमन्विताम्॥२६॥
कार्पासद्रोण-शिखरे आसीनं ताम्र-भाजने। यमं हैमं प्रकुर्वीत लोहदण्ड-समन्वितम्।
इक्षुदण्डमयं बद्ध्वा प्लवं सुदृढबन्धनैः॥२७॥
उडुपोपरि तां धेनुं सूर्यदेहसमुद्भवाम्। कृत्वा प्रकल्पयेद् विप्रं छत्रोपानहसंयुतम्॥२८॥
अङ्गुलीयकवासांसि ब्राह्मणाय निवेदयेत्। इममुच्चारयेन् मन्त्रं सङ्गृह्य सजलान् कुशान्॥२९॥

चन्द्रग्रहण में, सूर्यग्रहण में, सूर्य का सङ्क्रमण होने के समय में, अमावास्या के दिन में और अन्य पुण्यकालों में भी उत्तम दान दिया जाता है। जब कभी भी दान देने में श्रद्धा उत्पन्न होगी निश्चय ही वही दानकाल होगा, क्योंकि सम्पत्ति तो अस्थिर है, शरीर अनित्य है, सम्पत्ति शाश्वत नहीं होती है, मृत्यु सदाकाल समीप में ही रहता है, अतः धर्म का सञ्चय करना चाहिए। काली अथवा श्वेतरक्त वर्ण की शुभलक्षण-युक्त वैतरणी गाय को सोनायुक्त सींग वाली, चाँदीयुक्त खुरवाली, कांस्यपात्ररूप दोहनपात्र वाली करे, दो काले वस्त्रों से आच्छादित और सप्तधान्य (जौ, धान, तिल, कँगनी, मूँग, चना, साँवा) से युक्त भी करे॥२२-२६॥ द्रोणपरिमाण कार्पास (रुई) के शिखर में तांवे के वर्तन में लोहे के दण्ड से युक्त यमराज की सोने की प्रतिमा को आसीन करे। ईख के काण्ड से बनी हुई नौका को सुदृढ बन्धनों से बाँधकर उस नौका के ऊपर सूर्य के देह से उत्पन्न उस वैतरणी धेनु को रखकर दान लेने वाले ब्राह्मण को छाता और जूता से युक्त करे॥२७-२८॥ अँगूठी और वस्त्र भी ब्राह्मण को समर्पित करे। तब जल से युक्त कुशों को लेकर "यमद्वारे महाघोरे" इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करे॥२९॥

यमद्वारे महाघोरे श्रुत्वा वैतरणीं नदीम्। तर्तुकामो ददाम्येनां तुभ्यं वैतरणीं नमः॥३०॥
गावो मे अग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पार्श्वतः। गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥३१॥
विष्णुरूप द्विजश्रेष्ठ मामुद्धर महीसुर। सदक्षिणा मया दत्ता तुभ्यं वैतरणी नमः॥३२॥
धर्मराजं च सर्वेशं वैतरण्याख्यधेनुकाम्। सर्वं प्रदक्षिणीकृत्य ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥३३॥
पुच्छं सङ्गृह्य धेन्वाश् च अग्रे कृत्वा तु वै द्विजम्। धेनुके त्वं प्रतीक्षस्व यमद्वारे महाभये॥३४॥
उत्तारणाय देवेशि वैतरण्यै नमोऽस्तु ते। अनुव्रजेत् तु गच्छन्तं सर्वं तस्य गृहं नयेत्॥३५॥
एवं कृते वैनतेय सा सरित् सुतरा भवेत्। सर्वान् कामानवाप्नोति यो दद्याद् भुवि मानवः॥३६॥

"यमद्वारे महाघोरे" इत्यादि मन्त्र का अर्थ है— अत्यन्त भयङ्कर यमराज के द्वार में रही हुई वैतरणी नदी की बात को सुनकर उस नदी को पार करने की इच्छा करता हुआ मैं इस वैतरणी गाय को आप को देता हूँ, नमस्कार॥३०॥ मेरे आगे गौएँ रहें, मेरे बगल में गौएँ रहें, मेरे हृदय में गौएँ रहें, मैं गायों के बीच में रहता हूँ॥३१॥ हे विष्णुरूप ब्राह्मणवर, हे भूलोक के देवता, मेरा उद्धार कीजिए। दक्षिणा से युक्त यह वैतरणी गाय आप को दी गई है, नमस्कार॥३२॥ उस के बाद प्रदक्षिणा करके सभी लोगों के स्वामी धर्मराज का, वैतरणी नाम की गाय का और सभी देय द्रव्य का भी ब्राह्मण को समर्पण करे॥३३॥ गाय के पूँछ को हाथ में लेकर ब्राह्मण को आगे करके "धेनुके त्वं प्रतीक्षस्व" इत्यादि पढे। "धेनुके त्वं प्रतीक्षस्व" इत्यादि का अर्थ— हे गौ, वैतरणी नदी से पार कराने के लिए आप अत्यन्त भयङ्कर यमद्वार में मेरी प्रतीक्षा करें; हे देवों की स्वामिनी, आप को मेरा नमस्कार हो। ऐसा कहकर जाते हुए ब्राह्मण का अनुगमन करे, और गाय को तथा अन्य सब दत्त द्रव्य को भी उन ब्राह्मण के घर में पहुँचाए॥३४-३५॥ हे विनता के पुत्र, ऐसा करने पर वह वैतरणी नदी सुख से ही पार की जाने वाली होगी। जो मनुष्य इस लोक में वैतरणीदान देगा वह सभी कामनाओं के विषयों को प्राप्त करता है॥३६॥

सुकृतस्य प्रभावेण सुखं चेह परत्र च। स्वस्थे सहस्रगुणितमातुरे शतसम्मितम्॥३७॥
मृतस्यैव तु यद् दानं परोक्षे तत् समं स्मृतम्। स्वहस्तेन ततो देयं मृते कः कस्य दास्यति॥३८॥
दानधर्मविहीनानां कृपणं जीवितं क्षितौ। अस्थिरेण शरीरेण स्थिरं कर्म समाचरेत्॥३९॥
अवश्यमेव यास्यन्ति प्राणाः प्राघुणिका इव॥४०॥

इतीदमुक्तं तव पक्षिराज विडम्बनं जन्तुगणस्य सर्वम्।
प्रेतस्य मोक्षाय तदौर्ध्वदैहिकं हिताय लोकस्य चरेच्छुभाय तु॥४१॥

सूत उवाच

एवं विप्राः समादिष्टो विष्णुना प्रभविष्णुना। गरुडः प्रेतचरितं श्रुत्वा सन्तुष्टिमागतः॥४२॥

सुकर्म के प्रभाव से इस लोक में और परलोक में भी सुख होता है। स्वस्थ अवस्था में जो दान दिया जाता है उस का हजार गुना फल होता है, अस्वस्थ अवस्था में जो दान दिया जाता है उस का सौ गुना फल होता है, मरे हुए मनुष्य के लिए उस के परोक्ष में जो दान दिया जाता है उस का फल तुल्य (जितना दिया गया है उतना ही) होता है, इस लिए दान अपने ही हाथ से देना चाहिए, मरने पर कौन किस के लिए देगा?॥३७-३८॥ दानधर्म से रहित मनुष्यों का भूलोक में जीवन दयनीय होता है। अस्थिर शरीर से स्थिर कर्म करे॥३९॥ प्राण तो अतिथि की तरह अवश्य ही चल जाएंगे॥४०॥ हे पक्षिराज, इस प्रकार यह सब प्राणिसमुदाय का क्लेश तुम को बता दिया गया। इस लिए प्रेत के प्रेतभाव से मोक्ष के लिए और हित के लिए तथा जीवित लोक के कल्याण के लिए भी औध्र्वदेहिक कृत्य करे॥४१॥ सूत ने कहा— हे ब्राह्मणगण, शक्तिसम्पन्न विष्णु से इस प्रकार कहे गए गरुडजी प्रेत के चरित्र को सुनकर सन्तुष्ट हुए॥४२॥ सब के कारण के भी कारण सर्वेश्वर

व्रततीर्थादिकं सर्वं पुनः पप्रच्छ केशवम्। ध्यात्वा मनसि सर्वेशं सर्वकारणकारणम् ॥४३॥
ऋषयः सर्वमेवैतज् जन्तूनां प्रभवादिकम्। मरणं जन्म च तथा प्रेतत्वं चौर्ध्वदैहिकम् ॥४४॥
मया प्रोक्तं हि वै मुक्त्यै [प्रेतस्य चौर्ध्वदैहिकम्। निदानं वच्मि लोकानां हिताय परमौषधम् ॥]
लाभस् तेषां जयस् तेषां कुतस् तेषां पराजयः। येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥४५॥
धर्मो जयति नाऽधर्मः सत्यं जयति नानृतम्। क्षमा जयति न क्रोधो विष्णुर् जयति नाऽसुराः।४६।
विष्णुर् माता पिता विष्णुर् विष्णुः स्वजनबान्धवाः। येषामेव स्थिरा बुद्धिर् न तेषां दुर्गतिर् भवेत् ॥४७॥
मङ्गलं भगवान् विष्णुर् मङ्गलं गरुडध्वजः। मङ्गलं पुण्डरीकाक्षो मङ्गलायतनं हरिः ॥४८॥
हरिर् भागीरथी विप्रा विप्रा भागीरथी हरिः। भागीरथी हरिर् विप्राः सारमेतज् जगत्त्रये ॥४९॥

का मन में ध्यान करके गरुडजी ने व्रत-तीर्थ इत्यादि के विषय में विष्णु को फिर पूछा॥४३॥ हे ऋषिगण, यह प्राणियों का उत्पत्तिस्थानादि सब मरण, जन्म, प्रेतभाव और और्ध्वदेहिक कृत्य तथा प्रेतयोनि में प्राप्त प्रेत के मुक्ति के लिए (विशेष और्ध्वदेहिक कृत्य भी मुझ से बताया गया। लोक के हित का परम औषध के रूप में रहे मूल कारण को मैं बताता हूँ *[द्रष्टव्य– जीवानन्दसंस्करण ३५/४३]*)। जिन लोगों के हृदय में नीलकमल की तरह श्यामवर्ण वाले जनार्दन (कृष्ण) रहते हैं, उन का लाभ ही होगा, विजय ही होगा, उन का पराजय किस से हो सकता है?॥४४-४५॥ धर्म बडा है, अधर्म बडा नहीं; सत्य बडा है, असत्य बडा नहीं; क्षमा बडी है, क्रोध बडा नहीं, विष्णु बडे हैं, असुर लोग बडे नहीं॥४६॥ माताजी विष्णु हैं, पिताजी भी विष्णु हैं, अपने जन और बान्धव भी विष्णु ही हैं, ऐसी बुद्धि जिस की स्थिर है उन की दुर्गति नहीं होगी॥४७॥ भगवान् विष्णु मङ्गलकारी हैं, गरुडध्वज विष्णु मङ्गलकारी हैं, पुण्डरीकाक्ष विष्णु मङ्गलकारी हैं, हरि मङ्गल के घर हैं॥४८॥ हरि ही भागीरथी (गङ्गा) और ब्राह्मण भी हैं, ब्राह्मणगण ही भागीरथी और हरि भी हैं, भागीरथी ही हरि और

इति सूतमुखोद्गीर्णां सर्वशास्त्रार्थमण्डिताम्। वैष्णवीं वाक्सुधां पीत्वा ऋषयस्तुष्टिमाययुः॥५०॥
प्रशशंसुस् तथाऽन्योऽन्यं सूतं सर्वार्थदर्शिनम्। प्रहर्षमतुलं प्रापुर् मुनयः शौनकादयः॥५१॥
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा। यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥५२॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे
दुर्मरणे जीवस्य कर्मविपाकादिनिरूपणं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः॥

ब्राह्मणगण भी है, यह हरि, ब्राह्मण और भागीरथी का समुदाय तीनों लोकों में सारभूत तत्त्व है॥४९॥ इस प्रकार की सूत के मुख से निकली हुई और सभी शास्त्रों के अर्थों से मण्डित विष्णु की वाणीरूपी सुधा (अमृत) को पीकर ऋषि लोग सन्तुष्ट हो गए॥५०॥ ऋषियों ने एक दूसरे की और सभी अर्थों को दिखाने वाले सूतजी की भी प्रशंसा की। शौनकादि मुनि लोगों ने अतुलनीय हर्ष पाया॥५१॥ मनुष्य अपवित्र हो अथवा पवित्र हो, अथवा जिस किसी भी अवस्था में रहा हो तो भी यदि वह पुण्डरीकाक्ष परमात्मा का स्मरण करता है तो बाहर और भीतर भी शुद्ध हो जाता है॥५२॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में दुर्मरण में
जीव के कर्मविपाकादि का निरूपण करने वाला सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥४७॥

अथ अष्टाचत्वारिंशोऽध्यायः

ताक्ष्र्य उवाच

ये मर्त्यलोके निवसन्ति मानवास् ते सर्वजातौ निधनं प्रयान्ति।
काले स्वकीये निजपुण्यसङ्ख्यया वदन्ति लोके कथयस्व तन् मे ॥१॥
गच्छन्ति मार्गेण सुदुस्तरेण विधातृनिष्पादितवर्त्मनि स्थिताः।
केनैव पुण्येन मुदं प्रयान्ति तिष्ठन्ति केनैव कुलं बलं वयः॥२॥

सूत उवाच

श्रुत्वाऽथ देवो गरुडं त्ववोचत् स्मृत्वा वपुः कर्म भयं च रूपम्।
सृष्टा धरा येन चराचरं जगत् स येन शास्ता विहितो यमो विभुः॥३॥

गरुड ने कहा— सभी जातियों में जन्मे हुए जो जितने मनुष्य मर्त्यलोक में निवास करते हैं वे सभी अपने पुण्य की सङ्ख्या के अनुसार अपने समय में मृत्यु में प्राप्त होते हैं, लोक में लोग ऐसा कहते हैं, उस विषय में आप मुझे बताइए॥१॥ विधाता से बनाए गए मार्ग में रहने वाले प्राणी अत्यन्त दुर्गम मार्ग से जाते हैं, किस पुण्य से वे हर्ष प्राप्त करते हैं? किस पुण्य से यहाँ रहते हैं? और किस पुण्य से उन का उच्च कुल, धनबल, जनबल और शरीरबल तथा स्थिर यौवन तथा दीर्घ आयु होता है?॥२॥ सूत ने कहा— गरुड के प्रश्नों को सुनकर, जिस ने पृथ्वी की सृष्टि की, जिस ने यह परिवर्तनशील जगत् की सृष्टि की, जिस ने व्यापकशक्ति वाले यम को लोक को पुण्यसेवन और पापपरिहार की शिक्षा देने वाला बनाया, उन भगवान्

श्रीभगवानुवाच

धर्मार्थकामं चिरमोक्षसञ्चयमन्यं द्वितीयं यममार्गगामिनाम्।
प्रविश्य चाऽङ्गुष्ठसमे स तत्र वै तं प्राप्य देहं स्वपुरं स्वमन्दिरम्॥४॥
गृहीतपाशो रुदते पुनःपुनर् देशे सुपुण्ये द्विजदेहसंस्थितः।
देवेन्द्रपूजा पितृदेवतृप्तिदं मोहान् न चेष्टं न च पुत्त्रसन्ततिः॥५॥
न मेऽस्ति बन्धुर् यममार्गगामिनो मया न कृत्यं द्विजदेहलिप्सया।
सम्प्राप्य विप्रत्वमतीव दुर्लभं नाऽधीतवान् वेदपुराणसंहिताः।
प्राप्तं सुरत्नं करसंस्थितं गतं देहिन् क्वचिन् निस्तर यत् त्वया कृतम्॥६॥

विष्णु ने मनुष्यों के शरीर, कर्म, भय और रूप का स्मरण करके कहा॥३॥ श्रीभगवान् ने कहा– यमपुरी के मार्ग में जाने वाले जीवों का धर्म, अर्थ और काम के आधार और चिरकाल में प्राप्त हो सकने वाले मोक्ष का भी आश्रय के रूप में रहा हुआ अन्य प्रकार का (मोक्षपर्यन्त स्थायी) दूसरा देह होता है। वह जीव अङ्गुष्ठप्रमाण के उस देह में वहाँ प्रविष्ट हो कर, अपने नगर के रूप के और अपने घर के रूप के उस देह को प्राप्त करके यम के पाश को शरीर में धारण करता हुआ वारंवार रोता है और कहता है कि– अत्यन्त पुण्यदेश में ब्राह्मणशरीर में मैं रहा, तथापि मुझ से देवों में श्रेष्ठ (विष्णु) की पूजा नहीं हुई, अज्ञान के वश में पडकर पितरों और देवों को तृप्ति देने वाला यज्ञ भी नहीं किया गया, और पुत्त्रसन्तान भी नहीं हुआ॥४-५॥ यममार्ग में जाने वाले मेरा कोई बन्धु नहीं है, मैं ने पुनः ब्राह्मणदेह की प्राप्ति की इच्छा से कोई कृत्य भी नहीं किया, अत्यन्त दुर्लभ ब्राह्मणत्व पाकर भी वेदसंहिता-पुराणसंहिताओं का अध्ययन नहीं किया, प्राप्त किया गया और हाथ में रहा हुआ उत्तम रत्न (ब्राह्मणदेह) चल गया, हे देहिन्, तुम ने कहीं जो किया है उसी के परिणाम को भोगता हुआ पार करो॥६॥

यः क्षत्रियो बाहुबलेन संयुगे ललाटदेशाद् रुधिरं मुखे पपौ।
तत् सोमपानं हि कृतं महामखे जीवन् मृतः कोऽपि हि याति मुक्तिम्।७।
स्थानान्यनेकानि कृतानि तानि पीतान्यनेकान्यपि गर्हितानि।
शस्त्रं गृहीत्वा समरे रिपूणां यः सम्मुखं याति स मुक्तपापः॥८॥
क्षत्राऽन्वयो वाऽपि विशोऽन्वयो वा शूद्राऽन्वयो वाऽपि हि नीचवर्णः।
सङ्ग्रामदेवद्विजबालघाती स्त्रीवृद्धहा दीनतपस्विहन्ता॥९॥
उपद्रुतेष्वेषु पराङ्मुखो यः स्युस् तस्य देवाः सकलाः पराङ्मुखाः।
तिलोदकं नैव पिबन्ति पूर्वे हुतं न गृह्णाति हुताशनोऽपि तत्॥१०॥

जिस क्षत्रिय ने बाहुबल से सङ्ग्राम में लडते हुए शत्रु के प्रहार से अपने ललाट से गिरते हुए लहू को पिया, उस ने महायज्ञ में सोमपान ही किया, जीता जागता ही मरा हुआ वह जो कोई क्षत्रिय मुक्ति को पाता है॥७॥ जिस ने वे अनेक निन्दनीय स्थान बनाए, जिस ने अनेक निन्दित पेय पिए वैसा भी जो मनुष्य युद्ध में शस्त्र लेकर शत्रु के आगे जाता है, वह सभी पापों से मुक्त होता है॥८॥ क्षत्रियवंश का हो अथवा वैश्यवंश का हो अथवा शूद्रवंश का हो अथवा कोई नीच वर्ण का ही हो, जो मनुष्य सुव्यवस्थित गाँव का, देवप्रतिमा का, ब्राह्मण का और बालक का विनाश करने वाला है, स्त्री की और वृद्ध की हत्या करने वाला है और शरणागत की तथा तपस्वी की हत्या करने वाला है उस मनुष्य से और सुव्यवस्थित गाँव, देवप्रतिमा, ब्राह्मण, बालक, स्त्री, वृद्ध, शरणागत, तपस्वी इन में उपद्रव किए जाने पर उस उपद्रव को रोकने से जो पराङ्मुख होता है उस मनुष्य से भी सभी देवता पराङ्मुख होंगे, वैसे मनुष्यों से दिए गए तिलयुक्त जल को पितर लोग भी नहीं पीते हैं, उस से होमे गए हवि को अग्निदेव भी नहीं स्वीकारते हैं॥९-१०॥

द्वेषाद् भयाद् वा समरे समागते शस्त्रं गृहीत्वा परसैन्यसम्मुखः।
न याति पक्षीन्द्र मृतश् च पश्चात् क्षात्रं बलं तस्य गतं तथैव।
द्विजाय दत्त्वा कनकं महीमिमां भूयः स पश्चाद् भवतीह लोके॥११॥
दानं प्रदत्तं ग्रहणे द्विजेन्द्रे स्नानं कृतं तेन सदा सुतीर्थे।
गत्वा गयायां पितृपिण्डदानं कृतं सदा यो म्रियते तु युद्धे॥१२॥
यः क्षात्रदेहं तु विहाय शोचते रणाङ्गणे स्वामिवधे च गोग्रहे।
स्त्रीबालघाते पथि सार्थहेतवे मया स्वकोशं न हतं न पातितम्॥१३॥
वैश्यः स्वकर्माणि विशोचते तदा गृहीतपाशो न मयाऽपि सञ्चितम्।
सत्यं न चोक्तं क्रयविक्रयेण मोहाद् विमूढेन कुटुम्बहेतवे॥१४॥

हे पक्षियों में श्रेष्ठ, युद्ध हो जाने पर जो क्षत्रिय नायक के प्रति द्वेष से अथवा डर से शस्त्र लेकर शत्रुसेना के सम्मुख होकर युद्ध में नहीं जाता है, पीछे मर जाता है तो उस का क्षत्रियबल व्यर्थ ही गया। इस पातक से शुद्ध होने के लिए ब्राह्मण को सोना और इस भूमि का दान देके ही वह पीछे फिर इस लोक में क्षत्रियजन्म पा सकता है॥११॥ जो क्षत्रिय युद्ध में मर जाता है उस ने ग्रहण के पुण्यकाल में श्रेष्ठ ब्राह्मण को दान दिया, सदाकाल उत्तमतीर्थ में स्नान किया, गया में जाकर पितरों को पिण्डदान भी किया॥१२॥ जो क्षत्रिय वैसे ही क्षत्रियदेह को छोडकर यममार्ग में जाता है वह चिन्ता करता है कि हाय! मैं ने युद्धभूमि में स्वामी का वध प्राप्त होने पर, गायों का अपहरण प्राप्त होने पर, स्त्री की और बालक की हत्या प्राप्त होने पर लडते हुए तथा दुर्गम निर्जन मार्ग में अपने द्रव्य के साथ चलते हुए व्यापारियों के समुदाय के लिए लडते हुए अपने शरीर को नहीं मरने दिया, नहीं गिरने दिया॥१३॥ वैश्य यमराज के पाश को शरीर में धारण करता हुआ और यममार्ग में जाता हुआ चिन्ता करता है कि हाय! मैं ने पुण्य सञ्चित भी नहीं किया, कुटुम्ब के लिए किए गए क्रय-विक्रय-कर्म से हुए अज्ञान से विमूढ होकर मैं ने सत्य भी नहीं बोला॥१४॥

शूद्रं वपुः प्राप्य यशस्करं सदा दानं द्विजेभ्यो न कृतं द्विजार्चनम्।
जलाशयो नैव कृतो धरातले असंस्कृतो विप्रवरो न संस्कृतः॥१५॥
त्यक्त्वा स्वकर्माणि मदेन सुस्थितं मया सुतीर्थे स्ववपुर् न चोज्झितम्।
धर्मोऽर्जितो नैव न देवपूजनं कृतं मया चैव विमुक्तिहेतवे॥१६॥
देहं समासाद्य तथैव पिण्डजं वर्णांस् तथैवाऽन्त्यजम्लेच्छसंज्ञितान्।
मरुन्मयं देहमिमे विशन्ति नैवेहमानाः पथि धर्मसङ्कुले॥१७॥
परस्परं धर्मकृतं स्वकीयं सम्पाद्य लक्ष्यं पथि सञ्चरन्तः।
पक्षीन्द्र वाक्यानि शृणुष्व तानि मनोरमाणि प्रवदन्ति यानि॥१८॥
सारा हि लोकेषु भवेत् त्रिलोकी द्वीपेषु सर्वेषु च जम्बुकाख्यम्।
देशेषु सर्वेष्वपि देवदेशः जीवेषु सर्वेषु मनुष्य एव॥१९॥

यममार्ग में जाता हुआ शूद्र भी चिन्ता करता है कि हाय! मैं ने शूद्रशरीर प्राप्त करके ब्राह्मण को यशस्कर दान नहीं दिया, ब्राह्मणों का सत्कार भी नहीं किया, भूमितल में (मनुष्य-पशु-पक्षी इत्यादि के लिए) जलाशय भी नहीं बनाया, असंस्कृत (अनाथ) कुलीन ब्राह्मण को संस्कार प्राप्त भी नहीं कराया॥१५॥ अपने शास्त्रोक्त कर्तव्यों को छोडकर मैं मदान्ध होकर रहा, मैं ने उत्तम तीर्थ में अपना शरीर भी नहीं छोडा, मैं ने पुण्य का आर्जन नहीं किया, मुक्ति के लिए देवता का पूजन भी मैं ने नहीं किया॥१६॥ उसी प्रकार पिण्डज देह को पाकर और शूद्रपुरुषजात प्रतिलोम वर्णों के तथा म्लेच्छनाम के वर्णों के देह को पाकर ये जीव वायुमय देह में प्रवेश करते हैं; हे पक्षीन्द्र, धर्मफल से सङ्कुल मार्ग में अन्य फलों को नहीं चाहते हुए धर्म से किए गए अपने लक्ष्य का निर्धारण करके मार्ग में चलते हुए वे लोग परस्पर में जो वाक्य बोलते हैं उन मनोहर वाक्यों को सुनो॥१७-१८॥ लोकों में स्वर्ग-मर्त्य-

वर्णाश् च चत्वार इह प्रशस्ता वर्णेषु धर्मिष्ठनराः प्रशस्ताः।
धर्मेण सौख्यं समुपैति सर्वं ज्ञानं समाप्नोति महापथे स्थितः॥२०॥
देहं परित्यज्य यदा गतायुः पक्षिन् स्थितोऽहं कृमिकीटसंस्थितः।
सरीसृपोऽहं मशको विनिर्मितश् चतुष्पदोऽहं वनसूकरोऽहम्॥२१॥
सर्वं विजानाति हि गर्भसंस्थितो जातश् च सद्यस् तदिदं च विस्मरेत्।
यच् चिन्तितं गर्भसमागतेन वै बालो युवा वृद्धवया बभूव॥२२॥
मोहाद् विनष्टं यदि गर्भचिन्तितं स्मृतं पुनर् मृत्युगते च देहे।
तस्मिन् प्रनष्टे हृदि चिन्तितं गतं स्मृतं पुनर् गर्भगते च देहे॥२३॥

पाताल इन तीन लोकों का समूह सार है, द्वीपों में जम्बूद्वीप सार है, सभी देशों में देवदेश (भारतवर्ष) सार है, सभी जीवों में मनुष्य ही सार है॥१९॥ इस भारतवर्ष में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये चार वर्ण उत्तम हैं, इन वर्णों के मनुष्यों में धर्मिष्ठ मनुष्य उत्तम हैं, मनुष्य धर्म से सभी सुखों को प्राप्त करता है, महान् मार्ग में रहने वाला मनुष्य ज्ञान प्राप्त करता है॥२०॥ हे पक्षिन्, जब मैं ने आयु समाप्त होने पर देह को छोडा तब मैं छोटे कीडे के रूप में और बडे कीडे के रूप में रहा, फिर मैं रेंगने वाला जन्तु और मच्छड बनाया गया; फिर मैं चार पैरों वाला बनाया गया, फिर मैं जङ्गली सूअर बनाया गया, ऐसी सब बातों को गर्भ में रहता हुआ प्राणी जानता है, जन्म लेने पर गर्भ में रहने की अवस्था में जो चिन्तन किया गया था उस सब को तत्काल फिर भूल जाएगा, क्रम से बालक, युवक और वृद्ध भी हो गया, अज्ञान से यदि गर्भावस्था में चिन्तित बातें विस्मृत हो गई हैं तो देह मृत्यु में जाने पर फिर स्मरण होता है। वह देह नष्ट होने पर पहले चिन्तित बात हृदय में विलीन होकर रहती है, फिर नवीन देह गर्भ में आने पर वह बात स्मृति में आती है॥२१-२३॥

तस्मिन् प्रनष्टे हृदि चिन्तितं पुनर् मया स्वकोशे परवञ्चनं कृतम्।
द्यूतैश् छलेनाऽपि च चौर्यवृत्त्या धर्मं व्यतिक्रम्य शरीररक्षणे॥२४॥
कृच्छ्रेण लक्ष्मीः समुपार्जिता स्वयं मया न भुक्तं मनसेप्सितं धनम्।
ताम्बूलमन्नं मधुरं सगोरसं दत्त्वाऽग्निदेवातिथिबन्धुवर्गे॥२५॥
सोमग्रहे सूर्यसमागमेऽपि वा न सेवितं तीर्थवरिष्ठमुत्तमम्।
कोशं स्वकीयं मलमूत्रपूरितं देहिन् क्वचिन् निस्तर यत् त्वया कृतम्।२६।
मया न दृष्टा न नता न पूजिता त्रैविक्रमी मूर्तिरिह स्थिता भुवि।
प्रभासनाथो न च भक्तिसंस्तुतो देहिन् क्वचिन् निस्तर यत् त्वया कृतम्॥

वह गर्भगत देह जन्म लेकर बढकर मृत्यु से नष्ट होने पर फिर हृदय में ऐसा चिन्तन आता है— मैं ने उस अपने शरीर में रहकर अपने शरीर की रक्षा के लिए धर्म का अतिक्रमण करके जूआ से, छल से, और चोरी से भी दूसरों की वञ्चना की; बहुत कष्ट से धन का आर्जन किया, किन्तु मैं ने धन का स्वयम् भी मनचाहा उपभोग नहीं किया; अग्नि को, देवताओं को, अतिथि को और बन्धुवर्ग को (पोष्यवर्ग को) देकर मधुर और दूध-दही-घी से युक्त अन्न और ताम्बूल का उपभोग भी नहीं किया; चन्द्रग्रहण में अथवा सूर्य के राहु से योग में भी उत्तम वरिष्ठ तीर्थ की सेवा भी नहीं की, (खान-पान करके) अपने शरीर को केवल मल-मूत्रपूरित ही रखा (पुण्यपूरित नहीं किया), इस लिए हे देहधारिन्, तुम ने कहीं जो कर्म किया था उसी के फल को भोगता हुआ इस मार्ग को पार करो; इस भूलोक में वर्तमान त्रिविक्रम विष्णु की मूर्ति का मैं न दर्शन नहीं किया, प्रणाम नहीं किया और पूजा भी नहीं की, प्रभास क्षेत्र के स्वामी श्रीकृष्ण का भक्तिपूर्वक स्तुति भी नहीं की, इस लिए हे देहधारिन्, तुम ने कहीं जो कर्म किया था उसी के फल को भोगता हुआ इस मार्ग को

गत्वा वरिष्ठे भुवि तीर्थसन्निधौ धनं न दत्तं विदुषां करे मया।
आप्लुत्य देहं विधिना द्विजे गुरौ देहिन् क्वचिन् निस्तर यत् त्वया कृतम्॥
न मातृपूजा न च विष्णुशङ्करौ गणेशचण्ड्यौ न च भास्करोऽपि वा।
पञ्चोपचारैर् बलियुक्तचन्दनैर् देहिन् क्वचिन् निस्तर यत् त्वया कृतम्।२९।
लब्धा मया मानवदेवतोपमा मोहाद् गता सर्वमिदं च पार्थिवम्।
गतिं न वीक्षेत स वै विमूढधीर् देहिन् क्वचिन् निस्तर यत् त्वया कृतम्॥
एतानि पक्षिन् मनसा विचिन्त्य वाक्यानि धर्मार्थयशस्कराणि।
मुक्तिं समायान्ति मनुष्यलोके वसन्ति ये धर्मरताः सुदेशे॥३१॥

पार करो; भूलोक में वरिष्ठ तीर्थ के समीप में जाकर शास्त्रोक्त विधि से शरीर को जल में डूबाकर विद्वानों के हाथ में और ब्राह्मण गुरु को भी धन नहीं दिया, इस लिए हे देहधारिन्, तुम ने कहीं जो कर्म किया था उसी के फल को भोगता हुआ इस मार्ग को पार करो; बलि से युक्त चन्दन से और पाँच उपचारों से मातृकाओं की पूजा नहीं की, विष्णु और शिव तथा गणेश और देवी की पूजा भी नहीं की, सूर्य की पूजा भी नहीं की, हे देहधारिन्, तुम ने कहीं जो कर्म किया था उसी के फल को भोगता हुआ इस मार्ग को पार करो; मैं ने जो मोक्षसाधनादि की शक्ति से युक्त देवतातुल्य मानवयोनि पाई थी वह मोह में ही बीत गई, मेरे अधीन के पृथिवीलोक के सभी साधन भी वैसे ही गए, जो मोहयुक्त बुद्धि वाला होता है वह उत्तम मार्ग को नहीं देख सकेगा, हे देहधारिन्, तुम ने कहीं जो कर्म किया था उसी के फल को भोगता हुआ इस मार्ग को पार करो॥२४-३०॥ हे पक्षिन्, धर्म, अर्थ और यश को बढाने वाले इन वाक्यों को मन से अनुशीलन करके जो मनुष्य मनुष्यलोक में शुभ देश में धर्म में रमता हुआ निवास करते हैं वे मुक्ति में पहुँचते हैं॥३१॥

इति ब्रुवाणैर् यमदूतवर्गैर् विहन्यते कालमयैश् च मुद्गरैः।
हा दैव हा दैव इति स्मरन् वै धनं न दत्तं स्वयमर्जितं यत्॥३२॥
न भूमिदानं न च गोप्रदानं न वारिदानं न च वस्त्रदानम्।
फलं सताम्बूलविलेपनं वा त्वया न दत्तं भुवि शोचसे कथम्॥३३॥
पिता मृतस्ते च पितामहः सा यया धृतो वाऽप्युदरे स्वकीये।
मृतोऽप्यसौ बन्धुजनः समस्तो दृष्टं त्वया सर्वमिदं गतायुः॥३४॥
कोशं त्वदीयं ज्वलितं च वह्निना पुत्रैर् गृहीतो धनधान्यसञ्चयः।
सुभाषितं धर्मचयं कृतं च यत् तदेव गच्छेत् तव पृष्ठसंस्थम्॥३५॥

इस (आगे वर्णित) प्रकार से बोलने वाले यमदूतों के वर्गों से 'अपने से जो आर्जित धन था उस का दान नहीं दिया, हाय दैव, हाय दैव' इस प्रकार स्मरण करता हुआ देहधारी जीव कालरूपी मुद्गरों से मारा जाता है॥३२॥ 'तुम ने भूमिदान भी नहीं किया, गोदान भी नहीं किया, जलदान भी नहीं किया, वस्त्रदान भी नहीं किया, अथवा तुम ने मर्त्यलोक में ताम्बूल से और अनुलेपन (चन्दन) से युक्त फल भी नहीं दिया, तुम अब क्या चिन्ता करते हो?, तुम्हारा बाप मरा, तुम्हारा दादा भी मरा, तुम को जिस ने अपने पेट में धारण किया था वह तुम्हारी माँ भी मरी, तुम्हारा वह सम्पूर्ण बन्धुजन भी मरा, तुम ने इस सब लोक को आयु पूरा होने पर मरता हुआ देखा; तुम्हारा शरीर आग से जलाया गया, तुम्हारा धन और धान्यों का सङ्ग्रह जो था वह सब तुम्हारे पुत्रों ने लिया, तुम ने जो सद्वचन बोला था और जो धर्मसञ्चय किया था वही तुम्हारे पीछे पीछे (परलोक में भी) जाएगा;

न दृश्यते कोऽपि मृतः समागतो राजा यतिर् वा द्विजपुङ्गवोऽपि वा।
यो वै मृतः साहसिकः स मर्त्यको नाशं गतो योऽपि धरातले स्थितः॥३६॥
एवं गणास् ते ब्रुवते सकिन्नरा धैर्यं समालम्ब्य विषादपूरितः।
श्रुत्वा गणानां वचनं महाद्भुतं ब्रवीति पक्षीन्द्र मनुष्यतां गतः॥३७॥
दानप्रभावेण विमानसंस्थितो धर्मः पिता मातृदयानुरूपिणी।
वाणी कलत्रं मधुरार्थभाषिणी स्नानं सुतीर्थे च सुबन्धुवर्गः॥३८॥
करार्पितं यत् सुकृतं समस्तं स्वर्गस् तदा स्यात् तव किङ्करोपमः।
यो धर्मवान् प्राप्स्यति सोऽतिसौख्यं पापी समस्तं विविधञ्च दुःखम्॥३९॥

राजा हो अथवा सन्न्यासी हो अथवा श्रेष्ठ ब्राह्मण हो कोई भी मरने पर फिर लौटकर आया हुआ नहीं देखा जाता है, जो बडा साहसी वीर मनुष्य है वह भी मरा ही है, जो धरातल में वास करने वाला सामान्य मनुष्य है वह भी मरता ही है' ॥३३-३६॥ हे पक्षियों में श्रेष्ठ, किन्नरों से सहित यमराज के गण ऐसा बोलते हैं, गणों के अत्यन्त अद्भुत इस वचन को सुनकर विषाद से पूर्ण मनुष्य धैर्यधारण करके बोलता है॥३७॥ दान के प्रभाव से जब मनुष्य स्वर्ग जाने के लिए विमानों में बैठता है तब उस के लिए मर्त्यलोक में किया गया धर्म पिता होता है, दया माता के रूप की होती है, मधुर अर्थ को प्रकाशित करने वाली वाणी पत्नी होती है, उत्तम तीर्थ में किया गया स्नान उत्तम बन्धुवर्ग होता है॥३८॥ यदि सभी सुकर्म अपने ही हाथ से किया गया है तो उस वक्त स्वर्ग तुम्हारा सेवकतुल्य होगा; जो मनुष्य धर्मयुक्त होगा वह अत्यन्त सुख पाएगा, जो पापी है वह नाना प्रकार के सम्पूर्ण दुःख को पाएगा॥३९॥

यो धर्मशीलो जितमानरोषो विद्याविनीतो न परोपतापी।
स्वदारतुष्टः परदारदूरस् स वै नरो नो भुवि वन्दनीयः॥४०॥
मिष्टान्नदाता चरिताऽग्निहोत्रो वेदान्तविच् चन्द्रसहस्रजीवी।
मासोपवासी च पतिव्रता च षड् जीवलोके मम वन्दनीयाः॥४१॥
एवं समाचारयुतो नरोऽपि वापीं सकूपां सजलं तडागम्।
प्रपा शुभं हृद्गृहदेवमन्दिरं कृतं नरेणैव स धर्म उत्तमः॥४२॥
वर्षाशनं वेदविदे च दत्तं कन्याविवाहस् त्वृणमोचनं द्विजे।
भूमिः सुकृष्टाऽपि तृषार्तिहितोस् तदेवमेतत् सुकृतं समस्तम्॥४३॥

जो मनुष्य धर्मयुक्त शील वाला है, अभिमान को और क्रोध को जिस ने जीता है, जो विद्या से अभिविनीत (सत्कार्य करने में समर्थ और अभ्यस्त) किया गया है, जो दूसरे को सन्ताप देने वाला नहीं है, अपनी ही पत्नी में सन्तुष्ट है, दूसरे की पत्नी से दूर ही रहने वाला है, मर्त्यलोक में वह मनुष्य नमस्कार करने योग्य है॥४०॥ मधुर अन्न का दान करने वाला, अग्निहोत्र करने वाला, उपनिषद् जानने वाला, हजार पूर्णचन्द्र के काल तक जीने वाला, मासपर्यन्त उपवास करने वाला, और पतिव्रता (पति का जो जैसा व्रत है वैसे ही व्रत में रहने वाली) स्त्री ये छः मर्त्यलोक में मेरे लिए नमस्करणीय हैं॥४१॥ यदि इस प्रकार के सदाचार से युक्त मनुष्य भी बावली, इनारा, जलपूर्ण तालाब भी बनाए, पौसरा रखे, और यदि जिस किसी मनुष्य ने भी उत्तम भवन से युक्त देवमन्दिर बनवाया तो यह उत्तम धर्म है॥४२॥ वेद जानने वाले ब्राह्मण को वर्षपर्यन्त पर्याप्त अन्न-पान-वस्त्रादि देना, (ब्राह्मण-)कन्या का विवाह करा देना, ब्राह्मण को ऋण से मुक्त कर देना, अच्छी तरह जोती गई भूमि का दान, प्यास से आर्त प्राणियों के लिए जल का दान और इसी प्रकार का अन्य कर्म जो हैं यह सम्पूर्ण ही सुकृत (धर्म) है॥४३॥

अध्यायमेनं सुकृतस्य सारं शृणोति गायत्यपि भावशुद्ध्या।
स वै कुलीनः स च धर्मयुक्तो विश्वालयं याति परं स नूनम्॥४४॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे दुर्मरणे जीवस्य मनुष्यस्य सुखदुःखप्रापकधर्माऽधर्म-निरूपणं नामाऽष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥

अथ ऊनपञ्चाशोऽध्यायः

गरुड उवाच

श्रुता मया दयासिन्धो ह्यज्ञानाज् जीवसंसृतिः। अधुना श्रोतुमिच्छामि मोक्षोपायं सनातनम्॥१॥

राग-द्वेष-काम-क्रोध-लोभादि मलों से रहित शुद्ध चित्त से युक्त होकर जो मनुष्य धर्म के सार को बताने वाले इस अध्याय को सुनता है अथवा पढता है वह कुलीन है, वह धर्मयुक्त मनुष्य अवश्य ही (क्रममुक्तिमार्ग से) विश्व के आश्रय परब्रह्म में पहुँचता है॥४४॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में दुर्मरण होने पर मनुष्यजीव को सुख-दुःख प्राप्त कराने वाले धर्म का और अधर्म का निरूपण करने वाला अडतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥४८॥

गरुड ने कहा— हे दया के समुद्र, मैं ने जीव का अज्ञान से संसारचक्र में भ्रमण होने की बात सुनी, अब मैं मोक्ष के सनातन उपाय को सुनना चाहता हूँ॥१॥

भगवन् देवदेवेश शरणाऽऽगतवत्सल। असारे घोरसंसारे सर्वदुःखमलीमसे ॥२॥
नानाविधशरीरस्था अनन्ता जीवराशयः। जायन्ते च म्रियन्ते च तेषामन्तो न विद्यते ॥३॥
सदा दुःखातुरा एव न सुखी विद्यते क्वचित्। केनोपायेन मोक्षेश मुच्यन्ते वद मे प्रभो ॥४॥

श्रीभगवानुवाच

शृणु तार्क्ष्य प्रवक्ष्यामि यन् मां त्वं परिपृच्छसि। यस्य श्रवणमात्रेण संसारान् मुच्यते नरः ॥५॥
अस्ति देवः परब्रह्मस्वरूपो निष्कलः शिवः। सर्वज्ञः सर्वकर्ता च सर्वेशो निर्मलोऽद्वयः ॥६॥
स्वयञ्ज्योतिरनाद्यन्तो निर्विकारः परात् परः। निर्गुणः सच्चिदानन्दस् तदंशा जीवसञ्ज्ञकाः ॥७॥
अनाद्यविद्योपहता यथाग्नौ विस्फुलिङ्गकाः। देहाद्युपाधिसम्भिन्नास् ते कर्मभिरनादिभिः ॥८॥

हे शरण में आने वालों पर वात्सल्य करने वाले देवताओं के भी देवता ईश्वर भगवन्, इस सभा दुःखों से मैले असार और भयङ्कर संसार में नाना प्रकार के शरीरों में रहने वाले जीवों के विविध समूह जन्मते हैं और मरते भी हैं, उन का अन्त नहीं है, जीव सदाकाल दुःख से आर्त ही हैं, कहीं भी कोई भी सुखी नहीं है, हे मोक्ष के स्वामी प्रभो, किस उपाय से जीव मुक्त होते हैं? बताइए॥२-४॥ श्रीभगवान् ने कहा— हे गरुड, जो तुम मुझ को पूछते हो, और जिस का श्रवण से ही मनुष्य संसार से मुक्त होता है उस बात को मैं बताऊँगा, सुनो॥५॥ परब्रह्मस्वरूप, कलाविभाग से रहित, कल्याणमय, सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, सभी का स्वामी, मलरहित, द्वितीय से रहित, अपने से ही प्रकाशित, आदि-अन्तरहित, विकार से विहीन, कार्यब्रह्म से भी परे, गुणों से रहित, परमसत्य, ज्ञानरूप और आनन्दस्वरूप देवता है, उसी के अंश जीवसंज्ञा से व्यवहृत होते हैं॥६-७॥ अनादि अज्ञान से वशीकृत, आग की चिनगारी के सदृश, अनादि कर्म से देहादि उपाधियों से युक्त, सुख अथवा दुःख देने वाले पुण्य और पापों से नियन्त्रित वे जीव प्रत्येक जन्म में कर्म से

सुखदुःखप्रदैः पुण्यपापरूपैर् नियन्त्रिताः। तत्तज्जातियुतं देहमायुर् भोगञ्च कर्मजम्॥९॥
प्रतिजन्म प्रपद्यन्ते तेषामपि परं पुनः। ससूक्ष्मलिङ्गशारीरमा मोक्षादक्षरं खग॥१०॥
स्थावराः कृमयश्चाब्जाः पक्षिणः पशवो नराः। धार्मिकास् त्रिदशास् तद्वन् मोक्षिणश् च यथाक्रमम्॥११॥
चतुर्विधशरीराणि धृत्वा मुक्त्वा सहस्रशः। सुकृतान् मानवो भूत्वा ज्ञानी चेन् मोक्षमाप्नुयात्॥१२॥
चतुरशीतिलक्षेषु शरीरेषु शरीरिणाम्। न मानुषं विनाऽन्यत्र तत्त्वज्ञानं तु लभ्यते॥१३॥
अत्र जन्मसहस्राणां सहस्रैरपि कोटिभिः। कदाचिल् लभते जन्तुर् मानुष्यं पुण्यसञ्चयात्॥१४॥
सोपानभूतं मोक्षस्य मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम्। यस् तारयति नाऽऽत्मानं तस्मात् पापतरोऽत्र कः॥१५॥
नरः प्राप्योत्तमं जन्म लब्ध्वा चेन्द्रियसौष्ठवम्। न वेत्त्यात्महितं यस् तु स भवेद् ब्रह्मघातकः॥१६॥

उत्पन्न उस उस जाति के शरीर को, आयु को और सुख-दुःखादिभोग को भी प्राप्त करते हैं; हे पक्षिन्, उन का भी मोक्ष न होने तक नष्ट नहीं होने वाला सूक्ष्ममहाभूतों से युक्त फिर दूसरा लिङ्गशरीर होता है॥८-१०॥ वृक्ष-गुल्म-लता-तृणादि स्थावर प्राणी, कीडे, जलज, पक्षी, पशु, मनुष्य और देवता ये क्रम से अधिक-अधिकतर धार्मिक और मोक्ष के समीपस्थ होते हैं॥११॥ उद्भिज्ज, संस्वेदज, अण्डज और जरायुज इन चार प्रकार के शरीरों को हजारों वार धारण करके और छोडके धर्म के प्रभाव से मनुष्य होकर ज्ञानी होगा तो मोक्ष पाएगा॥१२॥ शरीरधारी जीवों के चौरासी लाख प्रकार के शरीरों में मनुष्य शरीर को छोडकर अन्य शरीर में तत्त्वज्ञान नहीं पाया जाता है॥१३॥ इस लोक में हजारों जन्म के समुदाय के हजारों करोडों चक्रों में घूमता हुआ प्राणी पुण्य के सञ्चय से किसी समय में मनुष्यजन्म पाता है॥१४॥ कठिनता से पाए जाने वाले और मोक्ष के सींढी के रूप में रहे हुए मनुष्यजन्म को पाकर जो प्राणी अपने को संसारसागर से पार नहीं करता है उस से बढकर पापी इस लोक में और कौन होगा?॥१५॥ जो मनुष्य उत्तम जन्म और इन्द्रियों की स्वस्थता को पाकर भी अपना हित नहीं जानता है वह ब्रह्मघातितुल्य पातकी है॥१६॥

विना देहेन कस्याऽपि पुरुषार्थो न विद्यते। तस्माद् देहं धनं रक्षेत् पुण्यकर्माणि साधयेत्॥१७॥
रक्षेच्च च सर्वदाऽऽत्मानमात्मा सर्वस्य भाजनम्। रक्षणे यत्नमातिष्ठेज् जीवन् भद्राणि पश्यति।१८।
पुनर् ग्रामः पुनः क्षेत्रं पुनर् वित्तं पुनर् गृहम्। पुनः शुभाऽशुभं कर्म न शरीरं पुनःपुनः॥१९॥
शरीररक्षणोपायाः क्रियन्ते सर्वदा बुधैः। नेच्छन्ति च पुनस् त्यागमपि कुष्ठादिरोगिणः॥२०॥
तद् गोपितं स्याद् धर्मार्थं धर्मो ज्ञानार्थमेव च। ज्ञानं तु ध्यानयोगार्थमचिरात् प्रविमुच्यते॥२१॥
आत्मैव यदि नाऽऽत्मानमहितेभ्यो निवारयेत्। कोऽन्यो हितकरस् तस्मादात्मानं सुखयिष्यते॥२२॥
इहैव नरकव्याधेश् चिकित्सां न करोति यः। गत्वा निरौषधं देशं व्याधिस्थः किं करिष्यते॥२३॥
व्याघ्रीवाऽऽस्ते जरा चाऽऽयुर्याति भिन्नघटाम्बुवत्। निघ्नन्ति रिपुवद् रोगास् तस्माच् छ्रेयः समभ्यसेत्॥

शरीर के विना किसी का भी धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में से कोई भी पुरुषार्थ सिद्ध नहीं होता है, इस लिए शरीर की और धन की रक्षा करे और पुण्यकार्य सम्पन्न करे॥१७॥ सदाकाल अपने शरीर की (जीवन की) रक्षा करे, शरीर ही सभी पुरुषार्थों का पात्र है, इस लिए जीवन की रक्षा में यत्न करे, जीवित रहता हुआ मनुष्य अपना कल्याण देखता है॥१८॥ गाँव फिर मिल सकता है, क्षेत्र फिर मिल सकता है, धन फिर मिल सकता है, घर फिर मिल सकता है, शुभ अथवा अशुभ कर्म भी फिर मिल सकते हैं, किन्तु मनुष्यशरीर वार-वार नहीं मिलता है॥१९॥ विज्ञ जनों से सदाकाल शरीर की रक्षा के उपाय किए जाते हैं, कुष्ठादि कष्टप्रद रोगों से युक्त मनुष्य भी शरीर का त्याग करना नहीं चाहते हैं॥२०॥ जिस का वह शरीर धर्म के लिए रक्षित होगा, धर्म आत्मज्ञान के लिए होगा, आत्मज्ञान परमात्मा के ध्यान और जीवात्म-परमात्मयोग के लिए होगा वह शीघ्र ही संसारदुःख से मुक्त होगा॥२१॥ यदि स्वयम् ही अपने को अहित कार्य से निवृत्त न करे तो अन्य उस से हितकारी कौन सा अपने को सुख देगा॥२२॥ जो मनुष्य इसी लोक में नरकरूपी रोग की चिकित्सा नहीं करता है, रोग में रहने वाला वह औषध से रहित देश में जाकर क्या करेगा॥२३॥ बुढापा बाघिन की तरह खडी रहती है, छिद्रयुक्त घडे से पानी की तरह आयु जाता रहता है, शत्रुओं की तरह रोग प्रहार करते रहते

यावन् नाऽऽश्रयते दुःखं यावन् नाऽऽयान्ति चापदः। यावन् नेन्द्रियवैकल्यं तावच् छ्रेयः समभ्यसेत्॥
यावत् तिष्ठति देहोऽयं तावत् तत्त्वं समभ्यसेत्। सन्दीप्ते कोशभवने कूपं खनति दुर्मतिः॥२६॥
कालो न ज्ञायते नानाकार्यैः संसारसम्भवैः। सुखं दुःखं जनो हन्त न वेत्ति हितमात्मनः॥२७॥
जातानार्तान् मृतानापद्ग्रस्तान् दृष्ट्वा च दुःखितान्। लोको मोहसुरां पीत्वा न बिभेति कदाचन॥२८॥
सम्पदः स्वप्नसङ्काशा यौवनं कुसुमोपमम्। तडिच्चपलमायुष्यं कस्य स्याज् जानतो धृतिः॥२९॥
शतं जीवितमत्यल्पं निद्रालस्यैस् तदर्धकम्। बाल्यरोगजरादुःखैरल्पं तदपि निष्फलम्॥३०॥
प्रारब्धव्ये निरुद्योगी जागर्तव्ये प्रसुप्तकः। विश्वस्तश् च भयस्थाने हा नरः को न हन्यते॥३१॥

हैं, इस लिए कल्याणकारी मोक्षदायी कार्य का सेवन करे॥२४॥ जब तक दुःख अपने में आश्रय नहीं लेता है, जब तक आपत्तियाँ नहीं आती हैं, जब तक इन्द्रिय विकल (असमर्थ) नहीं होते हैं तब तक कल्याणकारी (मोक्षदायी) कार्य का सेवन करे॥२५॥ जब तक यह शरीर खडा रहता है तब तक तत्त्वज्ञान का अभ्यास करे, दुर्बुद्धि मनुष्य भण्डारघर में आग लगने पर इनारा खनने में प्रवृत्त होता है॥२६॥ अनेक कार्यों में संलग्न सांसारिक लोगों से काल नहीं जाना जाता है, सुख-दुःख भी नहीं जाना जाता है, खेद की बात है मनुष्य अपने वास्तविक हित को नहीं जानता है॥२७॥ जन्मे हुए मनुष्यों को, रोगियों को, मरे हुए मनुष्यों को, आपत्तियों से ग्रस्त और दुःख में पडे हुए मनुष्यों को देखकर भी अज्ञानरूपी मदिरा को पीकर लोक कभी भी नहीं डरता है॥२८॥ सम्पत्तियों को स्वप्न की तरह, जवानी को फूल की तरह (क्षणिक) और आयुष्य को बिजली की तरह चञ्चल जानने वाले किस मनुष्य को धैर्य होगा?॥२९॥ सौ वर्ष का जीवनकाल अत्यन्त छोटा है, उस में आधा तो निद्रा और आलस्य से ही बीतता है, अवशिष्ट जो अल्प काल है वह भी बालककाल, रोग, बुढापा और दुःख से निष्फल रूप में ही बीतता है॥३०॥ मोक्ष के लिए प्रयत्न का आरम्भ करने के समय में निरुद्योगी रहने वाला, जागरित होने के समय में गाढ निद्रा में रहने वाला, जहाँ भय आने की सम्भावना है वहाँ विश्वस्त होकर सतर्क न होने वाला मनुष्य हाय! कौन नहीं मारा जाता है॥३१॥

तोयफेनसमे देहे जीवेनाऽऽक्रम्य संस्थिते। अनित्यप्रियसंवासे कथं तिष्ठति निर्भयः॥३२॥
अहिते हितसंज्ञः स्यादध्रुवे ध्रुवसंज्ञकः। अनर्थे चाऽर्थविज्ञानः समर्थं यो न वेत्ति सः॥३३॥
पश्यन्नपि प्रस्खलति शृण्वन्नपि न बुध्यति। पठन्नपि न जानाति देवमायाविमोहितः॥३४॥
तन् निमज्जज् जगदिदं गम्भीरे कालसागरे। मृत्युरोगजराग्राहैर् न कश्चिदपि बुध्यते॥३५॥
प्रतिक्षणमयं कालः क्षीयमाणो न लक्ष्यते। आमकुम्भ इवाऽम्भःस्थो विशीर्णो न विभाव्यते॥३६॥
युज्यते वेष्टनं वायोराकाशस्य च खण्डनम्। ग्रथनं च तरङ्गाणामास्था नाऽऽयुषि युज्यते॥३७॥
पृथिवी दह्यते येन मेरुश् चाऽपि विशीर्यते। शुष्यते सागरजलं शरीरस्य च का कथा॥३८॥

जीव से अपने आश्रय के रूप में लिया गया शरीर जल के फेन के तुल्य होने पर और माता पिता पत्नी पुत्र इत्यादि प्रिय जनों के साथ में रहने का अवसर भी अनित्य होने पर भी मनुष्य कैसे भयरहित होकर रहता है? यह आश्चर्य की बात है॥३२॥ जो अर्थ को यथार्थ रूप में नहीं जानता है वह अहित विषय में हितत्व का ज्ञान करने वाला, अनित्य में नित्यत्व का ज्ञान करने वाला और अनर्थ में अर्थत्व का अनुभव करने वाला हो जाता है॥३३॥ ईश्वर की माया से मोहित मनुष्य देखता हुआ भी लडखडाता है, सुनता हुआ भी नहीं समझता है, पढता हुआ भी नहीं जानता है॥३४॥ यह जगत् कालरूपी गहरे सागर में मृत्यु, रोग, बुढापा रूप के ग्राहों से डुबाया जा रहा है, तथापि कोई भी इस बात को नहीं समझता है॥३५॥ जैसे पानी में रहा हुआ कच्चा घडा क्षण क्षण में गलता हुआ नहीं देखा जाता है वैसे ही यह काल भी क्षण क्षण में बीतकर घटता हुआ नहीं देखा जाता है॥३६॥ वायु को लपेटने की चेष्टा, आकाश को टुकडा टुकडा करने की चेष्टा और जल के छालों को पिरोने की चेष्टा भी कदाचित् उचित मानी जा सकती है, किन्तु आयु में निश्चितता की धारणा उचित नहीं मानी जा सकती है॥३७॥ जिस काल से पृथिवी जलाई जाती है, सुमेरु पर्वत विखेर दिया जाता है, समुद्र का जल सुखाया जाता है, मनुष्यशरीर की तो बात ही क्या?॥३८॥

अपत्यं मे कलत्रं मे धनं मे बान्धवाश् च मे। जल्पन्तमिति मर्त्याऽजं हन्ति कालवृको बलात्॥३९॥
इदं कृतमिदं कार्यमिदमन्यत् कृताऽकृतम्। एवमीहासमायुक्तं कृतान्तः कुरुते वशम्॥४०॥
श्वःकार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चाऽऽपराह्णिकम्। न हि मृत्युः प्रतीक्षेत कृतं वाऽप्यथवाऽकृतम्॥४१॥
जरादर्शितपन्थानं प्रचण्डव्याधिसैनिकम्। अधिष्ठितो मृत्युशत्रुं त्रातारं किं न पश्यति॥४२॥
तृष्णासूचीविनिर्भिन्नं सिक्तं विषयसर्पिषा। रागद्वेषानले पक्वं मृत्युरश्नाति मानवम्॥४३॥
बालांश् च यौवनस्थांश् च वृद्धान् गर्भगतानपि। सर्वानाविशते मृत्युरेवम्भूतमिदं जगत्॥४४॥
स्वदेहमपि जीवोऽयं मुक्त्वा याति यमालयम्। स्त्रीमातृपितृपुत्त्रादिसम्बन्धः केन हेतुना॥४५॥
दुःखमूलं हि संसारः स यस्याऽस्ति स दुःखितः। तस्य त्यागः कृतो येन स सुखी नाऽपरः क्वचित्॥४६॥

सन्तान मेरा, पत्नी मेरी, धन मेरा, बान्धव मेरे कहकर मे-मे बोलने वाले मनुष्यरूपी बकरे को कालरूपी भेडिया बल से मार डालता है॥३९॥ यह किया, यह करना है, और यह आधा किया गया है, इस प्रकार कार्यफल की इच्छा से युक्त मनुष्य को यमराज अपने वश में करते हैं॥४०॥ कल करने योग्य कार्य को आज ही करे, अपराह्ण में करने योग्य कार्य को पूर्वाह्ण में ही करे; इस से इतना काम किया गया और इतना काम किया जाना है ऐसा विचार करके प्रतीक्षा तो मृत्यु नहीं करती है॥४१॥ बुढापे से जिस का मार्ग दिखाया गया है, प्रचण्ड रोग जिस के सैनिक हैं, ऐसे मृत्युरूपी शत्रु के समीप में रहा हुआ मनुष्य अपने रक्षक की ओर क्यों नहीं देखता है?॥४२॥ तृष्णारूपी सुई से छेदे गए, इन्द्रियों के विषयरूपी घी से सींचे गए और राग-द्वेषरूपी आग में पकाए गए मनुष्य को मृत्यु खा डालती है॥४३॥ बालकों में, जवानों में, बुड्ढों में और गर्भ में रहे हुए प्राणियों में भी सभी में मृत्यु आविष्ट होती है, जगत् इस प्रकार का है॥४४॥ यह जीव अपने देह को भी छोडकर यमराज के घर में जाता है तो पत्नी, माता, पिता, पुत्त्र इत्यादि का सम्बन्ध किस कारण से स्थिर रहेगा?॥४५॥ संसार ही दुःख का कारण है, जिस का वह संसार है वह दुःखित ही होता है, उस संसार का जिस ने त्याग किया है वही सुखी होता है, अन्य मनुष्य कहीं भी सुखी नहीं होता है॥४६॥

प्रभवं सर्वदुःखानामालयं सकलापदाम्। आश्रयं सर्वपापानां संसारं वर्जयेत् क्षणात्॥४७॥
लोहदारुमयैः पाशैः पुमान् बद्धो विमुच्यते। पुत्त्रदारमयैः पाशैर् मुच्यते न कदाचन॥४८॥
यावतः कुरुते जन्तुः सम्बन्धान् मनसः प्रियान्। तावन्तोऽस्य निखन्यन्ते हृदये शोकशङ्कवः॥४९॥
वञ्चिताऽशेषवित्तैस् तैर् नित्यं लोको विनाशितः। हा हन्त विषयाऽऽहारैर् देहस्थेन्द्रियतस्करैः॥५०॥
मांसलुब्धो यथा मत्स्यो लोहशङ्कुं न पश्यति। सुखलुब्धस् तथा देही यमबाधां न पश्यति॥५१॥
हिताऽहितं न जानन्तो नित्यमुन्मार्गगामिनः। कुक्षिपूरणनिष्ठा ये ते नरा नारकाः खग॥५२॥
निद्राभीमैथुनाहाराः सर्वेषां प्राणिनां समाः। ज्ञानवान् मानवः प्रोक्तो ज्ञानहीनः पशुः स्मृतः॥५३॥
प्रभाते मलमूत्राभ्यां क्षुत्तृड्भ्यां मध्यगे रवौ। रात्रौ मदननिद्राभ्यां बाध्यन्ते मूढमानवाः॥५४॥

सभी दुःखों की उत्पत्ति के स्थान, सम्पूर्ण आपत्तियों के घर और सम्पूर्ण पापों का आश्रय इस संसार को मनुष्य क्षण में ही त्याग दे॥४७॥ लोहे के और काठ के बन्धनों से बाँधा गया पुरुष मुक्त होता है, किन्तु पुत्र-पत्नीरूपी पाशों से बाँधा गया मनुष्य कभी भी मुक्त नहीं होता है॥४८॥ प्राणी मन के प्रिय जितने सम्बन्ध स्थापित करता है उतने ही शोक के कीलें उस के हृदय में चुभती हैं॥४९॥ सम्पूर्ण धन को ठगने वाले, रूपादि विषयों का आहार करने वाले, शरीर में ही रहने वाले इन्द्रियनामक डांकुओं ने सदाकाल लोक विनष्ट किया गया है, यह बडे खेद की बात है॥५०॥ जैसे मांस में लुब्ध मछली वडिश के लोहे के कांटे को नहीं देंखती है वैसे ही सुख में लुब्ध देहधारी भी यम की बाधा को नहीं देखता है॥५१॥ हे पक्षिन्, हित-अहित को न जानने वाले, सदाकाल कुमार्ग में चलने वाले, केवल पेट भरने के लक्ष्य में सीमित जो मनुष्य हैं वे नरक जाने योग्य हैं॥५२॥ निद्रा, डर, स्त्रीसमागम, आहार सभी प्राणियों के तुल्य हैं, उन प्राणियों में जो ज्ञान से युक्त है वह मनुष्य है, ज्ञान से रहित मनुष्य पशु समझा गया है॥५३॥ मूर्ख मनुष्य प्रातःकाल में मल-मूत्र के वेग से, सूर्य आकाश के मध्य में आने पर (दो पहर में) भूख-प्यास से और रात में मैथुनेच्छा और निद्रा से पीडित होते हैं॥५४॥

स्वदेहधनदारादिनिरताः सर्वजन्तवः। जायन्ते च म्रियन्ते च हा हन्ताऽज्ञानमोहिताः॥५५॥
तस्मात् सङ्गः सदा त्याज्यः स चेत् त्यक्तुं न शक्यते। महद्भिः सह कर्तव्यः सन्तः सङ्गस्य भेषजम्॥५६॥
सत्सङ्गश् च विवेकश् च निर्मलं नयनद्वयम्। यस्य नास्ति नरः सोऽन्धः कथं न स्यादमार्गगः॥५७॥
स्वस्ववर्णाश्रमाचारनिरताः सर्वमानवाः। न जानन्ति परं धर्मं वृथा नश्यन्ति दाम्भिकाः॥५८॥
क्रियाऽऽयासपराः केचिद् व्रतचर्यादिसंयुताः। अज्ञानसंवृतात्मानः सञ्चरन्ति प्रचारकाः॥५९॥
नाममात्रेण सन्तुष्टाः कर्मकाण्डरता नराः। मन्त्रोच्चारणहोमाद्यैर् भ्रामिताः क्रतुविस्तरैः॥६०॥
एकभुक्तोपवासाद्यैर् नियमैः कायशोषणैः। मूढाः परोक्षमिच्छन्ति मम मायाविमोहिताः॥६१॥

अज्ञान से मोहित और अपने शरीर, धन और पत्नी इत्यादि की चिन्ता में मग्न सभी प्राणी वार वार जन्म लेते हैं और मरते हैं, बडी दयनीय स्थिति है॥५५॥ इस लिए सङ्ग (आसक्ति) सदाकाल त्याज्य है, यदि सङ्ग का त्याग नहीं किया जा सकता है, तो महान् पुरुषों से (वेद-वेदाङ्गविज्ञ वर्णाश्रमधर्मपालक जनों से) सङ्ग करना चाहिए, क्योंकि सज्जन (वर्णाश्रमधर्मपालक) लोग ही सङ्ग के औषध हैं॥५६॥ सज्जनों से सङ्गत और विवेक ये दो ही निर्मल दो नेत्रों का जोडा है, जिस का यह जोडा नहीं है वह अन्धा मनुष्य कुमार्ग में जाने वाला कैसे नहीं होगा?॥५७॥ केवल दिखावे के लिए अपने अपने वर्ण के और आश्रम के (बाह्य) आचार में ही संलग्न सभी मनुष्य परम धर्म को (जीवात्मा और परमात्मा के योगद्वारा किए जाने वाले आत्मज्ञान को) नहीं जानते हैं, इस से वे दाम्भिक (दिखावे के रूप में धर्म करनेवाले) लोग स्वयम् ही व्यर्थ में नष्ट हो जाते हैं॥५८॥ क्रियाओं के आयासों के सहने में समर्पित, अज्ञान से ढके हुए आत्मा वाले कोई लोग विविध कष्टमय व्रतचर्यादि से युक्त होकर प्रचारक के रूप में घूमते हैं॥५९॥ नाम मात्र से सन्तुष्ट और कर्मकाण्ड में रमने वाले लोग मन्त्रों के उच्चारण तथा होमादि से सम्पन्न किए जाने वालें यज्ञों के विस्तार से ही भ्रमित होकर रहते हैं॥६०॥ मेरे (विष्णु के) माया से विमोहित कोई मूढ लोग शरीर का शोषण करने वाले एकभक्त तथा उपवास इत्यादि नियमों से परोक्ष (अज्ञात) ब्रह्म को प्राप्त करना चाहते हैं॥६१॥

देहदण्डनमात्रेण का मुक्तिरविवेकिनाम्। वल्मीकताडनादेव मृतः किन् नु महोरगः॥६२॥
जटाभाराऽजिनैर् युक्ता दाम्भिका वेषधारिणः। भ्रमन्ति ज्ञानिवल् लोके भ्रामयन्ति जनानपि॥६३॥
संसारजसुखासक्तं ब्रह्मज्ञोऽस्मीतिवादिनम्। कर्मब्रह्मोभयभ्रष्टं तं त्यजेदन्त्यजं यथा॥६४॥
गृहारण्यसमा लोके गतव्रीडा दिगम्बराः। चरन्ति गर्दभाद्याश्च विरक्तास्ते भवन्ति किम्॥६५॥
मृद्भस्मोद्धूलनादेव मुक्ताः स्युर् यदि मानवाः। मृद्भस्मवासी नित्यं श्वा स किं मुक्तो भविष्यति॥६६॥
तृणपर्णोदकाहाराः सततं वनवासिनः। जम्बूकाऽऽखुमृगाद्याश् च तापसास् ते भवन्ति किम्॥६७॥
आजन्ममरणान्तं च गङ्गादितटिनीस्थिताः। मण्डूकमत्स्यप्रमुखा योगिनस् ते भवन्ति किम्॥६८॥

नित्य-अनित्यवस्तुओं का विवेक इत्यादि आत्मज्ञानसाधनों से रहित मनुष्यों को केवल नाना प्रकार के व्रत और नियमों से शरीर को दण्डित करने से ही मुक्ति मिल सकेगी क्या? दीमकों से बनाए गए मिट्टी के टीले को पीटने से ही क्या कहीं बडा सर्प मरा है?॥६२॥ लोकवञ्चना करने वाले जटाओं के भार और मृगचर्म से युक्त वेषधारी लोग ज्ञानी की तरह लोक में घूमते हैं, और लोगों को भ्रम में डालते हैं॥६३॥ संसार से होने वाले सुखों में आसक्त और 'मैं ब्रह्मज्ञ हूँ' ऐसा कहने वाले, कर्म और ब्रह्म दोनों से भ्रष्ट उस मनुष्य को अन्त्यज की भाँति त्याग दे॥६४॥ घर और जङ्गल को समान करने वाले, लज्जा से रहित, दिशाओं को ही वस्त्र बनाने वाले (निर्वस्त्र) गर्दभादि प्राणी लोक में घूमते हैं, क्या वे गर्दभादि प्राणी विरक्त होते हैं?॥६५॥ मिट्टी से और राख से शरीर को लिप्त करने से ही यदि मनुष्य मुक्त होंगे तो कुत्ता सदाकाल मिट्टी में और राख में बैठने वाला होता है, क्या कुत्ता मुक्त होगा?॥६६॥ सियार, चूहे और मृग इत्यादि जन्तु भी घास, पत्ता और जल का ही आहार करने वाले हैं और निरन्तर वन में ही निवास करने वाले भी हैं, इतने से ही क्या वे तापस (वानप्रस्थाश्रमी) हो जाते हैं?॥६७॥ मेढक और मछली इत्यादि प्राणी जन्म से लेकर मरण तक गङ्गादि नदियों में रहते हैं, इतने से क्या वे योगी होते हैं?॥६८॥ कबूतर पत्थर के टुकडों को खाने वाले हैं, पपीहे कभी भी भूमि

पारावताः शिलाहाराः कदाचिदपि चातकाः। न पिबन्ति महीतोयं व्रतिनस् ते भवन्ति किम् ॥६९॥
तस्मान् नित्यादिकं कर्म लोकरञ्जनकारकम्। मोक्षस्य कारणं साक्षात् तत्त्वज्ञानं खगेश्वर ॥७०॥
षड्दर्शनमहाकूपे पतिताः पशवः खग। परमार्थं न जानन्ति पशुपाशनियन्त्रिताः ॥७१॥
वेदशास्त्रार्णवैर् घोरैरुह्यमाना इतस्ततः। षडूर्मिनिग्रहग्रस्तास् तिष्ठन्ति हि कुतार्किकाः ॥७२॥
वेदागमपुराणज्ञः परमार्थं न वेत्ति यः। विडम्बकस्य तस्यैव तत् सर्वं काकवाशितम् ॥७३॥
इदं ज्ञानमिदं ज्ञेयमिति चिन्तासमाकुलाः। पठन्त्यहर्निशं शास्त्रं परतत्त्वपराङ्मुखाः ॥७४॥
वाक्यच्छन्दोनिबन्धेन काव्यालङ्कारशोभिताः। चिन्तया दुःखिता मूढास्तिष्ठन्ति व्याकुलेन्द्रियाः ॥७५॥
अन्यथा परमं तत्त्वं जनाः क्लिश्यन्ति चान्यथा। अन्यथा शास्त्रसद्भावो व्याख्यां कुर्वन्ति चान्यथा ॥७६॥

का जल नहीं पीते हैं, इतने से क्या वे व्रतधारी हो जाते हैं? ॥६९॥ इस लिए नित्य, नैमित्तिक इत्यादि कर्म लोकरञ्जन करने वाले ही हैं; हे पक्षियों के स्वामिन्, मोक्ष का कारण तो साक्षात् तत्त्वज्ञान ही है॥७०॥ हे पक्षिन्, छः दर्शनरूपी बडे इनारे में पडे हुए और पशु के पाशों से नियन्त्रित पशुरूप मनुष्य परमार्थ को (परमात्मा को) नहीं जानते हैं॥७१॥ वेदशास्त्ररूपी भयङ्कर समुद्रों से इधर-उधर बहाए गए कुतार्किक लोग छः ऊर्मियों के (भूख, प्यास, शोक, मोह, जरा और मरण के [द्रष्टव्य- मुद्गलोपनिषद् २।४]) निग्रह से ग्रस्त ही रहते हैं॥७२॥ वेद, आगम और पुराण का ज्ञाता भी जो मनुष्य परमार्थ को (परमात्मा को) नहीं जानता है उस छद्मवेषी की वेद, आगम और पुराण की वह व्याख्या सब काकवाशिततुल्य है॥७३॥ यह ज्ञान है, यह ज्ञेय है ऐसी चिन्ता से आकुल मनुष्य परमात्मतत्त्व से पराङ्मुख होकर रात-दिन शास्त्र पढते हैं॥७४॥ केवल वाक्यविधान, छन्दोविधान इत्यादि के निबन्धन से और काव्य के अलङ्कारों के प्रयोगों से शोभित मनुष्य चिन्ता से दुःखित, मूढ और व्याकुल इन्द्रिय वाले होकर रहते हैं॥७५॥ परम तत्त्व दूसरी ओर है, मनुष्य दूसरी ओर क्लेश करता रहता है, शास्त्र का सद्भाव दूसरा है, मनुष्य व्याख्या दूसरी करता है॥७६॥

कथयन्त्युन्मनीभावं स्वयं नाऽनुभवन्ति च। अहङ्काररताः केचिदुपदेशादिवर्जिताः॥७७॥
पठन्ति वेदशास्त्राणि बोधयन्ति परस्परम्। न जानन्ति परं तत्त्वं दर्वी पाकरसं यथा॥७८॥
शिरो वहति पुष्पाणि गन्धं जानाति नासिका। पठन्ति वेदशास्त्राणि दुर्लभो भावबोधकः॥७९॥
तत्त्वमात्मस्थमज्ञात्वा मूढः शास्त्रेषु मुह्यति। गोपः कक्षगते च्छागे कूपं पश्यति दुर्मतिः॥८०॥
संसारमोहनाशाय शाब्दबोधो न हि क्षमः। न निवर्तेत तिमिरं कदाचिद् दीपवार्तया॥८१॥
प्रज्ञाहीनस्य पठनं यथाऽन्धस्य च दर्पणम्। अतः प्रज्ञावतां शास्त्रं तत्त्वज्ञानस्य लक्षणम्॥८२॥
इदं ज्ञानमिदं ज्ञेयं सर्वं तु श्रोतुमिच्छति। दिव्यवर्षसहस्राच् च शास्त्रान्तं नैव गच्छति॥८३॥

योगसाधना के उन्मनीभाव की अवस्था का वर्णन करते हैं, किन्तु स्वयम् उन्मनीभाव का अनुभव नहीं करपाते हैं, कोई केवल अहङ्कार में रहते हैं, उपदेशादि परोपकार के काम नहीं करते हैं॥७७॥ लोग वेद और वेदाङ्गशास्त्र पढते हैं, एक दूसरे को समझाते हैं, किन्तु जैसे कछली पाक का रस नहीं जानती है वैसे ही ये लोग वेदशास्त्रों में बताए गए परम तत्त्व को नहीं जानते हैं॥७८॥ फूलों को शिर धारण करता है किन्तु फूल के गन्ध को शिर नहीं, नाक जानता है, लोग वेदों और शास्त्रों को पढते हैं (और धारण करते हैं), किन्तु उन में से वेदों के और शास्त्रों के परम भाव को समझने वाला मनुष्य दुर्लभ है॥७९॥ मूर्ख पुरुष अपने में ही स्थित परमात्मतत्त्व को न जानकर शास्त्रों में उलझ जाता है, दुस्तर्क करने वाला पशुपालक बकरा सूखे बडे घास में छिप जाने पर उस को कुएँ में खोजता है॥८०॥ संसार के मूल अज्ञान का नाश करने के लिए परमात्मा का शाब्द ज्ञान समर्थ नहीं होता है, केवल दीपक की वार्ता मात्र से तो अन्धकार कभी भी नहीं हटेगा॥८१॥ विवेकबुद्धि से रहित मनुष्य के लिए शास्त्र पढना अन्धे के लिए दर्पण जैसा है; इस लिए विवेकबुद्धि से युक्त मनुष्यों के लिए ही शास्त्र तत्त्वज्ञान के लक्षण के रूप में उपयोगी होता है॥८२॥ यह ज्ञान, यह ज्ञेय इस रीति से संसार के सभी वस्तुओं के विषय में सुनना चाहता है तो दिव्य हजार वर्षों में भी सभी शास्त्रों को समाप्त नहीं कर सकता है॥८३॥

अनेकानि च शास्त्राणि स्वल्पायुर् विघ्नकोटयः। तस्मात् सारं विजानीयात् क्षीरं हंस इवाम्भसि ॥८४॥
अभ्यस्य वेदशास्त्राणि तत्त्वं ज्ञात्वाऽथ बुद्धिमान्। पलालमिव धान्यार्थी सर्वशास्त्राणि सन्त्यजेत् ॥८५॥
यथाऽमृतेन तृप्तस्य नाऽऽहारेण प्रयोजनम्। तत्त्वज्ञस्य तथा तार्क्ष्य न शास्त्रेण प्रयोजनम् ॥८६॥
न वेदाध्ययनान् मुक्तिर् न शास्त्रपठनादपि। ज्ञानादेव हि कैवल्यं नाऽन्यथा विनतात्मज ॥८७॥
नाऽऽश्रमः कारणं मुक्तेर् दर्शनानि न कारणम्। तथैव सर्वकर्माणि ज्ञानमेव हि कारणम् ॥८८॥
मुक्तिदा गुरुवागेका विद्याः सर्वा विडम्बिकाः। शास्त्रभारसहस्रेषु ह्येकं सञ्जीवनं परम् ॥८९॥
अद्वैतं हि शिवं प्रोक्तं क्रियया परिवर्जितम्। गुरुवक्त्रेण लभ्येत नाऽधीतागमकोटिभिः ॥९०॥
आगमोक्तं विवेकोत्थं द्विधा ज्ञानं प्रचक्षते। शब्दब्रह्माऽऽगममयं परं ब्रह्म विवेकजम् ॥९१॥

शास्त्र अनेक हैं, आयु थोडा है, करोडों विघ्न हैं, इस लिए जैसे हंस जल में मिले हुए क्षीर (मृणालनाल) को चुनकर लेता है वैसे ही मनुष्य शास्त्र के सार को चुनकर जान ले॥८४॥ बुद्धिमान् मनुष्य वेदों का और वेदाङ्गशास्त्रों का अभ्यास करके परमार्थतत्त्व को जानकर उस के बाद जैसे धान्य चाहने वाला पुआल को छोड देता है वैसे ही सभी शास्त्रों को छोड दे॥८५॥ हे गरुड, जैसे अमृत से तृप्त मनुष्य के लिए अन्य आहार का कोई प्रयोजन नहीं होता है वैसे ही परमात्मतत्त्व को जानने वाले के लिए शास्त्र से कोई प्रयोजन नहीं होता है॥८६॥ हे विनता के पुत्र, वेद के अध्ययन से मुक्ति नहीं होती है, वेदाङ्गशास्त्रों के पठन से भी मुक्ति नहीं होती है, ज्ञान से ही कैवल्य (मोक्ष) होता है, अन्य साधन से नहीं॥८७॥ सन्न्यासाश्रम मुक्ति का कारण नहीं है, वैशेषिकदर्शनादि दर्शन भी मोक्ष के कारण नहीं हैं, उसी प्रकार सभी कर्म भी मोक्ष के कारण नहीं हैं, ज्ञान ही मोक्ष का कारण है॥८८॥ मुक्ति देने वाला तो गुरु से उपदिष्ट एक ही श्रौत महावाक्य है, अन्य सभी विद्याएँ धोखा देने वाली हैं, शास्त्रों के हजारों भारों में से एक ही वाक्य परम सञ्जीवन है॥८९॥ शिवतत्त्व अद्वैत और क्रिया से रहित बताया गया है, वह गुरु के मुख से पाया जा सकता है, करोडों आगमशास्त्रग्रन्थों से नहीं॥९०॥ विज्ञ लोग शास्त्र से होने वाले और विवेक से होने वाले दो प्रकार के

अद्वैतं केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चाऽपरे। समं तत्त्वं न जानन्ति द्वैताऽद्वैतविवर्जितम्॥९२॥
द्वे पदे बन्धमोक्षाय न ममेति ममेति च। ममेति बध्यते जन्तुर् न ममेति प्रमुच्यते॥९३॥
तत् कर्म यन् न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तिदा। आयासायाऽपरं कर्म विद्याऽन्या शिल्पनैपुणम्।९४।
यावत् कर्माणि दीप्यन्ते यावत् संसारवासना। यावदिन्द्रियचापल्यं तावत् तत्त्वकथा कुतः॥९५॥
यावद् देहाभिमानश्च ममता यावदेव हि। यावत् प्रयत्नवेगोऽस्ति यावत् सङ्कल्पकल्पना॥९६॥
यावन् नो मनसः स्थैर्यं न यावच् छास्त्रचिन्तनम्। यावन् न गुरुकारुण्यं तावत् तत्त्वकथा कुतः।९७।
तावत् तपो व्रतं तीर्थं जपहोमार्चनादिकम्। वेदशास्त्रागमकथा यावत् तत्त्वं न विन्दति॥९८॥

ज्ञान को बताते हैं, शब्दब्रह्म (वेद) आगममय है, परब्रह्म विवेक से जाना जाने वाला है॥९१॥ कोई परब्रह्म को अद्वैत बताना चाहते हैं, अन्य लोग द्वैत बताना चाहते हैं, द्वैत से और अद्वैत से भी रहित समरस तत्त्व को नहीं जानते हैं॥९२॥ बन्ध के लिए और मोक्ष के लिए दो ही पद हैं, न मम यह पद और मम यह पद। मम (मेरा) इस पद की भावना से प्राणी संसार में बाँधा जाता है, न मम (मेरा नहीं) इस पद की भावना से संसार से मुक्त हो जाता है॥९३॥ वह कर्म है जो संसार में बन्धन के लिए नहीं होता है, वह विद्या है जो संसार से मुक्ति देने वाली है, अन्य कर्म केवल दुःख के लिए है और अन्य विद्या शिल्प की निपुणता मात्र है॥९४॥ जब तक कर्म प्रधान रूप से प्रकाशित होते हैं, जब तक संसार की वासना रहती है, जब तक इन्द्रियों में चपलता रहती है, तब तक परमात्मतत्त्वज्ञान की वार्ता कहाँ से हो सकेगी?॥९५॥ जब तक देह का अभिमान रहता है, जब तक ममता रहती है, जब तक विविधकार्य के प्रति प्रयत्नों का वेग रहता है, जब तक नाना सङ्कल्प वाली कल्पना रहती है, जब तक मन की स्थिरता नहीं होती है, जब तक शास्त्र का चिन्तन नहीं होता है, जब तक गुरु की करुणा नहीं होती है, तब तक परमात्मतत्त्व की वार्ता कहाँ से होगी?॥९६-९७॥ जब तक मनुष्य परमात्मतत्त्व का ज्ञान नहीं पाता है तब तक ही तपस्या, व्रत, तीर्थ, जप, होम, पूजा इत्यादि तथा वेद, वेदाङ्गशास्त्र और आगम की वार्ता होती है॥९८॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सर्वावस्थासु सर्वदा। तत्त्वनिष्ठो भवेत् तार्क्ष्य यदीच्छेन् मोक्षमात्मनः॥९९॥
धर्मज्ञानप्रसूनस्य स्वर्गमोक्षफलस्य च। तापत्रयादिसन्तप्तश् छायां मोक्षतरोः श्रयेत्॥१००॥
तस्माज् ज्ञानेनाऽऽत्मतत्त्वं विज्ञेयं श्रीगुरोर् मुखात्। सुखेन मुच्यते जन्तुर् घोरसंसारबन्धनात्॥१०१॥
तत्त्वज्ञस्याऽन्तिमं कृत्यं शृणु वक्ष्यामि तेऽधुना। येन मोक्षमवाप्नोति ब्रह्म निर्वाणसंज्ञकम्॥१०२॥
अन्तकाले तु पुरुष आगते गतसाध्वसः। छिन्द्यादसङ्गशस्त्रेण स्पृहां देहेऽनु या च तम्॥१०३॥
गृहात् प्रव्रजितो धीरः पुण्यतीर्थजलाप्लुतः। शुचौ विविक्त आसीनो विधिवत् कल्पितासने।१०४।
अभ्यसेन् मनसा शुद्धं त्रिवृद् ब्रह्माक्षरं परम्। मनो यच्छेज् जितश्वासो ब्रह्मबीजमविस्मरन्॥१०५॥

हे गरुड इस लिए यदि अपना मोक्ष चाहता है तो मनुष्य सम्पूर्ण प्रयत्न से सभी अवस्था में सदाकाल परमात्मतत्त्वज्ञान प्राप्त करने में प्रयत्नरत रहे॥९९॥ आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक इन तीन तापों से और अन्य इसी प्रकार के तत्त्व से सन्तप्त मनुष्य धर्मरूपी और ज्ञानरूपी फूलों से युक्त और स्वर्गरूपी और मोक्षरूपी फल से युक्त मोक्षतरु का आश्रयण करे॥१००॥ इस लिए श्रीगुरु के मुख से प्राप्त ज्ञान से आत्मतत्त्व का अनुभवात्मक ज्ञान करना चाहिए। इस से प्राणी सुख से ही भयङ्कर संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है॥१०१॥ आत्मतत्त्वज्ञान से युक्त मनुष्य के जीवन के अन्तिम कृत्य को, जिस से वह निर्वाण नाम से प्रसिद्ध ब्रह्मरूप मोक्ष को पाता है, तुम को बताऊँगा, सुनो॥१०२॥ मरणकाल आने पर निर्भय होकर मनुष्य अनासक्तिरूपी शस्त्र से देह में और उस के अनुगामी पदार्थों में जो स्पृहा है उस को काट दे॥१०३॥ घर से निकला हुआ धैर्यशाली पुरुष पुण्य तीर्थ के जल में स्नान करके एकान्त स्थल में निर्मित शुद्ध आसन में शास्त्र के विधान के अनुसार बैठता हुआ मन से शुद्ध रूप में त्रिगुण परमब्रह्माक्षर का (ओङ्कार का) अभ्यास करे, प्राणायाम करके ब्रह्मबीज का (ओङ्कार का) विस्मरण न करता हुआ मन को निरुद्ध करे॥१०४-१०५॥

नियच्छेद् विषयेभ्योऽक्षान् मनसा बुद्धिसारथिः। मनः कर्मभिराक्षिप्तं शुभार्थे धारयेद् धिया॥१०६॥
अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माऽहं परमं पदम्। एवं समीक्ष्य चाऽऽत्मानमात्मन्याधाय निष्कले॥१०७॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्। यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्॥१०८॥
न यत्र दाम्भिका यान्ति ज्ञानवैराग्यवर्जिताः। सुधियस् तां गतिं यान्ति तानहं कथयामि ते॥१०९॥
निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर् विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर् गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्॥११०॥
ज्ञानह्रदे सत्यजले रागद्वेषमलापहे। यः स्नाति मानसे तीर्थे स वै मोक्षमवाप्नुयात्॥१११॥
प्रौढवैराग्यमास्थाय भजते मामनन्यभाक्। पूर्णदृष्टिः प्रसन्नात्मा स वै मोक्षमवाप्नुयात्॥११२॥

बुद्धिरूपी सारथि से युक्त मनुष्य मन के द्वारा इन्द्रियों को विषयों से खींच ले, कर्मों से विक्षिप्त मन को बुद्धि द्वारा शुभ विषय में करे॥१०६॥ मैं परमधामरूप ब्रह्म हूँ, मैं परमपदरूप ब्रह्म हूँ ऐसा विचार करके जीवात्मा को निष्कल परमात्मा में रखकर 'ओम्' इस एकाक्षर ब्रह्म को बोलता हुआ तथा मेरा (परमात्मा का) स्मरण करता हुआ और शरीर को छोडता हुआ जो मनुष्य प्रयाण करता है वह परम गति को (ब्रह्मलोक को) प्राप्त करता है॥१०७-१०८॥ जहाँ दिखावे के लिए ज्ञान और वैराग्य का ढोंग रचाने वाले, ज्ञान से और वैराग्य से रहित मनुष्य नहीं जा सकते हैं, उस गति में यथार्थ ज्ञान से युक्त जो मनुष्य जाते हैं उन को मैं तुम को बताता हूँ॥१०९॥ अभिमान और अज्ञान से रहित, आसक्ति के दोषों को जीतने वाले, नित्य अध्यात्मचिन्तन करने वाले, कामनाओं से निवृत्त, सुख और दुःख नाम के द्वन्द्वों से रहित, अमूढ पुरुष उस अक्षय पद में पहुँचते हैं॥११०॥ सत्यरूपी जल वाले, राग-द्वेषरूपी मल का निवारण करने वाले ज्ञानरूपी जलाशय से युक्त मानस (मन के) तीर्थ में जो स्नान करता है वह मोक्ष पाएगा॥१११॥ जो पूर्ण वैराग्य लेकर अन्य वस्तु में चित्त नहीं देता हुआ मेरा (परमात्मा का) आश्रय लेता है पूर्ण दृष्टि से युक्त और प्रसन्नचित्त वाला वह मनुष्य मोक्ष पाएगा॥११२॥

त्यक्त्वा गृहं च यस् तीर्थे निवसेन् मरणोत्सुकः। मुक्तिक्षेत्रेषु म्रियते स वै मोक्षमवाप्नुयात्॥११३॥
अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका। पुरी द्वारवती ज्ञेयाः सप्तैता मोक्षदायिकाः॥११४॥
इति ते कथितं तार्क्ष्य मोक्षधर्मं सनातनम्। ज्ञानवैराग्यसहितं श्रुत्वा मोक्षमवाप्नुयात्॥११५॥
मोक्षं गच्छन्ति तत्त्वज्ञा धार्मिकाः स्वर्गतिं नराः। पापिनो दुर्गतिं यान्ति संसरन्ति खगादयः॥११६॥

सूत उवाच

स्वप्रश्नोत्तरराद्धान्तमेवं भगवतो मुखात्। श्रुत्वा हृष्टतनुस् तार्क्ष्यो ननाम जगदीश्वरम्॥११७॥
सन्देहो मे महान् नष्टो भवद्वाक्यविरोचनात्। इत्युक्त्वा विष्णुमामन्त्र्य स गतः कश्यपाश्रमम्॥
सद्यो देहान्तरं याति यथा याति विलम्बतः। अनयोरुभयोश् चैव न विरोधस् तथैव वः॥११९॥

घर को छोडकर मरने में उत्सुक होकर जो तीर्थ में निवास करता है और मुक्तिप्रदायक क्षेत्रों में मरता है वह मोक्ष पाएगा॥११३॥ अयोध्या, मथुरा, माया (हरिद्वार), काशी, काञ्ची, अवन्तिका, द्वारवती पुरी ये सात पुरियाँ मोक्षदायिका हैं॥११४॥ हे गरुड, इस प्रकार तुम को सनातन मोक्षधर्म बताया गया। इस को ज्ञान और वैराग्य से सहित होकर सुनकर मनुष्य मोक्ष पाएगा॥११५॥ परमात्मतत्त्व को जानने वाले मनुष्य मोक्ष प्राप्त करते हैं, धार्मिक मनुष्य स्वर्ग में जाते हैं, पापी लोग दुर्गति में (नरक में) जाते हैं, पक्षि-पशु इत्यादि प्राणी संसारचक्र में घूमते रहते हैं॥११६॥ सूत ने कहा— इस रूप में अपने प्रश्नों के उत्तर के रूप में धर्म-मोक्षादिसिद्धान्त को भगवान् विष्णु के मुख से सुनकर गरुड ने रोमाञ्चित शरीर वाला होके जगत् के स्वामी विष्णु को प्रणाम किया॥११७॥ आप के वाक्य के प्रकाश से मेरा बडा सन्देह नष्ट हुआ, ऐसा कहकर गरुडजी विष्णु से अनुमति लेकर कश्यप के आश्रम को गए॥११८॥ कोई मरण के तत्काल बाद दूसरे देह में जाता है और कोई मरण के बाद विलम्ब से दूसरे देह में जाता है, इन दोनों पक्षों में कोई विरोध नहीं है, यह बात मैं ने आप लोगों को जैसे बताई वैसे ही गरुडजी ने भी भगवान् विष्णु से सुना था और वैसा ही सब अपने पिता

सर्वमाख्यातवांस् तातं श्रुतो भगवतो यथा। मारीचोऽपि मुदं लेभे श्रुत्वा वाक्यं रमापतेः॥१२०॥
अपाकृतस्तु सन्देहो ब्राह्मणा भवतां मया। उक्तं सुपर्णसंज्ञं तु पुराणं परमाद्भुतम्॥१२१॥
इदमाप हरेस् तार्क्ष्यस् तार्क्ष्यादाप ततो भृगुः। भृगोर् वसिष्ठः सम्प्राप वामदेवस् ततः पुनः॥१२२॥
पराशरमुनिः प्राप तस्माद् व्यासस् ततो ह्यहम्। मया तु भवतां प्रोक्तं परं गुह्यं हरेरिदम्॥१२३॥
य इदं श‍ृणुयान् मर्त्यो यो वाप्यभिदधाति च। इहाऽमुत्र च लोके स सर्वत्र सुखमाप्नुयात्॥१२४॥
व्रजतः संयमन्यां यद् दुःखमत्र निरूपितम्। अस्य श्रवणतः पुण्यं तन्मुक्तो जायते ततः॥१२५॥
अत्रोक्तकर्मपाकादिश्रवणं च नृणामिह। वैराग्यमावहेद् यस्मात् तस्माच् छ्रोतव्यमेव च॥१२६॥

कश्यपजी को कहा। मरीचि के पुत्र कश्यपजी ने भी रमापति विष्णु के वाक्य को (गरुड के मुख से) सुनकर हर्ष पाया॥११९-१२०॥ हे ब्राह्मण लोग, आप लोगों का सन्देह मैं ने हटा दिया, गरुडनामक अत्यन्त अद्‌भुत पुराण मैं ने कहा॥१२१॥ इस पुराण को हरि से गरुडजी ने पाया, तब गरुडजी से भृगुजी ने पाया, भृगुजी से वसिष्ठजी ने पाया, उन से फिर वामदेवजी ने पाया॥१२२॥ उन से पराशरमुनि ने पाया, उन से व्यासजी ने पाया, उन से मैं ने पाया। हरि का यह गुह्य पुराण मुझ से आप लोगों के आगे बताया गया॥१२३॥ जो मनुष्य इस पुराण को सुनता है अथवा कहता है वह इस लोक में और परलोक में भी सभी जगह सुख पाएगा॥१२४॥ यमपुरी में जाने वाले का जो दुःख इस पुराण में बताया गया है इस का श्रवण करने से पुण्य होता है, और उस से सुनने वाला मनुष्य उक्त दुःख से मुक्त हो जाता है॥१२५॥ चूंकि इस पुराण में बताए गए कर्मफलादि का श्रवण इस लोक में मनुष्यों को वैराग्य उत्पन्न करेगा इस लिए इस पुराण को सुनना चाहिए॥१२६॥ हे जितेन्द्रिय मुनिगण, आप लोग मुनियों के स्वामी इन कृष्णजी का भजन करें, जिन कृष्ण से अमृततुल्य सार वाली वाणी निकली, जिस वाणी के वर्णरूप एक बूँद मात्र का भी कर्णपुटरूप चुल्लू से पान करने पर

भजत जितहृषीकाः कृष्णमेनं मुनीशं समजनि बत यस्माद् गीः सुधासारधारा।
पृषतमपि यदीयं वर्णरूपं निपीय श्रुतिपुटचुलुकेन प्राप्नुयादात्मनैक्यम्॥१२७॥

व्यास उवाच

इति सूतमुखोद्गीर्णां सर्वशास्त्रार्थमण्डिताम्। वैष्णवीं वाक्सुधां पीत्वा ऋषयस् तुष्टिमाययुः॥१२८॥
प्रशशंसुस् तथाऽन्योऽन्यं सूतं सर्वार्थदर्शिनम्। प्रहर्षमतुलं प्रापुर् मुनयः शौनकादयः॥१२९॥

इति हरिवचनानि सूतवाचा खगपतिसंशयभेदकानि यानि।
स मुनिरपि निशम्य शौनकेन्द्रो बहुतरमानयति स्म चाऽऽत्मनि स्वम्॥
अपूजयंस् ते मुनयस् तदानीमुदारवाग्भिर् मुहुरेव सूतम्।
धन्योऽसि सूत त्वमिहेत्युदैरयन् व्यसर्जयंस् तं च निवर्तितेऽध्वरे॥१३१॥

पुराणं गारुडं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम्। शृण्वतां कामनापूरं श्रोतव्यं सर्वदैव हि॥१३२॥

मनुष्य परमात्मा से एकता प्राप्त कर सकेगा॥१२७॥ परम्परानुसारी किसी पुराणप्रवक्ता व्यास ने जोडकर कहा— इस रूप में सूत के मुख से निकली हुई और सभी शास्त्रों के अर्थों से भूषित विष्णु की वाणीरूपी सुधा (अमृत) को पीकर ऋषि लोग सन्तुष्ट हुए॥१२८॥ फिर शौनकादि मुनियों ने एक आपस में सभी पुरुषार्थों को दिखाने वाले सूत की प्रशंसा की और अतुलनीय हर्ष पाया॥१२९॥ इस प्रकार से गरुड के सन्देह को हटाने वाले जो हरि के वचन थे उन को सूत की बोली से सुनकर शौनकों में श्रेष्ठ वह मुनि भी अपने में ही अपने को अधिकतर केन्द्रित करने लगे (आत्माराम होने लगे)॥१३०॥ उन मुनि लोगों ने उस समय में महावाणियों से वारंवार सूत का सत्कार किया। हे सूत, इस लोक में तुम धन्य हो ऐसा कहा और यज्ञ समाप्त होने पर उन को बिदाई दी॥१३१॥ गरुड से सम्बद्ध यह पुराण सुनने वालों के लिए पुण्यजनक, शुद्ध करने वाला और पापों को नष्ट करने वाला तथा कामनाओं की पूर्ति करने वाला भी है, इस लिए यह

श्रुत्वा दानानि देयानि वाचकायाऽखिलानि च। पूर्वोक्तशयनादीनि नाऽन्यथा सफलं भवेत्॥१३३॥
पुराणं पूजयेत् पूर्वं वाचकं तदनन्तरम्। वस्त्रालङ्कार-गोदानैर् दक्षिणाभिश् च सादरम्॥१३४॥
अन्नदानैर् हेमदानैर् भूमिदानैश् च भूरिभिः। पूजयेद् वाचकं भक्त्या बहुपुण्यफलाप्तये॥१३५॥
यश् चेदं शृणुयान् मर्त्यो यश् चाऽपि परिकीर्तयेत्। विहाय यातनां घोरां धूतपापो दिवं व्रजेत्॥१३६॥

॥ इति श्रीगारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशे धर्मकाण्डनामके प्रेतकल्पे श्रीकृष्णगरुडसंवादे मोक्षोपायनिरूपणं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥

॥ समाप्तश्चाऽयं गारुडे महापुराणे उत्तरखण्डे द्वितीयांशो धर्मकाण्डः प्रेतकल्पः॥

जब कभी भी सुनने योग्य है॥१३२॥ इस पुराण को सुनकर वाचक को पूर्वोक्त शय्यादानादि सभी दान देने चाहिए, अन्यथा इस पुराण का सुनना सफल नहीं होगा॥१३३॥ पहले पुराण की पूजा करे, उस के बाद वाचक की पूजा करे। अधिक पुण्यफल पाने के लिए भक्ति से आदरपूर्वक वाचक को बहुत वस्त्रदानों से, आभूषणदानों से, गोदानों से, दक्षिणादानों से, अन्नदानों से, स्वर्णदानों से और भूमिदानों से पूजित करे॥१३४-१३५॥ जो मनुष्य इस पुराण को पढेगा वह भयङ्कर यमयातना का परिहार करके पापों को फेंककर स्वर्ग में जाएगा॥१३६॥

श्रीगरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में द्वितीयांश में धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प में श्रीकृष्ण और गरुड के संवाद में मोक्ष के उपाय का निरूपण करने वाला उनचासवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥४९॥

॥ गरुडमहापुराण के उत्तरखण्ड में गरुडमहापुराण का द्वितीयांशरूप धर्मकाण्डनामक प्रेतकल्प भी समाप्त हुआ॥

एतद्ब्रह्माण्डोदरस्थे भूर्लोकेऽन्तर्गते शुभे। जम्बूद्वीपे भारते च कुमारीखण्डके तथा॥
हिमवत्खण्ड-गर्भस्थे गण्डकीक्षेत्र-मध्यगे। शालग्रामशिलायोन्याः कृष्णायाः पूर्वतः स्थिते॥
स्थिते गौरीगुरोरङ्के तत्पादैः सर्वतो वृते। ख्याते जनपदे प्रोच्चत्रितुङ्गाचलमण्डिते॥
वसिष्ठस्याऽरुन्धतीतोऽन्यस्यां पत्न्यां समुद्गतः। मैत्रावरुणनामा य ऋषिस् तस्य सुतस्य च॥
कुण्डिनस्य ऋषेर् मन्त्रद्रष्टुर् गोत्रे समुज्ज्वले। नैपालभाषाऽऽदिकवि-भानुना ख्यापिते शुभे॥
त्रिशुक्लविप्रश्रीकृष्णा-ऽऽचार्यवंशे समुद्गतः। नारनाथिश्च गाङ्गेयो मतिवारिधिशिष्यकः॥
कौण्डिन्न्यायनशिक्षादिग्रन्थानां रचनादिह। भूमण्डले वैदिकादिविद्वद्भिः संस्तुतोऽपि च॥
माद्ध्यन्दिनीयकाचार्यो वार्तावृत्तिगृहस्थकः। शिवाभिधो ह्यतनुत भाषाटीकामिमां द्विजः॥
कृष्णस्वर्गारोहणतः प्रवृत्तस्य युगस्य तु। गजस्वादखबाणैश्च (५०६८) संसूच्ये त्वब्दके स्थिते ॥
पञ्चवर्षात्मके त्वाहिर्बुध्न्याख्ये वैदिके युगे। इदावत्सरके शुक्ले पक्षे षष्ठ्यां मधोस् तथा॥
वैक्रमेऽब्दे निधिशरव्योमनेत्र(२०५९)मितेऽपि च। समापितेयं टीका स्याद् धार्मिकाणां मुदे सदा॥

श्रीगरुडपुराणस्य उत्तरखण्डस्य द्वितीयांशस्य धर्मकाण्डस्य प्रेतकल्पस्य श्लोकार्धकानुक्रमणिका

[illegible]

पुराणेतिहास-ग्रन्था:

आदिपुराण । श्यामसुन्दरलाल त्रिपाठी

अग्निमहापुराणम् । आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी

आनन्दरामायणम् । पं. श्रीरामतेज पाण्डेय

कपिलपुराणम् । डॉ. श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी

कल्किपुराण । पं. रामस्वरूप शर्मा

गर्गसंहिता । पं. श्रीरामतेज पाण्डेय

गरुडपुराण । पं. श्रीरामतेज पाण्डेय

श्रीमद्देवीभागवतम् । पं. श्रीरामतेज पाण्डेय

पुराणतत्त्वमीमांसा । डॉ. श्रीकृष्णमणि पाण्डेय

पुराणविमर्श । आचार्य बलदेव उपाधअयाय

श्रीमद्भागवत-कथा । पं. शिवप्रसाद द्विवेदी

श्रीमद्भागवतम् । पं. श्रीरामतेज पाण्डेय

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणम् । पं. श्रीरामतेज पाण्डेय

मत्स्यपुराण । पं. कालीचरण एवं पं. बस्तीरामजी

श्रीमार्कण्डेयपुराण ।

श्रीवामनपुराण ।

शिवमहापुराणम् । डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी (शिवभाषाटीका सहित)

पुराणपर्यालोचनम् । (१-२ भाग) । डॉ. श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी

चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी